चौदहवीं शती के
अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य में भारत

चौदहवीं शती के
अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य में भारत

डॉ० सूर्यनारायण पाण्डेय



प्रकाशक



५, सम्मेलन माग □ इलाहाबाद—२११००३

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० लिट् के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध

प्रथम सस्करण १९७८
मूल्य ३५ रु०

श्री पन्नालाल सोनकर द्वारा दीपक प्रकाशन
५, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद–२११००३ से
प्रकाशित एव राष्ट्रीय मुद्रणालय मे मुद्रित ।

मेरे

शोध के प्रेरणा-स्रोत

प्रो० माताबदल जायसवाल

को

'त्वदीय' और 'तुभ्य' भाव से

सादर समर्पित

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० लिट् के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध

मेरे

शोध के प्रेरणा-स्रोत

प्रो० माताबदल जायसवाल

को

'त्वदीय' और 'तुभ्य' भाव से

सादर समर्पित

विषय-सूची

भाग २

(१४वी शताब्दी अपभ्रश तथा हि दी साहित्य मे चित्रित भारत)

भाग १

चौदहवी शती का भारत—अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्येतर स्रोतो के आधार पर—

अध्याय १ अ—राजनीतिक दशा

टिप्पणी (१) आगे के अध्याय २, ३ और ४ गलत छप गया है। इनको अध्याय १ ब, १ स और १ द पढा जाय।

(२) पृष्ठ १ से ६४ तक अशुद्धियाँ बहुत हैं। इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति एव सभ्यता पर सस्कृत के विशाल साहित्य मे अभूतपूर्व प्रकाश पडता है। सस्कृत भाषा और साहित्य के विकास क्रम से भारतीय सास्कृतिक चेतना अभिन्न रूप से जुडी हुई है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने लिखा है कि सस्कृत भारतीय भाषाओ के लिये गगाजल के समान है, यदि वह सूख जाये तो और भाषाएँ निर्माल्य हो जायँ। सस्कृत के रिक्थ क्रम मे पालि, प्राकृत, अपभ्रश और हिंदी भाषा का विकास हुआ। वस्तुत इन भाषाओ के विपुल साहित्य को सस्कृत का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। भारतीय धार्मिक चेतना के शाश्वत मूल्यो को इन भाषाओ के साहित्य ने अपने मे आत्मसात किया है, वस्तुत इस दृष्टि से इनके साहित्य का सास्कृतिक अनुशीलन अत्यन्त महत्व का विषय सिद्ध होगा जिसमे भारतीय सस्कृति के विभिन्न आयाम स्पष्ट रूप से अध्येताओ के समक्ष उभर कर प्रस्तुत होगे।

अपभ्रश भाषा का विकास प्राकृत से हुआ और उसने तत्कालीन विभिन्न समुन्नत धार्मिक मतो का आश्रय प्राप्त किया। हिन्दू, बौद्ध तथा जैन आदि का धार्मिक जीवन अपभ्रश साहित्य मे समान रूप मे प्रतिबिम्बित है और अन्तत भारतीय सस्कृत की शाश्वत मान्यताये एव मूल्य उसमे भी उपलब्ध होते है। चौदहवी शताब्दी का अपभ्रश साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है, किन्तु उसकी अन्य कतिपय सामयिक विशेषताएँ है जिन्होने युग को एक नवीन स्पदन प्रदान किया है। तथाकथित हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष एव उसकी प्रक्रिया का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी इस समय के साहित्य का विशेष महत्व है। वस्तुत इस समय भारत को एक अभिनव सस्कृति के सम्पर्क मे आना पडा और उसकी विशेषताओ एव प्रभावो को आत्मसात करना पडा अथवा उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करनी पडी। सभवत इसके मूल्याकन मे सर्वाधिक महत्व का विषय तत्कालीन साहित्य होगा क्योकि क्रियात्मक अथवा प्रतिक्रियात्मक रूप मे तत्कालीन परिवेश में साहित्य सृजन हुआ। इस समय तुर्कों का प्रभुत्व भारत में प्रसृत हुआ। अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक एव तैमूर लङ्ग के

प्रभुत्व ने भारत के इतिहास मे नई क्रान्ति उत्पन्न की और इसके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव से सास्कृतिक सम्भार अछूता नही रह सका ।

वस्तुत इस काल मे सस्कृत साहित्य जन साधारण से दूर हटने लगा था—यद्यपि सामाजिक व्यवस्था एव धार्मिक विचार धारा का नियत्रण इसी के व्यापक निर्देशो से होता था । अपभ्रश अथवा पुरानी हिन्दी जन सामान्य की भाषा थी और उसमे लोक के सुख दु ख, राग-विराग तथा आशा-आकाक्षाओ के प्रतिबिम्ब मिलते हैं । धार्मिक चेतना सामाजिक सन्दर्भ से जुडकर इस साहित्य मे प्रतिबिम्बित हुई है । अत तत्कालीन जनजीवन का यथाथ चित्र इसी साहित्य मे समाविष्ट है यह कहना असगत न होगा । अत उसके मूल्याकन की अपेक्षा है ।

साहित्य और इतिहास के सदभ म प्राय इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि इतिहास मे घटनाओ एव तिथियो का विशिष्ट परिचय होता है जबकि साहित्य मे समसामयिक इतिहास के सदभ मे जीवन का मूल उत्स सत्य रूपायित होता है । विवेच्य साहित्य की समग्रता से जन जीवन के सत्य के उद्घाटन मे अप्रतिम सहायता सुलभ हो सकती है ।

साहित्यिक सम्भार को छोडकर जब हम ज्ञानराशि की अन्य सामग्री पर दृष्टि-पात करते है तो सहज ही इस समय की स्थिति पर प्रकाश डालने के सदभ म हमारा ध्यान विदेशी पयटको के साहित्य की ओर आकृष्ट होता है । निश्चय ही इन विदेशी पयटको द्वारा अपने समय मे भारतभूमि का सास्कृतिक सर्वेक्षण हुआ कि तु सामान्य-तया उन्होने इसे अपने ही तत्कालीन रीति-रिवाजो, मन्दिरो एव स्थापत्य कलाओ की सामग्री तक ही सीमित रक्खा । साहित्यिक सभारो के उपयोग की ओर उनका अधिक ध्यान आकृष्ट नही हो सका । इसी प्रकार मुस्लिम इतिहासकारो ने तत्कालीन सघष के कतिपय महत्वपूण चित्र प्रस्तुत किये किन्तु उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह से वचित नही रह सका । इस दृष्टि से यह साहित्य धारा कामधेनु के समान है जिसके दोहन स सस्कृति का अमृतोपम दुग्धपान सुलभ होगा ।

आधुनिक अँग्रेज इतिहासकारो ने अपनी सुविधा एव राजनीतिक उपलब्धि की दृष्टि से भारतीय इतिहास को कतिपय स दर्भों मे अधकार से आच्छन्न रक्खा । भारतीय इतिहासकारो ने भी इससे आगे बढकर सामाजिक अवस्था विशेष मे कोई महत्त्व-पूण योगदान नही दिया । भारतीय पुनरुत्थान की चेतना के सदेशवाहक इतिहासकार अपने पूर्व के साहित्यिक सम्भारो की सही समीक्षा कर बडा काय कर सकते थे किन्तु तत्कालीन प्रशासन ने उनके समक्ष एक सीमारेखा प्रस्तुत कर दी थी जिससे इतिहास पर सत्य का आलोक नही पड सका । स्वतन्त्रता के अनन्तर भारतीय चेतना की व्या-

पकता एव महनीयता के मूल्याकन की दृष्टि से अब हमारे लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो गया कि हम अपने अछूते साहित्य के इन पृष्ठो का अनुशीलन कर उन्हे विद्वज्जगत के समक्ष प्रस्तुत करे और जन साधारण को अपने उस समृद्ध उत्तराधिकार से परिचित कराये। भारत के विभिन्न धर्मो तथा वर्गो की सामाजिक मनस्थिति पर जो प्रकाश इस साहित्य से पडगा, वह मूल्यवान सिद्ध होगा। उसमे किसी प्रकार की पूर्वाग्रह अथवा हीनता की भावना नही मिलेगी।

पाश्चात्य प्रत्नविदो का उद्देश्य भारतीय साहित्य का अनुशीलन कर उसे पश्चिम के समक्ष प्रस्तुत करना रहा। यह अपने आप मे एक शुभ सकल्प था, क्योकि भारतीय सस्कृति एव उसके आध्यात्मिक चिंतन का प्रखर रूप विदेशी लोगो के समक्ष प्रस्तुत हुआ तथा भारत ने अपनी मान्यताओ से अन्तर्राष्ट्रीय चितन का प्रभावित किया। स्वतन्त्रता के अनन्तर हमारे विद्वानो ने अपने अतीत के पृष्ठो पर आलोक विकीर्णित करने के लिए इस दिशा मे काय किया। वैदिक वाङ्मय, ब्राह्मण ग्र थ, उपनिषद्, पुराणो एव तत्र साहित्य का सास्कृतिक अनुशीलन भारत के विद्वानो ने किया है। सस्कृत तथा लौकिक साहित्य के अपर रचनाकारो की कृतियो का दोहन कर सास्कृतिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। पाणिनि एव पतञ्जलि सदृश वैयाकरणो की कृतियो पर तत्कालीन समाज की आधार शिला प्रस्तुत की गई है। मध्यकालीन सूर, तुलसी, कबीर, तथा जायसी आदि की सास्कृतिक शब्दावली का अनुशीलन हिन्दी भाषा के माध्यम से सम्पन्न हुआ है। इस दृष्टि से डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के काय प्रशसनीय हैं। उन्होने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश एव हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि मे अध्येताओ को सास्कृतिक अनुशीलन की प्रेरणा प्रदान की। वस्तुत इस काल के साहित्य की अनुशीलन अत्यन्त उपादेय है। इस काल का साहित्य सामान्यतया सदिग्ध माना जाकर उपेक्षा का विषय बना रहा। उसकी गवेषणा से प्राप्त सामग्री अपूण रही जिसके आधार पर कोई निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन रहा। वस्तुत इस दृष्टि से इस बात की आवश्यकता है कि तत्कालीन कृतियो का मूलपाठ तथा रचनाकाल निर्धारित किया जाय जिससे सस्कृति की प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सके।

सम्प्रति इस उद्देश्य से चौदहवी शताब्दी की कतिपय महत्वपूर्ण रचनाओ को गवेषणा का आधार बनाया गया है। इसके लिये तत्कालीन कृतियो क प्रामाणिक पाठ के उपयोग की चेष्टा की गई है। विभिन्न धार्मिक एव साहित्यिक शोध सस्थानो से प्रकाशित पाठ सम्पादन से प्राप्त सामग्री की तुलनात्मक समीक्षा कर एक शब्द कोश निर्मित किया गया है जिनको केन्द्र मे रखकर उसी के आधार पर सामान्यीकरण कर सम सामयिक सस्कृति के कुछ स्वरूप निश्चित किये गये हैं। यह अवश्य है कि मूलाधार साहित्य होने के कारण विवेचन आदर्शोन्मुख हो गया होगा।

सामान्यीकरण के अनन्तर परिशिष्ट १ के सास्कृतिक शब्दानुक्रमणिका द्वारा स्पष्ट किया गया है कि उस समय कैसे-कैसे लोग थे। वस्त्राभूषण, खानदान, सवारा, गृहस्थोपयोगी सामग्री तथा मनोरजन क्या-क्या थे। तत्कालीन सम्प्रदाय, देवी-देवता, धार्मिक प्रतीक और उपकरण के नामोल्लेख है। आर्थिक शब्द कोश मे उपज, कृषि सम्बन्धी-शब्द, गृहनिर्माण के लिए लडकी, वन-वृक्ष, उपवन के पेड-पौधे, पर्वत के वृक्ष, यज्ञ-वृक्ष, मरु, खनिज पदार्थ, समुद्र मे प्राप्त रत्न, व्यवसायी, पण्यबीथी, गावाला वणिक के गुण तथा व्यापार की वस्तुएँ दिखाई गयी हैं। राजनीतिक शब्दकोश मे ऐतिहासिक राजन्य, राज्य के अधिकारी, कर्मचारी तथा परम्परागत ३६ आयुधो के नाम हैं। चतु षष्टिकला, कामवस्था, काव्य, भाषा-उपभाषा, व्याकरण, कोष अलकार ग्रन्थ, छन्द ग्रन्थ, अपूर्व ग्रन्थ, कहानी, लेखन सामग्री, वैद्यक, सर्वोषधि निरोगी, लघन-उपवास, निदान, मत्र, चित्र, चौर, ज्योतिय, नृत्य, वाद्य, विद्या, विद्यावत, सगीत, स्थापत्य और हस्त विद्या सम्बन्धी शब्दावली है।

परिशिष्ट २ मे समसामयिक तनाव एव सघर्ष सम्बन्धी विवरण है।

प्रारम्भ मे सम्माननीय निर्देशक तथा विशेषज्ञो की सम्मत्ति से शोध के आधार रूप मे निम्नलिखित ग्रथ स्वीकृत हुए —

अपभ्र श-ग्रन्थ

१ प्राकृत पैंगलम (१४वी शती का प्रथम चरण)[1] सग्राहक 'पिंगल'[2] सम्पादक—डा० भोलाशकर व्यास, प्रकाशक—प्राकृत ग्रथ परिषद्, वाराणसी ५, स२०१६। (सकेत प्रापै० ।)

२—वर्ण रत्नाकर (१४वी सदी का पूर्वार्द्ध) ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य सम्पादक—सुनीतिकुमार चटर्जी तथा बबुआ मिश्र, प्रकाशक—रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, १९४० ई० । (सकेत-वर० ।)

३ ढोला मारू रा दूहा (१४वी सदी के लगभग) रचयिता—अज्ञात, सम्पादक-रामसिह आदि, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०१९ ।

(सकेत-वर०)

४ कीर्तिलता रचयिता—विद्यापति, सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल (सकेत-की०)

५ कछूली रास (स० १३६३) रचयिता-प्रज्ञातिलक सूरी, रास और रासा वयी काव्य से, सम्पा० डा० दशरथ ओझा आदि, प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, स० २०१६ (सकेत—कछूली०)

१ देखिए प्रापै, भाग २, भूमिका २० । २ वही, पृ० २२ ।

६ गौतम स्वामी रास (स० १४१२) रचयिता—विनयप्रभ उपाध्याय (खभात)। प्रकाशक—वही (सकेत—गौतम०) ।

७ नेमिनाथ फागु (स० १३७०) रचयिता-राजशेखर सूरि, प्रकाशक-वही। (सकेत—नेमि०)

८ स्थूलिभद्र फागु (स० १३९०) रचयिता—आचाय जिनपद्म, प्रकाशक—वही। (सकेत स्थूलि०)

९ प्रबन्ध चिन्तामणि (स० १३६१) रचयिता—मेरुतुङ्ग सूरि (काठियावाड), सम्पादक जिनविजय मुनि-अनुवादक—हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक सचालक—सिंधी जैन ग्रन्थमाला अहमदाबाद-कलकत्ता (विक्रमाब्द १९९७) (सकेत—प्रचि०) (तत्कालीन सस्कृति की प्र ति तथा स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ग्रन्थ के सभी भागो से उदाहरण ले लिये गये हैं, अन्यथा इसके अपभ्रश पदो को ही लिया गया है।)

पुरानी हिन्दी के ग्रन्थ

१ पृथ्वीराज रासउ (१४वी सदी के आसपास) रचयिता—चन्द्रवरदाई, सम्पादक माताप्रसाद गुप्त (सकेत—पृ०) ।

२ वीसलदेव रास (१४ वी सदी के उत्तरार्द्ध) सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त (सक्षिप्त सकेत—वीरा०) ।

३ प्रद्युम्न चरित (स० १४११) कवि-सधारु (उत्तर प्रदेश) सम्पादक—चैनसुखदास, प्रकाशक—केशरलाल बरशी, दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महाबीर जी, महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाई वे जयपुर। (सकेत-प्रच०) ।

४ सनेह लीला (स० १४९२) कवि विष्णुदास : 'हिन्दुस्तानी, भाग २७ अक ३ ४' से (सकेत-सनेह०)

५ रामानन्द की हिन्दी रचनाये प्रधान सम्पादक—हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, (स० २०१२) (सकेत-रामा०)

स्वीकृत ग्रन्थो मे गौतम स्वामिचरित (स० १३५८), 'प्रबन्ध कोश' तथा 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे प्राप्त अपभ्रश पद, हरिश्चन्द्र पुराण जोखमणि लाल, रुक्मिणी मङ्गल विष्णुदास, भक्तिशिरोमणि नामदेव, तीर्थावली नामदेव, सकल सन्त गाथा तथा गोदा, भाण और त्रिलोचन की फुटकर रचनाये नही मिल सकी हैं। इसके अतिरिक्त सम्भव है, कतिपय ग्रथ छूट गये हो तथा निकट भविष्य मे कुछ पुस्तके और प्रकाश मे आये, किन्तु यह विश्वास है कि विवेचित निष्कर्षों पर उनसे कुछ विशेष प्रतिकूल प्रभाव नही पड सकेगा।

सामान्यीकरण के अनन्तर परिशिष्ट १ के सांस्कृतिक शब्दानुक्रमणिका द्वारा स्पष्ट किया गया है कि उस समय कैसे-कैसे लोग थे। वस्त्राभूषण, खानदान, सवारी, गृहस्थोपयोगी सामग्री तथा मनोरंजन क्या-क्या थे। तत्कालीन सम्प्रदाय, देवी-देवता, धार्मिक प्रतीक और उपकरण के नामोल्लेख है। आर्थिक शब्द कोश मे उपज, कृषि सम्बन्धी-शब्द, गृहनिर्माण के लिए लकडी, वन-वृक्ष, उपवन के पेड-पौधे, पवन के वृक्ष, यज्ञ-वृक्ष, मरु, खनिज पदार्थ, समुद्र मे प्राप्त रत्न, व्यवसायी, पण्यबीथी, आबाला वणिक के गुण तथा व्यापार की वस्तुएँ दिखाई गयी हैं। राजनीतिक शब्दकोश मे ऐतिहासिक राजन्य, राज्य के अधिकारी, कर्मचारी तथा परम्परागत ३६ आयुधो के नाम हैं। चतुः षष्टिकला, कामवस्था, काव्य, भाषा-उपभाषा, व्याकरण, कोष, अलकार ग्रन्थ, छन्द ग्रन्थ, अपूर्व ग्रन्थ, कहानी, लेखन सामग्री, वैद्यक, सर्वौषधि निरोगी, लघन-उपवास, निदान, मन्त्र, चित्र, चौर, ज्योतिष, नृत्य, वाद्य, विद्या, विद्यावत, सगीत, स्थापत्य और हस्त विद्या सम्बन्धी शब्दावली है।

परिशिष्ट २ मे समसामयिक तनाव एव सघर्ष सम्बन्धी विवरण है।

प्रारम्भ मे सम्माननीय निर्देशक तथा विशेषज्ञो की सम्मत्ति से शोध के आधार रूप मे निम्नलिखित ग्रथ स्वीकृत हुए —

अपभ्रंश-ग्रन्थ

१ प्राकृत पैंगलम (१४वी शती का प्रथम चरण)[1] सग्राहक 'पिंगल'[2] सम्पादक—डा० भोलाशकर व्यास, प्रकाशक—प्राकृत ग्रथ परिषद्, वाराणसी ५, स२०१६। (सकेत प्रापै० ।)

२—वर्ण रत्नाकर (१४वी सदी का पूर्वार्द्ध) ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य सम्पादक—सुनीतिकुमार चटर्जी तथा बबुआ मिश्र, प्रकाशक—रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, १९४० ई०। (सकेत-वर० ।)

३ ढोला मारू रा दूहा (१४वी सदी के लगभग) रचयिता—अज्ञात, सम्पादक-रामसिंह आदि, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०१९।

(सकेत-वर०)

४ कीर्तिलता रचयिता—विद्यापति, सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल (सकेत-की०)

५ कछूली रास (स० १३६३) रचयिता—प्रज्ञातिलक सूरी, रास और रासान्वयी काव्य से, सम्पा० डा० दशरथ ओझा आदि, प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, स० २०१६ (सकेत—कछूली०)

१ देखिए प्रापै भाग २, भूमिका २०। २ वही, पृ० २२।

६ गौतम स्वामी रास (स० १४१२) रचयिता—विनयप्रभ उपाध्याय (खभात)। प्रकाशक—वही (सकेत—गौतम०) ।

७ नेमिनाथ फागु (स० १३७०) रचयिता-राजशेखर सूरि, प्रकाशक-वही। (सकेत–नेमि०)

८ स्थूलिभद्र फागु (स० १३९०) रचयिता—आचार्य जिनपद्म, प्रकाशक–वही। (सकेत स्थूलि०)

९ प्रबन्ध चिन्तामणि (स० १३६१) रचयिता–मेरुतुङ्ग सूरि (काठियावाड), सम्पादक जिनविजय मुनि-अनुवादक—हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक सचालक—सिंघी जैन ग्रन्थमाला अहमदाबाद-कलकत्ता (विक्रमाब्द १९९७) (सकेत–प्रचि०) (तत्कालीन सस्कृति की प्र ति तथा स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ग्रन्थ के सभी भागो से उदाहरण ले लिये गये हैं, अन्यथा इसके अपभ्रश पदो को ही लिया गया है।)

पुरानी हिन्दी के ग्रन्थ

१ पृथ्वीराज रासउ (१४वी सदी के आसपास) रचयिता–चन्द्रवरदाई, सम्पादक माताप्रसाद गुप्त (सकेत–पृ०) ।

२ वीसलदेव रास (१४ वी सदी के उत्तरार्द्ध) सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त (सक्षिप्त सकेत–वीरा०) ।

३ प्रद्युम्न चरित (स० १४११) कवि-सधारु (उत्तर प्रदेश) सम्पादक—चैनसुखदास, प्रकाशक—केशरलाल बख्शी, दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महाबीर जी, महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाई वे जयपुर। (सकेत-प्रच०) ।

४ सनेह लीला (स० १४९२) कवि विष्णुदास 'हिन्दुस्तानी, भाग २७ अक ३ ४' से (सकेत-सनेह०)

५ रामानन्द की हिन्दी रचनाये प्रधान सम्पादक—हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, (स० २०१२) (सकेत-रामा०)

स्वीकृत ग्रन्थो मे गौतम स्वामिचरित (स० १३५८), 'प्रबन्ध कोश' तथा 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे प्राप्त अपभ्रश पद, हरिश्चन्द्र पुराण जोखमणि लाल, रुक्मिणी मङ्गल विष्णुदास, भक्तिशिरोमणि नामदेव, तीर्थावली नामदेव, सकल सन्त गाथा तथा गोदा, भाण और त्रिलोचन की फुटकर रचनाये नही मिल सकी हैं। इसके अतिरिक्त सम्भव है, कतिपय ग्रथ छूट गये हो तथा निकट भविष्य मे कुछ पुस्तके और प्रकाश मे आये, किन्तु यह विश्वास है कि विवेचित निष्कर्षों पर उनसे कुछ विशेष प्रतिकूल प्रभाव नही पड सकेगा।

स्वीकृत सूची के अतिरिक्त विवेच्यकालीन उपलब्ध पुस्तकें जिनसे शोध प्रबन्ध मे सहायता ली गई है -

१ चादायन (स० १४३६) रचयिता मुल्ला दाउद (डलमऊ, रायबरेली, उत्तर-प्रदश) सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा। (सकेत-चा० या चादा०) ।

२ जिणदत्त चरित (स० १३५४) रचयिता-कविवर राजसिह अथवा रल्ह, जैसवाल, श्रावक सम्पादक—माताप्रसादगुप्त, प्रकाशक गेदालाल साह एडवोकेट दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महाबीर जी, जयपुर। (सकेत —जिण०) ।

३ नाथ सिद्धो की बानिया-प्रधान सम्पादक—रुद्र काशिकेय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणा सभा, बनारस, स० २०१४। (सकेत—नाथ०) ।

४ पुरानी हि दी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरा', प्रकाशक—नागरी प्रचारिणा सभा, काशी, स० २०१८। (सकेत—पुहि०) ।

५ खुसरो की हि दी रचनाये ब्रजरत्नदास

६ पच पाडव चरित रास (स० १४१०) रचयिता-शालिभद्र सूरि, रास और रासा त्रयी काव्य से सम्पादक—दशरथ ओझा आदि, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० २०१६। सक्षिप्त चिह्न—पपा) ।

७ वस त विलास फागु (स० १४०० १४२५) रचयिता अज्ञात, प्रकाशक, वही। सक्षिप्त चिह्न—ववि०) ।

८ समरा रास (स० १३७१) रचयिता—अब देव, प्रकाशक—वही। (सकेत-समरा०) ।

९ नमिनाथ रासा (१४वो शताब्दी के लगभग) रचयिता—मुनि कुमुद, चन्द्र : सम्मेलन पत्रिका—भाग ४९, सख्या ३-४, हि दी साहित्य सम्मेलन से प्राप्त। (सकेत—नेरा०) ।

१० अम्बिका देवी पूव भव वणन तलहारा (स० १३८०-१३८५)—(रचयिता-उदयऋद्धि, हिन्दी अनुशीलन, अक ४, १९५५। (सकेत अम्बिका०) ।

लिखते समय सदैव ऐसी अनुभूति होती रही है कि यदि इन्ही रचनाकारो की अन्य भाषाओ मे लिखित पुस्तके तथा भारत की तत्कालीन अन्य भाषाओ के साहित्य को भी प्रबन्ध से सम्बद्ध रक्खा जाता तो निष्कर्षो मे और अधिक प्रामाणिकता आती किन्तु विवेच्य सामग्री का समुद्र विशाल हो जाने के कारण दुर्लंघ्य हो जाता, इस भय से वह विचार छोड देना पडा।

शोधकार्य की प्रक्रिया मे अपने आदरणीय निर्देशक डॉ० मातावदल जायसवाल, रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय का अत्यधिक उपकृत हूँ जिन्होने विषय के निर्वाचन तथा इस क्षेत्र मे कार्य करने की प्ररणा प्रदान की। अत्यन्त आवश्यक कार्यो को छोडकर उन्होने मेरे कार्य को प्राथमिकता दी ओर समस्याओ का समाधान किया। सच तो यह है कि उनके सुयोग्य निर्देशन के अभाव मे सम्प्रति यह काय समयानुसार सम्भव न हो पाता। यह उन्ही की कृपा का परिणाम है कि मैं अपने शोध प्रब ध को प्रस्तुत कर सकने मे सक्षम हो सका। सत्र श्री डा० पारसनाथ तिवारी (हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता प्रकाश कर अपने भार को कम नही करना चाहता हूँ। अपने व्यस्त दिनो मे भी खुशी-खुशी और जिस लगन के साथ समस्त पाडुलिपि को पढकर उसका परिमाजन किया—तदर्थ मे उनका बहुत बहुत आभारी हूँ। मेरे सहयोगी श्रीमन्नारायण द्विवेदी, प्राध्यापक इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टी ट्यूट ने सहायक ग्रन्थो को प्रदान कर अध्ययन के क्षेत्र मे मेरी अधिक सहायता की है और सन्दभ की दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण सामग्री की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कराया है। पाडुलिपि के सशोधन कार्य मे भी अपेक्षित सहायता प्रदान की है। अपने इन समानधर्मा के उज्ज्वल भविष्य की मै कामना करता हूँ। आयुष्मती पुत्री उर्मिला तथा पुत्र रवि का भी सस्नेह स्मरण करना अपेक्षित है, क्योकि इन्होने अपने सुख एव प्यार का अभाव पाकर भी मुझे लेखन काय के लिये अवकाश दिया। अपने विद्यालय के प्राचार्य डा० जे० बी० चतम्बर और बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के सदस्यो के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन मे मुझे परम सुख की अनुभूति हो रही है जिन्होने सन् १९७१ मे साल भर का सवेतनिक अवकाश प्रदान कर सहायता की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली ने मेरे इस शोध कार्य के लिये एक हजार रुपये की पुस्तकीय सहायता दी है जिसका मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मै अपने उन सभी मित्रो एव सहयोगियो का उपकृत हूँ जिन्होने शोधकार्य के सम्ब ध म प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे अपनी अमूल्य सहायता दी हैं। सहायक सामग्री और सदभ सूत्र के रूप मे कतिपय विद्वानो की सामग्री का स्थान स्थान पर उपयोग किया है। तदर्थ उन विद्वानो के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा अर्पित करना मे अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

—सूर्य नारायणपाण्डेय

स्वीकृत सूची के अतिरिक्त विवेच्यकालीन उपलब्ध पुस्तकें जिनसे शोध प्रबन्ध मे सहायता ली गई है

१ चादायन (स० १४३६) रचयिता मुल्ला दाउद (डलमऊ, रायबरेली, उत्तर-प्रदश) सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा। (सकेत-चा० या चादा०)।

२ जिणदत्त चरित (स० १३५४) रचयिता-कविवर राजसिह अथवा रल्ह, जैसवाल, श्रावक सम्पादक—माताप्रसादगुप्त, प्रकाशक गेदालाल साह एडवोकेट दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महाबीर जी, जयपुर। (सकेत —जिण०)।

३ नाथ सिद्धो की बानिया-प्रधान सम्पादक—रुद्र काशिकेय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, स० २०१४। (सकेत—नाथ०)।

४ पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशो, स० २०१८। (सकेत—पुहि०)।

५ खुसरा की हिदी रचनाये व्रजरत्नदास

६ पच पाडव चरित रास (स० १४१०) रचयिता-शालिभद्र सूरि, रास और रासा न्यी काव्य से सम्पादक—दशरथ ओझा आदि, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० २०१६। सक्षिप्त चिह्न—पपा)।

७ वसत विलास फागु (स० १४००-१४२५) रचयिता अज्ञात, प्रकाशक, वही। सक्षिप्त चिह्न—ववि०)।

८ समरा रास (स० १३७१) रचयिता—अब देव, प्रकाशक—वही। (सकेत-समरा०)।

९ नमिनाथ रासा (१४वी शताब्दी के लगभग) रचयिता—मुनि कुमुद, चन्द्र। सम्मेलन पत्रिका—भाग ४९, सख्या ३-४, हिदी साहित्य सम्मेलन से प्राप्त। (सकेत—नेरा०)।

१० अम्बिका देवी पूव भव वणन तलहारा (स० १३८०-१३८५)—(रचयिता-उदयऋद्धि, हिन्दी अनुशीलन, अक ४, १९५५। (सकेत अम्बिका०)।

लिखते समय सदैव ऐसी अनुभूति होती रही है कि यदि इन्ही रचनाकारो की अन्य भाषाओ मे लिखित पुस्तके तथा भारत को तत्कालीन अन्य भाषाओ के साहित्य को भी प्रबन्ध से सम्बद्ध रक्खा जाता तो निष्कर्षो मे और अधिक प्रामाणिकता आती किन्तु विवेच्य सामग्री का समुद्र विशाल हो जाने के कारण दुर्लंघ्य हो जाता, इस भय से वह विचार छोड देना पडा।

शोधकार्य की प्रक्रिया मे अपने आदरणीय निर्देशक डा० माताबदल जायसवाल, रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय का अत्यधिक उपकृत हूँ जिन्होने विषय के निर्वाचन तथा इस क्षेत्र मे कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की। अत्यन्त आवश्यक कार्यो को छोडकर उन्होने मेरे कार्य को प्राथमिकता दी और समस्याओ का समाधान किया। सच तो यह है कि उनके सुयोग्य निर्देशन के अभाव मे सम्प्रति यह काय समयानुसार सम्भव न हो पाता। यह उन्ही की कृपा का परिणाम है कि मैं अपने शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत कर सकने मे सक्षम हो सका। सर्व श्री डा० पारसनाथ तिवारी (हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता प्रकाश कर अपने भार को कम नही करना चाहता हूँ। अपने व्यस्त दिनो मे भी खुशी-खुशी आर जिस लगन के साथ समस्त पाडुलिपि को पढकर उसका परिमाजन किया—तदर्थ मे उनका बहुत बहुत आभारी हूँ। मेरे सहयोगी श्रीमन्नारायण द्विवेदी, प्राध्यापक इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इस्टीट्यूट ने सहायक ग्रन्थो को प्रदान कर अध्ययन के क्षेत्र मे मेरी अधिक सहायता की है ओर सन्दभ की दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण सामग्री की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कराया है। पाडुलिपि के सशोधन कार्य मे भी अपेक्षित सहायता प्रदान की है। अपने इन समानधर्मा के उज्ज्वल भविष्य की मै कामना करता हूँ। आयुष्मती पुत्री उर्मिला तथा पुत्र रवि का भी सस्नेह स्मरण करना अपेक्षित है, क्योकि इन्होने अपने सुख एव प्यार का अभाव पाकर भी मुझे लेखन काय के लिये अवकाश दिया। अपने विद्यालय के प्राचाय डा० जे० बी० चतम्बर और बोड आफ डाइरेक्टर्स के सदस्यो के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन मे मुझे परम सुख की अनुभूति हो रही है जिन्होने सन् '९७१ मे साल भर का सवेतनिक अवकाश प्रदान कर सहायता की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली ने मेरे इस शोध काय के लिये एक हजार रुपये की पुस्तकीय सहायता दी है जिसका मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मे अपने उन सभी मित्रो एव सहयोगियो का उपकृत हूँ जिन्होने शोधकार्य के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे अपनी अमूल्य सहायता दी हैं। सहायक सामग्री ओर सदभ सूत्र के रूप मे कतिपय विद्वानो की सामग्री का स्थान स्थान पर उपयोग किया हे। तदथ उन विद्वानो के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा अर्पित करना मे अपना परम पुनीत कत्तव्य समझता हूँ।

—सूय नारायणपाण्डेय

स्वीकृत सूची के अतिरिक्त विवेच्यकालीन उपलब्ध पुस्तके जिनसे शोध प्रबन्ध मे सहायता ली गई है –

१ चादायन (स० १४३६) रचयिता मुल्ला दाउद (डलमऊ, रायबरेली, उत्तर-प्रदश) सम्पादक—माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा। (सकेत-च॰ या चादा॰)।

२ जिणदत्त चरित (स० १३५४) रचयिता-कविवर राजसिह अथवा रल्ह, जैसवाल, श्रावक सम्पादक—माताप्रसादगुप्त, प्रकाशक गेदालाल साह एडवोकेट दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महाबीर जी, जयपुर। (सकेत —जिण०)।

३ नाथ सिद्धो की बानिया–प्रधान सम्पादक—रुद्र काशिकेय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणा सभा, बनारस, स० २०१४। (सकेत—नाथ०)।

४ पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरा', प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०१८। (सकेत—पुहि०)।

५ खुसरो की हि दी रचनाये व्रजरत्नदास

६ पच पाडव चरित रास (स० १४१०) रचयिता-शालिभद्र सूरि, रास और रासा न्यी काव्य से सम्पादक—दशरथ ओझा आदि, प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० २०१६। सक्षिप्त चिह्न—पपा)।

७ वस त विलास फागु (स० १४००-१४२५) रचयिता अज्ञात, प्रकाशक, वही। सक्षिप्त चिह्न—ववि०)।

८ समरा रास (स० १३७१) रचयिता—अब देव, प्रकाशक—वही। (सकेत-समरा०)।

९ नमिनाथ रासा (१४वो शताब्दी के लगभग) रचयिता—मुनि कुमुद, चन्द्र ? सम्मेलन पत्रिका—भाग ४९, सख्या ३-४, हि दी साहित्य सम्मेलन से प्राप्त। (सकेत—नेरा०)।

१० अम्बिका देवी पूव भव वणन तलहारा (स० १३८०-१३८५)—(रचयिता-उदयऋद्धि, हिन्दी अनुशीलन, अक ४, १९५५। (सकेत अम्बिका०)।

लिखते समय सदैव ऐसी अनुभूति होती रही है कि यदि इन्ही रचनाकारो की अन्य भाषाओ मे लिखित पुस्तके तथा भारत को तत्कालीन अन्य भाषाओ के साहित्य को भी प्रबन्ध से सम्बद्ध रक्खा जाता तो निष्कर्षो मे ओर अधिक प्रामाणिकता आती किन्तु विवेच्य सामग्री का समुद्र विशाल हो जाने के कारण दुर्लंघ्य हो जाता, इस भय से वह विचार छोड देना पडा।

शोधकार्य की प्रक्रिया मे अपने आदरणीय निर्देशक डा० माताबदल जायसवाल, रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय का अत्यधिक उपकृत हूँ जिन्होने विषय के निर्वाचन तथा इस क्षेत्र मे कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की। अत्यन्त आवश्यक कार्यों को छोडकर उन्होने मेरे काय को प्राथमिकता दी और समस्याओ का समाधान किया। सच तो यह है कि उनके सुयोग्य निर्देशन के अभाव मे सम्प्रति यह काय समयानुसार सम्भव न हो पाता। यह उन्ही की कृपा का परिणाम है कि मैं अ ने शोध प्रब ध को प्रस्तुत कर सकने मे सक्षम हो सका। सत्र श्री डा० पारसनाथ तिवारी (हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता प्रकाश कर अपने भार को कम नही करना चाहता हूँ। अपने व्यस्त दिनो मे भी खुशी-खुशी और जिस लगन के साथ समस्त पाडुलिपि को पढकर उसका परिमाजन किया—तदर्थ मे उनका बहुत बहुत आभारी हूँ। मेरे सहयोगी श्रीमन्नारायण द्विवेदी, प्राध्यापक इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इ स्टीट्यूट ने सहायक ग्रन्थो को प्रदान कर अध्ययन के क्षेत्र मे मेरी अधिक सहायता की है और स दभ की दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण सामग्री की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कराया है। पाडुलिपि के सशोधन कार्य मे भी अपेक्षित सहायता प्रदान की है। अपने इन समानधर्मा के उज्ज्वल भविष्य की मै कामना करता हूँ। आयुष्मती पुत्री उर्मिला तथा पुत्र रवि का भी सस्नेह स्मरण करना अपेक्षित है, क्योकि इन्होने अपने सुख एव प्यार का अभाव पाकर भी मुझे लेखन काय के लिये अवकाश दिया। अपने विद्यालय के प्राचार्य डा० जे० बी० चतम्बर और बोड आफ डाइरेक्टर्स के सदस्यो के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन मे मुझे परम सुख की अनुभूति हो रही है जि होने सन् १९७१ मे साल भर का सवेतनिक अवकाश प्रदान कर सहायता की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली ने मेरे इस शोध कार्य के लिये एक हजार रुपये की पुस्तकीय सहायता दी है जिसका मै हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मे अपने उन सभी मित्रा एव सहयोगियो का उपकृत हूँ जिन्होने शोधकार्य के सम्ब ध म प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे अपनी अमूल्य सहायता दी है। सहायक सामग्री ओर सदभ सूत्र के रूप मे कतिपय विद्वानो की सामग्री का स्थान स्थान पर उपयोग किया हे। तदथ उन विद्वानो के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा अर्पित करना मे अपना परम पुनीत कत्तव्य समझता हूँ।

—सूय नारायणपाण्डेय

अध्याय १

मुस्लिम राजनीति, शासकीय संगठन, विधि तथा विधि संस्थान

१—राजनीतिक दशा

१—मुस्लिम राजनीति—

चौदहवी शती की घटनाओ से स्पष्ट है कि मुसलमानो मे सिंहास" उत्तराधिकारी सम्बन्धी कोई ठोस परम्परा एव नियमबद्धता न थी। प्रत्यक्ष युवराज के अभाव मे उत्तराधिकार की इस अनियमितता एव सुल्तानो की व्यक्तिगत इच्छानुसार एक पुत्र के विरुद्ध दूसरे को राजा बनाने की प्रक्रिया ने उत्तराधिकार सम्बन्धी सघर्षों की एक शृङ्खला उद्भूत की जिसमे ऐसे सफल विद्रोहियो की परम्परा उपलब्ध होती है कि सम्पूर्ण राजवश को विनष्ट करके वे स्वय सिंहासनारूढ हो गए हैं। सुल्तानियत विपत्तियो से आक्रान्त तथा सवत्र सन्देह एव अविश्वास से परिपूर्ण है। अमीरो तथा राज घरानो के पक्ष से विद्रोह की आशङ्का सदैव क्रियमाण है। इस परिवेश मे सुल्तानो के लिए सुरक्षा की दृष्टि से इन विद्रोहियो का सब प्रकार से दमन करना व्यवस्था का एक प्रमुख एव अत्यावश्यक अङ्ग बन गया था। इससे तत्कालीन शासको मे निरकुशता तथा स्वेच्छाचारिता की प्रवृत्ति बलवती प्रतीत होती है।

विवेच्य मुस्लिम राज्य धर्मतात्रिक था। इसकी राजनीति मुख्यत कुरान-शरीफ के मूल सिद्धान्तो तक परिसीमित थी। कुरान कतिपय राजकीय सस्थानो तथा सामाजिक जीवन सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्तो को निरूपित कर मुस्लिम एकता एव सुदृढता को शक्ति प्रदान करता है। सवैधानिक अधिकारियो की मान्यता को ऐच्छिक ठहरा कर इसने शक्ति के दुरुपयोग पर नियन्त्रण करने के लिए ईश्वर के प्रति सच्ची

कतव्यनिष्ठा को प्राथमिकता दी है। वस्तुत इन सिद्धान्तो की व्याख्या क स दभ मे उलमाओ तथा मुल्लाओ की प्रधानता राजनाति के क्षेत्र मे कम व्यापक नही है। राज्य-सचालन का मेरुदण्ड सैनिक-शक्ति मे भी मुल्लाओ ने धार्मिक कट्टरता के प्रचुर भावावेग को इस प्रबल प्रेरणा स अनुस्यूत कर दिया कि मूर्ति की तोड-फाड, धर्म परिवतन करान तथा विधर्मियो के विनाश मे युद्धरत शहीदो के स्वागत मे बिहिश्त का द्वार सवदा उन्मुक्त है। परिणामस्वरूप राजनीति मे कट्टर धार्मिक मुल्लाआ के हस्तक्षेप के विराध मे राज्य-शक्ति के प्रयोग हेतु प्रबल इच्छाशक्ति अपेक्षित थी जा अपवाद मे अलाउद्दीन खिलजी एव मुहम्मद तुगलक सदृश कतिपय सशक्त सुल्तानो को छाडकर सामान्यतया इस युग मे उपलब्ध नही है। प्रजा प्राय उस राजा की भक्त होती है, जो शक्तिशाली हो, वाह्य आक्रमण से सुरक्षा मे सक्षम हो तथा व्यवस्था एव अराजकता को नियत्रित कर सके। अस्तु, प्रजा के मनोबल पर विजय प्राप्त करन के हेतु कतिपय सुल्तान शरियत के विरुद्ध जनता के हित मे विशिष्ट प्रयत्नशील रहे। उन्होन काजी-मुल्लाओ के निणय को सम्प्रभुता नही प्रदान की। इस दृष्टि मे सुल्तान की स्थिति इस्लाम के खलीफा की जनतात्रक स्थिति से भिन्न रही। शरियत के बन्धन ढीले पडे और सुल्तान, कट्टर धार्मिकता से परे भौतिकता-प्रधान हुई।

२—प्रशासकीय सगठन—

हिन्दुस्तानी सुल्तान खलीफा के प्रतिनिधि समझे जात थे। प्रशासन विधायिका न्याय और प्रतिष्ठा के क्षेत्र म सुल्तान, खलीफा के सदृश थे।

(क) मुस्लिम विधिवेत्ताओ के मतानुसार सुल्तानो के निम्नलिखित काय दृष्टव्य है—

(१) इज्मा के अनुसार मुस्लिम विश्वास की रक्षा करना।

(२) प्रजा के विवादो को निपटाना।

(३) मुस्लिम राज्यो की रक्षा करना तथा यात्रिया के लिए माग एव सडका को सुरक्षित रखना।

(४) दण्ड-सहिता का अनुरक्षण एव प्रवतन

(५) आक्रान्ताओ से सुरक्षा हेतु मुस्लिम राज्यो की सीमाओ का शक्तिशाली बनाना।

(६) इस्लाम के प्रतिकूल काय करने वालो के विरुद्ध धर्म-युद्ध छेडना।

(७) टैक्सा का सग्रह करना।

(८) राजकाय काष से अपेक्षित व्यक्ति क भाग को सहायतार्थ अनुभाजन करना।

(९) सार्वजनिक एव विधि सम्बन्धी कार्य-सम्पादन मे अधिकारी नियुक्त करना।
(१०) सावजनिक कार्यों एव प्रजा की स्थिति की जानकारी हेतु उनस व्यक्तिगत सम्पक स्थापित करना।

फतुआए जहादारी[1] के अनुसार मुस्लिम सत्ता को स्वीकार कर लेने और टैक्स देने के पश्चात् गैर मुस्लिम प्रजा की सुरक्षा, धर्म, सामाजिक परम्पराओ एक व्यक्तिगत कानून के प्रवतन का पूण अधिकार है। प्रजा पर रोब जमाने के लिए सुल्तान दरबार अथवा जुलूसो मे तडक भडक के साथ उपस्थित होकर अपन वैभव का प्रदशन करता था। इस प्रकार के अवसरो तथा दरबारो मे सावजनिक न्याय एव अन्य राजकीय कार्यों का भी सुल्तान सम्पादन करते थे।[3]

ख—राज-परिवार—विभिन्न राजकीय क्रिया-कलापो एव दर्शनीय समारोहो के कारण विविध स्तर के अधिकारियो तथा दशनार्थियो का अपार जनसमूह एकत्र होता था। पूर्वनिश्चित क्रमानुसार उनका यथोचित विन्यास, पूवविहित औपचारिक अभिवादन प्रणाली तथा सम्राट की गरिमा के अनुरक्षण हेतु सुनियोजन एव समुचित व्यवस्था अत्यावश्यक था जिसके लिये बडी सख्या मे अधिकारियो, प्रवेशको तथा उद्घोषको की अपेक्षा थी। इनक अतिरिक्त, सुल्तान के अङ्गरक्षक, व्यक्तिगत परिचारक राजमहल-प्रति सकतक एव अन्य कर्मचारीगण भी उपस्थित होते थे। यह समस्त सङ्गठन वकाल-इ-दार के परिवेक्षण मे सम्पन्न होता था। इसी के समकक्ष अमीर-इ-हाजिब अथवा बारबक भी था जो आम दरबार के प्रक्रियाओ का सचालन करता था। बिना इसके परिचय कराये कोई भी व्यक्ति दरबार मे हाजिर नही हो सकता था। इस समस्त शासकीय परिवार के अपेक्षित उपकरणो की आपूर्ति 'कारखाना' नामक सस्था से की जाती थी, जो प्राय ३६ विभागो मे विभाजित होती थी। इसमे उपकरणो का निर्माण-काय भी होता था। उदाहरणाथ, जामदारखाना सर्वोत्कृष्ट वस्त्र बनाता था। मुहम्मद बिन तुगलक ने चार सहस्र, रेशम बुनने वाले जुलाहे और ५०० कमचारी उस पर सुनहला किमखाब लगाने के लिए नियुक्त कर रक्खा था, जो मात्र राजकीय तथा शासकीय परिवार के लिए वस्त्र-निर्माण का काय करते थे।[4] ये कारखाने, अस्त्र-शस्त्र, तनुत्राण एव अन्य युद्ध उपकरणो का भी निर्माण करते थे। अखुरबेक विभाग के अन्तगत घोडो के अनुरक्षण एव प्रजनन सम्बन्धी काय होते थे।

१ एफ० ११९ अ।
२ अफिफ ४४८।
३ वही २७८, २७९।
४ सुमुल शा० ५१, मुसालिक उलअबसार, ३०।

ग—वजीर—सुल्तान के अनन्तर शासन तथा अर्थ सम्बन्धी सर्वोच्च अधिकारी बजीर होता था। सभी मुख्य राजकीय कार्यालय इसके अन्तर्गत होते थे। यह अधिकारियो की नियुक्ति तथा उनका अधीक्षण करता था। यह राजस्व सग्रह करवाता था। राजकीय व्यय पर इसका पूण आधिपत्य था। सेना सम्बन्धी आवश्यकताओ का यह अन्तिम निर्देशक था। विद्वानो तथा कलाकारो को वृत्ति का ओर निधनो तथा अपेक्षितो को आदान-प्रदान करता था। सार्वजनिक शासन का कोई भी अग इसके प्रभाव से अछूता नही था। सामान्य जनता से लेकर शक्तिशाली गवर्नर पर्यन्त इससे अथवा इसके अनुचर से सचालित होते थे।[१] अर्थ से सम्बन्धित दिवानो वजारत इसका प्रमुख विभाग था। इसका सहायक 'नायक वजीर' कहलाता था। इसके अनन्तर मुशरिफी मुमालिक का पद था जो महालेखापरीक्षक का काय करता था। मुसरिफ का काय लेखा लिखना और मुस्तौफी का कार्य उनका परीक्षण करना था। फिरोजशाह ने इसमे परिवतन कर मुसरिफ को आय और मुस्तौफो को व्यय का कायभार सौंपा था। मुसरिफ का सहायक नाजिर होता था जो राजस्व सग्रह का पर्यवेक्षण करता था। वकूफ, मुस्तौफी का सहायक था।[२]

इसके अतिरिक्त दीवाने इजारत, दीवाने अरज, दीवाने इशाबरीदे मुमालिक क्रमश धर्म, सेना, राज्य पत्राचार एव समाचार अभिकरण के वजारखाने होते थे। पहले का अध्यक्ष सदर उस-सदुर होता था। आरिज सेनाध्यक्ष था।

ये वजीर सुलतान के सेवक ओर मात्र उसी के उत्तरदायी भी थे। ये अपने-अपने क्षेत्र के सर्वोच्च कुशल व्यक्ति होते थे। प्राय एक कुलीन व्यक्ति नायब-उल-मुल्क के पद पर नियुक्त किया जाता था जो केन्द्र शासित सरकार की देखभाल करता था। यह, उस देश की सेना का प्रधान भी होता था।[३]

घ वित्त व्यवस्था—राज्य की मुख्य आय राजस्व था। औसत उपज का पाचवा भाग भूमि कर के रूप मे लिया जाता था। अलाउद्दीन खिलजी ने इसे आधे भाग तक बढा दिया था। उसकी मृत्यु के अनन्तर यह पुन अपन पूव स्तर पर आ गया। मुहम्मद बिन तुगलक ने दाब मे इसे पुन बढाने का असफल प्रयास किया था। हिंदुओ पर जजिया टैक्स भी लगा था। यह आय के अनुसार १०, १२ अथवा ४० टका वार्षिक होता था।[४] बुड्ढे, अपाहिज, अँधे, निधन, साधू वैरागी, पुरोहित

१ आदाब-उल मलुक सी० ३६ अ, ब। ३ मिनहाज १६१, १६२, बरनी २६, २०२।
२ अफीफ, ४२०। ४ आइ० एच० कुरेशी op cit ११२-११६।
५ इन्सेक्लोपीडिया आफ इस्लाम १।१०५१।

स्त्री बच्चे तथा सरकारी कर्मचारी तथा किसान इससे मुक्त थे। यह अनिवाय सैनिक सेवा के विकल्प मे लगता था।[२] निधनो के सहायतार्थ मुसलमानो से जकाब टैक्स वसूल किया जाता था। यह उपज का दसवा भाग होता था। आयात और खानो पर भी टैक्स लगे हुये थे।[४]

ङ०—जागीरदार—कतिपय उच्च अधिकारियो को वेतन के स्थान पर कुछ क्षेत्र का राजस्व राज्य की ओर से दे दिया जाता था। यह स्थायी तथा वशगत नही था।[५]

च सेना आरिज-इ-मुमालिक, सेना का प्रबन्धक था। इसका काय सना की शक्ति एव कुशलता की वृद्धि करना था। यह अस्त्र-शस्त्र सवारी तथा खाद्यान्न की भी व्यवस्था करता था। इसका कार्यालय, सभी सैनिको की उपस्थिति का अनुरक्षण करता था। अलाउद्दीन खिलजी ने घोडा दागने की प्रथा प्रारम्भ की थी।[७] शत्रु तथा विद्रोहियो के विरुद्ध सेना का सुगमतापूवक सचालन करन के ध्येय से फौज की नियुक्ति सीमाओ और केन्द्रो पर होती थी।[८] मुख्य सेना घुडसवारो की थी, जिसका अभाव हिन्दू राजाओ के पराजय तथा शासित होने का कारण था। सुल्तान की सेना मे हाथियो का भी महत्वपूण स्थान था। पैदल सेना भी थी किन्तु गौण रूप मे। अलाउद्दीन खिलजी के समय से बन्दूक प्रयुक्त हाने लगे थे। सुरक्षा मे किले की बडी उपयोगिता थी। तुक अफगान, मगोल, पारसी तथा हिन्दुस्तानी सभी फौज मे सम्मिलित थे।[९] हिन्दू भी पर्याप्त सख्या मे थे।[१] किसी जाति विशेष की सेना मे प्रबलता अराजनीतिक कार्य समझा जाता था। सैन्य-सगठन दशमलव प्रणाली पर था, किन्तु ५०,१५० की इकाइया भी मिलती हैं।[११]

३ इस्लामी विधि

विधि (शरियत) सम्बन्धी विज्ञान को फिक (न्याय शास्त्र) कहते है। कुरान तथा पैगम्बर के अधिकृत वचन (हदीस) शरियत का मूलाधार है। जनमत (इजमा-इ-

१ एन० पी० अग्निदेस, मुहम्मदन थ्यूरी आफ फाइनेन्श, ३९९।
२ दस्तूर उल अलबाब, ६६, ६७। ३ अग्निदेस op cit २००। ४ वही, ३१८।
५ मोरलड op cit २२१। ६ फतावार-इ, जहादारी ff ६६ ब ७० ब।
७ बरनी, ३१९। ८ मिनहाज ३२३, बरनी, ५९।
९ काबुस नामा १७६, १७२, सुभ उल अशा ६६, मुसलिक-उल-अबसार २६।
१० तारीख इ फखरुद्दीन मुबारक शाही ३३, खजू-इन-उल-फुतूह ९१, ९५, बरनी, १८२। ११ अबाब उल मुलूक f १३० दाउदी, f १०३ अ।

उम्मत) जनहित (इस्तिहसान), सुधार (इस्तिसलाह) तथा रिवाज (उफ) की वैधानिक मान्यता के सम्बन्ध मे मतभेद है। सुन्नी हनफी, मालिकी, शाफई तथा हम्बवली पद्धतियो को मानते है।

इस्लामी शरियत मे इबादत (प्रार्थना), मुआलियात (असैनिक विषय) तथा उकूबात (दड) सम्बन्धी विषयो पर सविस्तार उल्लेख है। युक्ति तथा सहज बुद्धि पर आधारित होने के कारण मुस्लिम असैनिक कानून मध्ययुगीन प्रचलित पद्धतियो मे नि सन्देह सर्वोत्कृष्ट था। अफ्रीका से चीन पयन्त प्रसृत मुसलमानो को इसने एक रूपता प्रदान की थी। काजी का निणय सवत्र एक सी मा यता प्राप्त करता था। कुरान मे उल्लिखित दड विधान के अव्यावहारिक होने के फलस्वरूप यह लोकप्रिय न हो सका। मध्ययुगीन उफ (रिवाज) तथा जवाबित, आइन, तोरह (राजकीय विधि) का मुस्लिम शरियत से अधिक व्यावहारिक मान्यता उपलब्ध थी।

इतर मुस्लिमो के लिए विधि व्यवस्था[1]—मुस्लिम राज्य अपने गैर मुस्लिम प्रजा के लिए शरियत के अनुसार तीन प्रमुख सिद्धान्त व्यवहृत करता था। ग़ैर मुस्लिम, यदि मुस्लिम सत्ता स्वीकार करने के अनन्तर राज्य की कोई व्यावहारिक सेवा नही करता, तो उसे जजिया टैक्स देना पडता था। यदि वह कोई सैनिक अथवा अन्य राजकीय सेवा करता है, तो इस टैक्स से वह मुक्त रहेगा। ऐसे लोगो के साथ मुस्लिम व्यक्तिगत कानून नही व्यवहृत होगा। यहा तक कि जकात टैक्स भी उसे नही देना पडेगा जिसे प्रत्येक मुसलमान देता है। तीसरे प्रकार के लोग जिम्मी है जो अपनी सस्थाओ के सचालन तथा उपासना आदि मे पूण स्वतन्त्र है। उनके व्यक्तिगत विधि-निषेध उन्ही के सस्थानो द्वारा उन पर लागू किए जायेगे। अपेक्षाकृत उत्तम न्याय के लिए मुस्लिम न्यायालय भी उनके लिए खुला है। भिन्न भिन्न धर्म वालो के मध्य हुआ विवाद मुस्लिम न्यायालय मे जाता था। यदि दोनो वर्ग एक ही धर्मावलम्बी हैं, तो उनकी व्यक्तिगत विधि उन पर व्यवहृत होगी। यदि वे गैर मुस्लिम है तो न्यायालय उस जाति के विधिवेत्ताओ से परामर्श लेगा। यदि एक वर्ग मुस्लिम है, तो न्याय के सावभौमिक सिद्धान्त पर विवाद का निणय होता था। मुसलमानो के पास ऐसे अपराध सहिता का अभाव था जो सब पर व्यवहृत हो सके। किन्तु भारत-विजय के पूर्व मुस्लिम विधि वेत्ताओ ने इस समस्या का समाधान ढूढ लिया था। उनका अभिमत था कि पहले तो मुस्लिम अपराध सहिता सब पर लागू की जायेगी, किन्तु यदि वही

---

१ कुरेशी, आइ० एस० (प्रो० कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, यू० एस० ए०) ह्वे० एस०, पृ० ४५७-५८।

जिम्मी का किसी नतिक भावना के विरुद्ध ह, तो इसका प्रयाग नही होगा। उदाहरणाथ मुस्लिम कानून मे आत्महत्या एक अपराध माना जाता था, लेकिन, मुस्लिम राजन्य हिन्दू स्त्रियो के सती होने को सहिष्णुता के साथ स्वीकार कर लेत थे। इसक लिए मात्र पूव अनुमति लेना अनिवाय था। गैर मुस्लिमो क लिए मुसलमानो का अपक्षा दड का कोमल बना दिया जाता था। उस युग मे मुस्लिम दड, अन्य सभी जातिया की दड सहिता से अपेक्षाकृत उदार था।

मुस्लिम न्यायालय—सुल्तान, राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। अतएव न्याय की प्रक्रिया मे वह दीवानी काजी तथा दीवानी मजालिस से निणय करने मे सहायता लेता था। विद्रोहियो के विरुद्ध वह स्वत कोई मार्शल का फैसला लेता था। इस सदभ मे आवश्यकता पडन पर प्रामाणिक विधिवेत्ताओ से भी परामश करता था। कालान्तर मे यह कार्य दीवानी सियासत के अन्तगत कर दिया गया। इसी विभाग मे गभीर अपराध भी भेजे जाते थे। राज्याधिकारी के विरुद्ध विवाद को मजालिस मे सुना जाता था। सुल्तान, सप्ताह मे प्राय दो बार इस न्यायालय मे काजी की राय से मुकदमा करता था। प्रान्तो म गवनर, दीवान तथा काजी मिलकर मजालिम कचहरी का काय सम्पन्न करते थे।

सामान्य दीवानी तथा फोजदारी के मुकदमे काजी मुमालिक के अन्तगत रहत थे। इसके सहायक प्रान्तो का राजधानियो मे और काजी नगरो की कचहरियो मे काम करते थे। मुख्य काजी का पद अत्यन्त सम्मानपूर्ण समझा जाता था। इसका निर्वाचन योग्यता तथा धम परायणता के आधार पर सम्पन्न होता था। काजी का काय मात्र प्राप्त तथ्यो का विश्लेषण कर निणय प्रदान करना होता था। न्याय सम्बन्धी अन्य प्रक्रिया तथा निर्णय को कार्यान्वित करना अमीर दाद के अधिकार मे था। प्रान्तो तथा नगरों मे उसके भी सहायक होते थे। शहर मे पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी कोतवाल होता था। जिसका काम फौजदारी के मामलो मे प्रारम्भिक जाच पडताल भी करना था। आज के स्माल काज कोट की भाति तब मुहतसिब होते थे, जो बहुत छोटे मुकदमो का देखते थे। अपराध मान लेने पर वह दड देता था, अन्यथा किसी काजी के पास उसे भेज देता था। विवादो की अपील करने की प्रथा विद्यमान थी। सुल्तान, काजी के निणयो को मान्यता प्रदान करता था, किन्तु उसकी अयोग्यता पर उसे निलम्बित भी करता था। गावो मे पचायत का काय सुचारु रूप से सपादित होता था।

———

उम्मत) जनहित (इस्तिहसान), सुधार (इस्तिसलाह) तथा रिवाज (उर्फ) की वैधानिक मान्यता के सम्बन्ध मे मतभेद है। सुन्नी हनफी, मालिकी, शाफई तथा हम्बवली पद्धतियो को मानत है।

इस्लामी शरियत मे इबादत (प्रार्थना), मुआलियात (असेनिक विषय) तथा उक्बात (दड) सम्बन्धी विषयो पर सविस्तार उल्लेख है। युक्ति नथा सहज बुद्धि पर आधारित होने के कारण मुस्लिम असैनिक कानून मध्ययुगीन प्रचलित पद्धतियो मे नि सन्देह सर्वोत्कृष्ट था। अफ्रीका से चीन पयन्त प्रसृत मुसलमानो को इसने एक रूपता प्रदान की थी। काजी का निणय सवत्र एक सी मा यता प्राप्त करता था। कुरान मे उल्लिखित दड विधान के अव्यावहारिक होने के फलस्वरूप यह लोकप्रिय न हो सका। मध्ययुगीन उफ (रिवाज) तथा जवाबित, आइन, तारह (राजकीय विधि) को मुस्लिम शरियत से अधिक व्यावहारिक मान्यता उपलब्ध थी।

इतर मुस्लिमो के लिए विधि व्यवस्था[१]—मुस्लिम राज्य अपने गैर मुस्लिम प्रजा के लिए शरियत के अनुसार तीन प्रमुख सिद्धान्त व्यवहृत करता था। ग़ैर मुस्लिम, यदि मुस्लिम सत्ता स्वीकार करने के अनन्तर राज्य की कोई व्यावहारिक सेवा नही करता, तो उसे जजिया टेक्स देना पडता था। यदि वह कोई सेनिक अथवा अन्य राजकीय सेवा करता हे, तो इस टेक्स से वह मुक्त रहेगा। ऐस लागो के साथ मुस्लिम व्यक्तिगत कानून नही व्यवहृत होगा। यहाँ तक कि जकात टैक्स भी उसे नही देना पडेगा जिसे प्रत्येक मुसलमान देता है। तीसरे प्रकार क लाग जिम्मी है जो अपना सस्थाओ के सचालन तथा उपासना आदि मे पूण स्वतन्त्र हे। उनक व्यक्तिगत विधि-निषेध उन्ही के सस्थानो द्वारा उन पर लागू किए जायेगे। अपे ाक्षत उत्तम न्याय के लिए मुस्लिम न्यायालय भी उनके लिए खुला है। भिन्न भिन्न धर्म वालो के मध्य हुआ विवाद मुस्लिम न्यायालय मे जाता था। यदि दोनो वर्ग एक ही धर्मावलम्बी हैं, तो उनकी व्यक्तिगत विधि उन पर व्यवहृत होगी। यदि वे गैर मुस्लिम हैं ता न्यायालय उस जाति के विधिवेत्ताओ से परामर्श लेगा। यदि एक वर्ग मुस्लिम है, ता याय क सावभौमिक सिद्धान्त पर विवाद का निणय होता था। मुसलमानो के पास ऐसे अपराध सहिता का अभाव था जो सब पर व्यवहृत हो सके। किन्तु भारत-विजय के पूर्व मुस्लिम विधि वेत्ताओ ने इस समस्या का समाधान ढूढ लिया था। उनका अभिमत था कि पहले तो मुस्लिम अपराध सहिता सब पर लागू की जायेगी, किन्तु यदि वही

---

१ कुरेशी, आइ० एस० (प्रो० कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, यू० एस० ए०) ड्रॉ० एस०, पृ० ४५७-५८।

जिम्मी का किसी नैतिक भावना के विरुद्ध ह, तो इसका प्रयाग नही होगा। उदाहरणाथ मुस्लिम कानून मे आत्महत्या एक अपराध माना जाता था, लेकिन, मुस्लिम राजन्य हिन्दू स्त्रियो के सती होने को सहिष्णुता के साथ स्वीकार कर लेत थे। इसक लिए मात्र पूव अनुमति लेना अनिवाय था। गैर मुस्लिमो के लिए मुसलमानो का अपेक्षा दड को कोमल बना दिया जाता था। उस युग मे मुस्लिम दड, अन्य सभी जातियो की दड सहिता से अपेक्षाकृत उदार था।

मुस्लिम न्यायालय—सुल्तान, राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। अतएव न्याय की प्रक्रिया मे वह दीवाना काजी तथा दीवानी मजालिस मे निणय करने मे सहायता लेता था। विद्रोहियो के विरुद्ध वह स्वत कोई मार्शल का फैसला लेता था। इस सदर्भ मे आवश्यकता पडन पर प्रामाणिक विधिवेत्ताओ से भी परामश करता था। कालान्तर मे यह काय दीवानी सियासत के अन्तगत कर दिया गया। इसी विभाग मे गभीर अपराध भी भेजे जाते थे। राज्याधिकारी के विरुद्ध विवाद को मजालिस मे सुना जाता था। सुल्तान, सप्ताह मे प्राय दो बार इस न्यायालय मे काजी की राय से मुकदमा करता था। प्रान्तो म गवनर दीवान तथा काजी मिलकर मजालिम कचहरी का काय सम्पन्न करते थे।

सामान्य दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमे काजी मुमालिक के अन्तर्गत रहत थे। इसके सहायक प्रान्तो का राजधानियो मे और काजी नगरो की कचहरियो मे काम करते थे। मुख्य काजी का पद अत्यन्त सम्मानपूर्ण समझा जाता था। इसका निवाचन योग्यता तथा धर्म परायणता के आधार पर सम्पन्न होता था। काजी का काय मात्र प्राप्त तथ्यो का विश्लेषण कर निणय प्रदान करना होता था। न्याय सम्बन्धी अन्य प्रक्रिया तथा निणय को कार्यान्वित करना अमीर दाद के अधिकार मे था। प्रान्तो तथा नगरों मे उसके भी सहायक होते थे। शहर मे पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी कोतवाल होता था। जिसका काम फोजदारी के मामलो मे प्रारम्भिक जाच पडताल भी करना था। आज के स्माल काज कोट की भाति तब मुहतसिब होते थे, जो बहुत छोटे मुकदमो को देखते थे। अपराध मान लेने पर वह दड देता था, अन्यथा किसी काजी के पास उसे भेज देता था। विवादो की अपील करने की प्रथा विद्यमान थी। सुल्तान, काजी के निणयो को मान्यता प्रदान करता था, किन्तु उसकी अयोग्यता पर उसे निलम्बित भी करता था। गावो में पचायत का कार्य सुचारु रूप से सपादित होता था।

———

उम्मत) जनहित (इस्तिहसान), सुधार (इस्तिसलाह) तथा रिवाज (उर्फ) की वैधानिक मान्यता के सम्बन्ध मे मतभेद है। सुन्नी हनफी, मालिकी, शाफई तथा हम्बवली पद्धतियो को मानत है।

इस्लामी शरियत मे इबादत (प्रार्थना), मुआलियात (असेनिक विषय) तथा उकूबात (दड) सम्बन्धी विषयो पर सविस्तार उल्लेख है। युक्ति तथा सहज बुद्धि पर आधारित होने के कारण मुस्लिम असैनिक कानून मध्ययुगीन प्रचलित पद्धतियो मे नि सन्देह सर्वोत्कृष्ट था। अफ्रीका से चीन पयन्त प्रसृत मुसलमानो को इसने एक रूपता प्रदान की थी। काजी का निणय सवत्र एक सी मा यता प्राप्त करता था। कुरान मे उल्लिखित दड विधान के अव्यावहारिक होने के फलस्वरूप यह लोकप्रिय न हो सका। मध्ययुगीन उफ (रिवाज) तथा जवाबित, आइन, तारह (राजकीय विधि) को मुस्लिम शरियत से अधिक व्यावहारिक मान्यता उपलब्ध थी।

इतर मुस्लिमो के लिए विधि व्यवस्था[1]—मुस्लिम राज्य अपने गैर मुस्लिम प्रजा के लिए शरियत के अनुसार तीन प्रमुख सिद्धान्त व्यवहृत करता था। ग़ैर मुस्लिम, यदि मुस्लिम सत्ता स्वीकार करने के अनन्तर राज्य की कोई व्यावहारिक सेवा नही करता, तो उसे जजिया टेक्स देना पडता था। यदि वह कोई सेनिक अथवा अन्य राजकीय सेवा करता है, तो इस टैक्स से वह मुक्त रहेगा। ऐस लोगो के साथ मुस्लिम व्यक्तिगत कानून नही व्यवहृत होगा। यहा तक कि जकात टैक्स भी उसे नही देना पडेगा जिसे प्रत्येक मुसलमान देता है। तीसरे प्रकार क लाग जिम्मी है जो अपनी सस्थाओ के सचालन तथा उपासना आदि मे पूण स्वतन्त्र है। उनके व्यक्तिगत विधि-निषेध उन्ही के सस्थानो द्वारा उन पर लागू किए जायेगे। अपेक्षाकृत उत्तम न्याय के लिए मुस्लिम न्यायालय भी उनके लिए खुला है। भिन्न भिन्न धर्म वालो के मध्य हुआ विवाद मुस्लिम न्यायालय मे जाता था। यदि दोनो वर्ग एक ही धर्मावलम्बी हैं, तो उनकी व्यक्तिगत विधि उन पर व्यवहृत होगी। यदि वे गैर मुस्लिम हैं तो न्यायालय उस जाति के विधिवेत्ताओ से परामर्श लेगा। यदि एक वर्ग मुस्लिम है, तो न्याय के सार्वभौमिक सिद्धान्त पर विवाद का निणय होता था। मुसलमानो के पास ऐसे अपराध सहिता का अभाव था जो सब पर व्यवहृत हो सके। किन्तु भारत-विजय के पूर्व मुस्लिम विधि वेत्ताओ ने इस समस्या का समाधान ढूढ लिया था। उनका अभिमत था कि पहले तो मुस्लिम अपराध सहिता सब पर लागू की जायेगी, किन्तु यदि वही

---

१ कुरेशी, आइ० एस० (प्रो० कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, यू० एस० ए०) ऍ० एस०, पृ० ४५७-५८।

जिम्मी की किसी नतिक भावना के विरुद्ध ह, तो इसका प्रयाग नहीं हागा। उदाहरणाथ मुस्लिम कानून म आत्महत्या एक अपराध माना जाता था, लेकिन, मुस्लिम राजन्य हिन्दू स्त्रियो के सती हाने को सहिष्णुता के साथ स्वीकार कर लेत थे। इसक लिए मात्र पूव अनुमति लेना अनिवाय था। गैर मुस्लिमो क लिए मुसलमानो का अपक्षा दड का कोमल बना दिया जाता था। उस युग मे मुस्लिम दड, अन्य सभी जातिया की दड सहिता से अपेक्षाकृत उदार था।

मुस्लिम न्यायालय—सुल्तान, राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। अतएव न्याय की प्रक्रिया मे वह दीवाना काजी तथा दीवानी मजालिस से निणय करने मे सहायता लेता था। विद्रोहियो के विरुद्ध वह स्वत कोई मार्शल का फैसला लेता था। इस सदभ मे आवश्यकता पडन पर प्रामाणिक विधिवेत्ताओ से भी परामश करता था। कालान्तर मे यह कार्य दीवानी सियासत के अन्तर्गत कर दिया गया। इसा विभाग मे गभीर अपराध भी भेजे जात थे। राज्याधिकारी के विरुद्ध विवाद को मजालिस मे सुना जाता था। सुल्तान, सप्ताह मे प्राय दो बार इस न्यायालय मे काजी की राय से मुकदमा करता था। प्रान्तो मे गवनर दीवान तथा काजी मिलकर मजालिम कचहरी का कार्य सम्पन्न करते थे।

सामान्य दीवानी तथा फोजदारा के मुकदमे काजी मुमालिक के अन्तगत रहत थे। इसके सहायक प्रान्तो का राजधानियो मे और काजी नगरो की कचहरियो मे काम करते थे। मुख्य काजी का पद अत्यन्त सम्मानपूर्ण समझा जाता था। इसका निवाचन योग्यता तथा धम परायणता के आधार पर सम्पन्न होता था। काजी का काय मात्र प्राप्त तथ्यो का विश्लेषण कर निणय प्रदान करना होता था। न्याय सम्बन्धी अन्य प्रक्रिया तथा निणय को कार्यान्वित करना अमीर दाद के अधिकार मे था। प्रान्तो तथा नगरों मे उसके भी सहायक होते थे। शहर मे पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी कोतवाल होता था। जिसका काम फोजदारी के मामलो मे प्रारम्भिक जाच पडताल भी करना था। आज के स्माल काज कोट की भाँति तब मुहतसिब होते थे, जो बहुत छोटे मुकदमो को देखते थे। अपराध मान लेने पर वह दड देता था, अन्यथा किसी काजी के पास उसे भेज देता था। विवादो की अपील करने की प्रथा विद्यमान थी। सुल्तान, काजी के निणयो को मान्यता प्रदान करता था, किन्तु उसकी अयोग्यता पर उसे निलम्बित भी करता था। गावा मे पचायत का काय सुचारु रूप से सपादित होता था।

अध्याय २

२—सामाजिक दशा

क—हिन्दू समाज

१३वी शती मे उत्तर भारत पर तुर्कों का पूर्ण आधिपत्य हो गया, किन्तु इसका सामाजिक प्रभाव विवेच्य काल मे परिलक्षित होता है। इस देश मे विजेता प्रतिष्ठित हो गये। इनके मूलदेश के निवासियो मे स्थानान्तरण से मुस्लिम जनसख्या क्रमश वृद्धि को प्राप्त हो रही थी। शक्तियुक्त सामूहिक धर्म-परिवर्तन इस प्रक्रिया मे अधिक सहायक था। अपनी असहयोग भावना एव दृढ आग्रहपूर्ण धार्मिक विश्वास के कारण यह अभिनव वर्ग सामाजिक इकाई मे भिन्नता वरण किये रहा। इसने धार्मिक परिवेश मे स्थायी अन्तराल और वैभिन्य की नीव डाली। वस्तुत इस मन स्थिति मे देश के सास्कृतिक अस्तित्व के भय की भावना से प्रेरित होकर पर्याप्त सख्या मे स्मृति निश्चय तथा टीकाओ को उदभूत कर पुरातन सामाजिक एव धार्मिक विधानो को व्यवस्थित किया गया।

सामाजिक भेद प्रभेद—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र चार प्रमुख तथा अनेक सकर जातियाँ थी। इनके कर्तव्य तथा व्यवसाय तत्कालीन धार्मिक कृतियो मे सविस्तार विवेचित है।[१] ब्राह्मणो की दिनचर्या, सात्विक कार्यों मे सदैव सलग्न रहना है।[२] पराशर-माधव[३] मे ब्राह्मणो के व्यवसायो मे, विपत्ति तथा असाधारण परिस्थितियो मे, कृषि-कार्य करने का सवप्रथम उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। जातिगत व्यावसायिक बन्धन मे शैथिल्य आगमन की यह पूर्ण पीठिका है। क्षत्रिय राज्य के एक-

१ जाति के प्रति चतन्य के विचार, एस० के० डे० के अरली हिस्ट्री आव द वैष्णव फेथ एण्ड मूममेट इन बैंगाल, पृ० ८० ८१, सिक्खो मे जाति, गुरु गोबिन्द सिंह तक, तारासिंह और गेंदा सिंह के सिक्खो का इतिहास, भाग १, पृ० ६६, ६७।

२ दक्ष का गृहस्थ रत्नाकर, १३४। ३ १, ४२५ तथा ४३५।

मात्र अधिकारी थे। उनका मुख्य काय शस्त्र धारण कर दुष्टो का दमन तथा सज्जनो की अभिवृद्धि करना है।[१] सवण गृहस्थो का मुख्य धर्म क्षमतानुसार क्रमश (१) वेद (२) पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०, ९०) अथवा (३) पुराण पढकर[२] १—वैदिक, २—स्मति अथवा ३—परम्पराओ द्वारा मान्य आचार-सहिता का पालन करना है।[३] इससे कुलीन परिवारो मे वैदिक विद्या तथा आचार-सहिता की उपादेयता की क्रमिक क्षीणता प्रदर्शित होती है।

ब्राह्मण-सेवा, शूद्रो का परम धर्म है।[४] क्षत्रिय तथा वैश्या की सेवा करके उनको जीविकोपार्जन करना चाहिये।[५] सवर्णो के सेवा-काय का परित्यक्त कर किसी व्यापार मे सलग्न शूद्र से उपकरण क्रय के वर्जित विधान के सम्ब ध मे इस काल के टीकाकारो के दृष्टिकोण मे शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। शूद्रो से वर्जित क्रय-प्रक्रिया, सम्प्रति मात्र सामान्य स्थिति के लिये मान्य रह गयी। असाधारण परिस्थिति मे व्यापारी शूद्र के विरुद्ध यह निषेध आज्ञा उदार बना दी गई।[६] सद् शूद्र व्यापारी के लिये भी यह वजन्-निर्देश शिथिल हो गया। सम्प्रति, मास विक्रय से शूद्रो को जाति बहिष्कार करना अनिवार्य न रहा।

शूद्रो के विरुद्ध पारम्परिक धार्मिक अशक्तता कुछ राहत की श्वास ली। बृहदधर्मपुराण[७] द्वारा धार्मिक व्रतियो तथा ग्रन्थो से निषेधित होने पर भी शूद्र पुराणो को सुन और अपने गुरु की अनुमति से तत्रो का अध्ययन कर सकते हैं। वे 'स्वाहा' तथा 'ओम्' मत्रो का उच्चारण नही कर सकते थे। सामाजिक अशक्तता मे भी उन्मुक्तता आई। सद् शूद्रो के यहाँ भोजन, गाय तथा भूमि की उपलब्धि के[८] लिये अथवा असाधारण परिस्थिति मे[९] किया जा सकता है। मदनपारिजात (१३३) क अनुसार शूद्र के स्पश पर स्नान करके पवित्र होना अपेक्षित था। एक ही अपराध के लिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य और शूद्र को क्रमश १ २ ३ ४ के औसत से दण्ड का विधान था। यद्यपि अ यत्र दूसरे प्रकार के भी दण्ड विधि विहित थे, किन्तु जनता के असन्तोष के भय से तत्कालीन राजन्य उनक प्रतिपालन मे अपने को अक्षम पात थे।[१०]

---

१ पराशर माधव १, ३९०-३९७। ३ पराशर माधव, १, ३८२-९३।
२ गृहस्थरत्नकर, २४९। ४ पराशर-माधव, १, ४१८-२०।
५ वही, बृहद् धमपुराण, , ४-५, २४-२५, ३१-३२।
६ गृहस्थ रत्नाकर ४७९-८०। ८ गृहस्त रत्नाकर ३३७, ३२५।
७ बृद् धर्म पुराण ३, ४, १५-३२। ९ पराशर माधव ३-३०५, ३७९-८०, ३२५
१० यू० यन० घोषाल का लेख हिन्दू सामाजिक जीवन, दिल्ली सुलतानियत, पृ० ५८०

अनुलाम जानियो की सामाजिक मान्यता उनके मातृपक्ष म समझी जाती था। तिरस्कृत जातिरा अस्पृश्य थी। चाण्डाल को चार युग दूर रहने का विधान था।[१]

दक्षिण भारत के विजय नगर हिन्दू राज्य मे ब्राह्मण के अनन्तर चेट्टी (व्यापारी), वीर पचाल (कारीगरी), कैवकाल (जुलाहा) तथा नाई की महत्वपूण जातिया थी। उत्तर भारत से स्थाना तरित तौत्तियार, सौराष्ट्र रड्डी तथा निम्न जातियो मे दोवर (जादूगर), योगी ओर मरवर उल्लेखनीय है। ब्राह्मण राजा तथा व्यापारियो म सम्मानित थे। व यापार, खेती और सैनिक कार्य भी सम्पन्न करते थ।

दासता—

दास प्रथा सामा यतया थी। इसमे साम्प्रदायिक भावना समाहित थी। मुसलमान समूह मे हिन्दू परिवार की स्त्रिया का शक्तिपूण ढग से दास बना कर नृत्य करवान तथा गवाने मे रुचि ली जाती थी। मुहम्मद विन तुगलक अपने सम्बन्धियो को दासो का नि शुल्क भेट दिया करता था। उसने चीनी सम्राट को सैकडो दास तथा एक सो नतकी ओर सगीतज्ञ दासिया उपहार मे भेजा था। निजामुद्दीन के अनुसार राजपूत गण मुस्लिम तथा सैय्यद औरतो को दासी बनाकर नृत्य कला मे प्रशिक्षित करते थे। दक्षिण भारत के विजयनगर हि दू राज्य मे दास प्रथा मान्य थी। वहा के मदिरा मे भा नतकी देव-दासियो की प्रथा विद्यमान थी।

विवाह —

स्मृतियो मे निषिद्ध सवर्णा मे अन्तर्जातीय विवाह का तत्कालीन टीका पराशर माधव (१,१२३-२७) तथा मदन पारिजात (१५-१६) समथन करते हुए गृहस्थ रत्नाकर (३८), मदन पारिजात (१३३-१३४। तथा पराशर-माधव (१,२६३-६८) निम्नतर वण की कन्या से सभोग के लिये विवाह की छूट भी देते हैं। ऐसे विवाहो मे निम्नतर वण की पत्नी को धार्मिक कृत्यो के सम्पादन का अधिकार सुलभ था तथा उसका सामाजिक मान्यता भी अपेक्षाकृत कम थी।

सगोत्री तथा सपिड विवाह वर्जित था। इसका पितृपक्ष मे ७ और मातृ पक्ष म ५ सोपान तथा निषेध था। मदन पारिजात (१३९-४०), पराशर-माधव (१,८६७-

१ यू० यन० घोपाल का लेख हिन्दू सामाजिक जीवन, दिल्ली सुलतानियत, पृ० ५८०।

२ आइ० वी० एच०, ६३, १५१, टी० ए०, ३, ५६७, सम्पादक, इस अनुच्छेद का उत्तरदायी है।

६८) तथा सूलपाणि की टीका (याज्ञवल्क्य १,५६) के अनुसार दत्तक अथवा सौतेली माता तथा दत्तक पिता के लिये ३ ५ सोपान तक मान्य है। असुर विवाह के लिए भी यह मान्यता स्वीकृत है।

दक्षिण भारत मे मातुल सुता के विवाह पर टीकाकारो मे प्रचुर मतभेद है। मनु को आधार मानकर गृहस्थ रत्नाकर (८,१०) विपक्ष मे और दलपति[१] श्रुति के आधार पर पक्ष मे अभिमत प्रदान करते है। स्मृति चन्द्रिका (१,७० ७४) तथा पराशर माधव (१,८६६ ७३) मातुल सुता परिणय को सगत मानते है।

युग का नैतिक तथा धार्मिक आग्रह १२ वर्ष की आयु के पूव कन्या दान सम्पन्न कर देने के पक्ष मे था। मदन पारिजात (१४६-५०) का अभिमत है कि युवती कन्या को घर मे रखने की अपेक्षा अयोग्य वर से शादी कर देना श्रेयस्कर है। पराशर-माधव (१,४८४) ने वर-कन्या की औसत आयु क्रमश ३० /२, २८ ८, ३० १० तथा २१ ७ मान्य ठहराया है।

समाज मे सती प्रथा सम्मानित थी। गभ अथवा सन्तान के अबोध होने पर सती होना विहित नही था। पति के परदेश मे मृत्यु होने पर उसकी हड्डी के साथ विधवा ब्राह्मणी को सती हो जाना चाहिये। दूसरी जाति की विधवा भी हड्डी के अभाव मे पति के किसी चिह्न अथवा बिना चिह्न के भी सती हो सकती है।[३] सती स्वग की अधिकारिणी थी। इब्न बतूता के अनुसार विधवा को सती होने के लिए सुल्तान से अनुमति लेनी पडती थी।[४]

पुरातन पद्धति के ८ प्रकार के विवाहो मे ब्राह्म, देव, आर्ष तथा प्रजापत्य को ही विहित माना गया था। फिर भी राजपूतो मे गान्धर्व, राक्षस तथा असुर विवाहो का भी चलन था। विवाह के पूव सैनिक बल का प्रयाग किया जाता था और विवाह उत्सव एक प्रकार की सैनिक विजय समझा जाता था। स्त्री का बलपूर्वक अपहरण करना एक साधारण सी बात थी और इस विषय को लेकर भयकर युद्धो तक की नौबत पहुँच जाती थी। पृथ्वीराज और जयचन्द्र के सघष का

---

१ व्यवहार सार की भूमिका मे।

२ विभिन्न अभिमतो के लिये दृष्टव्य कणे का धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २ खण्ड १, पृ० ४५८।

३ मदन पारिजात (१९६-२०३)।

४ यूल एण्ड कार्डियर, कथवे एण्ड द वे थियर, वालम २, पृ० १३९। (फ्रायर ओडरिक, यूल, मिरविलिया (जोडनस), आइ० बी० एच०, २१-२२।

अनुलाम जातियो की सामाजिक मा यता उनके मातृपक्ष म समझी जाती था। तिरस्कृत जातिया अस्पृश्य थी। चाण्डाल को चार युग दूर रहने का विधान था।[१]

दक्षिण भारत के विजय नगर हिन्दू राज्य मे ब्राह्मण के अनन्तर चेट्टी (व्यापारी), वीर पचाल (कारीगरी), कैवकाल (जुलाहा) तथा नाई की महत्वपूण जातिया थी। उत्तर भारत स स्थाना तरित तौत्तियार, साराष्ट्र रड्डी तथा निम्न जातियो मे दोवर (जादूगर), योगी ओर मरवर उल्लेखनीय हे। ब्राह्मण राजा तथा व्यापारियो स सम्मानित थे। व व्यापार, खेती और सैनिक कार्य भी सम्पन्न करते थे।

दासता—

दास प्रथा सामा यतया था। इसमे साम्प्रदायिक भावना समाहित थी। मुसलमान समूह मे हिन्दू परिवार की स्त्रिया का शक्तिपूण ढग मे दास बना कर नृत्य करवान तथा गवाने मे रुचि ली जाती था। मुहम्मद बिन तुगलक अपने सम्बन्धिया को दासो को नि शुल्क भेट दिया करता था। उसने चीन सम्राट को सैकडो दास तथा एक सा नतकी ओर सगीतज्ञ दासिया उपहार मे भेजा था। निजामुद्दीन के अनुसार राजपूत गण मुस्लिम तथा सैय्यद औरतो को दासी बनाकर नृत्य कला मे प्रशिक्षित करते थे। दक्षिण भारत के विजयनगर हिदू राज्य मे दास प्रथा मान्य थी। वहा के मदिरो मे भी नतकी देव-दासियो का प्रथा विद्यमान थी।

विवाह —

स्मृतियो मे निषिद्ध सवर्णा मे अन्तजानाय विवाह का तत्कालीन टीका पराशर माधव (१,१२३-२७) तथा मदन पारिजात (१५-१६) समथन करते हुए गृहस्थ रत्नाकर (३८), मदन पारिजात (१३३-१३४) तथा पराशर-माधव (१,४६३-६८) निम्नतर वण की कन्या से सभोग के लिये विवाह की छूट भी देते है। ऐसे विवाहो मे निम्नतर वण की पत्नी को धार्मिक कृत्यो के सम्पादन का अधिकार सुलभ था तथा उसका सामाजिक मान्यता भी अपेक्षाकृत कम थी।

सगोत्री तथा सपिड विवाह वर्जित था। इसका पितृपक्ष मे ७ और मातृ पक्ष मे ५ सोपान तथा निषेध था। मदन पारिजात (१३९-४०), पराशर-माधव (१,८६७-

१ यू० यन० घोपाल का लेख हिन्दू सामाजिक जीवन, दिल्ली सुलतानियत, पृ० ५८०।

२ आइ० वी० एच०, ६३ १५१, टी० ए०, ३, ५९७, सम्पादक, इस अनुच्छेद का उत्तरदायी है।

६८) तथा सूलपाणि की टीका (याज्ञवल्क्य १,५६) के अनुसार दत्तक अथवा सौतेली माता तथा दत्तक पिता के लिये ३ ५ सोपान तक मान्य है। असुर विवाह के लिए भी यह मान्यता स्वीकृत है।

दक्षिण भारत मे मातुल सुता क विवाह पर टीकाकारो मे प्रचुर मतभेद है। मनु को आधार मानकर गृहस्थ रत्नाकर (८,१०) विपक्ष म और दलपति[१] श्रुति के आधार पर पक्ष मे अभिमत प्रदान करते है। स्मृति चन्द्रिका (१,७० ७४) तथा पराशर माधव (१,८६६ ७३) मातुल सुता परिणय को सगत मानते है।

युग का नैतिक तथा धार्मिक आग्रह १२ वष की आयु के पूव कन्या दान सम्पन्न कर देने के पक्ष मे था। मदन पारिजात (१४६-५०) का अभिमत है कि युवती कन्या को घर मे रखने की अपेक्षा अयोग्य वर से शादी कर देना श्रेयस्कर है। पराशर-माधव (१,८८४) ने [२]वर-कन्या की ओसत आयु क्रमश ३० /२ २८ ८, ३० १० तथा २१ ७ मान्य ठहराया है।

समाज मे सती प्रथा सम्मानित थी। गभ अथवा सन्तान के अबोध होने पर सती होना विहित नही था। पति के परदेश मे मृत्यु होने पर उसकी हड्डी के साथ विधवा ब्राह्मणी को सती हो जाना चाहिये। दूसरी जाति की विधवा भी हड्डी के अभाव मे पति के किसी चिह्न अथवा बिना चिह्न के भी सती हो सकती है।[३] सती स्वग की अधिकारिणी थी। इब्न बतूता के अनुसार विधवा को सती होने के लिए सुल्तान से अनुमति लेनी पडती थी।[४]

पुरातन पद्धति के ८ प्रकार के विवाहो मे ब्राह्म, देव, आष तथा प्रजापत्य को ही विहित माना गया था। फिर भी राजपूतो मे गान्धव, राक्षस तथा असुर विवाहो का भी चलन था। विवाह के पूव सैनिक बल का प्रयोग किया जाता था और विवाह उत्सव एक प्रकार की सैनिक विजय समझा जाता था। स्त्री का बलपूर्वक अपहरण करना एक साधारण सी बात थी और इस विषय को लेकर भयकर युद्धो तक की नौबत पहुँच जाती थी। पृथ्वीराज और जयचन्द्र के सघष का

---

१ व्यवहार सार की भूमिका मे।

२ विभिन्न अभिमतो के लिये दृष्टव्य कणे का धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २ खण्ड १, पृ० ४५८।

३ मदन पारिजात (१६६-२०३)।

४ यूल एण्ड कार्डियर, कथवे एण्ड द वे थिथर, वालम २, पृ० १३६। (फ्रायर ओडरिक, यूल, मिरविलिया (जोडनस), आइ० बी० एच०, २१-२२।

कारण मयागिता ही थी। क्षत्रियो को छोडकर अ य जातिया मे—विशेष कर ब्राह्मण तथा वैश्यो मे—गान्धव, आसुर राक्षस तथा पैशाच विवाह-परम्परा का चलन था।[1]

नारी का स्थान —

'यदि राजपूत नरेशो के लिय स्त्री विलास की वस्तु थी, तो अन्य जातिया के लिये वह त्याग तथा पवित्र प्रेम की प्रतिमा थी। भोग-विलास के वातावरण मे रहत हुये भी राजपूतनियो ने आत्म-समर्पण के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये है जो ससार के इतिहास मे अद्वितीय है। उच्च वग मे स्त्रियो का सम्मान भी था और उनके कुछ अधिकार भी थे। पर्दे का अभा चलन न था। शस्त्र धारण करके राजपूत रमणियाँ रणक्षेत्र मे घोडो पर सवार होकर सेना का सचालन करती थी।'''[2]

विवेक रत्नाकर (४०६), मदन पारिजात (१६१ ६२), पाराशर माधव (२ ३२२-२३), व्यवहार विवेकोद्योत (३१५-१७), व्यवहार सार (२०३-४ व्यवहार रत्नाकर (३४२) तथा विवाद चिन्तामणि (१८६-६०) से स्पष्ट होता है कि युग स्त्रियो की स्थायी अधीनता का पोषक था। स्त्रियो को जीवन पय त किसी न किसी पुरुष सम्बन्धी के सरक्षण मे रहना अपेक्षित था। सतान तथा परिवार के हितार्थ पति को चाहिये कि अपनी पत्नी को पारिवारिक कार्यों मे सदा सलग्न रखे वैदिक सस्कारो और अध्ययनके लिए ये अक्षम समझी जाती थी।

पाराशर माधव (३ २६,३४) तथा प्रायश्चित सार (३२,५६,६४ ७५) मे कतिपय विशिष्ट नैतिक अपराधो के लिए पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को आधा प्रायश्चित दण्ड के रूप मे अपक्षित था, यद्यपि मदन पारिजात (८६१ ६२) के अनुसार स्त्रियो को पुरुषो के बराबर ही प्रायश्चित करने का विधान है। पाराशर माधव (३ १५-१६) मे स्त्री का शूद्र के द्वारा अपना शीलभङ्ग करवाना एक गम्भीर अपराध समझा गया है जिसका दण्ड उस स्त्री को त्याग देने के अतिरिक्त कोई अ य विकल्प नही है।

याज्ञवल्क्य (१,११५) के आधार पर विवादरत्नाकर (६५) तथा व्यवहार विवेकोद्योत (३२१) मे स्त्री धन सहित पत्नी का लडको का आधा और स्त्री धन के अभाव मे पत्नी का पुत्रो के बराबर भाग पितृधन के विभाजन मे मिलना उल्लिखित

१ ब० प्र० सक्सेना का सास्कृतिक पृष्ठभूमि, लेख (हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड मे) पृ० ४३।

२ वही।

है। ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र को बराबर और क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्रो का क्रमश ३।४, १।२ और १।४ भाग मिलना चाहिये। यही स्थिति स्त्री के सम्बन्ध मे मदन पारिजात (६६२-६३) से स्पष्ट होती है। नि सन्तान विधवा, पति के सम्पूण धन की उत्तराधिकारिणी है।

जीवन-स्तर—

अभिजात्य परिवार का जीवन स्तर उत्कृष्ट था। विजय नगर के सम्बन्ध मे अब्दुरज्जाक का कथन है कि वहाँ के कुलीन वश के सभी स्त्री-पुरुष अमूल्य रत्नो से जडे कणफूल, अँगूठी, बाजूबन्द तथा हार पहने रहते थे। वारबोस के अनुसार लोग अनेक प्रकार के रङ्ग-बिरगे मूल्यवान वस्त्रो का उपयोग करते थे। राजघराने मी विलासितापूण सामान्यतया उपलब्ध थी। महा नवमी के अवसर पर राजा का ठाटबाट दृष्टव्य था।

माप, शराब और मद्य, स्त्रियो तथा ब्राह्मणो के लिए निषिद्ध थे। बालोस के अनुसार विजय नगर राज्य मे ब्राह्मण और लिंगायत क अतिरिक्त सभी लोग मास और मछली का आहार करते थे। राजधानी मे मासाहार के लिये असख्य भेड बकरियो तथा सुअरो का बध किया जाता था।

सामान्य युग प्रवृत्तियाँ—

पराशर-माधव (३ १७१-१७६) से अभिज्ञान है कि ब्राह्मण तथा शूद्र जाति के स्तर मे प्रचुर वैषम्य था। मात्र उच्च कुल मे जन्मने के कारण एक दुराचारी तथा चरित्रहीन ब्राह्मण परिषद का सदस्य होता था, किन्तु एक सच्चरित्र शूद्र के लिये यह सम्भाव्य नही था। मदन पारिजात (३६५-७३) के अनुसार तप करने के अधिकारी एक मात्र ब्राह्मण थे। इतर जातियाँ तपस्वी के लाल वस्त्र तथा दण्ड का भी प्रयोग नही कर सकती थी। पराशर माधव (१,५३६-३८)। ब्राह्मण को किसी भी अपराध का दण्ड भागी न मानकर, उसके लिए मात्र प्रायश्चित का विधान करता है। आततायी ब्राह्मण को भी मारना दोष है।[२] शूद्रो का धर्म ब्राह्मण सेवा करना था। उसे छोडकर यदि वे व्यापार आदि करते है तो उनका बहिष्कार किया जाय। उनसे किसी सामग्री का क्रय नही किया जाता था। शूद्र अस्पृश्य थे। यदि किसी ढग से छू जाते, तो उसका प्रायश्चित करना अपेक्षित था।

---

१ मदन पारिजात, ८२७। २ वही, ७८५-८६।

स्मृति विधानो का बारम्बार उल्लेख करते हुये भी स्त्रियो की अशक्तता पर कम बल दिया गया है। उसके अधिकारो को सपुष्ट बनाने के प्रति युग प्रयत्नशील है। उसको यौवनावस्था मे स्वत पति वरण करन का विकल्प दिया गया है। अक्षम पति को त्यागने का अधिकार प्रदान किया गया है। स्त्रियो के कठोर प्रायश्चित मे नम्रता लाई गई है। सच्चरित्र स्त्रियो के सरक्षण तथा पालनपोषण के प्रति पति को सजग रहने का निर्देश है। स्त्रियो के गभीर अपराध पर भी उनका त्यागना उचित नही बताया गया है। सती प्रथा के प्रति प्रचुर मतभेद है, किन्तु अधिकाश अभिमत उदारतापूण है। पति के धन पर नि सतान स्त्री के उत्तराधिकार की सव प्राथमिकता तथा स्त्री धन पर उसको पूण अधिकार दिया गया है।

पुरातन धार्मिक प्राणोत्सर्ग प्रचलित रहा। आमरण उपवास तथा अगो को काट-काट कर जीवो को खिला देना प्रशसनीय था। गगा वाक्यावली (२६७ ९) तथा तीथ रत्नाकर (२६३) ने गगाजल म उपवास करके प्राण दे देना श्रेयस्कर कहा है। प्रयाग मे मरना तथा वाराणसी मे अग्नि प्रवेश करना कल्याणप्रद समझा जाता था। इस सदर्भ मे फ्रायड ओडोरिक, जारडस तथा इब्नबतूता क उल्लेख द्रष्टव्य है।[२] पराशर-माधव (। । ।, ३९३) तथा प्रायश्चित सार (२०३-६) न इस पारस्परिक धार्मिक आत्मोत्सग के सिद्धान्त को चारित्रिक पतन के प्रायश्चित्त के रूप म व्यक्ति की क्षमतानुसार प्रयुक्त होने का महत्वपूण बतलाया है।

इस युग मे भी मनु, विष्णु, बाद्धायन तथा बृहस्पति आदि स्मृतिकारो के आधार पर समुद्र यात्रा वर्जित माना जाती रही। समुद्र यात्रा चारित्रिक पाप मे गिनी जाती था। समुद्र यात्री ब्राह्मण श्राद्ध-निमत्रण के अयोग्य घोषित था। तीथ चिन्तामणि के अनुसार प्रयाग, पुरी (पुरुषात्तम), कोणाक, गगा, गया, वाराणसी, दलपति के तीथसार के अनुसार सतुबन्ध रामेश्वर, गया, गोदावरी, कृष्णा तथा नर्मदा आदि पवित्र तीर्थस्थल तथा नदिया है। मदन पारिजात (८५६-५९) मे गोहत्या के विस्तृत प्रायश्चित्त हैं। शूलपाणि (याज्ञवल्क्य । । ।, २६३-६४) न भी सक्षिप्त प्रायश्चित्त का विवेचन किया है। पराशर-माधव (। । ।, ६१-७२) द्वारा जीव हत्या

---

१ तीथ चितामणि, ३४७।

२ यूल० एण्ड कार्डियर, काथवे, U P II, पृ० १४५ (ओडोरिक) मिरबिलिया (जोडनस) आइ०, बी०, एच० पृ० ४३।

३ यू० न० घोषाल का हिन्दू समाज पर लेख (दिल्ली सुलतान, भारतीय विद्या भवन, १९६०, पृ० ६०४)।

विस्तृत प्रायश्चित्त का उल्लेख है। अब्दुर्रज्जाक ने कालीकट मे गाय की बडी श्रद्धा की है। औडोरिक तथा जार्डनस साड पूजा की अद्भुत भारतीय प्रथा देखकर स्तम्भित हुए।

। मुस्लिम समाज—

मुस्लि समाज मे असीमित अधिकार प्राप्त निरकुश सुल्तान के अतिरिक्त उमरा कुलीन वग) एव उलमा (विद्वान्) विशिष्ट अधिकार सम्पन्न समुदाय थे। विशेष विधा प्राप्त वग में शाही गुलाम भी उल्लेखनीय है जो नैतिक पतन के बावजूद अपने स्वामी पर प्रचुर प्रभाव जमा लेते थे। साधन सम्पन्न सशक्त मध्यम वग का अभाव ा लगता है। मुस्लिम उमरा फारस, तुक, अफगान, सैयद अथवा अरब के आभिजात्य । ये अपने को भारतीय प्रजा तथा नौकरो मे भिन्न बनाये रखते थे। यह अभिमानी लीन वग भारतीय जाति व्यवस्था के सदृश कालान्तर मे भिन्न-भिन्न जातियो के रूप विकसित हुआ। तुक अथवा मगोल, पठान सैय्यद तथा शेख भी अपने से निम्न थवा इन चारो से इतर जातियो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध का विचार भी नही करते । अभिजात स्त्रियो मे पर्दा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। इसीलिए समसामयिक तिहासकार तथा कवि ने रजिया बेगम के पर्दे के बाहर पुरुष वेष मे रहने को एक ाहसिक काय माना है। हरम की उत्पत्ति इसी भावधारा पर आधारित है।

मुस्लिम समाज शीघ्रतापूर्वक भारतीय बन रहा था। सुल्तान तथा कुलीना ा लेकर निम्नतम स्तर की मुस्लिम प्रजा यथेष्ट भारतीय हो गयी थी। बहुमूल्य ाजकीय पहिनावा, सोना चढे तथा घने जडे तलवार-कटार, अनेक रगो वाले छत्र, मूल्य साजसज्जा के साथ हाथी तथा घोडो का दरबारे आम मे सम्मान पाना भारतीय राजाओं के अद्वितीय सजधज के प्रमाण है। पान खाने की पुरातन भारतीय प्रथा ने मुस्लिम समाज मे प्रचुर लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।[१] मध्य एशिया मे चार, गरम मसाले तथा लाल मिच द्वारा भोजन को स्वादिष्ट बनाने की प्रक्रिया मुसलमानो मे प्रचलित हो गयी। मुस्लिम पाक कला ने भारतीय पाक विधि से अनेक तथ्य ग्रहण कये। सम्प्रति, मुख्य भोज्य ईरानी अथवा खुरासानी पोलाव तथा खुर्मा पर्याप्त परिवर्तित हो गये। अलवान उत्सवो तथा धनी वग मे बहुलता से व्यवहृत होने लगे थ।[२] सामान्य पहनावे मे राजपूती चीर तथा पाग दिल्ली के मुस्लिम बाके-छैले

१ वही, पृ० ६०८।

२ खुसरू का किरानुससदेन (अलीगढ स०), पृ० १८३-८५, इब्नबतूता का वणन, आइ० बो० एस०, १५, १२०, १८०।

तथा अन्य शहरो के मुसलमानो मे प्रचलित थे । हार, अगूठी, कर्णफूल आदि आभूषणो का मुस्लिम घरानो मे इस्लामियत के विरुद्ध होने हुए भी प्रयोग होने लगा था । निम्नस्तरीय भद्दे कपडे पहनने मे अभ्यस्त मुसलमान भारत के सर्वोत्कृष्ट सूती एव रेशमी वस्त्रो को प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत करने लगे । मुस्लिम शासको के आश्रय मे दकन, गुजरात, बगाल, बिहार तथा मैसूर आदि अनेक स्थानो मे बुनाई उद्योग का सम्बर्द्धन हुआ । उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकाश कपडा बुनने वाले तथा शिल्पकार मुसलमान हुये । ललित कलाओ मे भारतीयता अन्यत्र द्रष्टव्य है ।

विशिष्ट सुविधाप्राप्त मुसलमान जागीर, सम्पत्ति, पद अथवा राजस्व सम्पन्न व्यक्ति थे, जिससे उनका जीवन विलासितापूर्ण हो गया था । विवाह उत्सव तथा सहभोज ऐसे मुख्य-मुख्य अवसरो पर अपनी धनशक्ति के प्रदर्शन से वे सुल्तान की प्रतियोगिता करते थे । सुन्दर महलो मे अनेक दासो तथा सेवको के मध्य उनका सुखद जीवन व्यतीत होता था । श्रृङ्गार प्रसाधन की प्रचुरता थी । उनका अस्तबल देशी तथा विदेशी घोडो से भरा रहता था । कलाकार तथा दरबारी उन्हे सदा घेर रहते थे ।

कुलीन वर्ग के अनन्तर एक ऐसा समुदाय था जिसकी आय अपेक्षाकृत अल्प थी । वे खेती तथा नौकरी द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते थे । नौकरो मे जिला अधिकारी, राजस्व सग्रहक, न्यायाधीश तथा पोस्टमास्टर आदि सदृश व्यक्ति थे । राजघराने के लिपिक, सलाहकार, राजकुमारो के शिक्षक आदि तथा कुलीनो के उच्चस्तरीय नौकर भी इसी समुदाय मे समाविष्ट हैं । इनका भी जीवन सुखपूर्ण था । इनके भवन शहर तथा ग्राम दोनो स्थलो पर रहते थे । कृषि कार्य भी इनके व्यवसायों मे था । सुलेख तथा पत्र लेखन कला भी इनके आय के साधन थे ।

मुस्लिम समाज की निम्नतम श्रेणी मे किसान, मजदूर, कारीगर तथा घरलू सेवक आदि सन्निहित हैं । इन भारतीय मुसलमानो ने हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम को ग्रहण कर लिया था । इनमे अधिकाश अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते थे । एक ही स्थान पर समूह मे ये बसे थे । ये इतना कमा लेते थे कि अपने परिवार का सरलतापूर्वक भरणपोषण कर लेते थे, क्योकि जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ भी सस्ती तथा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध थी । इनमे बेकार तथा भूखे नही थे । इनका जीवन भी अस्थिर नही था ।

इनके अतिरिक्त सत, कलन्दर तथा सूफी आदि भी मुस्लिम समाज के अग थे । इनका जन साधारण मे प्रचुर प्रभाव था । इनमे साम्प्रदायिक भावना कम, सामान्य हिन्दू-मुस्लिम जनता अथवा मानव के प्रति कल्याण की भावना प्रबल थी । य

भौतिकवादी दृष्टिकोण नही रखत थे । इसलिये ये सच्चरित्र थे, जबकि, कहा जाता है कि शेष मुस्लिम समाज शराब दासी तथा प्रचुर धन के सेवन से जीवनादश से पतित हो चुका था । जन सामान्य मे इनके अतिशय प्रभाव से बहुधा सुल्तान भी भयभीत हो जाते थे और इनके दमन के लिये प्रयत्नशील हो जाते थे । सुल्तान के दमनात्मक अत्याचार से यह वग निश्चित था । इनमे हजरत निजामुद्दीन औलिया, शेख फरीदुद्दीन मसूद, अलाउद्दीन साबिर, बू अली तथा रोशन चिराग आदि उल्लेखनीय हैं ।[1]

मुस्लिम स्त्रिया की स्वतन्त्रता सीमित थी । वे नगर के बाहर पीरो के दरगाहो के दशनार्थ नही जा सकती थी । फिरोज शाह ने इस सदभ मे अधिक असहिष्णुता दिखलाई और इन स्त्रिया के लिये कठोर दड व्यवस्था की ।[२] सामान्यतया मुस्लिम नारी सम्मानित थी । उनकी शिक्षा की व्यवस्था थी । इब्नबतूता ने अनेक कन्या पाठशालाओ का उल्लेख किया है ।

ग हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध—

पारस्परिक प्रभाव— विवेच्य काल तक हिन्दू पर्याप्त सख्या मे मुसलमान बनाये जा चुके थे । उनके वशजो से भारतीय मुस्लिम जनसख्या वृद्धि प्राप्त कर चुकी थी । विदेशी मुसलमान भी हिन्दुओ के पडोसी रूप मे कई पीढी से रह रहे थे । अतः इनमे पारस्परिक आदान-प्रदान असभाव्य नही रह गया । विवाह, उत्सव, सामाजिक तथा धार्मिक विश्वास, पहिनावा, आहार, भाषा, साहित्य सगीत तथा स्थापत्य आदि मे एक जाति का दूसरी जाति पर स्पष्ट प्रभाव पडा जो अन्यत्र इसी अध्याय मे उल्लिखित है ।

वस्तुतः ये सभी पारस्परिक प्रभाव मात्र झालर को स्पश करने अथवा बाह्य जीवन पर एक छाया पडने के सदृश है । तिस पर भी यह प्रभाव समस्त जनता के कतिपय वग के कुछ लोगो तक ही सीमित रहा । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हिन्दू मुसलमान दोनो जातियो मे से किसी ने भी एक दूसरे की सस्कृति की उन प्रमुख विशेषताओ का, जिन्होने कि विश्व के मानव सभ्यता को महत्वपूण योगदान दिया, कुछ अश मात्र भी सीख कर न ग्रहण किया, न उन्हे समझा और न समझने का प्रयत्न ही किया ।

---

१ रतिभानु सिंह का दिल्ली सुल्तान, १९६४ ।

२ ईश्वरी प्रसाद का मध्य युग का सक्षिप्त इतिहास, १९५२ ।

तथा अन्य शहरो के मुसलमानो मे प्रचलित थे । हार, अगूठी, कणफूल आदि आभूषणा का मुस्लिम घरानो मे इस्लामियत के विरुद्ध होने हुए भी प्रयोग हाने लगा था । निम्नस्तरीय भद्दे कपडे पहनने मे अभ्यस्त मुसलमान भारत के सर्वात्कृष्ट सूती एव रेशमी वस्त्रो को प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत करने लगे । मुस्लिम शासको के आश्रय मे दकन, गुजरात, बगाल, बिहार तथा मेसूर आदि अनेक स्थानो मे बुनाई उद्योग का सम्बर्द्धन हुआ । उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकाश कपडा बुनने वाले तथा शिल्पकार मुसलमान हुये । ललित कलाओ मे भारतीयता अन्यत्र दृष्टव्य है ।

विशिष्ट सुविधाप्राप्त मुसलमान जागीर सम्पत्ति, पद अथवा राजस्व सम्पन्न व्यक्ति थे, जिससे उनका जीवन विलासितापूण हो गया था । विवाह उत्सव तथा सहभोज ऐसे मुख्य-मुख्य अवसरो पर अपनी धनशक्ति के प्रदशन से वे सुल्तान की प्रतियोगिता करते थे । सु दर महलो मे अनेक दासा तथा सेवको के मध्य उनका सुखद जीवन व्यतीत होता था । शृङ्गार प्रसाधन की प्रचुरता थी । उनका अस्तबल देशी तथा विदेशी घोडो से भरा रहता था । कलाकार तथा दरबारा उन्हे सदा घेर रहते थे ।

कुलीन वग के अनन्तर एक ऐसा समुदाय था जिसकी आय अपेक्षाकृत अल्प थी । वे खेती तथा नौकरी द्वारा अपना जीविकोपाजन करते थे । नौकरा मे जिला अधिकारी, राजस्व सग्रहक, न्यायाधीश तथा पोस्टमास्टर आदि सदृश व्यक्ति थे । राजघराने के लिपिक, सलाहकार, राजकुमारो के शिक्षक आदि तथा कुलीनो के उच्चस्तरीय नौकर भी इसी समुदाय मे समाविष्ट हैं । इनका भी जीवन सुखपूण था । इनके भवन शहर तथा ग्राम दोनो स्थलो पर रहते थे । कृषि काय भी इनके व्यवसायों मे था । सुलेख तथा पत्र लेखन कला भी इनके आय के साधन थे ।

मुस्लिम समाज की निम्नतम श्रेणी मे किसान, मजदूर, कारीगर तथा घरेलू सेवक आदि सन्निहित हैं । इन भारतीय मुसलमानो ने हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम को ग्रहण कर लिया था । इनमे अधिकाश अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते थे । एक ही स्थान पर समूह मे ये बसे थे । ये इतना कमा लेते थे कि अपने परिवार का सरलतापूवक भरणपोषण कर लेते थे, क्योकि जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ भी सस्ती तथा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध थी । इनमे बेकार तथा भूखे नही थे । इनका जीवन भी अस्थिर नही था ।

इनके अतिरिक्त सत, कलन्दर तथा सूफी आदि भी मुस्लिम समाज के अग थे । इनका जन साधारण मे प्रचुर प्रभाव था । इनमे साम्प्रदायिक भावना कम, सामान्य हिन्दू-मुस्लिम जनता अथवा मानव के प्रति कल्याण की भावना प्रबल थी । य

भौतिकवादी दृष्टिकोण नही रखत थे । इसालिये ये सच्चरित्र थे, जबकि, कहा जाता है कि शेष मुस्लिम समाज शराब, दासी तथा प्रचुर धन के सेवन से जीवनादश से पतित हो चुका था । जन सामान्य मे इनके अतिशय प्रभाव से बहुधा सुल्तान भी भयभीत हो जाते थे और इनके दमन के लिये प्रयत्नशील हो जाते थे । सुल्तान के दमनात्मक अत्याचार से यह वग निश्चित था । इनमे हजरत निजामुद्दीन औलिया, शेख फरीदुद्दीन मसूद अलाउद्दीन साबिर, बू अली तथा रोशन चिराग आदि उल्लेखनीय हैं ।

मुस्लिम स्त्रिया की स्वतन्त्रता सीमित थी । वे नगर के बाहर पीरो के दरगाहा के दर्शनार्थ नही जा सकती थी । फिरोज शाह ने इस सदभ मे अधिक असहिष्णुता दिखलाई और इन स्त्रिया के लिये कठोर दड व्यवस्था की ।[१] सामान्यतया मुस्लिम नारी सम्मानित थी । उनकी शिक्षा की व्यवस्था थी । इब्नबतूता ने अनेक कन्या पाठशालाओ का उल्लेख किया है ।

ग हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध—

पारस्परिक प्रभाव— विवेच्य काल तक हिदू पर्याप्त सख्या मे मुसलमान बनाये जा चुके थे । उनके वशजो से भारतीय मुस्लिम जनसख्या वृद्धि प्राप्त कर चुकी थी । विदेशी मुसलमान भी हिन्दुओ के पडोसी रूप मे कई पीढी से रह रहे थे । अतः इनमे पारस्परिक आदान-प्रदान असभाव्य नही रह गया । विवाह, उत्सव, सामाजिक तथा धार्मिक विश्वास, पहिनावा, आहार, भाषा, साहित्य सगीत तथा स्थापत्य आदि मे एक जाति का दूसरी जाति पर स्पष्ट प्रभाव पडा जो अन्यत्र इसी अध्याय मे उल्लिखित है ।

वस्तुत[२] ये सभी पारस्परिक प्रभाव मात्र झालर को स्पश करने अथवा बाह्य जीवन पर एक छाया पडने के सदृश है । तिस पर भी यह प्रभाव समस्त जनता के कतिपय वग के कुछ लोगो तक ही सीमित रहा । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हिन्दू मुसलमान दोनो जातियो मे से किसी ने भी एक दूसरे की सस्कृति की उन प्रमुख विशेषताओ का जिन्होने कि विश्व के मानव सभ्यता को महत्वपूण योगदान दिया, कुछ अश मात्र भी सीख कर न ग्रहण किया, न उन्हे समझा और न समझने का प्रयत्न ही किया ।

---

१ रतिभानु सिंह का दिल्ली सुल्तान, १९६४ ।

२ ईश्वरी प्रसाद का मध्य युग का सक्षिप्त इतिहास, १९५२ ।

अपने ही सम्प्रदाय मे सीमित मुसलमानो के अतिलोकतान्त्रिक सामाजिक समानता तथा भ्रातृत्व की धारणाये, जिसको कि यूरोप तथा उसके माध्यम से विश्व ने १९वी शता मे सीखा—ग्रहण करने की आवश्यकता था। दूसरी ओर हिन्दुओ का दूसरे धर्मो के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण तथा साहिष्णुता की उदार भावना, उपदेश तथा इनकी व्यावहारिकता सम्प्रति निराश सभ्य मानव के लिये आदश है। हिन्दुओ ने सामाजिक क्षेत्र की वण व्यवस्था मे व्याप्त दृढ असमानता के विधान तथा अस्पृश्यता मे अल्प मात्र की शिथिलता नही प्रदान की, जब कि उनके सम्मुख मुस्लिम वग का आदश समाज मे प्रस्तुत था। मुसलमान भी मुहम्मद बिन कासिम के साथ भारत मे प्रथम पैर रखने से लेकर १८वी शती पर्यान्त जब कि वे अपनी समस्त राजनातिक सम्प्रभुता खो चुके थे। हिन्दू मन्दिरो तथा देव मूर्तिया को बबरतापूण ढग स विनष्ट करने क उत्साह एव प्रवृत्ति मे तनिक भी सयम अथवा नम्रता न लाकर अपरिवर्तनीय बने रहे। हिन्दुओ ने अपने धर्म की विश्वव्यापकता का सामाजिक हठधर्मिता स बाधा तथा मुसलमानो ने अपना धार्मिक कट्टरता को सामाजिक समानता तथा भ्रातृत्व के साथ सयोजित रखा। वस्तुत दोनो सम्प्रदाया के तात्विक मतभेदो का मिला सकने क लिए उनके पारस्परिक प्रभाव प्रकृतस्थ अति छिछले तथा बाह्य थे। जावन का गहराई तक छूने वाले किसी लोकगत अथवा राष्ट्रीय परम्परा का निमाण नही हुआ।[1]

हिन्दुआ की स्थिति—मुस्लिम राज्य मे हिन्दुओ को ऐसी राजनीतिक एव धामिक विषय परिस्थितियो मे शक्तिपूवक रहने का बाध्य किया गया कि इसन दाना सम्प्रदाया के बीच एक सुदृढ दीवाल निमित कर दा। मुसलमाना का राजनातिक सम्प्रभुता निरकुश थी। इसके अन्तगत हिन्दुओ न व्यावहारिक रूप म न ता किसी राजनीतिक अधिकार का उपभाग किया ओर न उसके लिए कोइ उत्कृष्ट अभिलाषा हा व्यक्त कर सक। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार क विचार इस सदभ मे दृष्टव्य है—

"विष, इस्लामिक धमतन्त्र के हृदय म है। इसमे एक, मात्र एक विश्वास, एक जाति तथा एक सर्वोपरि अधिकारी रह सकता है। इतर विश्वास वालो का कोई स्थान नही हो सकता। प्रतिवादस्वरूप मात्र जिम्मी रह सकते है जो शासक की सब प्रकार से सवा करेगे। उसके लिए राजनीतिक अशक्तता रहगी जिससे वह उठ न

१ यू० एन० घोषाल का हिन्दू समाज पर लेख [दिल्ली सुल्तान, भा० वि० भवन, १९६० पृ० ६१७]।

सके जिम्मी का तात्पर्य अनाथ है। ऐसे लोग किसी भी प्रकार मुसलमानों से समानता का अधिकार न्ही माग सकते।''

''मूलत सभी इतर मुस्लिम जाति, मुस्लिम राज्य के शत्रु ह। इससे राज्य के हित मे उनकी सरया तथा शक्ति का विनाश अपेक्षित है। उनका समूल विनाश करना मुस्लिम राज्य का आदशपूण लक्ष्य है। कुरान (९,२९) आह्वान करना ह कि सत्य विश्वास । न मानने वालो से लडा अथवा जजिया टैक्स लो।''

''जजिया टैक्स देने के अतिरिक्त हिन्दुओ को, मुस्लिम धमतन्त्र के अनुसार अनेक अशक्तताओ को वहन करना पडता था। मुसलमान से भिन्न समझवाने के लिए उ हे अधम पहिनावा पहनना पडता था। घाडे पर नही चढ सकते थे। हथियार नही ग्रहण कर सकते थे, जबकि तत्कालीन युग मे हथियार रखना सामा य तथा अपेक्षित था। मुसलमानो को सम्मान की दृष्टि से देखना पडता थ। धम के क्षत्र मे ऐसा काय न करे जिससे किसी मुसलमान को रोष उत्पन्न ह। । मुसलमान का धम परिवर्तन कराने वाले को कोई भी जान स मार सकता था।'

मुस्लिम शासक को जिम्मी (इस्लामी राज्य मे गर मुस्लिम नागरिक। के लिए निम्नलिखित २० शर्तो का लागू करना पडता था —(१) मुस्लिम राज्यान्तगत नये मन्दिर अथवा दव मूर्तिया न बने। (२) नष्टप्राय मन्दिरो का पुनरद्धार न हा (३) मुसलमाना को किसी मन्दिर के प्रयोग करने से न रोका जाय (४) मन्दिर मे रहत समय मुसलमान कोई पाप न करे (५) ये नास्तिक जासूसी का काय न करे (६) अगर कोई इस्लाम का पक्षपात करे तो उसका ऐसा करने से रोका न जाय। (७) वे मुसलमानो का सम्मान करे। (८) जिम्मी का सभा मे जाने के लिए किसी मुसलमान को रोक न हो। (९) कोई जिम्मी मुसलमान का भाति पहिनावा न पहने। (१०) वे मुस्लिम नाम दूसरा को न दे (११) साजसज्जा के साथ वे घाडे पर न बैठे। (१२) वे तलवार और तीर अपन पास न रखे। (१३) अगुली मे काई आभूषण न पहने। (१४) वे नशीली वस्तु का सेवन न करे (१५) मुसलमान से भिन्न समझवाने के लिए वे निधारित पहिनावा न त्यागे। (१६) बहुदेवपूजा सम्बन्धी कोइ भी रीति-रिवाज मुसलमाना को न सुनाये। (१७) मुसलमान के पडोस मे अपना घर न बनाये। (१८) मुसलमान कब्र के पास अपना मुर्दा न ले जाय। (१९) अपने मुर्दो के लिए जोर-जोर से वे विलाप न करे (२०) मुसलमान के दास को वे न खरीदे।''

अगर इन शर्तो का किसी भी भाति जिम्मी द्वारा उल्लघन किया जाता है तो इन जिम्मियो का जान-माल सुरक्षित नही है। उनकी स्थिति पापित युद्ध मे शत्रु की

तरह है। वे किसी भी मुसलमान द्वारा मारे जा सकते हैं।[1] सम सामयिक मुस्लिम इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी तथा अफीफ के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि सुल्तान को बारम्बार उत्तेजित किया जाता था कि इतर जातियो को मुसलमान बनने के लिए बाध्य किया जाय अथवा उनको मार डाला जाय।[2]

सामाजिक तथा धार्मिक मतभेद—

हिन्दुओ की राजनीतिक स्थिति ऐसी नही थी कि उनको मुसलमानो के प्रति प्रेम तथा मैत्री भाव की प्रेरणा मिले। तिस पर सामाजिक एव धार्मिक मतभेद इतना उग्र, तीखा और मौलिक था कि दोनो सम्प्रदायो के मध्य एक ऐसी चीनी दीवाल खडी हो गई कि ७०० वर्षो से साथ-साथ रहते हुए भी उस दीघकाय तथा सशक्त दीवार मे अल्पमात्र भी दरार दोनो नही कर पाये, उसे गिराना तो बहुत दूर रहा।

जीवन के प्रधान राग तथा मानव सस्कृति के आधार धर्म ने हिन्दू और मुसलमान दोनो को ध्रुव की भाति बहुत दूर-दूर प्रतिष्ठित कर दिया। उनकी ईश्वर परक नीति विचार, उपासना पद्धति तथा उससे सम्बन्धित प्रत्येक दैनिक क्रिया-कलाप मे तात्विक मतभेद है। हिन्दुओ के लिये प्रतिमा तथा मन्दिर पवित्रतम् पदार्थ हैं, किन्तु ये दोनो मुसलमान के लिये अभिशाप थे। दोनो की दाशनिक विचारधारा, पवित्र साहित्य, स्वग नर्क की धारणाये, सासारिक जीवन तथा तत्पश्चात् की गति, सक्षेपत मनुष्य ओर वस्तु सम्बन्धी समस्त दृष्टिकोण मे उभयनिष्ठ आधार का अभाव है। इसी भाँति सामाजिक नियमो मे जो निर्विवाद रूप मे धर्म से सम्बद्ध था, गम्भीर विरोध था। मुसलमानो की समानता तथा भ्रातृत्व सम्बन्धी लोकतान्त्रिक विचार और हिन्दुओ की वर्ण-व्यवस्था तथा अस्पृश्यता मे आकाश पाताल का अन्तर है। हिन्दुओ मे शारीरिक पवित्रता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसीलिए सामाजिक क्षेत्र मे शुद्ध रक्त के सरक्षण हेतु अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तर्जातीय सहभाज का सवथा निषेध है। मुसलमान मासाहारी है तो अधिकाश हिन्दुओ के लिये वह अत्यन्त घृणित है। विवाह मुसलमानो के लिये मात्र समझौता है, क्षण भर के लिये भी शादी

---

१ सौर्सेज आव इडियन ट्रेडिशन [कौलोम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क, १९५८], पृ० ४५९-६०, इसको पुष्टि के लिए देखिए यू० एन०, घोषाल का लेख [दिल्ली सुल्तान भा० वि० भ०, १९६० पृ० ६१९-२० और इसका सदर्भ]।

२ विस्तार के लिए, वही, पृ० ६२०-२२।

करना विधिविहित है तो हिन्दुओ के लिये विवाह एक सस्कार है और जन्मजन्मान्तर तक इसका बन्धन बने रहने की कामना की जाती है। मुसलमानो का तलाक तथा स्त्री का पुनर्विवाह हिन्दुओ के लिए प्रतिकूल तथा घृणास्पद भी है। उत्तराधिकार विषयक नियम पैतृक सम्पत्ति का बटवारा, आहार करने का प्रणाली अभिवादन ढङ्ग, नामकरण, काल विभाजन, पहिनावा, प्रार्थना आदि सभी दोनो सम्प्रदायो के लिये भिन्न भिन्न थे। हिन्दुओ के उत्सवो पर सगीत अत्यावश्यक है तो मुसलमानो के यहा इसका पूर्णतया निषेध है। एक सस्कृत साहित्य से प्रेरणा लेता है तो दूसरे का साहित्यिक प्रेरणा स्रोत अरबी-फारसी। वस्तुत मुसलमान पश्चिम की ओर मुख करके प्रार्थना करता है तो हिन्दू पूर्व की ओर, यद्यपि यह महत्वपूर्ण नही है, फिर भी दोनो के मतभेदो की दूरी को प्रकट अवश्य करता है।

अध्याय ३

३—धार्मिक दशा

सामान्य—विवेच्यकाल के प्रारम्भ से ही बौद्ध धर्म का देश मे व्यावहारिक रूप से ह्रास हो गया था। जैन धर्म पश्चिमाचल मे सीमित था। इस्लाम धर्म उत्तर भारत मे इधर उधर नये बसे हुए मुसलमानो मे तथा दक्षिण भारत के कतिपय तटीय स्थानो मे प्रसृत था। कट्टर धर्म परायण ब्राह्मण लगभग सम्पूर्ण भारत मे व्याप्त थे। अनेक उप सम्प्रदायो के अतिरिक्त मीमासा दर्शन की पृष्ठभूमि मे शास्त्र विहित यज्ञ एव बलिदान परक वैदिक धर्म की प्रक्रिया, मे वैष्णव शैव, शाक्त तथा तान्त्रिक (बौद्ध धर्म का सहजिया रूप भी) प्रभृति प्रमुख हिन्दू सम्प्रदाय अपने-अपने विभिन्न शाखाओ सहित पल्लवित थे।

भक्ति सम्प्रदाय—युग को अभिनव प्रकाश देने वाले भक्त जन थे जो न किसी सम्प्रदाय विशेष के समर्थक थे और न विरोधी। कोई भिन्न सम्प्रदाय का प्रवर्तन भी उनका अभीष्ट नही था। किसी विशेष ग्रन्थ के अन्ध विश्वासी भी वे नही थे। वे अपने स्वतन्त्र विचार तथा स्वसस्कृत से प्रेरणा ग्रहण करते थे। वे पूर्व प्रचलित किसी विशेष उपासना पद्धति के पुजारी नही थे। बहुतो ने मूर्तिपूजा को भी मान्यता नही दी है। बहुदेववादी न होकर वे एक ईश्वर को प्रधानता देते थे। राम, कृष्ण, हरि तथा शिव सबको उसी ईश्वर का प्रति रूप मानते थे। वे प्रेम के पुजारी थे तथा यही उनका मोक्ष था।

भक्तजन अपनी मातृभाषा मे भजन अथवा उपदेश करते थे। अपने सन्देश को जन साधारण तक पहुँचाने मे उन्होने सस्कृत का आश्रय नही लिया था। जन समूह अभिजात द्वारा सम्मानित नही था, तत्कालीन धर्म मे व्याप्त नीरसता, निर्जीवता, स्थिरता तथा अति कर्मकाण्ड के परिप्रेक्ष्य मे भक्ति भावना के उन्नयन को निःसदिग्ध रूप मे स्वर्ण अवसर उपलब्ध हुआ और सतो की वाणी एव व्यक्तित्व ने निष्क्रिय समाज को अनुप्राणित किया।

सूफी सम्प्रदाय—भक्ति के सदृश इस्लाम के सूफ। सम्प्रदाय के साधको ने भी इस युग को महत्वपूण योगदान दिया है। ये मूलत रहस्यवादा साधक है। ससार से विरक्त होकर परमात्मा के प्रेम मे ये बेसुध रहते थे। इ हे लौकिक प्रलोभनो तथा स्वर्ग का आकषण नही था। ईश्वर से 'एकमैक' होना इनका चरम लक्ष्य था। भक्तो की भाति इनका भी सर्वोच्च साधन प्रेम था।

कुरान' तथा 'एकेश्वरवाद' मे इनकी दृढ आस्था है। दृश्यमान जगत मे परमात्मा की सत्ता व्याप्त है। वह परम सत्य, कल्याणमय तथा सुन्दरतम है। बुजूदिया सूफी मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी के वह तुलबुजूद सिद्धान्त (परमात्मा ही एक मात्र सत्ता है, दृश्यमान जगत उसकी अभिव्यक्ति है) को मानते हैं आर शुहूदिया सूफी शेख करीमे जीली के वहदतुश्शुहूद सिद्धान्त (परमात्मा तथा जीव की भिन्न-भिन्न सत्ता है, किन्तु जीव के अस्तित्व के लिए परमात्मा का सत्ता आवश्यक है) क समर्थक हे। सूफियो का विचार है, कि यह जगत ईश्वर का प्रतिबिम्बित मात्र है। मनुष्य मे सत् और असत् दोना है। परमात्मा का जितना अश मनुष्य मे है, वह सत् है तथा जो कुछ जाव का है वह असत् है। मनुष्य का सत् सतत प्रयत्नशील रहता है, कि वह अपने उद्गमस्थल, परमात्मा से मिले, कि तु मनुष्य का असत् इसमे रुकावट डालता है। वह 'अहम्' मे सत्र की प्रतीति कराना है। 'अहम्' समस्त दु खो का जड है। अतएव इस 'अहम्' पर विजय प्राप्त कर सूफी, ईश्वर से 'एकमेक होत हैं। इस प्रकार के साधनापूण जीवन को ये लोग एक 'सफर' समझते हैं और इस साधना के माग पर चलने को 'सूफी' माग कहते है।

सूफी माग (अत तरीकत) की अनेक मजिले, अवस्थाएँ (अहवाल) तथा मुकाम ह। इस 'सफर' मे परम सत्ता अपने अभिव्यक्त अवस्था से अनभिव्यक्त अवस्था को निगमन करता है। भारतीय सूफी 'अत तरीकत' मे चार मजिल तथा चार अवस्थाएँ मानते हे। यथा—१ शरीयत, २ तरीकत, ३ मारिफत और ४ हकीकत। पहल मे कुरान तथा हदीस प्रभृति द्वारा निर्धारित विधि-निषेधा का पालन करना पडता है। तरीकत या मलकूत मे साधक भौतिकता से ऊपर उठ कर पवित्रता तथा आध्यात्मिकता का अनुसरण करता है। मारिफत मे साधक विघ्नरहित सशक्त ज्ञान का अनुभव करता है। परमात्मा मिलन की आशा बलवती हो जाती है। हकीकत (परमसत्य) मे साधक राग विराग मे परे होकर विशुद्ध ज्ञान का उपलब्धि करता है। इसमे चरम लक्ष्य की प्राप्ति होती है और साधक परमात्मा से एकमेव हो जाता है।

सूफियो के अनेक सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय तथा शाखाएँ-उपशाखाएँ हैं। इनमे भारतीय सूफियो के चार प्रमुख सम्प्रदाय हैं। यथा १ चिश्तिया, २ कादिरिया,

३। सुहरवर्दिया, ४ नक्शबन्दिया। इनमे तीन हसन अल बसरी तथा चाथा अबू बक्र से सम्बद्ध है। चिश्ती सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था। इसका प्रवतक ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती (११४२-१२३६ ई०) सर्व प्रथम भारत मे आया था। अजमेर मे इसकी दरगाह मुस्लिमो के लिए एक तीर्थस्थल बन गयी है। ख्वाजा कुतुबद्दीन बख्तियार काकी, फरीदूद्दीन शकरगज (पाक पतन के बाबा फरीद) तथा निजामुद्दीन औलिया इस घराने के प्रसिद्ध सत हैं। यह सम्प्रदाय सगीत को प्रधानता देता है। इसी के द्वारा उनके हाल (भावाविष्टावस्था) की उपलब्धि होती है। ये अली को परमात्मा तथा मुहम्मद के सदृश मानते है। इनके सिर पर बडे-बडे बाल होते हे। ये रगीन कपडो का व्यवहार करते हैं। चालीस दिन तक मस्जिद अथवा एका त कमरे मे स्वल्पाहारी रह कर ईश्वराराधना करना इनकी साधना का एक अनिवाय अग हे।

अब्दुल कादिर अल-जीलानी (१०७८-११६६ ई०) ने कादिरी सम्प्रदाय का प्रवतन किया था। इस सम्प्रदाय के लोग सगीत को मान्यता नही प्रदान करते तथा हरे रग की पगडी और कम से कम एक गेरुआ वस्त्र अवश्य पहनते है 'जिक्र' के समय अल्लाह के सात नामो का ये लोग उच्चारण करते है। सुहरावर्दी सम्प्रदाय मे मुर्शिद (गुरु) का आज्ञा से मुरीद (शिष्य) सवप्रथम अपने पापो का प्रायश्चित करता हे। तदन तर पाच कलमे पढ कर रोजा-नमाज आदि धार्मिक कृत्यो का दृढता पूवक वह पालन करता है। ये अनेक कपडो से अपना अग ढके रहते है।

गूढ साधक (रहस्यवादी)

जिस प्रकार से आधुनिक भारत मे पाश्चात्य सम्पक से अनुप्राणित ब्राह्म समाज ने परम्परागत रूढग्रस्त सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था का परिष्कार करने के लिए धार्मिक सहिष्णुता, एकेश्वरवाद, सगीत के माध्यम से सामूहिक आराधना पद्धति नारी शिक्षा, सहभोज तथा अ तर्जातीय विवाह प्रभृति का प्रोत्साहन दिया, उसी प्रकार तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क से जनित अभिनव विषम परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे गूढ साधको (रहस्यवादी) ने इस्लाम आक्रमण के विशिष्ट बाह्य अग बहुदेववाद जातीयता तथा मूर्तिपूजा सम्बन्धी कट्टर विश्वासो मे जन सामान्य को दूरस्थ कर उनको अपनी अ त स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा ईश्वर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार की ओर उन्मुख किया। यद्यपि यह प्रवृत्ति मानव स्वभाव का एक अभिन्न अग है और रहस्य की अनुभूति मानव की उत्कृष्ट उपलब्धियो मे है। यह देश, काल, जाति तथा धर्म की सीमाओ से परे शाश्वत् है। यह प्रवृत्ति सांसारिकता से हटाकर अपने भीतर ईश्वर का दर्शन कराती है। इसका आधार व्यक्तिगत साधना है। आदिम

जानियो मे भूत-प्रेत की अद्भुत शक्ति की विशिष्ट अनुभूतिया पुजारियो मे पायी जाती है। मैलेनेसिअना की माना, आराक्यूजो की ओरेण्ड, साइबेरिया के शामानवादी समाज मे इष्ट देवता, बोद्ध धर्म की बोधिकी तथा चीन की ताओ प्रभृति इसी रहस्यानुभूति के विभिन्न स्वरूप है। दाशनिक पाइथागोरस, प्लेटो तथा प्लोटिनस की भी रहस्यवादी थे। आरफिक अनक रहस्यपूण कृत्य करता था। सुकरात के समाधि जैसी अवस्था मे जाने और दिव्य शक्ति से युक्त होने का उल्लेख मिलता है। ईसाई धर्म के प्रवत्तक ईसा मसीह क कथन ईश्वर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार तथा सान्निध्य क द्योतक है। इस धर्म मे तो प्राय रहस्यवादी सन्तो का उल्लेख होता है। भारतवष तो आदिकाल से साधना तथा रहस्यवाद का देश है। फिर भी, चौदहवी शती के आसपास युग की आवश्यकतानुसार गूढ साधकगण (रहस्यवादी) अपने विशिष्ट अथ मे आविर्भूत हुए और आधुनिक ब्रह्म समाज की ही भाति सीमित क्षेत्र मे नगण्य यागदान कर अल्प काल मे ही विलीन हो गए।

ये गूढ साधक (रहस्यवादी) अनुभववादी तथा यथाथवादी थे। आप्त वचन की अपेक्षा स्वय के प्रत्यक्ष अनुभूति पर उनकी आस्था थी। परमात्मा के अस्तित्व के सम्बध मे ये श्रद्धा की अपेक्षा प्रत्यक्ष जानकारी को प्रामाणिक मानते थे। अतएव मनुष्य सम्यक साधना द्वारा परमात्मा से पूण तादात्म्य कर सकता है, ऐसा इनका विश्वास था और इसी को जीवन का परम नि श्रेयस् समझते थे। पूण तादात्म्य की स्थिति मे आत्मा एक अभिनव एव अलौकिक आनन्द से आक्रान्त तथा अभिभूत होकर विचित्र शारीरिक परिवतन का अनुभव करता है। कभी-कभी अलौकिक शब्द (अनहद नाद) तथा रूप की उपलब्धि भी होती थी। सच्ची रहस्यानुभूति के अनन्तर साधक मे दिव्य परिवर्तन हो जाता है और वह उदात्त, निरहकार, प्रेमपूण, नि स्व तथा पवित्र जीवन बिताने लगता है।

शैव मत—दक्षिण भारत क विजयनगर राज्य के उत्थान ने शैव धम को विपुल शक्ति प्रदान की। इसके प्रारम्भिक राजय पक्के शैव थे और वे अपने इष्टदेव विरूपाक्ष के प्रतिनिधि रूप मे राज्य का सचालन करते थे। विरूपाक्ष 'नगर देव' तथा 'राज्य देव' समझा जाता था। राजाओ ने अपने शिलालेखो मे विरूपाक्ष को प्रणाम करते हुए अपनी श्रद्धा-व्यक्त की है। हरिहर प्रथम तथा बुक्का प्रथम को एक पाशुपत गुरू काशिविलास, क्रिया शक्ति का शिष्य होना बतलाया गया है।[1] तदनन्तर पन्द्रहवी शती से यहाँ के राजन्य वैष्णव धर्मावलम्बी हो जाते हैं किन्तु शैव सम्प्रदाय के प्रति कोई अवमानना की भावना उनमे नही उपलब्ध होती।

१ डी० एस०, पृ० ५५६।

कन्नड राज्य तथा इसके समीपवर्ती भूभाग मे वीरशैवमत का प्रचार था। भाम कवि ने वसव पुराण चामरस न प्रभुलिंग लिले तथा लरखन ने शिवतत्व चि तामणि की रचना का है। श्रापति पडिताचाय (१४०० ई०) न वीर शैवमत के आधार पर वेदान्त सूत्र पर 'शकरभाष्य' निर्मित किया है तिरुप्पायज के रचयिता तमिल कवि अरुन गिरि, जा दवराज द्वितीय के सरक्षण मे थे, दृढ शैव धमावलम्बी थे। समसामयिक तमिल कवि कालमेकम भा शैवधम के समथक थे।

शव मतावलम्बी शिव को परमेश्वर मानते हे। इसका प्राचीनता वैदिक सभ्यता क भी पूव का है क्योकि हरप्पा तथा मोहिन जोदडावासी शैव मत क उपासक ज्ञात हाते हैं। इ मे चार प्रधान सम्प्रदाय है—(१) पाशुपात (गुजरात राजस्थान), (२) ाल (तमिलनाडु), (३) कश्मीर शेवमन तथा (४) वीर शेवमत (कनाटक)। पाशुपत का मूल ग्रथ 'पाशुपत सूत्र' है जिसका लेखक माहेश्वर तथा पचार्थी भाष्यकार कोटिण्य ह। इसमे परमात्मा कारण और जीव जड काय है। इसके अनुसार पदाथ पाच है। यथा काय काग्ण याग विधि तथा दुखा त। ईश्वर पति, जीव पशु ओर जड पाश माना गया है। पति (ईश्वर) की आराधना मे जोभ तथा तालु क योग म 'हुड-हुड शब्द बनाया जाता है। शैव सिद्धा त तमिलनाडु मे प्रचलित है। इनका मुक्तावस्था मे पति के अनुग्रह से पशु पाशर हत होता है। कश्मीर शैव मत मे अद्वैत-वाद की प्रधानता है। इनके परमेश्वर मे कर्त्तृत्व है, मात्र ज्ञान नहीं है। इसमे भक्ति का भी समन्वय है। इसकी दो शाखाएँ हैं—१ स्प दशास्त्र जिसका मुख्य ग्रन्थ वसुगुप्त रचित शिवसूत्र' और 'स्प दकारिका है। २ प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, जिसका मुख्य ग्रथ 'शिवदृष्टि' (ले० सोमानन्द) इश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका (ले० उत्पलाचाय) तथा 'तन्त्रालोक और ईश्वरप्रत्यभिज्ञा कारिका 'विमर्शिणी' (ले० अभिनव गुप्त) है। दोनो मे भेद यह है कि स्पन्दमत मे ईश्वर की अनुभूति का माग ईश्वर दशन तथा मल निवारण है जबकि प्रतिभिज्ञामत मे अपना ही प्रतिभिज्ञा है। शैवमत (प्रवतक बसव) का मुख्य ग्र थ श्रीकरभाष्य तथा 'सिद्धा त शिखामणि हे। इसका मत विशिष्टा-द्वैतवाद का है। इस सम्प्रदाय का 'लिंगायत भी कहते हे। इसके समथक शिवलिंग की पूजा करते तथा उसे पहनते भी है।

शाक्तमत—शक्ति के उपासक को शाक्त मत कहा जाता है इसमे परमेश्वर स्त्री प मे शक्ति नाम से जाना जाता है। शक्ति का दूसरा नाम आनन्द भरवी, महाभैरवी, त्रिपुर सुन्दरी तथा ललिता आदि भी है। प्राय इसके तीन ढङ्ग के उपासक उपलब्ध होते है—१ स्मात,—इसमे अहिंसात्मक रूप से सामान्यत शक्ति की पूजा होती है। २ शव—इनमे पशुओ तथा मनुष्यो की बलि भा की जाती है। इसका

सम्बन्ध कापालिक तथा कालमुख से है। ३ शाक्त—इसके उपासक भावना मे शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करते है। शाक्त मत मे दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं—कौल तथा समयाचार। कौल योग के द्वारा कुण्डलिनी का शिव से सम्मेलन कराता है कुल शक्ति अथवा कुण्डलिनी, अकुल शिव। कौलो के वामाचार मे मद्य मास, मत्स्य मुद्रा तथा मैथुन का उपभोग है। इनका वास्तविक सम्बध अन्तजगत से है किन्तु कालान्तर मे पचमकारो के बाह्य भौतिक रूप का सेवन होने लगा। समय माग मे योग की प्रधानता है। समय-हृदयाकाश मे चक्र की भावना पर पूजा का विधान। इसके समथक लक्ष्मीधर (१२६८ १३७९ ई०) ने कौल माग की कटु आलोचना की है।

शाक्त मत प्रागैतिहासिक है। इनके मुख्य ग्रथ शक्तिसूत्र, शक्तिमहिम्नस्तोत्र, त्रिपुररहस्य, श्री विद्यारत्नसूत्र, सौन्दयलहरी प्रपचसार तन्त्रालोक, कौलज्ञान, कालोत्तर तथा महाकाल सहिता हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग मे शाक्त मत का विशेष प्रभाव था, नाद विन्दु पचमकार तथा प्रतीक भाषा आदि का प्रयोग शाक्तो के प्रभाव का सूचक है। शाक्त आगम, शूद्रो और स्त्रियो के लिए सदा से उन्मुक्त रहे हैं। इसमे जाति पाति का भेद-भाव शिथिल था। इसका भी प्रभाव प्राचीन हिन्दी साहित्य पर पड़ा। पर जहा इतने अच्छे प्रभाव पडे, वहा प्राचीन हिन्दी साहित्य मे शाक्तो का कटु निन्दा भी मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि शाक्त मत अपने वास्तविक रूप से विकृत हो गया था, उसमे बहुत सी कुरीतिया सम्मिलित हो गई थी।

वैष्णव धम— इसे वासुदेव धम, भागवत धम नारायणीय धर्म अथवा वैष्णव सम्प्रदाय भी कहते है। चौदहवी शती की समाप्ति तक उत्तर भारत मे यह धम विकसित नही था। शकराचाय के अनन्तर बौद्ध धम की प्रतिक्रिया मे इस धम की ओर लोगो का ध्यानाकषण हुआ किन्तु दक्षिण भारत म यह बहुप्रचलित धम था। नवी शती तक वासुदेव, विष्णु अथवा नारायण के उपासक आलवार भक्तो की परम्परा प्रसृत थी। इनके गीत 'प्रबन्धम्' तमिल भाषा मे सग्रहीत है जिसे तमिल वेद कहते है। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख समथको मे रगनाथ मुनि अथवा नाथ मुनि (८२४-९२४ ई०) यमुनाचाय (विशिष्टाद्वैतवादी) रामानुजाचाय (१०१६-११३७ ई०) भक्ति धर्म श्रीवैष्णव के सस्थापक), आचार्य निम्बाक (बारहवी शताब्दी) द्वैताद्वैत पर आधारित सनकादि सम्प्रदाय अथवा हस सम्प्रदाय अथवा सनातन सम्प्रदाय अथवा (देवर्षि सम्प्रदाय के सस्थापक) मध्वाचाय (११९९-१३०२ ई०) द्वैतवाद पर आधारित माध्व मत अथवा ब्रह्म सम्प्रदाय के प्रवतक)। आनन्द तीथ तथा इसके शिष्य जयतीर्थ

(चौदहवी शताब्दी) प्रभृति उल्लेखनीय हैं। बगाल के ौ ीय सम्प्रदाय का सम्बन्ध इन्ही मध्वाचाय जा से कहा जाता है। इन आचार्यों से सम्पुष्ट होकर वैष्णवधम भक्ति के रूप मे चौदहवी शताब्दी से महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, मध्यदेश मगध, उत्कल, असम तथा बगाल आदि प्रदेशो मे यात होकर व्यापक लोकधम बना। उत्तर भारत मे इसके प्रमुख प्रचारक स्वा ी रामान द (चौदहवी शताब्दी) है।

वेदा तदेशिक की मृत्यु (१३७० ई०) के अनन्तर उसका आत्मज बरदाचाय अथवा नैनर वडवकलइ पथ का महन्त बना। इस पथ मे आचाय आदि ब सठ काप स्वामी (प्रारम्भिक नाम निवासाचाय, अहोबिला जिला कुरनूल का निवासी) ने र मानुज तथा वेदा त देशिक के कार्यों के प्रचाराथ अनेक स्थानीय मठो की स्थापना कर सहस्रा लोगा को अपने पथ मे दीक्षित किया। वह अपने को लक्ष्मी नृसिंह का दास कहता ओर उसकी मूर्ति लिए रहता था। इसने निम्नजातियो को मदिर प्रवेश की सु वधा प्रदान की ओर पहाडी जन-जातियो के विकास हेतु सघ का निर्माण किया। इसी से प्रभावित होकर विजयराज का देवराज द्वितीय न सम्भवत वैष्णवधम का ग्रहण किया था।

वडवकलइ का प्रतिस्पर्द्धी वैष्णव प थ तेनकलइ को पिल्लाइ लोकाचाय के द्वितीय उत्तराधिकारी अलगियामनूवाला के सरक्षण मे विशिष्ट महत्वपूण स्थान उपलब्ध था। उसने ीरङ्गम् मे वापस आकर वहा के कट्टरपथी प्रब धक को ऐसा प्रभावित किया कि Thuty Six Thou and oi idu विषय का अ ययन वहा प्रारम्भ हो गय। उसका उपदेश, व्यक्तित्व तथा सगठन क्षमता ने मेसूर से कुमारी अन्तरीप पय त तेणवकलइ सम्प्रदाय को सर्वोच्च महत्व प्रदान किया। यह राम नुज का अवतार माना जाने लगा। सम्प्रति, दक्षिण भारत के अधिकाश मदिर तथा मठ इस सम्प्रदाय को सम्मान की दृष्टि से देखते है जिसका प्रमुख कारण सम्भवत इसमे सन्निहित मातृभाषा का प्रयोग तथा उदार सामाजिक दृष्टिकाण है। प्रसिद्ध आचाय तोलप्पा (वेकटनाथ) ने वैष्णव सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक ग्रन्थो का रचना का थी जिनमे 'सदाचार सग्रह' महत्वपूण है। इसमे कट्टरपथी ब्राह्मणो की जावनचया का विवेचन है।

वैष्णव धर्म मे जगत का सृष्टिकर्ता नारायण, वासुदेव अथवा भागवत् माना गया है। वह अनन्त, अविनाशी तथा अच्युत है। जीवात्मा उसका अश है। इसने ब्रह्मा, शिव तथा अनेक देवताओ को जन्म दिया है। जब जब भक्तो पर भीर पडती है, यह ससार मे मानव शरीर धारण कर भक्तो के उद्धार हेतु अवतरित हाता है। राम तथा कृष्ण इसके प्रमुख अवतार हैं। वैष्णव धम, साख्य तथा योग के प्रचलन

से अपने पहले चरण मे ऐकेश्वरी भक्ति का प्रतिपादक था, किन्तु दूसरे चरण म ब्राह्मण धम मे प्रभावग्रस्त होकर बहुदेवोपासक हो गया। विष्णु स्वामी, जयतीर्थ तथा विद्याविराज प्रभृति चौदहवी शताब्दी के कतिपय वैष्णव मतानुयायियो के नाम भी उल्लेखनीय है।[१]

इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् गीता, महाभारत का शान्ति पर्व पाचरात्र सहिता, सात्वत सहिता, शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, भागवत पुराण, हरिवश पुराण नारदीय भक्तिसूक्त तथा नारद पाचरात्र है।

रामानन्द सम्प्रदाय—इसकी सस्थापना चौदहवी शताब्दी मे वैष्णवाचार्य स्वामी रामान द (स० १३५६-१४६६ वि०) ने किया था। इसके अनुयायी बैराग अथवा तपसी कहे जाते है। कतिपय रामानन्दी बैरागी अवधूत के नाम से भ अभिहित है।

इस सम्प्रदाय के आराध्यदेव राम हैं। इनके लावण्य, शक्ति तथा शील गुण की आराधना की जाती है। ये कर्ता पालक तथा सहारक तीनो है। जीव, परमात्मा (राम) का अश और नित्य है। जगत का कारण ब्रह्म (राम) है जो सकल्प मात्र से निर्मित होता है। प्रपत्ति तथा न्यास इसके दो प्रमुख भाग हैं। भगवत्कृपा प्राप्ति के नवधा साधन इसका उपासना पद्धति है। साधक मे दास्य भाव की प्रधानता है और कर्मकाण्ड गोण है। जाति पाति का बन्धन ढीला है। सिद्धान्त मे विशिष्टाद्वैतवादी है, यद्यपि रामानन्द ने इस शब्द का कही भी प्रयोग नही किया है। इसके प्रमुख ग्रन्थ श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामतापनियोपनिषद आनन्द भाष्य और भगवदाचार्य कृत त्रिरत्नी है।

नाथ सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय योग परक पाशुपत शैव मत का विकसित रूप है। नाथ का तात्पर्य है रक्षक, स्वामी, अथवा देवता कि तु इसका प्रचलित अर्थ शिव है। गोरखनाथ इसक सबसे बडे पुरस्कर्त्ता है। इस धर्म के साधक अपने नाम बाद 'नाथ' लिखते है। इन्हे कनफटा, दरशनी अथवा बारह पन्थी योगी भी कहते है। इनके १२ पन्थ है—१ सत्यनाथी, २ धर्मनाथी, ३ रामपन्थ, ४ नटेश्वरी ५ कन्हण, ६ कपिलानी, ७ वैरागी, ८ माननाथी, ९ आईपन्थ, १० पागल पन्थ, ११ धवपन्थ, १२ गगानाथी।

चौदहवी शताब्दी के मौलिक ग्रन्थ 'वर्ण रत्नाकर' मे ८४ नाथ सिद्धो के नाम उल्लिखित है, जिनमे कतिपय सहजयानी सिद्धो से अभिन्न ज्ञात होते हे। इस

१ वही, पृ० ५५८-५९।

सूचा मे अनेक ऐसे नाम है जिनके सम्बन्ध मे अधिक जानकारी प्राप्त नही, किन्तु कुछ ऐसे है, जिनकी चर्चा तान्त्रिक साहित्य और निर्गुणमार्गी सिद्धो के ग्रन्थो मे उपलब्ध है। सभी परम्पराओ से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ मे नौ मूल नाथ हुए हे, परन्तु इनके नाम भिन्न भिन्न परम्पराओ मे भिन्न भिन्न भाति से प्राप्त होते हे। नाथ सम्प्रदाय भारतवष, नेपाल तथा अफगानिस्तान तक व्याप्त है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो इसके अनुयायी हैं।

नाथ सम्प्रदाय की उपासना पद्धति मे योग प्रमुख है। इससे चित्तवृत्तिया का नियन्त्रण होता है। चित्तवृत्तियो को सांसारिकता से विमुख कर अन्तर्मुखी बनाते हे। प्रसुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर नाडी मार्ग मे शीर्षस्थ सहस्रार मे ले जाते है। प्रसुप्त कुण्डलिनी मूल शक्ति है। यह सर्पिणी के सदृश मेरुदड के पास तथा उपस्थ के मध्य निम्नतम बिन्दु स्वयम्भूलिंग, के त्रिकोणाकार अग्निचक्र मे साढे तीन कुण्डली मारकर सोती है। इसका सुषुप्तावस्था मे प्राण शक्ति क्षीण रहती है। जागृतावस्था मे मेरुदड के सहारे यह ऊपर चढता हे और मेरुदड मे स्थित मूलाधार चक्र (गुदा के समीप), स्वाधिष्ठान चक्र (नाभि के पास), मणिपुर (नाभि के ऊपर) विशुद्धाख्यचक्र (हृदय के पास) तथा आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) को बेध कर अन्तिम शून्य चक्र अथवा सहस्रार चक्र (मस्तिष्क मे शिव का वासस्थान होने के कारण इसे कैलाश की सज्ञा दी गई है जिसमे निर्लिप्त चित्त रूपी हस रहता है) मे पहुँचती है। इन चक्रो के बेधन का मार्ग सुषुम्ना नाडियो मे स होकर है। सुषुम्ना तीन नाडियो से बना है। ऊपर वज्रा, इसके अन्दर चित्रिणी तथा इसके अन्दर बलनाडी है। ब्रह्म नाडी कुण्डलिनी का मार्ग है। सुषुम्ना की बायी ओर इडा तथा दाई ओर पिंगला हे। इडा का स्वभाव शीतल तथा पिंगला का उष्ण है अतएव प्रथम को चन्द्र स्थल मानकर उसे गगा कहते है। द्वितीय को सूर्य स्थल मान कर यमुना कहते हे। प्रथम का अधिष्ठाता ब्रह्मा तथा द्वितीय का विष्णु माना गया है। प्रथम को चन्द नाडी और द्वितीय को सूर्यनाडी भी कहते हैं। सुषुम्ना दोनो के मध्य मे है, इसे सरस्वती कहते है। इसका अधिष्ठाता शिव है। इन तीनो नाडियो का सगम ब्रह्मरन्ध्र (मस्तक के मध्य कल्पित एक रन्ध्र) मे होता है। योगियो को इसी से ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है। इसको दशम् द्वार भी कहते है। शरीर के अन्य नौ द्वार सदैव खुले रहते हैं, किन्तु यह दसवा साधना के माध्यम से उन्मुक्त किया जाता हे। इसके खुलते ही सहस्रार चक्र से अमृत रस झरने लगता है जिससे अमरत्व मिलता हे।

हठयोग की परिणति समाधि [illegible]। समाधि से ब्रह्मानन्द तथा कतिपय अप्राकृतिक शक्तियो की उपलब्धि होती है जिन्हे सिद्धिया कहते हे। इनसे सम्पन्न



यागी को सिद्व कहा जाता है। लोक श्रुतिया द्वारा न[illegible] र अति-प्राकृतिक विभिन्न चमत्कारो का पाया जाना उल्लिखित है।

सिद्ध – जन श्रुतियो मे सिद्ध चमत्कारपूर्ण कार्यों से प्रसिद्ध है। दव यज्ञ, तथा डाकिनिया इनसे वशीभूत रहती है। अजर-अमर होने तथा बनाने मे ये सक्षम समझे जाते थे। यो तो सिद्ध सभी सफल साधको को कहा जा सकता है कि तु हि दा साहित्य मे सिद्ध, बाद्ध तात्रिको के लिए विशिष्ट रूप से व्यवहृत है। ८०० ११०० ई० के मध्य ८४ सिद्ध बहुत प्रसिद्ध थे। आडियान, कामरूप, जालन्धर पूणगिरि आबु द तथा श्रीहट्ट प्रभृति इनके प्रधान केन्द्र थे। नालन्दा, वि म शिला विद्यापीठ तथा पाल राजवशो मे इनको विशिष्ट सम्मान उपलब्ध था। इनका साहित्य अपभ्रश दोहो तथा चर्यापदो मे सन्निपदो मे सन्निहित है जिनकी रचना कतिपय विद्वानो द्वारा चोदहवी शताब्दो मे अनुमानित है। इनका साधना-पद्धति नाथो के सदृश हठयोग थी।

इस्लाम—हजरत मुहम्मद ने इसकी सस्थापना मक्का मदीना ने सातवी शताब्दा पूर्वार्द्ध मे की थी। बहुत शीघ्र समस्त अरब प्रदेश अल्प रक्तपात म इसका अनुयायी बन गया। इसका आधार कुरान (ईश्वरीय कथन) है। कट्टर ऐकेश्वरवाद इसकी प्रमुख विशेषता है। इस्लाम सामाजिक समानता तथा भाई चारे पर विश्वास करता हे। विवाह तथा उत्तराधिकार मे स्त्रियो का विशेष महत्व दिया जो समकालीन किसी भी जातिया मे उपलब्ध नही है। दास प्रथा इस धर्म का अमा य हे। इस्लाम का निर्देश है कि दासो को मुक्त कर दो, उनको अपने सदृश रहन-सहन प्रदान करो। इस्लाम शोषित जनो की मुक्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा। फकीर, मसाकीन (मगता) यात्री तथा अपाहिज का सहायता के भागी समझते है। यह धम टैक्स लगाने का पक्षपाती नही है। धनवान से पैसा लेकर गरीबो मे बँटवारा एक धार्मिक कृत्य है।

इस्लाम के पाच प्रमुख स्तम्भ हे—१ ईश्वर मे विश्वास, २ पाच बार दैनिक नमाज पढना, ३ जीवन मे एक बार मक्का-मदीना का तीर्थ यात्रा करना, ४ रोजा तथा ५ जकात (आय का ढाई प्रतिशत दान मे देना)। इस धम मे सामूहिक प्रार्थना पर अधिक बल दिया जाता है। प्रत्येक शुक्र तथा ईद का नमाज पर मुसलमाना की उपस्थिति विशेष अपेक्षित हे।

तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति सम्बन्धी कतिपय सम्मतियाँ—ब्रजेश्वर वर्मा का कथन हे कि उस समय धार्मिक अध पतन था। धम मतवादो से घिरा था। बाह्याडम्बर तथा निरथक कमकाण्ड से धम आक्रा त था, उसका उद्देश्य उच्च आध्या-

त्मिकता से च्युत हो गया था। ज्ञान मार्ग का अनुसरण सम्भव नही था, क्योकि शिक्षा तथा स्वाध्याय की समुचित व्यवस्था नही थी। वेदान्तियो मे दम्भ पाखण्ड भरा था। कर्मकाण्ड के लिये परिस्थिति अनुकूल नही थी क्योकि देश म्लेच्छाक्रान्त था गगादि तीर्थ दुष्टो द्वारा भ्रष्ट हो रहे थे। अज्ञान और अशिक्षा से वैदिक शिक्षा नष्टप्राय थी।[1] रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखते है कि सामान्य जनता की धर्म भावना दबती जा रही थी। उसका हृदय धर्म से दूर हटता जा रहा था। सच्चे धर्म भाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। परिवर्तन के लिए बहुत बडे धक्के की आवश्यकता थी।[2] शैवो और वैष्णवो मे हिन्दी के उद्गम के समय बडा द्वन्द युद्ध चल रहा था।[3]

---

१ हि० सा० को०, भाग १, स० २०२०, वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड, पृ० ५७३

२ शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, स० १२, स० २०१५, पृ० ५६।

३ पाण्डेय सगमलाल, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८३८, भाग १, स० २०२०।

४—आर्थिक दशा

गॉव तथा नगर—परम्परागत आत्मनिभर गाँव भारत की अर्थ व्यवस्था की अब भी नींव थे। किन्तु अन्तर यह था कि उत्तर तथा दक्षिण भारत के दोनो भागो मे प्राचीन स्वशासित ग्राम पचायते अवनति पर थी। यहा तक कि केन्द्रित शासन तथा उसकी अविकसित जागीरदारी के कारण वे नष्टप्राय से थे। नगर का जीवन पूर्ववत् बना रहा। इब्नबतूता ने अपनी यात्रा मे (१३३३-१३४६ ई०) देश के चारो ओर बडे-बडे शहरो को अपने विस्तृत तथा उत्कृष्ट हाट-बाजार के सहित देखा था। दूसरे सदभ मे उसने मिश्र के शहरो की समता भारतीय नगरो से की है। विदेशी यात्रियो के लिए विजयनगर के वैभवपूण विस्तृत शहर आकर्षण के केद्र थे। वहाँ के अनेक कुशल शिल्पी तथा बहुमूल्य प्रस्तरो और सु दर पदार्थों के विक्रेता विदेशियो को मुग्ध कर लेते थे। शहरो मे मदिर बहुत होते थे जो भूस्वामी तथा श्रमअधिकारी के रूप मे देश की अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण काय सम्पादित करते थे। भूमि की जमानत पर बैक की भाति वे ऋण भी प्रदान करते थे।[१]

कृषि, फलोद्यान तथा पशुपालन—विवेच्य कालीन विदेशी यात्रियो ने सघन खेती, अन्नोत्पादन, अनेक प्रकार की फसले, फलोद्यान तथा पालतू जानवरो का पालन पोषण आदि का विस्तृति वणन किया है। कृषि कम की उन्नत दशा तथा भूमि की उत्पादन क्षमता की प्रचुर प्रशसा की है। खरीफ मे गन्ना, तिल, ज्वार, मटर तथा सेम और रबी मे गेहूँ, जौ, चना, तथा मसूर की उपज का उल्लेख किया है। चावल की फसल वष मे तीन अवसरो पर होती थी। फलो मे आम, कटहल, काली बेरी, तीन प्रकार के सतरा (जो विदेशियो को अन्यत्र कही भी नही दिखाई पडा) तथा

१ यूल एण्ड कार्डियर, कथवे, १३६ (ओडरिक आन किलनिक), सीवेल, ए फारगाटेन इम्पायर ६०, २५५-५७ (अब्दुरज्जाक एण्ड पेज आन विजय नगर, मर्तालिगम् एडमिनेस्टेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर विजय नगर, २२५ (टेम्पुल्स एट विजय नगर)।

अनार (वर्ष मे दो फसल होने वाला) थे। शाक सब्जियो मे अदरक, गोल मिर्च विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका आम की भांति अचार मुरब्बा अथवा सिरका मे प्रयोग होता था। सरसुती (घग्घर के किनारे आधुनिक सिरसा) का चावल कन्नौज की चीनी, धार (मेवाड) का गेहूँ तथा पान और मढ (ग्वालियर के समीप) का उत्कृष्ट चावल प्रसिद्ध था। दौलताबाद मे अगूर तथा अनार वर्ष मे दो बार उपजाये जाते थे। सगर (नमदा के तट पर उसके उद्गम से ३० मील दूर) के फलोद्यान तथा भूमि की सिंचाई जलचक्की से सम्पन्न की जाती थी।

अबू इ-फेद (चौदहवी शताब्दी) तथा इब्नबतूता ने मालाबार प्रदेश को 'काली मिच का देश' कहा है। यहा का अदरक भी विश्व मे सर्वोत्तम होता था। इब्नबतूता के अनुसार मालाबार का कोई भी भूमि बिना जोताई बोआई के नहीं थी। खेतो के मध्य मे फलोद्यान के सहित लोगो के अपने-अपने गृह होते थे।[1] नारियल-सुपारी इतनी अधिक मात्रा मे उत्पन्न होते थ कि चीन को उनका निर्यात किया जाता था। विजय नगर की उत्पादक भूमि तथा वहा के कृषि काय की विदेशी यात्रियो ने भूरि-भूरि प्रशसा का है।[2] वहा अन्न, कपास और तिलहन का उत्पादन विशिष्ट रूप से होता था। तालाबो से सिंचाई होती थी। तत्कालीन मुस्लिम लेखो के अनुसार उडीसा मे फिरोज तुगलक के आक्रमणकाल मे (१३६० ई०) वहा के निवासी अपने-अपने गृह के समीप एक फलोद्यान भी बनाए थे। उनके पास पालतू जानवर इतने अधिक थे कि उनको लेने वाला कोई नही था। घोडे असाधारण रूप मे सस्ते थे। दस जीतल मे एक अच्छा घोडा मिल जाता था।[3] इब्नबतूता ने लिखा है कि बगाल मे वैभवपूण सु दर हबक शहर (हबागज का समीपवर्ती अवशेष) के अन तर नील नदी (सिलहट जनपद का बरक अथवा सुर्म नदी) के तटीय ग्राम तथा फलाद्यान मिश्र की नील नदी तथा उसके तटो का स्मरण दिलाते है।

वस्त्र उद्योग—इस काल मे वस्त्र उद्योग समुन्नत था। कम्बे (गुजरात) मे अनेक कुशल वस्त्र शिल्पी थे। सस्ते तथा उत्कृष्ट वस्त्रो की बहुलता थी। यहाँ के रगीन सूती वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र, रगीन मखमल, साटन, दरी, सुन्दर तोशक तथा पलग के ऊपर की सुन्दर छतरी प्रसिद्ध थी। पटेनेक्सी (सम्भवत वेरावल सोमनाथ) बन्दरगाह मे रगीन तथा बहुमूल्य कामदार रेशमी कपडे निर्मित होते थे। ये इतनी अधिक मात्रा मे बनाए जाते थे कि इनका विदेश मे निर्यात भी होता था। इब्नबतूता ने शलियट (मलाबार मे कालीकट के समीप) शहर के सूती कपडे की प्रसिद्धि का

१ इ० एस०, ६४१। २ वही, ६४२। वही, ६४२।

उल्लेख किया है। चोदहवी शताब्दी के चीना यात्रियो ने भी मालावार के रगीन सूती कपडे तथा फूलदार छींट वस्त्रों का जिक्र किया है।

पूर्वीय भारत का बगाल वस्त्रो की बहुलता तथा उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध था। इब्नबतूता की यात्रा मे (१३४६ ई०) स्थानीय बाजारो मे उत्तम वस्त्र सस्ते मूल्यो पर विक्रय होते देखे गये थे। दो दीनार प्रति हाथ की दर से बिकता था। चीनी यात्री टागता यूइन ने भी भारत में सरलता से उपलब्ध विविध प्रकार के वस्त्रो का वणन किया है।

बहुमूल्य धातुओ, पत्थरो तथा हाथी दातो पर पच्चीकारी करना और रोगन लगाकर उन्हे चमकाने का उद्योग—उन्नत उद्योगो के फलस्वरूप ही हिन्दू मुस्लिम राजन्य के राजमहल, राजसिंहासन तथा राजसभा प्रभृति बहुमूल्य रत्न, जवाहरात तथा हाथी दातो (सोने-चादो के अतिरिक्त) की साजसज्जो से सुशोभित रहते थे। कार्नेलियन खान (राजपिल्ला राज्य मे रत्नपुर के समीप) से ये बहुमूल्य पत्थर लिमोदर नगर मे वितरित किए जाते थे। जहा विविध भाति की वस्तुओ का निमाण काय होता था। तलवार तथा कटार की मूठ विशेष रूप से उत्कृष्ट बनती थो। समीपवर्ती खानो से केल्सडोनो माता कर इसी शहर मे व्यापार के लिए नाना प्रकार की सामग्रिया निर्मित होती थी। मालदिव द्वीप के घडियाल के चमडे का सामान, कयल (तिन्नेवेलो जिले के ताम्रपर्णी नदी की तलहटी मे) की मछली, पुलीकर, विजयनगर, कालीकट तथा मालावार के अन्य शहरो मे हीरा, नीलम तथा लाल रत्न को काटने, स्वच्छ तथा चमकीला बनाने का उद्योग धधा होता था।

अन्तर्देशीय तथा तटीय व्यापार—इब्नबतूता ने अपनी यात्रा के विवरण मे अनेक शहरो तथा उनके विस्तृत हाट-बाजारो के विविध उल्लेख किये है। देहली के समीपवर्ती एक विशिष्ट बाजार का जिक्र किया है जिसे विश्व के सर्वोत्कृष्ट तथा विशाल बाजारो मे माना है। पुनश्च उन्होने बताया है कि देहली के बाजार मे ससुति का उत्कृष्ट चावल, कन्नौज की चीनी, मढ के अच्छे किस्म के गेहूँ तथा धार के पानो का अत्यधिक मात्रा मे विक्रय होता था। दौलताबाद के हिन्दू व्यापारियो के वैभवपूण होने तथा उनके द्वारा रत्न-जवाहरात के व्यापार करने का वणन हुआ है। लम्बी तथा पक्की सडको की सुदृढ व्यवस्था से अन्तर्देशीय व्यापार मे विशिष्ट प्रोत्साहन उपलब्ध होता था। ४० दिन पैदल यात्रा की दूरी देहली से दौलताबाद सडक की थी। वहा से तेलगाना तथा मलबार सडक की दूरी ६ मास की यात्रा के समान थी। वहा से तेलगाना तथा मलार की दूरी कठिन थी। प्रथम भाग पर डाक के तीन केन्द्र भी निर्मित थे। मील-मील पर यात्रियो के आवास के लिए सुविधा प्रदत्त की गई थी।

जन साधारण मे इन मार्गो पर चलते हुए अरक्षा की भावना अवश्य पाई जाती थी। ऐसी अनुभूति इब्नबतूता को भी हुई थी। साम्राज्य की राजधानी के समीपवर्ती भाग भी सुरक्षित नही थे। व्यापार के विकास म यह बाधक था।

लिमोन्दर (गुजरात) स कार्नेलियन का दाना यूरोप तथा पूर्वी अफ्रीका को निर्यात करने हेतु कम्बे बन्दरगाह पर प्रचुर मात्रा मे लाया जाता था। दकन के दमोल बन्दरगाह से तांबा आयात होता था ओर इसके स्थान पर कपडा, गेहूँ, ज्वार तथा दाल बाहर भेजा जाता था। रण्डर (गुजरात बन्दरगाह से मुस्लिम व्यापारियो द्वारा मलक्का तथा चीन से व्यापार होता था। भतकल से घोडा आयात होते थे। इब्नबतूता के अनुसार दक्षिणी भारत के पश्चिमी घाट पर अनेक उत्कृष्ट बन्दरगाह थे और उनम उन्नत व्यापार सम्पन्न होता था। यथा गुजरात मे ड्यू, दकन मे गोवा तथा मालावार मे कालीकट कोचीन तथा क्विलन। गुजरात तथा मालावार का लाभप्रद व्यापार मालावारी व्यापारियो द्वारा एकाधिकृत था। ड्यू बन्दरगाह के माध्यम से नारियल, इलाइची तथा अन्य गम मसाले, कुन्न पत्थर, माम, लोहा तथा खजूर (मालावार से) अन्य प्रकार के खाडसारी (भतकल से) चन्दन की लकडी ब्राजील की लकडी, रेशम तथा अन्य वस्तुओ का दक्षिणी-पूर्वीय एशिया और चीन से आयात होता था तथा रुई कपडा, गेहूँ, नाना भाति के अनाज, घोडे और कार्नेलियन का निर्यात होता था। दकन-बन्दरगाह पर गुजराती तथा मालावारी दोनो वर्ग के व्यापारियो का हाथ था। पहले वर्ग द्वारा रेशम-सूती कपडो, अफीम, गेहूँ तथा घोडो का आयात और सूती-रेशमी कपडो का निर्यात होता था। मालावारी व्यापारी गर्म ममाले औषधिया, सोपारी नारियल, खजूर, मोम तथा तांबा मगाते और सूती कपडे, गेहूँ चावल, ज्वार, तिलहन, मलमल या तजेब तथा दरेस या छीट भेजते थे। तुलु क्षेत्र मे विशेषत भरकल पर मालावारी व्यापारियो का आना जाना अधिक होता था जो नारियल गम मसाले तथा खजूर का आयात और चावल लोहा तथा अनेक प्रकार के मीठे का निर्यात करते थे। लका से होने वाले व्यापार पर भारतीयो मे करोमण्डल, मालावार, विजय नगर, दकन तथा गुजरात के व्यापारियो का आधिपत्य था। मालावार मे हाथी का मूल्य ४००-५०० [कभी-कभी १०००-१५००] तथा घोडे का ४००-६०० पुर्तगाली सोने के सिक्के थे।[१] कारोमण्डल का तटीय व्यापार मालावार के विभिन्न शहरो के हिन्दू मुस्लिम व्यापारियो द्वारा होता था। सोपारी, नारियल, अदरक, खजूर, कम्बे के कपडे तथा घोडे आयात मे आते और चावल तथा कपडे कारोमण्डल तट से निर्यात मे भेजे जाते थे। अकाल की स्थिति मे अभिभावको द्वारा

१ वही ६४७।

अपने बच्चो का भी दास रूप मे यहा विक्रय होता था।[१] बगाल का प्रसिद्ध मलम तथा मीठा मुस्लिम व्यापारियो द्वारा अपने पौत से मालावार और कम्बे भेजे जा ये। मालावार मे ये पदार्थ बहुत महगे थे।

समुद्री-माग द्वारा विदेशी व्यापार-फारस की खाडी, अरव तथा पूव अफ्रीका की ओर—भारत का पश्चिमी एशिया से व्यापार (१) फारस की खाड से भूमि के माग से मोसोपोटामिया होता हुआ भूमध्य सागर के देशा तथा (२) समु के रास्ते से लाल सागर होता हुआ भूमध्यसागर के देशो के साथ सम्पन्न होता था भूमध्यसागर से ये पदार्थ वेनिस तथा इटेलियन व्यापारियो द्वारा पश्चिमी योरप मे वितरित होते थे। यूरोपीय म यकाल के उत्तराद्ध म औरमुज का प्रथम माग पर तथा अदन और जिद्दाह की द्वितीय माग पर प्रधानता सी। चौदहवी शताब्दी पूर्वाद्ध मे औरमुज तथा अदन मुरय व्यापारिक केन्द्र थे।

कम्बे, थाना, क्विलन, कालीकट, फण्डरिन, शनियत, मगलोर, फकनोर, हिनव्र तथा सि दबुर प्रभृत नगरो के व्यापारिया स पोत अदन से होकर गुजरते थे। अदन मे भारतीय व्यापारियो की प्रधानता सी। यहा से बहुमूल्य घोडे आते तथा चावल और रुई भेजे जाते थे। भारत मे मालावार पूर्वीय तथा पश्चिमी समुद्री मार्गों का केन्द्र था। इब्नबतूता के विवरण से ज्ञात होता है कि फास तथा यमन के व्यापारी मुरयत मङ्गलोर मे तथा चीनी पोत इली [हिलि] कालीकट और क्विलन मे उतरते थे। अरब से समुद्री माग के द्वारा इत्र, घोडो, लोहबान और यूरोप से ताबा, पारा, सेदूर, प्रवाल त ा ऊनी रेशमी कपडो का आयात होता था। विवेच्य-कालीन भारत आर अफ्रीका क मध्य व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे रहो थे। इसका कारण सम्भवत जेसा कि इब्नबतूता के उल्लेखो से ज्ञात होता है, अफ्रीका के जेल, मक्दशो, मोम्बस तथा किल्व प्रभृति तटाय प्रदेशो पर अरबवासियो का बस जाना है। सोलहवी शताब्दी पूर्वाद्ध से बरबास के लेखानुसार, इस व्यापारिक सम्ब ध मे सुधार परिलक्षित होता है।

दक्षिणी पूर्वी तथा पूर्वी एशिया का समुद्री-व्यापार—बारहवी शताब्दी मे स्थापित चीन ओर भारत का व्यापारिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर इस काल मे वृद्धि पर था। चौदहवी शताब्दी पूर्वाद्ध मे मालावार के इली, कालीकट तथा क्विलन बन्दर-गाहो पर चीनी पोता का निरन्तर यातायात होता था। १३४९-१५२० ई० के मध्य चीनी और भारतीय व्यापार का विवरण चीन के चार लेखको ने विस्तृत रूप से दिया

---

१ वही।

है । चीन से रेशम, दाफना, साटन, लौंग, जायफल तथा पारा, आदि पदार्थ आयात मे मँगाए जाते थे और तत्कालीन दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रसिद्ध बन्दरगाह मलक्का मे भारत से अदरक, धूप, कम्बे का कपडा, केशर, प्रवाल, बगाल के रगीन और छापेदार कपडे, सिंदूर, पारा तथा अफीम भेजे जाते थे । जावा मे कम्बे, पुली का तथा बगाल के कपडे और कम्बे की औषधिया जाती थी । सुमात्रा, मोलुक्कस, तिमोर, बण्ड, तथा बोर्नियो से अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे । सुमात्रा से सोना, मोलुक्कस से लौंग, तिमेर से सफेद चन्दन की लकडी बण्ड से जावित्री तथा जायफल, बोर्नियो से कपूर ओर चम्पा से मुसब्बर की लकडी का निर्यात होता था । मलक्का, विश्व के बन्दरगाहो मे था । यहा के सोक व्यापारियो के पास बडे बडे पोत भी थे । मलक्का के अनन्तर दूसरा स्थान पीगू का था जिसके तीन-चार उत्कृष्ट बन्दरगाह थे । भारत से यहा प्रतिवर्ष मुख्यत मुस्लिम पोत मे छपे हुए कम्बे तथा पुलीकट के सूती और रेशमी कपडे, पटोला, अफीम, ताबा, सिंदूरी रग का कपडा, प्रवाल, सिंदूर, पारा ऊन, तथा कम्बे औषधिया भेजी जाती थी । यहा से भारत का बरम लाख, जावित्री, लौंग कस्तूरी तथा लाल रत्न आते थे ।

भारत के समुद्री व्यापार पर मुस्लिम नियन्त्रण—विवेच्य युग मे व्यवसाय क्षेत्र मे समुद्री बेडो पर व्यावहारिक रूप से भारत मे रहने वाले अरब तथा फारस वशीय मुसलमानो का तब तक एकाधिपत्य था जब तक कि पुर्तगालियो द्वारा व्यवस्थित ढग से आक्रमण करके इनके अधिकार को सम्पूर्णत विनष्ट नही कर दिया गया । इब्नबतूता के यात्राकाल मे कम्बे शहर मे विदेशियो के जनसख्या की बहुलता थी और वे सुन्दर भवन तथा मस्जिद निर्माण की पारस्परिक तीव्र स्पर्द्धा करते थे । पडोसी बन्दरगाह गन्धर मे एक मुसलमान ६ पोतो का स्वामी था । इनमे से एक पोत मे ५० धनुर्धारी तथा ५० अबीसीनियन सैनिक रक्षक-कार्य सम्पादन करते थे । वह देहली सुल्तान की ओर से चीन को भेजे जाने वाले इब्नबतूता को पहुँचाने मे व्यवहृत हुआ था । इसी प्रकार कालीकट बन्दरगाह पर एक मुसलमान के पास अनेक पोत थे जो पूर्व मे चीन और पश्चिम मे फारस तथा यमन से व्यापार किया करता था । क्विलन के शिया सम्प्रदाय के लोग इतने वैभवशाली थे कि अपने पोत पर लदे सामानो से वे सफलतापूर्वक एक दूसरा पोत मोल ले सकते थे । समता मे, पूर्व वर्णित दौलताबाद के हिन्दू व्यापारी मात्र अन्तर्देशीय व्यापार तक ही सीमित थे । वस्तुत भारत का पश्चिमी एशिया और पूर्णतया नियन्त्रित था । यह सच है कि गुजरात, दकन तथा मालावार की हिन्दु बनिया जाति प्रचुर सम्पदासम्पन्न थी, किन्तु ये अधिकतर अपने व्यापार को बन्दरगाह तक ही सीमित कर रक्खे थे । ये अपने ही जम

समूह के मध्य सामान ले आते-जाते थे। कोचीन तथा कालीकट के वैभव सयु चेट्टी व्यापारी तट पर ही अपने बहुमूल्य पत्थर, मोती, प्रवाल के दाने तथा सुगन्धि पदार्थ आदि उत्कृष्ट मूल्य पर अजनबी नवागन्तुको के हाथो विक्रय करने मे सलग थे। दूसरी ओर न केवल अरब तथा फारस के मुस्लिम व्यापारी भारतीय बन्दरगा दमोल तथा गोवा पर्यन्त प्रस्तुत थे, अपितु गुजराती मुस्लिम भी अपने-अपने पोता द्वार पाश्चात्य देशो के साथ व्यापार कर रहे थे। कालीकट म देश देशा तर मे जाक बसने वाले मुसलमान भारत और लाल सागर तथा अदन के मध्य प्रचुर मात्रा म पदार्थों का आयात-निर्यात करते थे। पूर्वी अफ्रीका से लाभप्रदत्त कम्बे का अधिकाश व्यापार तथा भारत के अ य बन्दरगाहो मे प्रस्तुत समस्त व्यापार मुख्यत विदेशी मुस्लिम व्यापारियो के हाथ में था। कहा जाता है कि गोवा मे तो विदेशी मुसलमान व्यापारियो का एक बहुत बडा उपनिवेश था।

भारत का तटीय व्यापार पर मालावार निवासी मुप्पिल्ल (अरब जाति के मुसलमान तथा स्थानीय औरतो से उत्पन्न) का एकाधिपत्य था। इस देश का समुद्री व्यापार तथा समुद्री यात्रा इन्हा लोगा के नियन्त्रण मे था। विवेच्यकालीन अनेक मुप्पिल्ल अधिकृत मुस्लिम पोत प्रसिद्ध भारतीय बाजार पुलिकर म प्रतिवर्ष वर्मा के लालरत्न के लिए जाते थे। यहा स्थिति कारामण्डल की भी थी जहा विदेशी मुस्लिम पोत ही पोत दिखाई पडते थे।

इब्नबतूता के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि दक्षिण के हि दू राजाओ की व्यापारिक नीति विदेशा व्यापारियो के अनुकूल और उत्साहवर्द्धक थी। मालावार के हिन्दू राजाओ न प्रत्येक आध-आध मील पर लकडी के आवासगृह तथा जल पीने के लिए कुओ की समुचित व्यवस्था कर दी थी। इस सम्ब ध मे मुस्लिम यात्रियो की सुविधा पर विशिष्ट ध्यान दिया जाता था। चोरो क विरुद्ध बिना किसी भेदभाव के इतनी सुदृढ दण्ड व्यवस्था थी कि लेखक के अभिमत मे यह माग सर्वोच्च रीति से सुरक्षित था। कालीकट के राजा ने सुरक्षा की इस सुविधा को टूटे-फूटे पोतो की सामग्रियो के लिए विशेष रूप से प्रदान किया था, जिसके कारण, इब्नबतूता के अनुसार, विदेशियो के नगरागमन तथा शहर के समृद्धिशाली बनने मे प्रोत्साहन उपलब्ध हुआ। क्विलन के हिन्दू राजा द्वारा अपने राज्यान्तर्गत मुसलमानो को अत्यधिक सम्मान प्रदत्त करने की बात उल्लेखनीय है। मालावार के मुसलमान अपने काजी के प्रभुत्व मे रहते और मस्जिदो मे स्वतन्त्रतापूवक सामूहिक उपासन सम्पन्न करते थे।

है । चीन से रेशम, दाफना, साटन, लौंग, जायफल तथा पारा, आदि पदार्थ आयात मे मँगाए जाते थे और तत्कालीन दक्षिण पूर्व एशिया के प्रसिद्ध बन्दरगाह मलक्का मे भारत से अदरक, धूप, कम्बे का कपडा, केसर, प्रवाल, बगाल के रगीन और छापेदार कपडे, सिंदूर, पारा तथा अफीम भेजे जाते थे । जावा मे कम्बे का ... बगाल के कपडे और कम्बे की औषधिया जाती थी । सुमात्रा, मालुक्कस, तिमार, बण्ड, तथा बोर्नियो से अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे । सुमात्रा से सोना, मालुक्कस मे लौग, तिमेर से सफेद चन्दन की लकडी, बण्ड से जावित्री तथा जायफल, बोर्नियो मे कपूर और चम्पा से मुसब्बर की लकडी का निर्यात होता था । मलक्का, विश्व के बन्दरगाहो मे था । यहा के सोक व्यापारियो के पास बडे बडे पोत भा ... । मलक्का के अनन्तर दूसरा स्थान पीगू का था जिसके तीन-चार उत्कृष्ट बन्दरगाह थे । भारत मे यहाँ प्रतिवर्ष मुख्यत मुस्लिम पोत मे छपे हुए कम्बे तथा ... कपडे, पटोला, अफीम, ताबा, सिंदूरी रग का कपडा, ... तथा कम्बे औषधिया भेजी जाती थी । यहा से भारत का बरम ... कस्तूरी तथा लाल रत्न आते थे ।

भारत के समुद्री व्यापार पर मुस्लिम नियन्त्रण – विवेच्य युग मे व्यवसाय क्षेत्र मे समुद्री बेडो पर व्यावहारिक रूप मे ... अरब तथा फारस वशीय मुसलमानो का तब तक एकाधिपत्य ... कि पुर्तगालियो द्वारा व्यवस्थित ढग से आक्रमण करके इनके अधिकार का सम्पूर्ण ... दिया गया । इब्नबतूता के यात्राकाल मे कम्बे शहर मे विदेशियो ... महत्ता थी और वे सुन्दर भवन तथा मस्जिद निर्माण का ... थे । पडोसी बन्दरगाह गन्धर मे एक मुसलमान ६ पोतो का ... पोत मे ५० धनुर्धारी तथा ५० अबीसीनियन सैनिक रक्षक-कार्य ... था । यह देहली सुल्तान की ओर से चीन को भेजे जाने वाले ... हुआ था । इसी प्रकार कालीकट बन्दरगाह पर एक मुसलमान ... जो पूर्व मे चीन और पश्चिम मे फारस तथा यमन से ... । क्विलन के शिया सम्प्रदाय के लोग इतने वैभवशाली थे कि ... सामानो से वे सफलतापूर्वक एक दूसरा पोत मोल ले सकते ... पूर्व वाणिज्य दौलताबाद के हिन्दू व्यापारी मात्र अन्तर्देशीय व्यापार ... । वस्तुत भारत का पश्चिमी एशिया और पूर्णतया नियन्त्रित ... कि गुजरात, दकन तथा मालाबार की हिन्दु बनिया जाति प्रचुर सम्पत्तिशाली थी, किन्तु ये अधिकतर अपने व्यापार को बन्दरगाह तक ही सीमित ... थे । ये अपने ही जल

समूह के मध्य सामान ले आते-जाते थे। कोचीन तथा कालीकट के वैभव संयुक्त चेट्टी व्यापारी तट पर ही अपने बहुमूल्य पत्थर, मोती, प्रवाल के दाने तथा सुगन्धित पदार्थ आदि उत्कृष्ट मूल्य पर अजनबी नवागन्तुकों के हाथों विक्रय करने में संलग्न थे। दूसरी ओर न केवल अरब तथा फारस के मुस्लिम व्यापारी भारतीय बन्दरगाह दमोल तथा गोवा पर्यन्त प्रस्तुत थे, अपितु गुजराती मुस्लिम भी अपने-अपने पोतों द्वारा पाश्चात्य देशों के साथ व्यापार कर रहे थे। कालीकट में देश देशान्तर में जाकर बसने वाले मुसलमान भारत और लाल सागर तथा अदन के मध्य प्रचुर मात्रा में पदार्थों का आयात-निर्यात करते थे। पूर्वी अफ्रीका से लाभप्रदत्त कम्बे का अधिकांश व्यापार तथा भारत के अन्य बन्दरगाहों में प्रस्तुत समस्त व्यापार मुख्यतः विदेशी मुस्लिम व्यापारियों के हाथ में था। कहा जाता है कि गोवा में तो विदेशी मुसलमान व्यापारियों का एक बहुत बड़ा उपनिवेश था।

भारत का तटीय व्यापार पर मालाबार निवासी मुप्पिल्ल (अरब जाति के मुसलमान तथा स्थानीय औरतों से उत्पन्न) का एकाधिपत्य था। इस देश का समुद्री व्यापार तथा समुद्री यात्रा इन्हीं लोगों के नियन्त्रण में था। विवेच्यकालीन अनेक मुप्पिल्ल अधिकृत मुस्लिम पोत प्रसिद्ध भारतीय बाजार पुलिकट में प्रतिवर्ष वर्मा के लालरत्न के लिए जाते थे। यही स्थिति कारोमण्डल की भी थी जहाँ विदेशी मुस्लिम पोत ही पोत दिखाई पड़ते थे।

इब्नबतूता के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दक्षिण के हिन्दू राजाओं की व्यापारिक नीति विदेशी व्यापारियों के अनुकूल और उत्साहवर्द्धक थी। मालाबार के हिन्दू राजाओं ने प्रत्येक आध-आध मील पर लकड़ी के आवासगृह तथा जल पीने के लिए कुओं की समुचित व्यवस्था कर दी थी। इस सम्बन्ध में मुस्लिम यात्रियों की सुविधा पर विशिष्ट ध्यान दिया जाता था। चोरों के विरुद्ध बिना किसी भेदभाव के इतनी सुदृढ़ दण्ड व्यवस्था थी कि लेखक के अभिमत में यह मार्ग सर्वोच्च रीति से सुरक्षित था। कालीकट के राजा ने सुरक्षा की इस सुविधा को टूटे-फूटे पोतों की सामग्रियों के लिए विशेष रूप से प्रदान किया था, जिसके कारण, इब्नबतूता के अनुसार, विदेशियों के नगरागमन तथा शहर के समृद्धिशाली बनने में प्रोत्साहन उपलब्ध हुआ। क्विलन के हिन्दू राजा द्वारा अपने राज्यान्तर्गत मुसलमानों को अत्यधिक सम्मान प्रदत्त करने की बात उल्लेखनीय है। मालाबार के मुसलमान अपने काजी के प्रभुत्व में रहते और मस्जिदों में स्वतन्त्रतापूर्वक सामूहिक उपासना सम्पन्न करते थे।

जनसाधारण की सामान्य आर्थिक स्थिति —चौदहवी शताब्दी मे जन सामान्य की आर्थिक स्थिति का ज्ञान अत्यधिक न्यून है। इस सम्बन्ध मे सूचना का मुख्य स्रोत इब्नबतूता द्वारा दिल्ली सुल्तानो विशेषतया मुहम्मद बिन तुगलक की राजसभाओ का विविध वर्णन है। इस सदर्भ मे यह तथ्य उल्लेखनीय है कि दिल्ली सुल्तानो की प्रचुर सम्पदा मे १३०९-१३११ ई० के मध्य अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायक मलिक काफूर द्वारा दक्षिण भारत के हिन्दू राजाओ की लूटमार से उपलब्ध विपुल पदार्थो का विशिष्ट योगदान है। वस्तुस्थिति जो हो, किन्तु कहा गया है कि देहली, सीरी, तुगलुकाबाद तथा जहापनाह प्रभृति चार शहर पूर्व के मुस्लिम शहरो मे सर्वोच्च वैभवशाली थे। दिल्ली सुल्तान के यहा जनसाधारण दर्शको के लिए रेशम तथा सोने के लबादो से सजाए असख्य हाथी और घोडे विद्यमान रहते थे। उच्चाधिकारी गण तथा राज्यो के शासक वर्ग बहुमूल्य सोने-चादी के टुकड़ो और बर्तन उपहार मे देते थे। सुल्तान के ईद-दरबार की पृष्ठभूमि मे रत्नजडित सोने की मूठवाली रेशमी छतरी जवाहरात मण्डित पीठिका तथा रेशमी लबादे से सयुक्त हाथियो का जुलूस होता था। राजसभा मे तीन पक्तियो मे रेशमी वस्त्रो से निर्मित तीन २ कृत्रिम तरुवरो के मध्य रत्नजडित पावो तथा छत्र सम्पन्न सोने के राजसिहासन पर सुल्तान विराजमान होता था। दरबार के अनन्तर सार्वजनिक भोज के अवसर पर सोने के बर्तनो मे विपुल सुगन्धित पदार्थ जलाए जाते और सोने चादी के उत्कृष्ट पात्रो द्वारा भोज्य वितरित किया जाता था। उल्लिखित सुल्तान के अनन्तर ही फिरोज तुगलक के राजत्वकाल मे गेहूँ-जो से लेकर सफेद और रगीन रेशम पर्यन्त सभी पदार्थ आश्चर्यजनक रूप मे सस्ते हो गए थे। चौदहवी शताब्दी के अन्तिम काल मे तैमूर लग के आक्रमण से दिल्ली सुल्तान का सम्पूर्ण वैभव सर्वथा विनष्ट हो गया और देहली का चारो शहर निर्दयता-पूर्वक पूर्णरूपेण आक्रान्ता द्वारा लूट लिए गये। राजधानी के अभागे निवासियो से भी सोने-चादी, रत्न-जवाहरात और यहा तक कि दास दासियो को भी छीन लिया गया।

चौदहवी शताब्दी के चीनी यात्री वगता यूवान के अनुसार उडीसा मे जीवनो-पयोगी वस्तुएँ इतनी सस्ती थी कि वहाँ आये हुए १० मे से ९ व्यापारियो को अपने देश मे पुन जाना अभीष्ट नही होता था। मुख्य दैनिक भोज्य चावल का मूल्य एक कौडी प्रति ४६ वास्केव था। तत्कालीन दूसरे विदेशी यात्रियो के अतिरिक्त इब्नबतूता का कथन है कि बगाल मे पदार्थों का मूल्य उनके द्वारा भ्रमण किए हुए देशो की समता मे न्यूनतम था। प्रमाण मे अनेक वस्तुओ तथा उनके मूल्यो की सूची प्रदान की है। बगाल के एक वृद्ध निवासी का वक्तव्य था कि उसके परिवार की वार्षिक

व्यय ८ दिरहम होता था। सन् १४१५ ई० मे एक चीनी राजदूत मण्डल के प्रति किए गए स्वागत के विवरण म चीनी लेखक द्वारा प्रस्तुत तथ्य ह कि ताम्र के पुष्प तथा पशु-पक्षियो की आकृतिया से पट्टित स्तभ युक्त दशक दीर्घा मे महस्रो आयुधधारी तथा सैकडो हाथियो पर मवार सैनिक गण स्वागत मे सलग्न थे। राजा, मयूर पखो के छत्र मे बहुमूल्य रत्नो से जडित साने के सिंहासन पर आसीन था। उसने उपहारस्वरूप सोने-चादी के विभिन्न पात्र एव आभूषण रशमी वस्त्रो मे आवेष्टित कर प्रदान किया।

५—कला

मुस्लिम सम्प्रभुता स्थापित होने के अनन्तर अभिनव उत्साह एव स्वभाव के परिप्रेक्ष्य मे देश एक विशिष्ट धर्म तथा सभ्यता से परिसीमित हो गया था।

प्रारम्भिक मुसलमान शासक निदयता पूवक भारतीय मन्दिरो को नष्ट-भ्रष्ट करते थे। उनके स्थान पर जब अपने प्रार्थनागृहो (मस्जिदो) का निर्माण काय प्रारम्भ किया तो उसके लिए मन्दिरो की प्रचुर सामग्रिया प्राप्य थी। स्थापत्य निर्माणकर्ता भी भारतीय शिल्पी ही मिले। कुतुबमीनार के समीपवर्ती कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद, इसके फाटक से सलग्न शिलालेख के अनुसार बीस हिन्दू अथवा जैन मन्दिरो के उपकरणो से निर्मित हुआ इस काय मे सुविधाजनक बात यह भी थी कि कतिपय तात्विक मतभेदो के अतिरिक्त अन्य सभी स्थापत्य काय एक ही से थे।

प्राचीन भारत के वास्तु शिल्प म दृढता एव सुषमा का उत्कृष्ट समन्वय हुआ ह। विश्व मे इसका उदाहरण दुलभ था। देश मे उपलब्ध उपकरणो के साथ सदियो के सतत अभ्यास के फलस्वरूप भारतीय शिल्पियो ने इस क्षेत्र मे सूक्ष्म नैपुण्य प्राप्त कर लिया था जिसे विवेच्यकालीन निर्माण मे व्यवहृत करने से ये विलग नही रहे। इससे आश्चर्य नही कि मुस्लिम भारत न जैसा उत्कृष्ट स्थापत्य निर्माण किया वैसा मुस्लिम जगत मे अन्यत्र कही नही हो मका।

चूने-गारे का प्रयोग मुसलमानो द्वारा युग को अभिनव देन है। वृत्तखण्ड (मेहराब) की आकृति से भारत चिर परिचित था[१]। किन्तु इसका सामान्य प्रचलन होना मुस्लिम वास्तुशिल्पियो द्वारा ही मान्य है। गढे डाट पत्थरा अथवा इटो को फैलाते हुए गुम्बज के निर्माण का भी भारत को पूव ज्ञान था,[२] किन्तु इसके स्थान पर भारत ने Trabcate ढग को प्राथमिकता दी थी। ये मेहराब तथा गुम्बज की आकृतिया परम्परागत होने से सम्प्रति धार्मिक प्रतीक बन गए थे। चूने-गारे के

---

१ डी० एस०, ६६२। २ वही ६६३।

व -नकारी गुण क फलस्वरू- अभिनव वास्तुशिल्पियो के लिए मेहराब तथा गुम्बज मे उ ट उता एव विशालता प्रदान कर सकना सम्भव हुआ जिसकी भारतीयो ने कल्पना भी न की थ। ।

मुस्लिम सम्पक से अभिनव आकार, आकृति तथ। अलकरण आदि को भी प्रश्रय उपलब्ध हुआ । उनमे मीनार, कटकता हुआ बगली डाट (वृत्तखण्ड), अवरोही शकु नथा प्रभावपूण जाला परक अद्धगुम्बदकारा सिंहद्वार अथवा चौखट उल्लेखनीय हैं । भारतीय म दिरो मे पुष्पाकित कामदानी विधान के साथ साथ रूप अथवा प्रतिमा निर्माण सम्ब धी कला का पूण विकास था । यद्यपि पत्थर पर रूप खुदाइ की विद्य। इस्लाम सिद्धा त क प्रतिकूल थी, फिर भी सजग साजसज्जा ओर गाढे रग का शृङ्गार मुसलमानो का अतिप्रिय था जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र म इन्होन महत्वपूण अभिनव पद्धति को अपनाया । भारतीय कलाकार के पशु-पक्षी तथा पुष्पादि प्रतीको द्वारा अलकरण पद्धति म सुधार अरवस्क अथवा जटिल ज्यामितीय विद्या का योगदान कर मुस्लिम वास्तुशिल्पियो ने इस कला का समुचित सम्बद्धन किया । इस सदभ मे मुस्लिम खुशनवीसो न अपन पवित्र धार्मिक ग्र थो के वाक्याशो तथा शिला-लेखो पर एतिहासिक तथ्यो को दुरूह ज्यामितीय रूपो मे अकित कर विशिष्ट काय सम्पादित किया है । पत्थरो इटो अथवा प्लास्टरो पर अक्षरो का खुदाइ करक उस पर रग अथवा स्वण चढाना अथवा विभिन्न रगीन पत्थरो को विशेष ढग से यवहृत कर उन्हे सुशोभित करना भी युग के अभिनव शिल्प नपुण्य को प्रदर्शित करता हे । रगीन पाषाण और सगमरमर पर छोटे-छोटे चतुभु ज आकारो की सहायता से अथवा पिएट्रा डूरा द्वारा स्वतः आकृतियो का उभाड देन का कला का भी प्रादुर्भाव हुआ । मीनाकारी की पृष्ठभूमि पर भवन-निमाण का काय वास्तु कला मे नवीन अभिवृद्धि का द्योतक हे ।

विवेच्यकालीन चित्रशैली जन शेली, गुजरात शेली, पश्चिमी भारतीय शैली, अपभ्रश शैली आदि नामो से अभिहित है । राजनीतिक तथा धार्मिक अशाति की पृष्ठभूमि मे अजन्ता, वरुल तथा सित्तनवासल की भित्ति चित्रशेली स प्रेरित उसका उद्गम हे 'निशीथचूणी', अगसूत्र', त्रिषष्ठिशलाका', 'पुरुष चरित्र' 'नेमीनाथचरित', 'कथासरितसागर', उत्तराध्ययनसूत्र' 'कल्पसूत्र' तथा 'श्रावक प्रतिक्रमणचूर्णी' आदि ग्रन्थो मे यत्र तत्र अकि इनका उपलब्धि होती है ।

इस शेली की मुखाकृति विकृत है । चित्रो का वणन विधान सकुचित है । कुशलता का अभाव है । बालचित्र कला सा पृष्ठभूमि मे पेड पौधे, पशुपक्षी तथा भवन बने हैं । वेशभूषा तथा अलकरण परम्परागत है ऐसा लगता है, मानो भारत क कुशल चित्रकार अपनी रक्षार्थ चीन आदि विदेशो मे जाकर शरण ले ली हो ।

भाग २

अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य (१४वी शती)

मे चित्रित भारत

अध्याय २—सामाजिक सगठन

अध्याय २

सामाजिक सगठन

क सामाजिक सरचना—

लगभग एक सहस्र ईस्वी पूव के अन तर मे ही भारतीय समाज की सर्वोत्तम इकाई जनपद थी। किसी पूवज की वश परम्परा मे उत्पन्न कुल का समुदाय जन कहलाता था। जन द्वारा अनियत-वास समाप्त कर एक स्थान पर बद्धमूल हो रहन वाले प्रदेश जनपद कहलाये। भाषा, सस्कृति तथा उपास्य का एकता के कारण उनमे भ्रातृभाव की प्रधानता रही। चोदहवी शताब्दी के अपभ्रश एव हि दी वाडमय मे 'जन' का ऐसा विशाल रक्त सम्बन्ध परिलक्षित न होकर, वह व्यक्ति के पर्याय रूप मे दिखाई देता है। विद्याधारी श्रृङ्गार मती अपने पति जिणदत्त के वियाग मे कहती है, 'जन किनु इस नाह बिनु जियउ, इन किसु देखि सहारउ हियउ'[२]—हे स्वामी, तुम्हारे बिना यह जन कैसे जिये ओर किसको देखकर हृदय सभाले। इसी ग्रन्थ मे अन्यत्र श्रीमती, जिणदत्त से व्यक्त करती हे कि तुव पखि मोहिउ जणणु बस हूँ मढूँ जन तुह जु मारिउ'[३]—तुम्ह दखकर मेरे पिता मोहित हो गये और एक मैं जन हूँ जो तुम्हे मारने जा रही हूँ। प्रद्युम्न चरित,[४] वण रत्नाकर[५] तथा ढोला मारू रा दूहा प्रभृति ग्रन्थो मे भी जन' का व्यक्ति के पर्याय रूप मे प्रयोग सुलभ है।

१ दे० पा० भारत वा० श०, अग्र०, पृ० १०५ तब वण व्यवस्था कमणनुसार अधिक था। एक जन मे सभी सवण समाहित रहते थे। मूल जन के अन्तर्गत जो क्षत्रिय बुक समन्वित थे जनपद मे राजसत्ता प्राय उन्हीं के हाथ मे रहता था।
२ जिण० ३१५। ३ वही, २२३। ४ वही, ४६३। ५ सामान्य। ६ वही, ४०, ६६, ४८२ ५१४।

लोक—'जन' से व्यापक 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ मात्र जन का बहुवचन न होकर स्व की भावना से भी संयुक्त है। चादा-बावन विवाह निश्चित हो जाने पर जेत न लाग, कुटुम्ब जन को बुलाकर कहा कि महर ने चादा बावन को दे दी है, चलो, चल कर उसे ब्याह लाए।

जइत बुलाए लागु कुटुम्ब जन सुनहु एक मति आइ।
महर दाति बावन कहँ चदा चलहु बियाहँइ जाइ॥

'चादा का ललाट देख कर देवता विमोहित हो गये और लोक, कुटुम्ब छोडकर उसकी सेवा करने लगे।[२] 'लोरिक ने चादा को देखते ही अपना लोक, कुटुम्ब तथा घर बार सब भुला दिया।' इससे उसे ग्लानि है। यहा लोक के प्रति सम्मान, विश्वास तथा अपनत्व की भावना स्पष्ट दिखलाई देती है।

वर्ण तथा जातियां—चौदहवीं शताब्दी के भारत की सामाजिक संरचना मुख्यत हिन्दू-मुसलमानों से संघटित है। मुसलमान कोई प्रजाति नही, धर्म है और वह कई प्रजातियो का मिश्रण है। ऐसा जान पडता है कि समसामयिक ग्रंथकारो के समक्ष दक्षिणी पश्चिमी एशिया के इस्लाम मतानुयायियो के लिए कोई स्पष्ट और निश्चित जाति नाम नही था। अस्तु इन्हे हमीर, तुरक अथवा म्लेच्छ नाम से सम्बोधित किया गया। इनकी तथा हिन्दुओ की चतुर्वर्ण व्यवस्था का विस्तृत विवेचन अध्याय ४ तथा ५ मे है शहाबुद्दीन गौरी का पहरेदार यवन है[५] और गोरी को यवनेश[६] कहा गया है। 'पृथ्वीराज रासउ' की टीका मे यवन को मुसलमान लिखा है[७] किन्तु ये यवन सिकन्दर आक्रमण से बहुत पूर्व यूनान देश से आकर बाह्लीक प्रदेश मे बसे हुए लोग ज्ञात होते है।[८] जयचद और इब्राहम शाह की फौज मे मगालो का भी उल्लेख आया है।[९] शेष, किंचित् महत्वपूर्ण उप जातियो एवं जनजातियो का नामोल्लेख सामाजिक शब्दकोश मे द्रष्टव्य है।

---

१ चादा ३६। २ वही, ६६। ३ वही, २१०।

४ पृ० ११ १२ १७, ११ १२ २८, ८ २ ५, ११ ६ १, ११ १२ १६, की० २ २६-३० १८७, २ २७ २८, ३ १७ ७० ७५, ३ १८ ८४, ८५, ४ १६ ८२-८३, ४ ३० ११८, प्रापे० १ ७१ ९१, १४७, प्रापे० २ २०७, वर० ५ ५० क मे कोच, किरात आदि को म्लेच्छ की जाति लिखा है।

५ पृ० १२ ८ १। ६ पृ० १२ १३ १६। ७ वही, पृ० १२ ८ १।

८ देखिए पा० भारत वा० श० अग्र०, पृ० ३८७।

९ पृ० ७ १० ६, की० ४ १६-१८।

गोत्र—सामाजिक सरचना मे गोत्र का महत्वपूण स्थान है। किसी पूवज के पौत्र-प्रपोत्र आदि एक गोत्र के अन्तगत आते है। वस्तुत गोत्र परम्परा का प्रारम्भ मूल पुरुष ब्रह्मा के ४ पुत्रा तथा ८ प्रपोत्रो से विकसित हुआ है। किन्तु कालान्तर मे प्रत्येक वश मे ऐसे अनेक ख्याति प्राप्त पुरुष हुए जिनके नाम से भी, मूलगोत्र के अन्तर्गत, वश का नाम स्वतत्र रूप से चल पडा। गोत्रावली की वृहत् सूचिया बोधायन आपस्तम्ब, कात्यायन तथा आश्वलायन के श्रौत सूत्रो मे सुरक्षित है। विवेच्य वाङमय मे सगोत्र पैगलम मे उल्लिखित है कि 'मित्त होइ जइ सत्तु गोत्त बधन पीडिज्जइ।'[1] 'उआसीण जइ सत्तु गात्त वइरिउ कइ लक्खिअ।'[2]—मित्र-शत्रु का योग सगोत्र एव बाधवो को पीडित करता है। उदासीन शत्रु का योग होने पर गोत्र के व्यक्तियो मे वैर भाव उत्पन्न होता है। विवाह आदि सस्कारो के अवसर पर गोत्रो का महत्व अपेक्षाकृत बढ जाता है। ब्राह्मण वेशधारी प्रद्युम्न भूखा था। वह भोजन माग रहा था। ऐसे समय रुक्मिणी द्वारा उसके गोत्र का नाम पूछने पर उसने सरोष उत्तर दिया कि 'गोतु नाम सो पूछइ ताहि, व्याह विधि जहि सुनवकु चाहि।'—गोत्र नाम तो उससे पूछा जाता है जिसका विवाह सम्बन्ध होने वाला होता है।

भारतीय सामाजिक सरचना मे पिता की सातवी तथा माता की पाचवी पीढी तक के सपिड, प्रथम तथा अतिम पीढी तक के रक्त सम्बन्धी सनाभि, पितृकुल के सम्बन्धी ज्ञाति तथा ससुराल के सम्बन्धी सयुक्त आदि सामाजिक इकाइयो का महत्व है। किन्तु आलोच्य वाङ्मय मे इनका उल्लेख अनुपलब्ध है। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि तात्कालिक समाज कि इस शृङ्खला मे किसी अव्यवस्था तथा विशृङ्खलता की स्थिति नही विद्यमान थी।

कुल तथा वश—इनकी शुद्धता,[3] उत्तमता,[4] तथा प्रतिष्ठा महत्वपूण थी। लोरिक के अभिमत मे 'पति न होइ सत छाडे, हानि होइ कुल कानि।' सत्य का परित्याग करने से पति-प्रत्यय-नही रहता और कुल-कानि की हानि होती है। इस सदभ मे महाभारत मे उपलब्ध उत्कृष्ट कुल की प्रशस्ति तथा विशेषता सम्बन्धी यह श्लोक उल्लेखनीय है—

> महाकुलाना स्पृह्यन्तिदेवा धर्मार्थ वृद्धाश्च बहु श्रुताश्च।
> पृच्छामि त्वा विदुर प्रश्नमेत भवन्ति वै कानि महाकुलानि॥

१ प्रापे० १ ३७। २ वही १ ३८। ३ की०, ४ ६ ३४, प्रापे० १८५।
४ जिण० ५६, पाडव० ११, प्रापे० १ १८५, विप० १ ५ वर २ १६ क चा० २३३।
५ जिण० ३५, की० १२९१, ६३, ३.३२ १३५, ३६ पाडव० ११, विप० १ ५।
६ चा० ३१७।

लोक—'जन' से व्यापक 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ मात्र जन का बहुवचन न होकर स्व की भावना से भी संयुक्त है। चादा-बावन विवाह निश्चित हो जाने पर जैत ने लोग, कुटुम्ब जन को बुलाकर कहा कि महर ने चादा बावन को दे दी है, चलो चल कर उसे ब्याह लाएँ।

जइत बुलाए लोगु कुटुम्ब जन सुनहु एक मति आइ।
महर दीन्हि बावन कहँ चांदा चलहु बियाहँइ जाइ॥

'चादा का ललाट देख कर देवता विमोहित हो गये और लोक, कुटुम्ब छोडकर उसकी सेवा करने लगे।[१] 'लोरिक ने चांदा को देखते ही अपना लोक, कुटुम्ब तथा घर बार सब छोड दिया।' इससे उसे ग्लानि है। यहा लोक के प्रति सम्मान, विश्वास तथा अपनत्व की भावना स्पष्ट दिखलाइ देती है।

वर्ण तथा जातियाँ—चौदहवी शताब्दी के भारत की सामाजिक संरचना मुख्यत हिन्दू-मुसलमानो से संघटित है। मुसलमान कोई प्रजाति नही, धर्म है और वह कई प्रजातियो का मिश्रण है। ऐसा जान पडता है कि समसामयिक ग्रथकारो के समक्ष दक्षिणी पश्चिमी एशिया के इस्लाम मतानुयायियो के लिए कोई स्पष्ट और निश्चित जाति नाम नही था। अस्तु इन्हे हमार, तुरक अथवा म्लेच्छ नाम से सम्बोधित किया गया। इनका तथा हिन्दुओ की चतुर्वर्ण व्यवस्था का विस्तृत विवेचन अध्याय ४ तथा ५ मे है शहाबुद्दीन गौरी का पहरेदार यवन है[५] और गोरी को यवनेश[६] कहा गया है। 'पृथ्वीराज रासउ' की टीका मे यवन को मुसलमान लिखा है[७] किन्तु ये यवन सिकन्दर आक्रमण से बहुत पूर्व यूनान देश से आकर बाल्हीक प्रदेश मे बसे हुए लोग ज्ञात होते है।[८] जयचद तथा इब्राहीम शाह की फौज मे मगोलो का भी उल्लेख आया है।[९] शेष, किंचित् महत्वपूर्ण उप जातियो एव जनजातियो का नामोल्लेख सामाजिक शब्दकोश मे द्रष्टव्य है।

---

१ चादा ३९। २ वही, ६६। ३ वही, २१०।
४ पृ० ११ १२ १७ ११ १२ २८, ८ २ ५, ११ ६ १, ११ १२।१६, की० २ २९-३० १८७, २ २७ २८, ३ १७ ७०, ७५, ३ १९ ८४, ८५, ४ १९ ८२-८३, ४ ३० ११८, प्रापे० १ ७१ ९१, १४७, प्रापे० २ २०७, वर० ५ ५० क मे कोच, किरात आदि को म्लेच्छ की जाति लिखा है।
५ पृ० १२ ८ १। ६ पृ० १२ १३ १६। ७ वही, पृ० १२ ८ १।
८ देखिए पा० भारत वा० श० अग्र०, पृ० ३८७।
९ पृ० ७ १० ६, की० ४ १६ १८।

गोत्र—सामाजिक सरचना मे गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी पूर्वज के पौत्र-प्रपोत्र आदि एक गोत्र के अन्तर्गत आते हैं। वस्तुत गोत्र परम्परा का प्रारम्भ मूल पुरुष ब्रह्मा के ४ पुत्रो तथा ८ प्रपोत्रो से विकसित हुआ है। किन्तु कालान्तर मे प्रत्येक वश मे ऐसे अनेक ख्याति प्राप्त पुरुष हुए जिनके नाम से भी, मूलगोत्र के अन्तर्गत, वश का नाम स्वतत्र रूप से चल पडा। गोत्रावली की वृहद् सूचिया बोधायन आपस्तम्ब, कात्यायन तथा आश्वलायन के श्रौत सूत्रो मे सुलभ हैं। विवेच्य वाडमय मे सगोत्र पैगलम मे उल्लिखित है कि 'मित्त होइ जइ सत्तु गात्त बधन पीडिज्जइ।'[1] 'उआसीण जइ सत्तु गात्त वइरिउ कइ लक्खिअ।'[2]—मित्र-शत्रु का योग सगोत्र एव बाधवो को पीडित करता है। उदासीन शत्रु का योग होने पर गोत्र के व्यक्तियो मे वैर भाव उत्पन्न होता है। विवाह आदि सस्कारो के अवसर पर गोत्रो का महत्व अपेक्षाकृत बढ जाता है। ब्राह्मण वेशधारी प्रद्युम्न भूखा था। वह भोजन माग रहा था। ऐसे समय रुक्मिणी द्वारा उसके गोत्र का नाम पूछने पर उसने सराष उत्तर दिया कि 'गोतु नाम सो पूछइ ताहि, व्याह विग्धि जहि सुनवबु आहि।'—गोत्र नाम तो उससे पूछा जाता है जिसका विवाह सम्बन्ध होने वाला होता है।

भारतीय सामाजिक सरचना मे पिता की सातवी तथा माता की पाचवी पीढी तक के सपिड, प्रथम तथा अतिम पीढी तक के रक्त सम्बन्धी सनाभि, पितृकुल के सम्बन्धी ज्ञाति तथा ससुराल के सम्बन्धी सयुक्त आदि सामाजिक इकाइयो का महत्व है। किन्तु आलोच्य वाड्मय मे इनका उल्लेख अनुपलब्ध है। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि तात्कालिक समाज कि इस शृङ्खला मे किसी अव्यवस्था तथा विशृङ्खलता की स्थिति नही विद्यमान थी।

कुल तथा वश—इनकी शुद्धता,[3] उत्तमता,[4] तथा प्रतिष्ठा[5] महत्वपूर्ण थी। लोरिक के अभिमत मे 'पति न होइ सत छाडे, हानि होइ कुल कानि।'[6] सत्य का परित्याग करने से पति-प्रत्यय-नही रहता और कुल-कानि की हानि होती है। इस सदर्भ मे महाभारत मे उपलब्ध उत्कृष्ट कुल की प्रशस्ति तथा विशेषता सम्बन्धी यह श्लोक उल्लेखनीय है—

> महाकुलाना स्पृह्यन्तिदेवा धर्मार्थ वृद्धाश्च बहु श्रुताश्च।
> पृच्छामि त्वा विदुर प्रश्नमेत भवन्ति वै कानि महाकुलानि॥

१ प्रापे० १ ३७। २ वही १ ३८। ३ की०, ४ ६ ३४, प्रापे० १८५।
४ जिण० ५६, पाडव० ११, प्रापे० १ १८५, विप० १ ५ वर २ १६ क चा० २३३।
५ जिण० ३५, की० १।४१, ६३, ३।३२ १३५, ३६ पाडव० ११, विप० १ ५।
६ चा० ३१७।

तपो दमो ब्रह्म वित्व विताना पुण्याविवाहा सततान्नदानम् ।
येष्ववेते तत्तगुणा भवन्ति सम्यग् वृत्तास्तानि महाकुलानि ।।[१]

—धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा कि 'देवो द्वारा स्पृहणीय उत्कृष्ट कुल कौन है ?' विदुर ने स्पष्ट किया कि 'तप, दम, ब्रह्मज्ञान, यज्ञ, पुण्य विवाह, सदा अन्नदान तथा सम्यक आचार वाले कुल उत्कृष्ट हैं।

आलोच्य ग्र थ मे महरी फूला अपनी कन्या चादायन की चरित्रहीनता पर आक्रोश प्रकट करती है कि 'कुल को डुबाने वाली चादा, तूने लज्जा गँवा दी । विधाता ने तुझे क्यो ज म दिया ? अवतरित होते ही तुम्हे मर जाना था । दोनो कुलो को डुबाने वाली, अकरणीय को करने वाली तथा गोत्र को लजाने वाली चादा, तुम्हारे मुख पर कालिख पुतनी चाहिए । तू माता, पिता, बन्धु और कुटुम्ब को बिगो रही है ।[२] राजमती ने बीसलदेव को प्रवास जाने से रोकने के लिए अनेक कारणो मे एक यह भी बताया है कि घर मे अकुलीन स्त्री के कलह के कारण पति अपना सा मुह लेकर घर से निकल पडता है ।

सतीनहीनता के कारण वश डूब जाने की विकट समस्या हिन्दू समाज के लिए सदैव से असह्य रही है । सु दर गृहिणी जीवजसा भी अधीर होकर पति से निवेदन करती है कि हे सेठ सुनो, बिना पुत्र के वश डूब जाएगा । दान, धर्म मे सब सम्पत्ति दे दीजिए तथा उसकी प्राप्ति के लिए चल कर तपस्या कीजिए । सेठ ने अपने परिजनो को बैठाकर उनसे मत्रणा की और कहा बिना पुत्र के मेरा कुल डूब रहा है । बुद्धिमानो ! क्या करना चाहिए ? मे आपसे पूछता हूँ ।' पुरिस भगीरथ हुअउ जे ने नियु कुल उद्धरिअ'[५] से प्रेरणा लेकर कीर्त्तिसिंह ने अपने कुल का उद्धार किया तथा पैतृक राज्य पुन प्राप्त किया ।

वर्ण रत्नाकर,[६] जिणदत्त चरित[७] तथा प्रद्युम्नचरित[८] आदि ग्रन्थो मे ३६ कुलो की चर्चा है । वर्ण रत्नाकर के अतिरिक्त अन्य आलोच्य ग्रन्थो के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि राजपूतो के परम्परागत ३६ कुलो के स्थान पर सामान्य रूप से समस्त जातियो के लिए यह उक्ति प्रचलित हो गई है ।

---

१ उद्योग पर्व ३६ २२,२३ ।
२ चादा २७२, २७३ ।
३ बीसा०, ३६ ।
४ जिण० ४८-४६ ।
५ की० १ १६ ५४ ।
६ पृ० ३१ तथा ६१ ।
७ ४४ तथा ४५८ ।
८ २० ।

परिवार—विवेच्य युग के परिवार का स्वरूप सयुक्त[१] पुरुष सत्ताक,[२] पितृमूलक वशपरम्परा,[३] वितृनामी,[४] वहूवर-स्थानी,[५] बहु-भायता[६] तथा एक भर्तृता[७] प्रधान है। सम्मिलित कुटुम्ब का पारिवारिक यवस्था अपेक्षाकृत सुसगठित तथा दृढ है।[८] गाहस्थ्य जीवन पुत्र-प्राप्ति, धर्म काय तथा रति सम्पादन की महिमा एव मर्यादा अध्याय चार के आश्रम व्यवस्था ऋण विधान तथा पुरुषार्थ चतुष्टय के सदभ मे द्रष्टव्य है।

परिवार के प्रमुख सदस्यो मे पति, पत्नी, सन्तान, माता, पिता, भाई, बहिन तथा भृत्य आदि हैं।[९] पति-पत्नी सचालक सदस्य है। पुत्र का रहना परम आवश्यक है। विवेच्य वाङ्मय मे पति-पत्नी सम्बन्ध पर रामायण, महाभारत, आपस्तम्ब धर्म-सूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवत पुराण मत्स्यपुराण, पद्मपुराण तथा स्मृति चन्द्रिका आदि पूववर्ती ग्रन्थो द्वारा पति का देव तुल्य मा यता[१०]

१ पृ० २ ३ ६ १०, **चादा० ३६, ४६, २८२, जिण० ४५, ५ २३ ३, १० ५.३, जिण०, वी० चादा०, ढोया० आदि ग्र थो से सामान्य। २ वही, पृ० ८ ४ १८।**

३ पृथ्वीराज सोमेश्वर का पुत्र था, पृ० १ ६ ३, २ ३ ३३, २ १६ २, सयोगिता जयचद की पुत्री थी, पृ० २ १६ २, वस्तुत परिवार का परिचय पिता द्वारा होता था। ४, ५, ६, ७ सामान्य। ८ हरिदत्त वेदालकार का 'हिन्दू परिवार मीमासा' [पृ० २५-२६]। ९ स तान पुत्र, जिण०, प्रच०, माता पिता चादा, प्रच०, जिण०, भाई बहिन चादा, प्रच० शेष सामान्य।

१० 'स्त्रियाँ भर्ता हि देवतम्'। रामा० २ ३९ २५ ३१, वा० रा० २ ११७ २३। 'देवत परम पति'। महाभारत १४ ९० ५०, १२ २६६ ३६ हरदत्त ने आपस्तम्ब धमसूत्र [२ १४ १६७२०] पर लिखा है कि पति स्वतन्त्रोऽसौ गृहे यथा राजा राष्ट्र'। मनु ने [९ १५४ ५] शख का अनुमोदन करते हुए साध्वी स्त्री को दु शील तथा स्वच्छ द आचरण वाले पति की देवता की भाति आराधना का उपदेश दिया। है। विष्णु पुराण २५ १५, ब्रह्मवेवत पुराण मे देवतावाद का विचार पराकाष्ठा पर है। 'अपने पति और भगवान मे भेद बुद्धि करने वाली स्त्री गोहत्या का पाप करती है।' हरिदत्त वेदालकार हि दू परिवार मीमासा, पृ० ९३, 'पतिर्हि देवत स्त्रीणा पतिरेवपरायणम्। मत्स्यपुराण २१० ।७ पद्मपुराण, सृष्टि खड, अध्याय ४१ 'न भर्तार द्विष्याद्यप्यष्ठीवल स्यात्पतितो अगहीनो व्याधितो वा पतिर्हि देवता स्त्रीणाम्। शख [स्मृतिचन्द्रिका ५५१] 'देवत्पतिमानुकूल्येन वर्त्तेत। मि० कामसूत्र ४ १ १।

तपो दमो ब्रह्म वित्व वितानाः पुण्याविवाहाः सततान्नदानम् ।
यष्वेवेते तत्तगुणा भवन्ति सम्यग् वृत्तास्तानि महाकुलानि ।।[१]

—धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा कि 'देवो द्वारा स्पृहणीय उत्कृष्ट कुल कौन है ?' विदुर ने स्पष्ट किया कि 'तप, दम, ब्रह्मज्ञान, यज्ञ, पुण्य विवाह, सदा अन्नदान तथा सम्यक आचार वाले कुल उत्कृष्ट है ।

आलोच्य ग्र थ मे महरी फूला अपनी कन्या चादायन की चरित्रहीनता पर आक्रोश प्रकट करती है कि 'कुल को डुबाने वाली चादा, तूने लज्जा गँवा दी । विधाता ने तुझे क्यो ज म दिया ? अवतरित होते ही तुम्हे मर जाना था । दोनो कुलो को डुबाने वाली, अकरणीय को करने वाली तथा गोत्र को लजाने वाली चादा, तुम्हारे मुख पर कालिख पुतनी चाहिए । तू माता, पिता, बन्धु, और कुटुम्ब को बिगो रही हे ।[२] राजमती ने बीसलदेव को प्रवास जाने से रोकने के लिए अनेक कारणो मे एक यह भी बताया है कि घर मे अकुलीन स्त्री के कलह के कारण पति अपना सा मुह लेकर घर से निकल पडता है ।

सतीनहीनता के कारण वश डूब जाने की विकट समस्या हिन्दू समाज के लिए सदैव से असह्य रही है । सु दर गृहिणी जीवजसा भी अधीर होकर पति से निवेदन करती है कि हे सेठ सुनो, बिना पुत्र के वश डूब जाएगा । दान, धर्म मे सब सम्पत्ति दे दीजिए तथा उसकी प्राप्ति के लिए चल कर तपस्या कीजिए । सेठ ने अपने परिजनो को बैठाकर उनसे मत्रणा की और कहा बिना पुत्र के मेरा कुल डूब रहा है । बुद्धिमानो ! क्या करना चाहिए ? मे आपसे पूछता हूँ ।' पुरिस भगीरथ हुअउ जे ने नियु कुल उद्धरिअ'[५] से प्रेरणा लेकर कार्तिसिंह न अपने कुल का उद्धार किया तथा पैतृक राज्य पुन प्राप्त किया ।

वर्ण रत्नाकर,[६] जिणदत्त चरित[७] तथा प्रद्युम्नचरित[८] आदि ग्रन्थो मे ३६ कुलो की चर्चा है । वर्ण रत्नाकर के अतिरिक्त अन्य आलोच्य ग्रन्थो के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि राजपूतो के परम्परागत ३६ कुलो के स्थान पर सामान्य रूप से समस्त जातियो के लिए यह उक्ति प्रचलित हो गई है ।

---

१ उद्योग पर्व ३६ २२,२३ ।
२ चादा २७२, २७३ ।
३ बीसा०, ३६ ।
४ जिण० ४८-४९ ।
५ की० १ १९ ५४ ।
६ पृ० ३१ तथा ६१ ।
७ ४४ तथा ४५८ ।
८ २० ।

परिवार—विवेच्य युग के परिवार का स्वरूप सयुक्त[1] पुरुष सत्ताक,[2] पितृमूलक वशपरम्परा,[3] पितृनामी,[4] वहूवर-स्थानी,[5] बहु-भायता[6] तथा एक भर्तृता[7] प्रधान है। सम्मिलित कुटुम्ब का पारिवारिक व्यवस्था अपेक्षाकृत सुसगठित तथा दृढ है।[8] गार्हस्थ्य जीवन पुत्र-प्राप्ति, धर्म काय तथा रति सम्पादन की महिमा एव मर्यादा अध्याय चार के आश्रम व्यवस्था, ऋण विधान तथा पुरुषार्थ चतुष्टय के सदभ मे द्रष्टव्य है।

परिवार के प्रमुख सदस्यो मे पति, पत्नी, सन्तान, माता, पिता, भाई, बहिन तथा भृत्य आदि है।[9] पति-पत्नी सचालक सदस्य हे। पुत्र का रहना परम आवश्यक है। विवेच्य वाड्मय मे पति-पत्नी सम्बन्ध पर रामायण, महाभारत, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवत पुराण मत्स्यपुराण पद्मपुराण तथा स्मति च द्रिका आदि पूववर्ती ग्रन्थो द्वारा पति का देव तुल्य मा यता[10]

१ पृ० २ ३ ६ १०, चादा० ३६, ४६, २८२, जिण० ४५ ५ २३ ३, १० ५ ३, जिण० वी०, चादा०, ढोया० आदि ग्रन्थो मे सामान्य। २ वही, पृ० ८ ४ १८।

३ पृथ्वीराज सोमेश्वर का पुत्र था, पृ० १ ६ ३, २ ३ ३३, २ १६ २, सयोगिता जयचद की पुत्री थी पृ० २ १६ २, वस्तुत परिवार का परिचय पिता द्वारा होता था। ४, ५, ६, ७ सामान्य। ८ हरिदत्त वेदालकार का 'हि दू परिवार मीमासा' [पृ० २५-२६]। ९ स तान पुत्र, जिण०, प्रच०, माता पिता चादा, प्रच०, जिण०, भाई बहिन चादा, प्रच० शेष सामान्य।

१० 'स्त्रिया भर्ता हि देवतम्'। रामा० २ ३६ २५ ३१, वा० रा० २ ११७ २०। 'देवत परम पति'। महाभारत १४ ६० ५०, १२ २६६ ३६ हरदत्त ने आपस्तम्ब धमसूत्र [२ १४ १६७२०] पर लिखा है कि पति स्वतन्त्रोऽसो गृहे यथा राजा राष्ट्र'। मनु ने [६ १५४ ५] शख का अनुमोदन करते हुए साध्वी स्त्री को दु शील तथा स्वच्छ द आचरण वाले पति की देवता की भाति आराधना का उपदेश दिया। है। विष्णु पुराण २५ १५, ब्रह्मवेवत पुराण मे देवतावाद का विचार पराकाष्ठा पर है। 'अपने पति और भगवान मे भेद बुद्धि करने वाली स्त्री गोहत्या का पाप करती है।' हरिदत्त वेदालकार हि दू परिवार मीमासा, पृ० ३३, 'पतिर्हि देवत स्त्रीणा पतिरेवपरायणम्। मत्स्यपुराण २१० १७ पद्मपुराण, सृष्टि, खड, अध्याय ४१ 'न भर्तार द्विष्याद्यप्यष्ठीवल स्थात्पतितो अगहीनो व्याधितो वा पतिर्हि देवता स्त्रीणाम्। शख [स्मृतिचन्द्रिका ५५१]
'देवत्पतिमानुकूल्येन वर्त्तेत। मि० कामसूत्र ४ १ १।

प्रदान करने के विचार का प्रभाव सामान्य रूप मे परिलक्षित होता है। साथ ही राजमता और सयोगिता प्रसग मे वेदकालीन समता द्योतक अर्द्धाङ्गी भाव[1] का भी अभाव नही है।

अरधग धरा अरधग हम अरधगी अरधग करि।
जस हस हस तह हसनी सर सुबकइ पकजन परि ॥ पृ० १० २५

सयोगिता पृथ्वीराज से निवेदन करती है कि 'धरा तुम्हारी अर्धांगिनी है तो मे भी तुम्हारी अर्द्धांगिनी हूँ मुझ अर्द्धांगिनी को तुम अपना अर्द्धाङ्ग करो। हस हसिनी तथा सर-पकज आजीवन साथ-साथ रहते है।

आलोच्य ग्रथो के अनुशीलन से, महाभारत, मनुस्मृति तथा पद्मपुराण द्वारा नारी पर कामान्धता का आरोप लगाते हुए यह अविश्वास प्रकट नही होता कि स्थान, अवसर तथा याचक पुरुष के अभाव मे ही स्त्रियो का साध्वीत्व सम्भाव्य है[2] ओर न मनु, गौतम, बोधायन वशिष्ट, विष्णु तथा याज्ञवल्क्य आदि की यह धारणा ही प्रमाणित होती है कि स्त्रिया पराधीन न रहे तो बिगड जायँ। सामान्यत सभी नारिया शीलभ्रष्ट होने के अनेक अवसर आने पर भी दृढ चरित्रवान् है।[3] सामान्यतया स्त्री चरित्रो ने अपने आचरण से महाभारत तथा मनुस्मृति के इस कथन को मर्यादित एव सुस्थिर रखा है कि 'स्त्रिया पूजा के योग्य महाभाग्यशाली और पुण्यशीला हे। वे घर

---

१ 'सखा ह जाया ऐतरेअ ब्राह्मण ३ ३ १।
'भार्या श्रेष्ठतम सखा, मि० महाभारत १ ७४ ४०।
द्रष्टव्य—ऋग्वेद ५ ३ २, ८ ३१ ५, १० १० ५, १० ६८ २, १० ८५ ३२, ५ ६१ ८। अथववेद ६ १८३ ३, १२ ३ १४, १४ २ ९।
'अर्धो वा एष आतमनो यत्पत्नी-मि० ते० ब्राह्मण ३ ३ ३ ५।
देखिये शतपथ ब्राह्मण १४ ४ २ ४ ५, वृह० उप० १ ४ ३ भी।
शतपथ ब्राह्मण ५ २ १ १० वाजपेय यज्ञ, वा० रामायण (४ २४ ३३-३८)।
हरिदत्त वेदालकार हिन्दू परिवार मीमासा, पृ० ८९ ९०।

२ महाभारत १३ ३८ १६, १३ ३८ २०२, मनुस्मृति ९ १४ १५, पद्मपुरण, सृष्टि खण्ड, ४९ ९।

३ मनु० ९।२।२, गौतम १८ १, बोधायन ४ ३ ४४, वसिष्ठ ५ १, विष्णु २५ १२, याज्ञ० १।८५, ये सभी उद्धरण हरिदत्त वेदालकार। हिन्दू परिवार मीमासा से उद्धृत किये गये हैं।

को शोभा है'। साथ ही स्त्रीजित होने के जघन्य पाप से बचने की मनु, याज्ञवल्क्य तथा वसिष्ठ आदि समाज शास्त्रियो द्वारा दी गई न चासा वशगौ भवेत' की चेतावनी से सयम एव सन्यास प्रधान पुरुष वर्ग सामान्य रूप से सजग ही नही दिखाई पडता अपितु स्त्रियो को कठपुतली सी बना रहता है।[२] ऐसी स्थिति मे भी पति 'देवत्व' से च्युत होकर अधम का शिकार नही हुआ है।

पथिक—दुखी वियोगिनी द्वारा किसी पथिक के माध्यम से सदेश प्रेषण का परपरागत काय आलोच्य वाङ्मय मे भी दिखाई देता है। स्वजन की ही भाति इन पथिको ने मैना[४] सदृश अनजानी दुखियो के काय को विश्वास तथा कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया है। यद्यपि चादा[५] और राजमती[६] ने अपने सदेश पडित से भी भिजवाये हैं, किन्तु मारवणी के पिता के विचारानुसार ये पथिक अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त हैं क्योकि ये सगीत के भेद जानने, खूब विचार कर बात करने तथा रात्रि मे विरह को जागृत करने वाले है। पडित, उत्तम जाति का होने के कारण आसानी से पहचाना तथा प्रतिद्वन्दी उद्देश्य पूर्ति मे असफल बनाया जा सकता है।[७]

सम्प्रति, भारतीय सामाजिक सरचना से सम्बद्ध विवेचन तुक समाज के बिना वणन का विषय अधूरा प्रतीत होता है। विवेच्य काल मे इस जाति का सम्पर्क

१ महाभारत ५ २८ १०, १३ ४८ ८-१८, १२ ४६ ५ , मनु ६ २६ ३ ५५-५६, १३ ४८ १५, ५ ३८ । ११, मनु० ३ ६२, जाये दस्तम् पत्नी ही घर है—ऋ० ३ ५३ ४। न गह गृहमित्याहुगृहिणी गह मुच्यते। गृह तु गृहिणी हीनमरण्यसदृश मतम्। वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद्गृहम्। प्रासादोऽपि तथा हीन कान्तारादतिरिच्यते। महाभारत १२ १४५ ६ अनु०। नास्ति भार्यासमी बन्धुर्नास्ति भार्या समा गति। नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धम सग्रहे ॥१॥ यस्यभार्या गहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी। अरण्य तेन गन्तव्य यथारण्य तथा गहम् ॥१७॥ गृह तु गहिणी हीन कान्तारा दति रिच्यते। मि० पचतत्र ४ ८४।

२ मनु० ८ २१७ याज्ञवल्क्य १ १६३, वसिष्ठ० १४ ११, कडिन जातक स० १३। आत्मबुद्धि शुभकरी गुरुबुद्धिर्विशेषत। परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धि प्रलयकरी॥ स्त्री पु वच्च प्रभवति यदा तद्धि गेह विनष्टम्।

३ दे० जियादत्तचरित तथा प्रद्युम्न चरित। ४ चादा ३४०-३७७।

५ वही, ४८, ४६। ६ वी० ८५-१०५। ७ ढोमा० १०२-१०४।

८ इस्लामी समाज के व्यक्तियो को हमीर, तुरक, यवन, मुगल अथवा म्लेच्छ से परिचित किया गया है ऐसा जान पडता है कि दक्षिणी पश्चिमी एशिया के निवासियो के लिए ग्रन्थकारो के सम्मुख कोई स्पष्ट तथा निश्चित जाति का नाम नहीं था।

स्थापित हो चुका था। य सवथा भिन्न ब्लेमटिक सस्कृति के थ। इनक मूल स्थान भारत के उत्तर पश्चिम के पडोसी राज्य थे। हजरत मुहम्मद (५७०-६३२ ई०) ने इस्लाम धर्म की नीव डाली थी। इसमे इस्लामी धार्मिक विजय की भावना उत्कट रूप मे थी। अत मुसलमानो ने अभिनव स्फूर्ति के साथ समीपवर्ती अन्य समस्त सस्कृतियो एव धर्मो को मिटाने मे अधिक उत्साह दिखाया। मुहम्मद साहब की मृत्यु के अनन्तर इस सस्कृति ने बालकन स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, मोसोपोटामिया, सिरिया, ईरान तथा तुर्की प्रभृति देशो को अविलब जीत कर इस्लाम का प्रसार किया, किन्तु उत्तर भारत को जीतने मे इन्ह ५०० वर्ष (७००-१२०० ई०) लगे। सन् १०१८ ई० मे इस सस्कृति का भारत को सवप्रथम परिचय प्रतिहार शासक को हरा कर मुहम्मद गोरी की सेनाओ के देश मे प्रविष्ट हो जान के अनन्दर हुआ था। चौदहवी सदी तक इनकी प्रभुसत्ता स्थापित हो चुकी थी। इनके शासन को मुख्यत फौजी राज्य कहा जा सकता है।[1]

इस तुक समाज के भी अन्तगत वण व्यवस्था की भाति, अनेक उप जातिया थी, जिसका उल्लेख सामाजिक शब्दकोश मे है। यहा मात्र यह दिखलाना है कि भारत मे सम्प्रति ४ वण के स्थान पर ५ प्रमुख जातियो (इस्लामी समाज को मिलाने से) के हो जाने से जातिगत स्थिति कैसी रही ? इतिहासकारो के ये अभिमत कि तुक समाज द्वारा हिन्दू जिम्मी (अनाथ) की भाति व्यवहृत थे,[२] किसी मुसलमान के छुए हुए पानी का छीटा पड जाने से हिदुत्व की समाप्ति समझी जाती थी[३], तथा यह कि मुसलमानो क्षत्रियो और अन्य राजवशो को नष्ट कर ब्राह्मणो के प्रभुत्व और अधिकार को इतना अधिक बढा दिया कि अमुस्लिम भारतीय समाज ब्राह्मणो के प्रभाव क्षेत्र मे चला गया और वर्ण प्रतिबधन कठोरतर होता गया,[४] वस्तुत समकालीन वाङ्मय मे दृष्टिगत नही होता। जौनपुर क सुलतान इब्राहीमशाह द्वारा प्रतिद्वन्दी जाति के कीर्तिसिह की सहायता याचना पर अपनी ही जाति के अमलान को पराजित कर उसको तिरहुत का राजा बनाना, इब्राहीम शाह के दरबार को राजाओ, राणाओ तथा तैलग, बगाली, चोल, एव कलिंग प्रभृत विभिन्न देशीय राजपुत्रो द्वारा अलकृत करना, जौनपुर बाजार मे हिदू और तुर्को का साथ-साथ रहना,

१ धीरेन्द्रवर्मा मध्यदेश, १९५५, पृ० १९९, इसी शोध प्रबध का पहला अध्याय भी
२ इस शोध प्रबन्ध का पहला अध्याय। ३ रामधारी सिह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० २५४ २५६। ४ शमशेर सिह नरुला हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओ का वज्ञानिक इतिहास, १९४७, पृ० ५४।

अजान के समक्ष वेदपाठ का उच्चारण होना[1] श्रेष्ठ कवि चन्द द्वारा मुहम्मद गौरी के घर अपने तन मे अगुरु-धूप आदि सुगन्धित द्रव्य का बिना किसी हिचक के स्वाभाविक रूप मे लेप करवाना तथा उसका आतिथ्य स्वीकार करना [2] जयचन्द की सेना फारम और बलक निवासी ६० हजार स्वामिभक्त मुस्लिम सैनिको[3] और अनेक मगोलो द्वारा महावत का कार्य करना ।[4] आदि तथ्यो से प्रकट होता है कि सर्वथा भिन्न सस्कृतियो की ये जातिया परस्पर समुचित रूप से सम्बद्ध होने की दिशा मेव्यवहारत प्रगति-पथ पर थी। पारस्परिक तनावो तथा सघर्षो के मूल मे शतप्रतिशत राज्य लोभ एव अग्रगण्य के अह की प्रधानता ही सक्रिय है। साथ ही यह तथ्य भी अस्वीकार नही किया जा सक ा कि पृथ्व।राज रासउ तथा कीतिलता को पढते समय हिन्दू-मुस्लिम जातीय तनाव तथा घृणा की कतिपय स्थलो पर स्पष्ट अनुभूति होती है[5] जिसे इम कथन से भले ही हलका किया जा सकता है कि इनके रचयिता आभिजात्य हिन्दू थे जिनमे पूर्वाग्रह की भावना किसी न किसा रूप मे निहिव हा सकनी है।

वस्तुत इन ग्रन्थो के अनुशोलन से यह निष्कष निकाला जा सकता है कि द। विरोधी वर्गो की मानसिक स्थिति मे यत्किचित परिवतन हो रहा था। हिन्दू एव इस्लाम धर्मानुयायी परस्पर अनेक प्रसगो मे एक दूसरे के सन्निकट आ रहे थे। एसा मन स्थिति मे एक दूसरे के विरोधी आचारो के प्रति कही-कही जुगुप्सा के भाव परिलक्षित होते है। कवियो ने सामयिक सदर्भो मे मानस की भावना की अभि-व्यक्ति की है। उनक कथन सर्वथा आदर्शवादी नही हैं, उन्होने समय के यथार्थ स्पन्दन का अपनी काव्य कल्पना से समलकृत कर प्रस्तुत किया है।

इस काल तक व्यवसाय, अध्ययन, पवित्रता, गोत्र, चरण तथा स्थान क आधार पर अनेक जातिया बन गई थी।[6] जिनमे द्विवेदी[7] दीक्षित तथा ओज्झा* ब्राह्मण, समसामयिक वाङ्मय मे उपलब्ध हैं। क्षत्रियो के ३६ कुल का अनक स्थलो

१ की०, अध्याय २। २ पृ० १२ १६ १। ३ पृ० ७ १५ १७।
४ वही, ७ १० ६।
५ पृथ्वीराजगौरी युद्ध, कीर्तिलता मे वर्णित जौनपुर बाजार तथा दोनो काव्यो मे जहा म्लेच्छो का वणन हुआ।
६ ई० आई० (भाग ६, पृ० ११५ ११६, ब० या० शो० प्र० वा० श० अ० पा० भा०, अध्याय ३, परि० १। अब तक ब्राह्मणो मे चतुर्वेदी शुक्ल, अग्निहोत्री, द्विवेदी दीक्षित त्रिवेदी, पाठक अवस्थी, मिश्र आदि प्रमुख जातिया बन चुकी थी।
७ प्रचि० ३ १२३। ७ वर ३ ३२ क। * की० ३ ३८ १४१।

पर उल्लेख है। वर्ण रत्नाकर (पृष्ठ ३१) में छत्तीस कुली राजपुत्र वर्णना और (पृष्ठ ६१ के) राजपुत्र कुल वर्णना मे ७२ कुलो का उल्लेख करते हुए ६४ को नाम वली अनुस्यूत है। ३६ की सख्या परम्परागत और ७२ की समसामयिक ज्ञात होता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि जातियो की सख्या वृद्धि पर थी। अन्तर्जातीय विवाह, विदेशियो के आगमन तथा उनके सम्मिश्रण से निम्नवर्गीय जातिया की सख्या म अभिवृद्धि तो और भी अधिक थी।[1] वर्ण रत्नाकर मे ४० नगरीय [2] १७ जाति तथा १० पहाडी जातियो का उल्लेख है जिणदत्त चरित मे २४ वकार तथा २४ सकार नाम की जातिया मात्र वसन्तपुर मे निवास करती थी। आगे चलकर सभा श्रृङ्गार[5] (१६वी सदी) मे मैं १८ वर्ण, ३६ पौन तथा ६७ पेशेवर जातिया का नामोल्लेख है। शहबुद्दीन गोरी के दरबार मे मुसलमानो की ३४ विभिन्न जातियो का नामोल्लेख है।[6] वर्ण रत्नाकर मे १७ प्रकार के वन निवासी[7] और १० प्रकार के पहाड निवासी[8] म्लेच्छो का वर्णन हुआ है।

असामाजिकता

सबसे व्यापक और गभीर सामाजिक दोष तुर्को समाज मे उल्लिखित है। वे ब्राह्मण बटुक को पकड लेते और उसके माथे पर गाय का 'शुरुआ' रख देते थे। उनके तिलक पोछ कर जनेऊ तोड देते थे। देवकुल (मदिर) तोड कर मस्जिद बनाते थे। छोट छोटे तुर्क भी बन्दर घुडकी दिखाते थे। तुर्को को देखकर ऐसा लगता था मानो वे हिन्दुओ का पूरा का पूरा निगल लेगे। इस जाति के खुन्दकारी (काजी) के हुक्म को क्या कहा जाय ? उसकी आज्ञा से अपनी भी औरत पराई हो जाती थी। उनके बेवकूफी के तरीके कथ्य हैं।[9]

सभव है कि व्यक्तिगत दोष उभडकर जातीय रूप मे चित्रित हो गए हो। ऐसा होने का कारण, कवि का अभिजात हिन्दू होना भी हो सकता है। म्लेच्छो के वर्णन मे ग्रथकार के पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण को स्वीकार नही किया जा सकता। म्लेच्छो के वर्णन मे वह लिखता है कि उनके मुख बनेचरो, बदरो के सदृश है। वे मुख पर दुम का साधन करते है। वे रोम प्रिय और बडे नखो वाले होते है। उनके

---

१ काणे हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, अध्याय २, जे० ए० एस० बो०, १९०२, पृ० १४६, वाटस आन यूवान च्वाग, पृ० १६८, शुक्रनीति (अनु० बी० के० सरकार, पृ० १५०, आर० सी० मजूमदार हिस्ट्री आफ बगाल, भाग १ पृ० ५७४, बया० शोप्र०। २ पृ० । ३ पृ० ३७। ४ पृ० ४२। ५ पृ० १४७।
६ पृ० १२११। ७ ५५० क। ८ ५५४ क। ९ की० २ १७३-२१५।

दाढी मे थूक बहता रहता है।[1] अस्तु मुसलमानो मे उल्लिखित ये सामाजिक दोष, मात्र इसी जाति मे है, अन्यत्र नही, ऐसा नही कहा जा सकता।

एस अवसर पर बसन्तपुर के सठ जीवदत्त अपने पुत्र जिनदेव को सासारिक विषय भोगो की ओर आकृष्ट करवान के लिए ऐसे व्यक्तिया को आमन्त्रित करता है जिनके चित्त मे नित्य कपट बसता हो, जो ससार को गाली देने शोरगुल मचान और दूसरे की सम्पत्ति हडपने मे निपुण हो, निलज्ज, जुआरी, दूसरे की स्त्री की वाछा करते रहते हो तथा चोरी करने मे आलस्य न करते हो और कहा, अरे वीरो, जो जिनदत्त का मन विषयो की ओर लगा देगा, वह निश्चित रूप से एक लाख दाम पावेगा। इन लोगो ने हँस कर कहा, सेठ, तुमने हमारा मूल्य अ का' और उसका काम सफलतापूर्वक सम्पन्न करवाया।[2] समाज मे इस प्रकार के असामानिक व्यक्तियो को कमी नही थी। सामाजिक मान्यताओ एव उत्तरदायित्वा क प्रतिकूल कायरत रहना इन लोगो का स्वाभाविक व्यवसाय था। इनकी कोई जाति नही थी। ये सभी वर्णो तथा जातियो के निम्नकर्मा सदस्य थे। वण रत्नाकर के प्रारम्भ मे नगर वणना के प्रसग मे चार, जुआर, छिनार, लगवार, पेटकट सदृश ४३ प्रकार क असामाजिक पुरुष, मद्य ऐसे २८ प्रकार की कुवस्तुएँ तथा लगले मद्य गारी कन्दल, धरहलि, चोट, उपशम, करुणा, असम्भ्रम, वमन, और भुगत इत्यादि १७ प्रकार कीर दुरवस्थाएँ उल्लिखित है। ये बहु प्रचलित और परम्परागत सामाजिक तथ्य के द्योतक है।

ख—सामाजिक नियत्रण—

सामाजिक नियत्रण मे मनुष्य आयोजित एव अनायोजित प्रक्रिया के द्वारा यह सीख ग्रहण करता है कि वह समष्टि की रीतियो तथा जीवनमूल्यो का सम्मान कर, जिसका वह एक अविच्छेद्य अग है। आयोजित विधि अथवा सहिता का क्षेत्र काव्य नही शास्त्र हैं। विवेच्य वाडमय मे व्यावहारिक रूप से अमात्य कयमास के समाज विरोधी अपराध पर राजा द्वारा मृत्युदण्ड देने तथा कन्या सयोगिता क अपने पिता जयचद द्वारा प्रस्तावित विवाह अस्वीकृत करने की धृष्टता पर उसे राजमहल से अलग नदी तट पर निवास करन की आज्ञा और साम-दाम दड-भेद से अनुकूल बनाने का कार्य। सामाजिक नियत्रण परक आचार का सूचक है। अनायाजित विधियो मे सस्कार, वर्णाश्रम, शिक्षा, धर्म, सामाजिक शिष्टाचार तथा

१ पृ० ७१५। २ जिणदत्तचरित पद ६८-७३।

सामाजिक मापदड समाज नियत्रण के प्रभाव सम्पन्न साधन है। इनका उल्लेख यथास्थान द्रष्टव्य है।

लोकलाज—

इनके अतिरिक्त, समाज को नियन्त्रित करने मे सर्वोच्च योगदान लोकलाज का है। सामान्य रूप से सभी स्त्रिया राजमती की भाति "कुल की मर्यादा और शील की जजीर से बधी"[1] चरित्रवान् हैं तथा पुरुष वग कीर्तिसिह के इस प्रस्ताव का समर्थक है कि 'जो अनुचित है उससे लज्जा कर आचार की रक्षा की जाय—अनुचित लज्जा, आचारक।'[2] असवर्णीय लोरिक तथा चादा द्वारा असमाजिक काय सम्पादन काल मे लाज की गतिविधियो की भूमिका द्रष्टव्य है। चादा यौवना थी। उसका स्वामी लघु, काना और इतना गन्दा था कि हाथ पैर तथा मुख कभी नही धोता था। इस पर भी उसे चादा के साथ नही सोने दिया जाता था। नाक तक जल रहते हुए भी चादा प्यास से मरती और रात दिन सताप करती थी। उसने मायके चली जाने की इच्छा व्यक्त की। सास ने आकर समझाया कि "जउ तुम्हँ साइ महर कइ बेटा आछहि कुर न लजाइ"[3]—तू राज महर की कन्या है, अच्छे कुल को लज्जित न कर। 'चादा ने उत्तर दिया कि—' ऐ सास अब तक मैंने कुलमर्यादा को धारण किया। काम लुब्ध होकर विरह मे मेरा शरीर जलता रहा है। यहाँ शैया पर अकेली रहना अब मेरे लिए असह्य हो रहा है। सास ने कहा—तोरो आधि मइ तहिया जानी। बात कहत तू मोहि न लजानी'—तेरी मानसिक व्यथा मैने तभी जान ली जब तूने बाते कहते हुए मुझसे लज्जा नही की।[4] चादा मायके चली गई। वहाँ सखियो ने जब उससे ससुराल का समाचार पूछा तो चादा ने उसे बताने मे लज्जा का अनुभव किया—'कुर कइ कानि लजाता अहउ'[5] चादा और लोरिक अनुचित प्रेम-पाश मे फँसते हैं। तज्जनित विरह व्यथा के कारण को व्यक्त करने के लिए मा द्वारा पूछे जाने पर लोरिक प्रकट करता है कि मा, तेरी लाज से मैं लजा रहा हूँ। वेदना कैसे व्यक्त करूँ ?—'तेरी लाज लजात सु अहउ।'[6] इधर चादा के घर जब माता-पिता, लोक जनु आवा। कनवडि चाद न मुखु दरसावा।

लोक चउखडी दई सभारा। कउहु दिवस अथवइ करतारा ।।
अइस कुलखना मूड कटाउब। पापधि चोर परिरुखि टगाउब ।।

---

१ कीरा०, ६२। २ की० ३ २९।१२१। ३ चा० ४५। ४ चांदा ४८।
५ वही, ५१। ६ वही, १५८।

निर्यरि मोचु होइ ढुको रगत न रहा सुखान
बिनु जिय लोरिक सेजि तराही आपनि क्या न जान ।।'[1]

चादा लोर दुष्कृत्य 'देस लोक सब जानइ पितहि देवाइसि गारी ।[2]
'दुइ कुर बोरनि अकरति गात लजावनि दारि ।'[3]

चादा 'लज्जित हो घर मे मुह नीचा कर बैठी ।'[4] इस सदर्भ मे खोलिनि का कथन सत्य निकला कि 'जेहि अकरक अस लागइ जाइ देस तजि भागि ।'[5] और चादा लोर पलायन कर गये । पृथ्वीराज पर अन्तिम बार आक्रमण करते समय सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने अपने योद्धाओ से आह्वान किया था कि 'तुम लोग लज्जा धारण करना और मुझे लज्जित न करना—धरहुँ लज्ज लज्जहु न भर ।'[6] गोरी की लाज बची और वह विजया हुआ ।

समाज को व्यवस्थित करन मे रीति,[6क] मर्यादा,[7] परामश,[8] वचन,[9] मान्यता,[10] तथा शपथ[11] भी सहायक हैं । लाछन,[12] उलाहना,[13] उगली उठाना,[14] श्राप[15] तथा श्रेष्ठ जनो के प्रतिकूल होने का भय[16] सामाजिक नियत्रण के क्षेत्र मे उल्लेखनीय हैं ।

———

१ चावा २२३ (सभारा स्मरण किया) । २ वही, २५३ । ३ वही, २७२ ।
४ वही, २६६ । ५ वही, २६९ अकरक-कलक । ६ पृ० ११।७।६ ।
६ क की० २।८।२४ ३ २९ । ७ की० २ ११ ४२, विप० १ १ १३-१४, चा० ५९
८ की० १, पृ० ११ ९ १ । ९ पृ० ६ २६ २, ८ १ १, कीर्तिसिह सुलतान, चन्द-गोरी । १० मान्यता बिना कलाकार नग रहित सोने के सदृश हैं । पृ० ५ ८ ३ ४
११ पृ० ११ ८ २ । १२ वीरा० १२१, ढोमा० ४०२ । १२ वीरा० ४६ ।
१३ पृ० ६ ३० २ । १५ पृ० ३ ३६ ५ । १६ पृ० ९ ८ ४ ।

अध्याय ३

रहन-सहन

(क) उपभोग—(१) आश्रम, नगर तथा ग्रामीण जीवन

आश्रम-मोक्ष का केन्द्र—भारत मे प्रागैतिहासिक काल म आश्रम तथा नगर जीवन का उपभोग होता रहा है। आश्रमो का भारतीय सास्कृतिक परम्परा मे महत्वपूण योगदान है। 'वण रत्नाकर' के अनुसार आश्रम, यम नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार समाधि, ध्यान, धारणा, वन्ध, वैन्ध मुद्रा आसन, अ तर्योग तथा बहिर्योगादि व्यापारो का साधना-स्थल है। यहा का निवासी श्रद्धा का पुज, अग्नि की सहोदर सतोष का समूह, सयम का प्रतिबिम्ब ज्ञान का सखा, ममत्व का शत्रु, लोभ का कृतान्त एव परमहस दशापन्न है। इनका अलकरण आषाढ दड, कृष्णाजिन, कमडल तरुत्वच, कोपीन, अ तर्व्वास, वहिर्व्वास, विभूति वृक्षी अक्षमाला, दारुपत्र और करडक है। इनका उटज अक, पलाश शमी, खदिर, दूर्वा उदुम्बर, अश्वत्थ तथा अपामार्ग यज्ञवृक्ष से अकीर्ण, कद मूल, फल, पुष्प तिल, तडुल, यव, जल, कुश, समिध, स्रुव, पवित्र, उपग्रह, आज्यस्थली, चरुस्थाली, वेदि, महावेदि पचगव्य, पचामृत, पचकषाय, अर्घ, पाद्य, विष्टर, गन्ध, धूप, दीप, चषाल, उदूखल, चमस, कृशर तथा कुलमाषादि अनेक यज्ञ सम्भृत से उपशोभित, यव गाधूम, नीवार, चरण, देवधान्य, कगु, श्यामाक सातो व्रीहि सयुक्त तथा भाट और जटामसी वच कूठ, सूरन, हलदी, दारुहलदी, चपक, वइसाठि, नगरजोथ दशो सर्वोषधि के पक से वासित रहता है।[१] वस्तुत आश्रमवासियो का रहन-सहन एव काय आ यात्मिक अनुसधान का प्रमुख स्रोत था।

नगरजीवन—धम, अथ कामका केन्द्र—आश्रमो का सात्विक वातावरण यदि मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है तो नगर जीवन का उपभोग धम, अथ तथा

---

१ वर० ५ ५४ ख, ५५ क।

काम को सुलभ बनाता है । कन्नोज,[1] जौनपुर गाबर तथा वसन्तपुर आदि समसामयिक नगरो के वणन मे तीन विशेषताआ पर मुख्य रूप से बल दिया गया है । पहला विशेषता यह थी कि नगरवासियो की प्रवृत्ति धम प्रधान थी ।

नगर मे—'तारा पोखर कुड खनाए । मढ देवर चहुँ पासि उठाए ।
खूना तपसी अछहि तहा । अउ भगवतु रहइ तिन्ह महा ।
मसवासी सिव मडपु छाई[1] पुरुख नाउ तेहि ठार न जाइ ।
जोगीं सहस चारि तह गावहि । सीगी पूरहि भसम चढावहि ।
सिद्ध पुरुख गुनआगर देखि लुभाने ठाउ ।
कहत सुनत अस जानिअ दहुँ चलि देखई जाउ ।।[3]

तडाग, पुष्कर और कुड़ खुदवाये हुए थे । उनके चारो ओर मठ और देवालय निर्मित थे । खूनी पथी तपस्वी और भागवत उनमे निवास करते थे । शिवमन्पो मे मासकल्प करने वाली स्त्रिया छाई रहती थी । उनमे पुरुष नही जाते थे । चार सहस्त्र योगी वहाँ गाते, शृङ्गी बजाते और भस्म चढात थे । सिद्ध पुरुष और गुणी लाग उस स्थान को देखकर लुब्ध हो जाते थे । कहने-सुनते एसा जान पडता था कि मानो वहा जाकर उसे देखने की लागो का उत्कट अभिलाषा थी ।

वसहि त सयल लो सुपियार, कचण मइ निन्हु कियए विहार ।
परकहु मीचुण वछइ कोइ । जीव दया पालइ सब कोइ ।।
कोली माली पालइ दया, पटवा जीवकहु इछहि मया ।
पारधी वीवण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ ।।[4]

नगर मे सभी प्रेम से रहते थे । उन्होंने अपने मदिर स्वणमय बना लिये थे । दूसरे की मृत्यु की वाछा कोई नही करता था । सभी के विचार दया और धर्म से परिपूरित थे ।

नगरो की दूसरी प्रमुख विशेषता उसकी सम्पन्नता है ।
अगम ति हट पट्टन नयर रतन मोति मनि धार ।
हाटक पट धनु धातु सहि तुछ तुछ दिष्षियइ सवार ।।[5]

पट्टन नगर की हाटो मे जो जनाकीर्ण होने कै कारण अगम्य है, रत्न, मुक्ता तथा मणियो को धारण करने वाले है । स्वर्ण, रेशमा वस्त्र, मूल्यवान पदार्थ और धातु आदि सबको तुच्छ जन भी सँवार कर धरण किए हुए दिखाई पडते है ।

१ पृ० ४ । २ की० २ । ३ चा० २ । ४ चादा २ २० । ५ पृ० ४ २४ ।

भवइण पाउ वत्थ जहि ठाउ ।
करहि राज सकुटवउ लोइ, परतह दुखो न दीसइ कोइ ।
धण कण कचण सव्व वियूर, मदिर तुग पिहिय कय सूर ।[1]

वहा समस्त वस्तुएँ सुलभ हैं । लोग सकुटुब राज्य जैशा सुख भोगते हैं । प्रत्यक्ष मे कोई दुखी नही दिखाई देता था । धन, धान्य एव स्वर्ण से नगर परिपूर्ण था । सूय को ढँकने वाले ऊचे पवत के सदृश वहाँ के महल थे ।

नगरवणन प्रसग की तीसरी प्रमुख विशेषता 'काम को महत्व प्रदान करना है । रूपवता वनिताओ तथा वेश्याओ से गलिया मडित हैं । सभाषण का कोई न कोई बहाना करके लोग उनसे अवश्य वार्तालाप करते थे । सुखपूवक क्रय विक्रय और दृष्टि कुतूहल से लाभान्वित होते थे । सबकी सोधो आँखे इन तरुणियो को वक्र ज्ञात होती थी । चोरी-चोरी प्रेम करने वाला प्रेयसिया अपने दोष से ही सशक रहती थी । सयानी लावण्यमयी, पतली, पात्रोदरी, तरुणो चचला बनी बनिता विचक्षणी परिहास प्रगल्भा, सुन्दरी नायिकाओ को देखकर इच्छा होती थी कि तीसरे पुरुषार्थ काम के लिए शेष छोड दिए जाएँ ।[2] नगर मे वेश्याओ के विशद वणन की एक परम्परा थी ।

ग्राम मानवता का केन्द्र—आश्रम और नगर से भिन्न ग्राम का जीवन है । यहा न आश्रमो का साधना-तप है और न नगरो की वेश्या-वृत्ति । विष्णुदास रचित '*सनेह लीला*' के उद्धव-गोपी सम्वाद से प्रकट होता है कि ग्रामो का मुख्य वैशिष्ट्य पारस्परिक प्रेममूलक व्यवहार मे निहित है । प्रकृति के साहचर्य मे खेती बाडी और पशुपालन द्वारा यहा के लोग अपना जीवन व्यतीत करते है ।

उपवन तथा जलाशय—आश्रम, नगर तथा ग्राम तीनो के निवास मे एक सामान्य विशेषता यह थी कि सभी जन उपवन तथा जलाशय का प्रचुर उपयोग करते थे ।

गामि गामि वाडी अबराइ, जइस पाटण नेसे ठाइ ।। जिणदत्त ३४ ।
घरि घरि कूवा वाइ विहार कचण मइ जिन कीए पगार ।
उत्तम लोक वसहि सा भरी, जनु कइलास इद की पुरी ।। जिणदत्त, ८७ ।।

गाव गाँव मे बगीचे एव अमराइयाँ थी । नगर और ग्राम एक समान थे । घर-घर मे कुवा बावडी एव विहार—बगीचा है जिनके प्राकार स्वर्ण से निर्मित हैं । उत्तम लोग उसमे रहते है वह मानो इन्द्र की पुरी कैलाश है ।

---

१ जिण० ३१, ३२, ३६ । २ की, १ ११२-१२०, १३७-१४० ।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुशालन स ज्ञात हाता है कि उपवन लगवाना ओर जलाशय बनवाना युग-धर्म था। 'वण रत्नाकर' मे उपलब्ध उपवन, सरोवर तथा पोखरा के विशद वणन म इनकी परपरागत लोकप्रियता पर स्पष्ट प्रकाश पडता है। विस्तारभय से इनका विवेचन यहा अपेक्षित नही है, कि तु इनकी भव्यता द्रष्टव्य है।

(२) गृहोपभोग—अभिजात परिवारो की घरेलू रहन सहन की स्थिति उन्नति पर थी। यथा, नगर के एक धनी अहीर और एक राजा के घर मे रहने का ढङ्ग द्रष्टव्य है—

गोबर नगर के सहदेव महर का 'घर हिंगुल का पानी ढाल कर लाल किया हुआ था। उसका सतखडा अनोखी भाति से पाटा हुआ था और उसमे सात चौखडिया थी। सातो चौखडियो पर साठ कलश बनाकर रखे हुए थे, जिन पर सोने का पानी चढाया हुआ था। महर की चौरासी रानियो के लिए चौरासी सदन सुन्दर भाति से उठाये हुए थे, जिनमे अत्यधिक सुहावनी धारिया खिंची हुई थी। सोने के स्तभ मणिक्यो से जटित होकर रखे हुए थे, जो ऐसे जगमगाते थे जैसे वे तारिकाओ से भरे हुए हो। अगरु, चन्दन तथा उबटने की सुहावनीवास उनमे बनी रहती थी। देवलोक के प्राणी ऐसा कहते थे कि 'कही यही तो शिवलोक नही ह ?' महर की चौरासी रानियो मे प्रत्येक के साथ इक्यासी-इक्यासी चेरिया थी' उनके ज्यौनार अलग-अलग होते थे। भिन्न भिन्न गृहो मे उनकी शय्याएँ सवारी जाती थी। हिंडोल रचे हुए थे जिन पर नारिया झूलती थी।[२]

गृहोपभोग के प्रति समकालीन लोक दृष्टि स्पष्ट करने के लिए 'पृथ्वीराज रासउ (६ २) की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

दिव मडन तारक सयल सर मडन कमलानु।
जस मडन नर भर सयल महि मडन महिलानु॥

आकाश के तारे, सरोवर के कमल, राजकीर्ति के भट जन तथा मही के मडन महल होते हैं। इन्ही विचारो से प्रेरित पृथ्वीराज ने नव विवाहिता सयोगिता के लिए ऐसा 'शुभ हर्म्य बनवाया, जिसके दीप आकाश लोक तक प्रदीप्त होते थे। इसके मुकुरो से चन्द्र मयूरो का अमृत झडा करता था, जो दम्पत्ति के मन को विशोक किया करता था उस हर्म्य के गवाक्षो के मुखो मे उन्नमित मेघ के सदृश अगरु-धूम शोभित रहता था जिसे देखकर मोर तथा मराल नृत्य और मत्त ध्वनि करते थे। मेघ सदृश

१ पाँचवाँ कल्लोल। २ चा० ३० ३१।

घूम क मिस हर्म्य के कलश बिजली सा चमकते थे। गृह सघन नारियो क नव नूपरो का रव दादुर तथा शार्दूल की भाति था जिसके मध्य मधुव्रती और मधुर-प्रिय मधुकर मजु मन से आ मिलते थे। हर्म्य मे पाच-पचीस (अनेक) शालिकाएँ थी जिनमे उनकी दूनी पयडके—प्रत्येक मे दो-दो थी। शालिकाओ मे वीणाप्रवीण दस-दस दासियो की अथाइया थी। महल मे युवती यूथ वाद्यो की वादन करता, अपनी मद गति से नायक को प्रमत्त करता, अपने हिलते हुए अचल के वायु से शब्द-रति का निरूपण करता, श्रेष्ठ प्राकृत एव देववाणी मे सभाषण करता हुआ नानाभाति से मनोरजन करता था। इस प्रकार विलासो को विलस कर सुसार को भी असार किया जाता था। यह नही जान पडता था कि कब दिन होता है और कब रात।"

३ राजसभा धर्म, अर्थ, काम का केन्द्र—यश तथा सम्मान के अनुरूप समसामयिक अधिपतियो की राजसभा 'भूपाल मडलीक, सामत, सेनापति, वैशिक, राजपुत्र राजशिष्ट, वडलिधा, पुरपति सेवक, परिचारक, आज्ञापाल तथा धर्मशिष्ट से मडित रहती थी। उसमे साधु, स्वाध्यायिक, सानुवाह, यशवाहन सुबुधि, सएआन, सारथ, सिहल, मालकार, ग धवनिक रत्नपरीक्षक, वेलवार तथा वामन प्रभृति अनक वनिक पुत्र आसोन रहते थे। राजकुमार शिष्ट पुत्र, औत्रियपुत्र, अश्ववाहक, गजवाहक, महाराज द्वारिक, दशमुधि, पलिहार अधक, अगहरा, रौतपति, प्रतीहार आदि राजोपजीवक उपस्थित होते थे। मत्री, पुरोहित, धर्माधिकरण सान्धिविग्रहिक, महामहत्तक, सेनापति, युवराज, नायक, प्रतिवल करणाध्यक्ष, शातिकरणिक, स्थानान्तरिक, राजगुरु, राजवल्लभ, स्थगीवित्त, अहिकारिक, नैवधिक, आक्षपटलिक, खगग्राह, प्रमत्तवार विश्वास, पुष्पभट्ट, शयनपाल, अ तरग, अगरक्षक, आग्रजाणिक, सात्रत्सर, अश्ववाहक, हस्तिपक क्रीडक, नमशचिव, दडपान, दुगपाल, आज्ञापाल गुढ पुरुष प्रणिधि, वार्त्तिक, सूत्रकार, सुपकारपति, सम्बाहक, प्रसाधक, पट गरिष्ट वष्टि नत्तक, गायक, राजजीवक, कुहक, कुशालव, वचक तथा भावक प्रभृति अनेक लोगो से राजसभा सकुल रहती थी। ओत्रिय, आध्यायिक मौहूर्त्तिक, मणिमर्म्मज्ञ, सारण्यकुशल, गन्धकार, छुरिकार, मल्ल, आम्नायिक, ऐन्द्रजालिक, भाषाविद्, लिपिवाचक, श्रुतिधर, महाकवि, शास्त्रज्ञ, विषवैद्य, गजवैद्य, अश्ववैद्य, चूणामणि, कुतूहली, भार्गव, जौध, वयकार औरवादनिक प्रभृति अनेक राजविनोदक सभा मे विद्यमान रहते थे। इनके मध्य सवगुणसम्पूण सवकलापरीक्षक सवविधक ऐश्वर्यशाली राजा सुशोभित दिखाई पडता है। आस्थान मडप की भूमि स्फटिक की, कजुसिस कपूर की, पगारी सान्ने

---

१ पृ० ८ ३-८।

की चनवा मजूरुबी काचकी,स्तभ श्रीखड के, शीरभरकंतकेभवनगौभद का, धरणि वैकठ की मुहुऔत अगर के, वडरा कस्तूरी के वौहु मुक्ता के विलेपन चतु सम और कलश पद्मराग की है । ऐसा राज सभा के मध्य रूप मे कन्दप, दान मे वलि, परोपकार मे जीमूतवाहन, सत्य मे युधिष्ठिर, शौय्य मे परशुराम, आज्ञा मे लकेश्वर, अहकार मे दुर्योधन, विलास मे गोपाल, मर्यादा मे महोदधि, गुरुता मे सुमेरु तथा ऐश्वर्य मे महादेव सदृश सवगुण सयुक्त सवकलाकुशल नायम विराजमान रहता है । इसके अन तर महथ, मुदहथ, महसाहनि, महसुभार, महल, अखउलि, अहिँकारी, आसनउधि,अगिमानि, अगरषक, सन्दगहि मुखए सन्तिकाल, सेनागाह, सेजवार, मनहरि, पनिहरि, पुरोहित, पनिहार, पत्रोतार, वुरवाइ, राजबल्लभ, राजपडित, स्थानन्तरिक, फुलकूट, नेउधि, विश्वास, धर्मान्निकरणिक, भडाँरी तथा भट्टवलाधक आदि छत्तीसो पदिको से सभा अलकृत रहती है । राजा के सन्निधानवर्त्ती गौआर, वारि, वारिक, वउरिआ, कनवार, मुखिया वरिठा चोरगाह तथा अगहर दिखाई पडते हैं । राजा के सर्वावसर पर शिष्ट पदिक शिष्टपुत्र श्रोत्रियपुत्र पदिकपुत्र, वेदज्ञ, वैद्य वैदेशिक, वार्त्तिक, वक्ता, व्यसनी व्यवहारिक, विद्यामन्त, वादी, व्युहपति, वन्दीजन, वाहक, मान्य, मानज्ञ, मौहर्तीक, मिश्र मेधावी मडलिक, मल्ल, महामल्ल, मुखर, मोहक, मित्र, महाजन, मनस्वी, पडित, पाठक, परम्परिण, पेशल, परमान्वित, प्रबन्धक, पद्राति, याज्ञिक, याध, युवराज, याडगलिक, जनकार, जयवादी, भरतज्ञ, भोजन, कुशल, सनाकुशल, वन्नकुशल, कवि, सुकवि, सत्यकवि, महाकवि, कुमर, कुतूहली, कण्टकोया, कैवारा, कर्मस्थानी, कथक, कायस्थ, गावर, गायन, वशगायन, वीणागायन, नट, नर्त्तक, नीतिज्ञ, नायक तथा नागरादि विद्यमान दिखाई पडते है । ये लोग हीरा, मणि, मानिक, मुक्ता, सुवण, रजत के दिव्याबर से विचित्रित हैं । आचर, चामर, कनक दण्ड, शुभशब्द, जयशब्द, सिंहासन, सुखासन, औरग तथा औरगऔट प्रभृति अनेक सामग्रियो से आस्थान मडप इतर लोक सा प्रतीत होता था ।"[1]

आस्थान मे पुराहित, धर्मनिष्ट, धर्माधिकरण, शास्त्रज्ञ, धनिक वग, अन्त पुर की स्त्रिनो तथा राज्य के प्रमुख अधिकारियो के सादर प्रवेश से धर्म, अथ और काम को प्रश्रय प्राप्त है । इससे समाज को उन्नति, यश तथा वैभव सुलभ होते है ।[2]

४ स्नानघर—यह परम्परा थी कि आस्थानोपभोग के अनन्तर राजन्य व्यायाम और स्नान करने जाते थे, किन्तु 'वर्णरत्नाकर' मे व्यायाम का उल्लेख नही

१ वर० ३ ; २२-२४ ।

२ दे० अध्याय ४, वण व्यवस्था और पुरुषाथ चतुष्टय सदभ मे ।

है।[?] शीर, भरण, मोरवा, आकन, भावन, कुभी, कौनात, पटिआ तथा गात्रवेढ प्रभृति अनेक दारु विन्यास से बना तेरह हाथ दीर्घ और नवहाथ फाण्ड अपूव विश्वकर्म्मा द्वारा निर्मित स्वगनारिसदृश एक माजनगृह होता था। स्नानभूमि कस्तूरी, कपूर, कुकुम अगर, चन्दन, यावाद, मायाशिर और पानीर आठो गन्ध द्रव्यो से पकिल रहती थी। स्वण और माणिक्य से अलकृत काष्ठ की ऊँची चौकी पर राजा बैठता था। तदनन्तर माषतैल, षटतक्र छागलादि नारायण, वडनारायण, मध्यम नारायण, कैतक्यादि सुगन्ध एलातैल, महासुगन्ध प्रभृति दो कँचोरा तैल लाकर रखा जाता था। मदनियो द्वारा छलकर हथडोरक, एकहथा, दोहथा आदि छत्तीसो प्रकार से राजा के तन की मालिश हाती थी। उसके अगो का मदन करके सुगधित उबटन लगाया जाता था। तदनन्तर गगा, यमुना आदि बारह पुण्यतोया नदियो के जल से स्वण पात्र द्वारा स्नान कराया जाता था। स्नान कलशो द्वारा अभिषेक का दृश्य अजन्ता के भित्तिचित्र मे उपलब्ध होता है। स्नान के समय राजा का प्रशस्ति-गायन करने के लिए विशेष चारण की उपस्थिति सभवत अपेक्षित थी। राजा के स्नान करन की नियत विधि थी। अभिषेक के लिए यत्र धारा का भी व्यवहार होता था, किन्तु ये सब 'वण रत्नाकर' मे नही उल्लिखित है।

५ विलेपनोपभोग—वर्ण रत्नाकर (३ २४ ख) की समरहरवणना मे मज्जन चौपाल की भूमि को चतु सम से लीपा दिखाया गया है। भौजा-जानिय जातक[२] मे चार प्रकार के गध द्वारा भूमि लीपने से इसा चतु सम सुगन्धि का सकेत मिलता है। राजशेखर कृतकाव्य मीमासा, हेमचन्द्र के 'अभिवान चिन्तामणि, जायसी कृत पद्मावत तथा तुलसीदास के रामचरितमानस मे भी चतु सम का उल्लेख है।[३] अमरकोश (२ ६ १३३) मे यही यक्षकदम के रूप मे व्यवहृत है। धन्वन्तरि ने कुकुम, कस्तूरी, कपूर, चदन और अगरु से बनी महासुगन्ध लेपन को यक्षकर्दम की सज्ञा दी है।

१ कादम्बरी मे व्यायाम और स्नान दोनो का उल्लेख है।
२ स० ३३ – चतुरजातिक गन्धूपलित।
३ काव्य मीमासा अ० १८, पृ० १००।
—चतु सम यन्मृगनाभि गभम्, चउस सम कस्तुरि सिल्हा कप्परलाडअह, दोहाकोश, पृ० ५५ अभिधान चिन्तामणि ३ ३०३ – चन्दना गुरु कस्तूरी कु कुमस्तु चतु समन। च दनादीनि चत्वारि समान्यत्र चतु समन।
जायसी पद्मावत २७६ ४, ३०३ ७, ३३२ ३, रामचरितमानस बालकाण्ड, २८६ १० —बीथी सीचीं चतुरसम चौके चारु पुराइ।

'वण रत्नाकर' के चतु सभा की विशेषता यह है कि यह सुगंधित लेप चार क स्थान पर आठ गन्ध द्रव्यो—कस्तूरी, कर्पूर, कुकुम, अगर, चन्दन, यावाद, मायाशिर तथा पानीर से निर्मित कहा गया है ।

वर्ण रत्नाकर (३ २४ ख) मे आदर्श चतु सम तिलक लगाने का भी उल्लेख है । भारतवर्ष मे प्राचीन काल से विलेपन की क्रिया प्रचलित है । कुब्जा के शृङ्गार वणन मे उल्लिखित देह्यावयो रगविलेपमुत्तम श्रेयस्ततस्ते नचिराद् भविष्यति[१] स इसकी अत्यधिक लोकप्रियता का प्रसार प्रकट होता है । सभवत इसीलिए महात्मा बुद्ध ने श्रमणो को इनसे मुक्त रहने का निर्देश दिया है—'गध-विलेपन-धारण मडन विभूसनट्ठाना परिविरतो समणो गोतो ।।' सेय्यथीद अजन गन्ध-विलेपन-मुक्खचुण्णक मुखलेपन दीघ-दासानि इति का, इति समणो गोतमो ।।

वस्तुत विवेच्य युग से पूर्व समाज मे विलेपन का सामान्य प्रचलन था । काम-सूत्र मे नागरिक के लिए प्रतिदिन लेप करने का विधान है । क बारहवी सदी क सोमेश्वर कृत मानसोल्लास[४] मे प्रत्येक ऋतु के लिए भिन्न-भिन्न लेपो के नाम, उनक बनाने और लगाने की विधि का विशद वणन है । 'वर्ण रत्नाकर' क वणनो आर वीसलदेव, राजमती, चादा माखणी, मालवणी, विमलमती, श्रीमती नमिनाथ, रानिया तथा वेश्याओ के दैनिक शृङ्गारिक कार्यक्रम मे सुगधित-द्रव्य लेपन का प्रयोग सामान्य रूप से उपलब्ध होता है[६] । वण रत्नाकर क कला वणना प्रसग[७] मे अगराग तथा गन्ध-युक्ति स्वतत्र कला रूप मे मान्य हैं ।

६ वस्त्राभूषण—अभिषेक से निवृत्त होने और समुचित विलेपन करने के अनन्तर वस्त्राभूषण से अलकरण का प्रचलन था । परम्परागत प्रचलित वस्त्रो मे त स प्रकार के सामान्य पट्टम्बर जाति, तेईस प्रकार के देशीय पट्टम्बर, तेरह प्रकार के निर्भूषण—साद-वस्त्र और चतुदश जाति के नेत आदि वस्त्रो का उल्लेख 'वण रत्नाकर' (३४ क) मे है । आगे, 'सभा शृङ्गार' (१६वी सदी) मे वस्त्रो के पाच वर्णक उपलब्ध

१ श्रीमद्भागवत पुराण १० ४२ २ । २ दीघ निकाय, ब्रह्मजाल सुत्त १०, पृ० ६ ।
३ वही, १६, पृ० ८ । ३क काम सूत्र सू० १६, पृ० ४५ ४६ । ४ ३ ५ ।
५ २४ २४, २८ क, २६ क, ६३ ख, ३४ ख । ६ वी० रा० ५६, ६५, चा० १७, ३१, ५०, ६६ ८२ १६४, ३५३ ढोमा० ४१५ ३०३, ३४७, ४८०, ५३५, ५३६ ५६५-५७२, ५७६, ५८०, ५८२, ५८६, ५६२, ६००, ६२३, स्थूलि० ३ १०, नेमिनाथ १४, ८ २१, जिण० १०६, विप० १ ६, वर, ४ ३६ ख, २ २० क, की० २-२४, १३६ । ७ वर० ४ ३५ ख ।

हैं जिनमे पाचवी सूची १४० वस्त्रो के नाम गिनाती है। इसमे महमूदी, सिरोबाफ, जरबाफ, तानवाफ, कमखाब तथा सूसी आदि मुसलमानो युग के प्रतीत होते है।

व्यवहारत विवेच्य युग के आदश वस्त्रभूषण का उपभोग तत्तकालीन कतिपय दृष्टान्तो से स्पष्ट किया जा सकता है। अपने विवाहोत्सव पर महापुरुष नैमिनाथ एक ऊँचे और चचल घोडे पर आरूढ होकर विवाह के लिए चले। उनके कानो मे कुडल, शीश पर मुकुट और गले मे नवसर हार सुशोभित हो रहा था। शरीर पर चन्दन का लेप हुआ था और चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल वस्त्र ये उनका श्रृङ्गार किया हुआ था। राजमती ने अपने पति वीसलदेव की अभिज्ञान-चर्चा मे सदेश वाहक पडित से स्पष्ट किया कि वह गोरे हैं। उनका वक्ष चौडा और कटि पतली हे जिसमे तरकस और ऊँची-चौडी तलवार रहती है। वह नवलखे ताजी घोडे पर सवारी करते है।[2] कवियो द्वारा आग्रह करन पर कवि चन्द ने जयचन्द के अदृश्य वणन मे व्यक्त किया कि उसके सिर पर उत्कृष्ट श्वेत चामरो शत-शत किंकिणिया आन्दोलित हो रही हैं। उसका तेज बाल सूर्य के समान और किरीट अमूल्य है। उसके कठ मे हार हिल रहे है।[3] इन उदाहरणो से प्रकट होता है कि आभूषणो मे ता अमूल्य हार और किरीट को युग मान्यता देता है, किन्तु पुरुषो के वस्त्रो के प्रति वह आकृष्ट नही है। सभवत इसका कारण वस्त्रो से शरीर सौष्ठव को अधिक महत्व देना है। कपडो द्वारा अगो को ढक देने से उसकी हृष्टपुष्टता को छिपाना कलाकारो को ग्राह्य नही था। पुरुषो क पहनावे मे मात्र 'पट्टम्बर-धोती और उत्तरीय पट' वण रत्नाकर मे (२५ ख) उल्लिखित है।

स्त्रियो के पहिनावे की भी यही स्थिनि है। उनके सौन्दर्य निरूपण मे नख से शिख पयन्त सविस्तार वणन मिलेगा किन्तु सामान्यत, चोली[4] (या कचुकी) तथा साडी[5] के अतिरिक्त अन्य वस्त्रो के वणन म कवि की रुचि नही प्रकट होती। स्तन, नाभि और रोमावलो आदि के वणन से शरार सोष्ठव की अपेक्षा वस्त्रो का महत्व कम ज्ञात होता है। आभूषण, अवश्यमेव पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक व्यवहृत है। इनमे शीशफूल कुडल, हार, वलय, कगन, मुद्रिका, मेखला तथा नूपुर का सामान्य प्रचलन था।

१ नेमिनाथ फागु राजशेखर सूरि। २ वी० ९५-९६। ३ पृ० ५-१०।
४ दे० सामाजिक शब्द कोश।
५ वही चीर और साडी दोनो। ऐसा प्रतीत होता है कि वस्त्र और साडी दोनो के लिए चीर शब्द प्रयुक्त हुआ है।

कन्नौज नगर में 'दिष्षिये काटि कोटिन्न नगा ।'[१] काटि-कोटि नगे साधू दिखाई पडते हैं। इनका निर्वसन रहना किसी प्रकार लघुता सूचक नही है। इन साधको का समाज मे सम्मान हे, भले ही ये प्रागैतिहासिक आदिम युग के अचेलकत्व के प्रतीक हो। इनसे उस युग की सभ्यता का अभिज्ञान होता है जबकि शरीर ढकने की भावना का उदय नही हुआ था। कि तु सम्प्रति, वसनविधि, सूचीकर्म तथा वस्त्रविद्या की चर्चा 'वण रत्नाकर' मे चतु षष्टि कला क प्रसग मे उपलब्ध है। वस्तुत वस्त्रहीन साधुओ का नगापन असभ्यता नही, अपितु भौतिकता को धर्मिकता तथा आध्यात्मिकता से कम महत्व प्रदान करन के कारण है।

७ खानपान—खानपान के सम्बन्ध मे हिन्दुओ की एक मुख्य विशेषता यह रही कि धर्म, कर्म, परलोक तथा भावी जन्म के बिगडने के भय से कुधान्य और कुपात्र का खाद्य लोग नही स्वीकार करते हैं। एक समय एक राजर्षि घेवर का भक्षण कर रहा था। भक्ष्याभक्ष्य का विचार आ जाने से उसने सारा आहार त्याग, पवित्र होकर आचार्य से स्पष्ट करवाया की 'मुझे घेवर का भक्षण करना चाहिए या नही ?' आचार्य ने बतलाया कि वणिक् और ब्राह्मण को तो इसका भक्षण उचित है किन्तु जिस क्षत्रिय ने अभक्ष्यभक्षण का नियम किया है उसे नही करना चाहिए, क्योकि उससे मासाहार का स्मरण हो आता है।' प्रायश्चित स्वरूप उस राजर्षि को ३२ दातो के निमित्त ३२ जैन मदिर एक पीठस्थान पर बनवाना पडा।[२] अनुद्दिष्ट आहार भोजी शोभन मुनि ने राजा का निमत्रण अस्वीकार कर दिया। आग्रहपूर्वक कारण पूछने पर उसने बतलाया कि 'मुनि म्लेच्छ कुल से भी मधुकरी वृत्ति के साथ भिक्षा ग्रहण करे परन्तु बृहस्पति के समान श्रेष्ठकुलीन एक ही गृहस्थ के यहा भोजन न करे। अपने धर्म से और परधर्म से भी निषिद्ध ऐसे कल्पित आहार को त्याग करके हम लोग भोजन करते हे।'[3] मूग और उडद आदि द्विदल धान्य जो कच्चे गोरस मे पडे हो तथा तीन दिन का बासी दही अभोज्य थे।[४]

ऐसा विश्वास था कि सत्पात्र का अभक्ष्य भोज्य भी उत्तम प्रभाव डालता है। शीता नामक एक र धती (रसोई बनाने वाली) को कोई विदेशी कापटिक सूय पव के दिन भोजन बनाने के लिए अन्न देकर स्वय जलाशय मे स्नान करते समय कगुनी के तेल का पान कर जाने से, उसके घर आते ही, वमन करके मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसे देखकर, अपने को द्रव्य के निमित्त मार डालने का कलक लगने की आशका से उस र धती ने मरने के लिए उसी अन्न को खा लिया। वह उसके पेट मे टिक गया

१ पु० ४-३२। २ प्रचि० ४ १५५। ३ वही, २८५-८६। ४ वही, ८७।

और उसके प्रभाव से उसको प्रतिभा का बडा विभव प्रादुर्भूत हुआ।[१] सत्पात्र को भोजन-दान देना भी महान् पुण्य समझा जाता था। मयणल्ला देवी ने सोमेश्वर की सुवर्ण से पूजाकर तुलापुरुषदान, और गजदान आदि अनेक महादान किया।' मेरे समान ससार मे न कोई हुई और न कोई होने वाली है, ऐसा सोचती हुई वह सो गई। रात मे सोमेश्वर ने स्वप्न मे प्रत्यक्ष होकर उसे बताया कि 'यही मेरे देवालय मे एक कार्पटिक स्त्री यात्रा के लिए आयी है। वह तुमसे अधिक पुण्यवती है। तुम्हे उसका पुण्य मागना चाहिए।' दूसरे दिन उसे खोज कर उसने बुलवाया। पुण्य मागने पर वह किसी तरह देने को तत्पर न हुई तो उससे मयणल्ला देवी ने पूछा कि 'यात्रा मे तुमने क्या व्यय किया है ?' उसने स्पष्ट किया कि' मै भीख माग-माग कर १०० योजन दूर से इस देवालय मे आई हूँ। तीर्थोपवास करके, पारण मे किसी सुकृति के यहाँ से मुझ निर्भागिनी ने थोडा-सा पिण्याक (खली) प्राप्त करके, उसके एक टुकडे से श्री सोमेश्वर की पूजा की, एक टुकडा अतिथि का दिया और एक टुकडा स्वय खाकर उपवास का पारण किया। आप तो बडी पुण्यवती है— जिसके पिता, भाई, पति और पुत्र राजा है। आपने ७२ लाख की बाहुलोड कर प्रजा के लिए उठवा दिया है। सवा करोड मूल्य की सामग्री से देवकी पूजा कर अगणित पुण्य अर्जन किया है। यदि क्रोध न करे तो यह भी बता दूँ कि तब भी मेरा पुण्य आपसे अधिक है क्योकि यह दरिद्रावस्था मे सत्पात्र से लेकर सत्पात्र को दिया गया दान है।' सेठ जीवदेव सम्मानित था, इसका कारण उसने 'मुनियो को आहार देना' समझा।[३] एक अन्य अवसर पर सेठ ने सकल्प किया कि 'यदि इस उपसर्ग से मै बच जाऊँ तो किसी तपस्वी को अवश्य आहार दूँगा।'[४] लोगो का विश्वास था कि ब्राह्मणो को खिलाया हुआ अन्न पितरो को स्वर्ग मे पहुँचाता है।[५] जो किसी को लवण तक न दे, वह पापी मृतक समान है। उसका गर्भ मे ही मर जाना उत्तम है। खानपान के व्यवहार मे जातीय ऊँच नीच की भावना को बढावा देने वाली कोई घटना विवेच्य वाङ्मय मे नही उपलब्ध होती।

मुल्ला दाऊद द्वारा वर्णित महर के ज्यानार मे बत्तीसो प्रकार के व्यजन थे। मास के मसोरे और कटवा भरे हुए सौ-सौ दोने परसे गए। अच्छे सधान (अचार) लाख-एक थे। गिन-गिन कर चौरासी हाडिया सभाल-सभाल कर नाई परस रहे थे। बहत्तर प्रकार के खाद्य तथा भ्रज्य (भुने, थे।[७] पूर्व भारतीय वाङ्मय मे खान-पान

१ प्रचि० २ ६४। २ वही, ३ ९४। ३ जिण० ४९४। ४ वही, ४८७।
५ प्रचि० १ ५९। ६ जिण० १४० १४१। ७ चा० १५२।

सम्बन्धीं विशद चर्चा करने की परम्परा नही सुलभ है। सभवत यह काय भारतीय सभ्यता के प्रतिकूल समझा जाता रहा है। इस सम्बन्ध मे सलाप करने वाला विदूषक होता था। मुसलमानो शासनकाल से खानपान सम्बन्धी विस्तृत वणन करने की प्रथा का प्रचलन होता है। परवर्ती साहित्य मे जायसी के पद्मावत मे यह द्रष्टव्य है। अकबर नामा (पृ० ४२६) मे उल्लिखित है कि हैरात मे हुमायु के प्रात कलेवे मे तीन सौ और दोपहर के भोजन मे बारह सौ प्रकार की तश्तरी परोसी गई। अकबर के भोजन मे सौ प्रकार हर समय रहते थे। सूर ने सत्तरह सौ प्रकार के भोजन नन्द भवन मे कृष्ण के आरोगने के समय लिखे है—नन्दभवन मे कान अरोगे

सतरह सौ भोजन तहँ आए।[१]

विवेच्य युग का यह मान्यता है कि वीर पुरुषो का सम्पूण जीवन सुख विहार, भोजन तथा शुभ वचन-काव्यादि विनोदो-मे व्यतीत होता है—सुख्ख सुभोअण सुभ बअण देवहा जाइ सपुन्न। भोजन मे सामान्यत दूध तथा उससे निर्मित पदार्थ, भात, साग मीठा और फल होते थे।[२] सत्तू का भी प्रचलन था।[४] कोदई निकृष्ट भोज्य था।[५]

खाद्य पदार्थों मे ऐसे तत्वो का अभाव है जो तामस मनोवृत्ति का उत्तेजक हो ओर जिनसे भारतीय मूल विचारधारा पर प्रतिकूल प्रभाव पडन की सभावना हो। मुसलमानो के खानपान मे प्याज, लहसुन, शराब तथा भाग की प्रधानता है। यहा यह स्पष्ट कर देना अपेक्षित है कि मुसलमानो का खाद्य सम्बन्धी उपरोक्त कथन एक हिन्दू द्वारा है। कौल धर्मावलम्बो[६] को मास भक्षी और म्लेच्छो[७] को सवभक्षी दर्शाया गया है। मुल्ला दाऊद द्वारा महर के भोज मे मास के सरुचि वणन[८] के अतिरिक्त मास खाना उपेक्षणीय माना गया है।

१ पद० १०१४, वा० श० अग्रवाल पद्मावत की मूल और सजीवनी व्याख्या, पृ० ७२६ की टिप्पणी से उद्धृत।

२ की० १ १८ ५०।

३ प्रा० पै० २ ९३, वीरा० ११८, जिण० ४१२, ४२४, ढौ० ५८७, चादा १४३-१५२, वर ३ २८।

४ जिण० ३३।

५ जिण० ४१४।

६ प्रा० पै० २ १०७, पृ० ७ १५ १।

७ वही, ७ १५ २।

८ चा० १४३-१४५।

पान के अभाव मे खान पान का वणन अपूण होगा। आर्येतर[१] वस्तु होने पर भी यह इतना प्रचलित था कि ताम्बूल को पीक और उगाल को उलीचने से कीचड हो जाता था—जु नष्षइ मार तबोर सुढार। उलिच्चत कीच त होइ उगार।[२] वर्ण रत्नाकर [३ २८ ख] मे इसके तेरह गुणो—कटु तिक्त, कषाय, क्षार, उष्ण, मधु, मुखशोभक, सुरस, स्वादु, सरस स दीपक, कामाग्निक, सम्मानक तथा पवित्र—का उल्लेख है। कुछ परिवतनो सहित पान के तेरह गुणो की चर्चा अन्य कालो के योग रत्नाकर[३] जल्हण की सूक्ति मुक्तावली [१२५८ ई०], ध वन्तरि निघटु की एक हस्त-लिपि,[४] नरहरि के राज निघटु[५] [१४५० ई०] तथा प्रस्ताव रत्नाकर[६] [१५५७ ई०] मे भी उपलब्ध है। शिवराज अथवा शिवदास रचित ज्योतिर्निबन्ध[७] मे २४ और सुभाषित रत्नाकर[८] मे पान के हजारो गुणो का उल्लेख है।[९]

१ देखिए—एल० वी० रामस्वामी अय्यर जनरल आव ओरियण्टल रिसच मद्रास, भाग ५ पृ० १-१०, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० २३-२४, राजशेखर विरचित प्रबन्ध कोष प्रो० प्रह्लाद प्रधान विश्वभारती खण्ड ४, पृ० १६४-१६५, यू० वेंकट कृष्णराव जनरल आव ओरि-यण्टल रिसच, मद्रास, खण्ड १७, पृ० १५८, डा० पी० सी० बागची प्री आयन एण्ड प्रीद्रवेणियन इन इडिया, जाजस लिब्रन मथलो फ्रेन्च जरनस फ्रास एशी०', सगीन, माच अप्रल १९४९ की इगलिश अनुवाद जनरल आव ओरियण्टल रिसच, मद्रास, खण्ड १७।

सस्कृत साहित्य मे इसकी चर्चा राजशेखर सूरि के प्रबन्ध कोष, बराहमिहिर के वहत्सहिता, कामसूत्र (१४ ८ ९), दशकुमार चरित, शुक्रनीतिसार से होती है। बौद्ध साहित्य के शान्तिदेव के शिक्षा समुच्चय (पृ० ८-९), बुद्ध घोष के विसुद्धिमग्ग (कौशाम्बी स० ९ ७९) धम्मपद (अट्ठक० ३ ९०८), जातक (१ २६६, ९१, २ ३२० ६ ३६९) मे ताम्बूल का प्रयोग मिलता है। शिलालेखो मे मडसोर सिल्क वीभस इन्स्क्रप्शन (फलीटस गुप्ता इ स्क्रप्शन सख्या १८, सन ४७३ ई० तथा धनिक के नागर शिलालेख सन ६८५ मे इसकी चर्चा है। २ पृ० ४ २५ ३ ४।

३ आनन्दाश्रम, पूना से १९०० मे मुद्रित। ४ भाडार कर इन्स्टटयूट पूना का हस्तलिखित ग्रन्थ, स० ९२३, १८८४-८७। ५ आनन्दाश्रम पूना १८९६ (७)।

६ भाडारकर इस्टीटयूट, पूना का हस्तलिखित ग्र थ स० ३२०, १८८४-८७।

७ आनन्दाश्रम पूना १९१९। ८ लेखक अज्ञात, सम्पा० कृष्ण शास्त्री, पृ० २४२।

९ मानसोल्लास एक अध्ययन डा० शिवशेखर मिश्र, पृ० २५५-५६ से उद्धृत।

८ शय्योपभोग—शय्योपभोग के सम्बन्ध मे वण रत्नाकर म उल्लिखित है—"सफुर चित्रशाली एक देवराजगृह ततसमान, तकरा भीतर हाथिक दान्त क पवा, मानिक क पासि, मरकत क शिरवा सोना कपटा, स्फटिक दडा पद्मरागक दडिया, अहुठ हाथ दीघ, अढाय हाथ फाण्ड, सेजओट एक पालु, तका ऊपर कम्बल चारि, सकलात पाच, खरल दश, पली कोली, स्निग्ध खटक धुत्राक आह० अइसन मझआतरि उनच एक पालु० नेतक माडल गेडुआ एक, सुफुर विराल एक० चारिहु कोन वान्धल चदोआ माडल ऊपर देल अछ० कप्पूरगुडी त घालल अछ० करक मुसरी एक ता चालइते अछ० तकरे खेहे भरइ अछ० खड एक छुरी एक, चतु समक सोप एक, वाजीकरण सम्भृति लइ उपनीत कइलि अछ० नायक योग्य पचफल सयुक्त, सुरभि, शीतल, श्वेत, मोट, विचित्रित ताम्बुलपात्र एक, पानी भृङ्गार एक, सोनाक, शुभ०य रत्न खचिक जल सहिति झारी एक, सेजका समीप उपगति कइल अछ० मालती मनओदा, लेवारि, करुण, सुवण केतकी, चम्पक प्रभृति अनेक सुरभि पुष्प से उपगत कएल अछ० प्रतिष्ठित, आप्त, परम्परीण, विश्वासयोग्य ये गोआर, कोइरि, कुलुवि रजक प्रभृति जनदश नओवति नियुक्त भेल अछ० नाउ जनदुइ प र सम्हालन करइते अछ० परिचारिका दुइ पानकर्पूर लए हाथ दइते अछ० योग निद्राञ शयन भेल अछ।"

उपरोक्त वणन मे एक उच्चकुलीन सभ्रान्त व्यक्ति के शयनगृह, उसके शय्या के स्वरूप तथा सोने के ढङ्ग का उल्लेख है। अन्यत्र, गोबर नगर के महर की लडकी जिस पलङ्ग पर सो रही थी, वह पाव रखते ही भूमि से जा लगती थी। वह रेशम से बिनी और फूलो से उभाडी हुई थी। वह सोने की पानी चढाई हुई और हास (?) की कुदी की हुई थी। उस पर सुरग चीर बिछी थी जो धरती पर चारो ओर लटकती थी। वह शय्या बहुतेरी भाति की कलियो और फूलो से सुवासित थी।[१] वेश्या द्वारा चित्रसारी की रचना तथा शय्या का विन्यास वण रत्नाकर (४ ४० क) मे द्रष्टव्य है। सामान्यत , 'सउरि सुपेती'—गद्दा तथा चादर का सजाना पूस माह मे होता है[२] किन्तु बिना प्रियतम के यह व्यर्थ दुखप्रद हो जाता है।[३] कौल धर्मावलबियो को चर्मखण्ड की शय्या अच्छी लगती है।[४] लडकी की बिदाई मे शय्या देने की प्रथा थी।[५]

९ यानोपभोग—विवेच्य युग मे यात्रा परम कष्टप्रद थी।[७] माग विघ्न बाधाओ से पूण, सिंह तथा चोरो से भयाक्रान्त रहता था।[८] प्रवास वही करता था

---

१ वर, ३ २६। २ चा० १६५। ३ वही, ३४८। ४ वही, ५१।
५ प्रा० प० २ १०७। ६ चा० ४२, वीरा० २२, जिण० २६६, चा ३३७।
७ वीरा० ५७। ८ वही, १००।

ढोला मारू रा दूहा (घटना स्थल-राजस्थान) मे ऊँट को 'जिहाज (जहाज) शब्द से सम्बोधित किया गया है।[१] भूल से पैर बँधे रहने पर भी ढोला-मारू क ऊँट को ऊमर डाकू के तेज घोडे दौड मे नही पा सके।[२] मरुभूमि का ऊँट सर्वोत्तम वाहन है, 'ढोला मारू रा दूहा' क अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है। ऊँट युद्ध मे भी काम आते थे। कुमारपाल के सेनापति चाहड ने १४०० साढनियो मे सपादलक्ष के राजा पर आक्रमण कर उसको पराजित किया।[३] मूलराज ने भी साढनी पर चढ कर सपादलक्ष और तिलग देश क राजाओ पर धावा बोला था।[४] 'करहा काछी कालिया'[५] (कच्छ देश के काले ऊँट) सर्वोत्तम ऊँट होते थे।

सामान्यत, चतुरगिणी सेना के सदभ मे, देवताओ के वाहन तथा अलकार रूप मे रथ और विमान का परम्परागत वणन हुआ है। त कालीन समाज मे इनका प्रयोग प्रतिवादस्वरूप एकाध स्थल पर दृष्टगत है। यथा, गोबर युद्ध मे लोरिक के पक्ष मे कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित सुन्दर रथ सजाये गये और सौ-सो धानुष्क एक-एक पर सवार हुए—साजे सुरथ बिनानिहि गढे। सउ-सउ धानुक एक-एक चढे। (चादा० ११६)। विद्यावल से जिणदत्त ने मनोवाछित विमान को बुलाया और जगमगाता हुआ वह विमान वहा पहुँच गया।[६]

स्त्रियो, बरातियो तथा अस्वस्थ लोगो का ले आन तथा ल जान के लिए सुखासन, पालकी अथवा डाडी का प्रयोग हाता था।[७] जल-वाहन मे वोहिथ और नाव उल्लिखित है।[८]

ख—मनोरजन

विवच्य जीवन मे सुख विहार, उत्तम भोजन तथा काव्यादिविनोदो का उपभोग महत्त्वपूर्ण समझा गया है—

सुक्ख सुभोअण सुभ वचन देवहा जाइ सपुन्न। की० १ १८ ५१

तदनुकूल लोक-जीवन सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, आतिथ्य सत्कार, शिक्षा, विवेक तथा कोतुक आदि मे बीतता था—

---

१ ढोमा० ६४३। २ वही, ६४३ ६४६। ३ प्रचि० ४.१६६।
४ वही १ ९५। ५ वही, ४६६। ६ जिण० २६० ६१। ७ सुखासन, प्रच, १०२, चादा ४८, पालकी, चादा० २४६, वीरा० १३, डाडी चादा० १५३।
८ वोहिथ जिण० १८४, १६०, २४८, वर० ८ ७० ख, ७६ क, नाव चादा० २३४ २८७, २६३ बर० ८ ७५ ख प्राप० १।

जिसके घर मे स्त्री नही होती, या घर मे नमक तक नही रहता, या अकुलीन कलह करती या ऋण से दबायल होता, या योगी होकर घर से निकल पडता है शुभ लग्न मे[२] यात्रा प्रारम्भ करते समय ब्राह्मण वेद पुराण का उच्चारण कर कामिनिया मङ्गल गीत गाती थी और पचवाद्यो की रुनझुन होती थो।[३] लोग झु चलत तथा सबल साथ रखते थे।[४] माग मे नागरिको द्वारा परदेशी का सम्मान था।[५] राजा महाराजाओ के प्रयाण का विशद वणन वण रत्नाकर (५ ४३-४८ द्रष्टव्य है।

यातायात के साधनो मे नैमिनाथ (द्वारिका) के विवाहोत्सव पर घोडा, ह तथा रथ , जिणदत्त (बसनपुर) के विवाहोत्सव पर घो ा, सुखासण (पालकी), डाडी, हाथा तथा विमान,[७] चादायन अहिरिन (रायबरेली, उत्तर प्रदेश) के विव त्सव पर डाडी तथा घोडा[८], वस्तुपाल (गुजरात) की तीर्थ यात्रा मे घोडा साठनी[९], वण रत्नाकर (बिहार) के आखेट मे रथ, हाथी, घोडा और ऊँट जिणदत्त (बसनपुर) के प्रवास से घर लौटने समय घोडा, हाथी और ऊँट[१] यु घोडा, हाथी तथा रथ,[११] और वण रत्नाकर (बिहार) के दुग वणन मे हाथी, घ तथा नाव[१२] वाहनो का प्रयोग हुआ है। गावो मे घोडो और बैलो का मुख्य प्रच है।[१३] घोडे तथा हाथी सामाजिक रहन-सहन के स्तर के मापदण्ड स्वरूप थे।[१]

जयचन्द की सेना मे ८० लाख घोडे थे[१३ख]। प्रवास से घर आते स जिणदत्त ने १० लाख घोडे इकटठा कर लिये थे।[१४] इब्राहीम शाह, बीसलदेव रूपचन्द के यहा और जोनपुर के तुक बाजार मे लाख लाख घोडे दृश्यमान हैं। हाथा घोडो की बहुलता के कारण बहुत से बेचारे कुचल जाते थे और मार्ग चलना दुर्लभ हो जाता था।[१६] मूलराज ने तैलगराज से तथा कुमारपाल ने सपादल राज से दस, दस हजार घोडे छीन लिये थे।[१७] दस सहस्र तेजस्वी घोडो का सोमे

---

१ **बीरा०**, ३६। २ **बीरा०**, ३६। ३ **वही**, १४। ४ **वही** ९७-९८, **सामा** ५ **चा०**, ३०२, ३०७ **सामान्य**। ६ **नेमिनाथ**, १५।

७ **जिण** १२१-१२२। ८ **चांदा**, ४०। ९ **प्रचि०**, ४ १८७। ९क **व** ५ ४९ **क**। १० **जिण** ४५१। ११ **प्रच०** १ ६८ **चा०** ११६। १२ **व** ८ ७५ **क**। १३ **प्रचि०** ३ १२४। १३**क पृ०** ४ २१, १-२।

१३**ख पृ०** ५ ४५ ६। १४ **जिण०** ४५१। १५ **की०** ४ ११ ४१, **बीरा० चादा** ८७, **की०** २ २७ १५६। १६ **की** २ १७ ६४, ७ ६५, १११, ३ ८ ३ ११५, ४।१७। १७ **प्रचि०** १ २५, ४ १६६।

पत्तन (गुजरात) मे आयात होता था ।[१] पूगल (राजस्थान) मे एक-एक घोडे लाख-लाख रुपये मे मिलते थे ।[२] सुलतान इब्राहीम शाह के घोडो के मूल्य के समक्ष सुवर्ण का पर्वत मेरु भी कम जान पडता था ।[३] वस्तुत युग की सर्वोत्कृष्ट महत्वपूर्ण वस्तुओ मे घोडो की मान्यता सर्वोपरि थी । बसीठो ने राजा रूपचद के आक्रमण को रोकने के लिए मनोवाछित धन अथवा घोडे देने का प्रस्ताव रखा ।[४] राजमती के दायज मे ताजी और केकाण घोडे प्राप्त हुए थे ।[५] राजा बीसलदेव ने ब्राह्मणो की विदाई मे ताजी घोडो का पुरस्कार किया था । विवेच्य युग मे घोडो का इतना प्रचलन था कि रानी मारवणी विलाप करती हुई व्यक्त करती है कि 'जइ तू ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि । तउ म्हे घोडा बाधिस्या, काती कुडिया खेत्रि ॥' ढोमा० १४६ ॥

—हे ढोला, यदि तुम फाल्गुन या चैत मे नही आये तो हम ही कार्तिक मे फसल कट जाने पर, घोडे पर जीन कसेगी । कयमास वध के सदर्भ मे एक दासी घोडे पर चढ कर आखेट के लिए जगल मे गए हुए पृथ्वीराज के पास गई और उन्हे तत्क्षण राजमहल मे बुला लाई ।[७]

ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य (मिथिला) लिखित वर्ण रत्नाकर की आखेट-वर्णना मे घोडो की २४ जातियो और प्रयाण-वर्णना मे १८ देशातरी किस्मो का नामोल्लेख हुआ है । मुल्ला दाऊद (रायबरेली उ० प्र०) ने अपने चादायन (११८) मे घाडो की १० जातियो का वर्णन किया है । उत्तम नस्ल वाले ये सभी घोडे दक्षिण-पश्चिमी एशियायी देशो के प्रतीत होते हैं ।

हाथी—वर्ण रत्नाकर की आखेट वर्णना मे हाथियो के आठ और प्रयाण-वर्णना मे सात प्रकार का नामोल्लेख है ।[८] भद्र, दषिनदड, मनिकदड और वघेल जाति दोनो सूचियो मे उपलब्ध है । पुनश्च, इसी ग्रन्थ मे अन्यत्र यह भी उल्लिखित है कि श्वेतहस्ती, गन्ध हस्ती, सदामद, वारुवघेल, भद्र जाति प्रभृति अनेक हाथि ते पाचे, साते, नवे, एगारहे, पन्द्रहे अनेक घल साजि अनेक योध चलल अछथि ।[९] इस सूची मे पाच प्रकार के हाथी की गणना है जिसमे प्रथम तीन का मेल अन्य सूचियो से नही होता है । पृथ्वीराज रासउ (७ १०) मे हाथी के किस्मो मे चार प्रकार के हाथियो का वर्णन है । गयमत्त, सिंघली तथा धुरगा के नामोल्लेख के साथ उनक गुणो की चर्चा

१ प्रचि० १ २९ । २ ढोमा० ८३ । ३ की० ४ ११, ४१ । ४ चादा ९४ । ५ वीरा० २१ । ६ वही, ११ । ७ पृ० ३ ४ । ८ वर० ५ ४७ ख, ५।४५ ख । ९ वही, ५ ४३ ख ।

है। पृथ्वीराज रासउ (७ १० ५) का 'सिंघली' वर्ण रत्नाकर (५ ४५ ख) के सिंघल-वारु से कुछ साम्य रखता है। पद्मावत (४५) मे भी सिंघली हाथी के सम्बन्ध मे लिखा है कि—सिंघल के बरन सिंघली। एकेक चाहि सो एकक बली ।।

पृथ्वीराज रासउ मे पृथ्वीराज-जयचद-युद्ध के सदर्भ मे लिखा है कि—

'दल समुह दतिय सघन गणि को कहइ अगणित्त।
मनु पव्वय विधि चरण किय सहि दिष्षिय मयमत्त ।।७ ८।।

—जयचद की सेना के मुख भाग मे घने हाथी थे, उनकी गणना करके कौन कह सकता है, अगणित थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वत को विधाता ने चरण प्रदान कर दिया है। वे सभी मदमत्त दिखाई पडते थे।

शहाबुद्दीन गोरी की सेना मे दस हजार हाथियो का वैभव था। श्युआन च्युआग के अनुसार हर्ष की सेना मे ६० सहस्र हाथी थे। हाथियो को इतनी भारी सेना बनाने के ऐतिहासिक कारण कुछ इस प्रकार जान पडते है। गुप्तकाल मे सेना का सगठन मुख्यत घुड सवारो पर आश्रित था, जैसा कालिदास के वर्णनो मे भी आया है। गुप्तकालीन राजाओ ने यह प्रकाय सभवत पूर्ववर्ती शको से ग्रहण किया होगा। शको का अश्व-प्रेम ससार प्रसिद्ध था। गुप्त काल मे अश्व शक्ति की वृद्धि पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। इसकी प्रतिक्रिया होना अपेक्षित था। घुडसवार सेना के आक्रमण को सामने से विफल करने मे हाथिया का प्रयोग सफल ज्ञात हुआ। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि गुप्त साम्राज्य के बिखरने पर देश मे सामत, महासामत तथा माडलिक राजाओ की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई और प्रत्येक न अपने-अपने लिए दुर्गो का निर्माण किया। दुर्गों के तोडन मे घाडो की अपेक्षा हाथी अधिक उपयुक्त प्रतीत हुए। हाथियो को 'फौलादी दीवार' कहा गया है। ये दुश्मन की वाणवृष्टि को अपेक्षाकृत अधिक सहन कर सकते थे। तत्कालीन सेनापतियो का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि घुडसवारो के आक्रमण से रक्षित होने का उपयुक्त साधन हाथियो का समूह ही हो सकता है। हाथियो का अन्य उपयोग दुर्ग अथवा गढ के तोडने मे भी था। हाथियो पर निर्मित सुदृढ अट्टाल या बुर्ज मे बैठे सैनिको को पहाडी किलो को ध्वस करने मे सरलता होती थी।[३] किन्तु हाथी को सेना के मुख भाग पर रखने मे एक बडी बुराई यह थी कि हाथियो के भागदौड मे अपना ही दल कुचल जाता था। ऐसा पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध मे दृश्यमान हुआ।[४]

१ पृ० १० २३ ३। २ वा० श० अग्र० हर्षचरित, सांस्कृ० अध्य०, पृ० १३ से उद्धृत। ३ वही, पृ० ३९ ४०। ४ पृ० ७ २५ ३।

ढोला मारू रा दूहा (घटना स्थल-राजस्थान) मे ऊँट को 'जिहाज (जहाज) शब्द से सम्बोधित किया गया है।[1] भूल से पैर बँधे रहने पर भी ढोला-मारू के ऊँट को ऊमर डाकू के तेज घोडे दौड मे नही पा सके।[2] मरुभूमि का ऊट सर्वोत्तम वाहन है, 'ढोला मारू रा दूहा' क अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है। ऊँट युद्ध मे भी काम आते थे। कुमारपाल के सेनापति चाहड ने १४०० साढनियो मे सपादलक्ष के राजा पर आक्रमण कर उसको पराजित किया।[3] मूलराज ने भी साढनी पर चढ कर सपादलक्ष और तिलग देश क राजाओ पर धावा बोला था।[4] 'करहा काछी कालिया'[5] (कच्छ देश के काले ऊँट) सर्वोत्तम ऊँट होते थे।

सामान्यत, चतुरगिणी सेना के सदभ मे, देवताओ के वाहन तथा अलकार रूप मे रथ और विमान का परम्परागत वणन हुआ है। त कालीन समाज मे इनका प्रयोग प्रतिवादस्वरूप एकाध स्थल पर दृष्टगत है। यथा, गोबर युद्ध मे लारिक के पक्ष मे कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित सुन्दर रथ सजाये गये और सौ सो धानुष्क एक-एक पर सवार हुए—साजे सुरथ बिनानिहि गढे। सउ-सउ धानुक एक-एक चढ। (चादा० ११६)। विद्यावल से जिणदत्त ने मनोवाछित विमान को बुलाया और जगमगाता हुआ वह विमान वहा पहुँच गया।[6]

स्त्रियो, बरातियो तथा अस्वस्थ लोगो को ले आन तथा ल जान के लिए सुखासन, पालकी अथवा डाडी का प्रयोग होता था।[7] जल-वाहन मे वोहिथ और नाव उल्लिखित है।[8]

ख—मनोरजन

विवच्य जीवन मे सुख विहार, उत्तम भोजन तथा काव्यादिविनोदो का उपभोग महत्वपूर्ण समझा गया है—

सुख्ख सुभोअण सुभ वचन देवहा जाइ सपुन्न। की० १ १८ ५१

तदनुकूल लोक-जीवन सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, आतिथ्य सत्कार, शिक्षा, विवेक तथा कौतुक आदि मे बीतता था—

---

१ ढोमा० ६४३। २ वही, ६४३ ६४६। ३ प्रचि० ४ १६६।

४ वही १ ९५। ५ वही, ४६६। ६ जिण० २६० ६१। ७ सुखासन, प्रच, १०२, चादा ४८, पालकी, चादा० २४६, वीरा० १३, डाडी-चादा० १५३।

८ वोहिथ जिण० १८४ १६०, २४८, वर० ८ ७० ख ७६ क, नाव चादा० २३४ २८७, २६३ बर० ८ ७५ ख प्राप० १।

सम्मान दान विवाह उच्छव गीअ नाटक कव्वही ।
आतिथ्य विनअ विवेक कौतुक समय पेल्लिअ सव्वही ।।
की० २ १७ ६'-६ ।।

वस्तुत , आलोच्य युग मे 'रास और फागु' की प्रधानता थी । रानियो का काय विविध प्रकार के कलात्मक विनोद, छद रचना तथा सुरत प्रसग द्वारा राजा का मन हरना तथा गात विद्या, ज्ञान की अभिव्यक्ति और हाव-भाव एव विभ्रम धारण कर राजा का चमत्कृत करना था ।[१]

कला विनोद छद अरु करहि, मुरय पमगि राइ मन हरहिँ ।
गीत बिनान जाण पयडति, हाव, भाव विभ्रम मुधरति ।। जिण० २८०

उनका 'नाद विनोद कथा आगली' होना अपेक्षित था । हाटो मे छरहटा (छलकृत्य) के प्रेक्षणक (तमाशे) होते रहते थे, जि हे पुरुष और स्त्रियाँ निकल-निकल कर देखते थे । वटु राम का रामायण कहते, गीत गाते और अच्छा नृत्य करते थे । बहुरूपिए अनेक वेष धारण करते थे, जिन्हे चलकर देखने के लिए बाल-वृद्ध सभी आते थे । वे राधा-कृष्ण के सु दर छद्म लगाते, गीत गाते तथा पवारे कहते थे । नट नृत्य करते और उन नृत्यो पर ताल बजते थे । भ्रम मे डालने वाले अपार खेल तथा चरित्र होते थे । घर-घर मे बधावा और मगलाचार होता रहता था । हिंडोले पडे रहते थे, जिन पर नारिया झलती थी । अन्य युवा बालिकाएँ गीत गाती थी ।'[२]

विनोद के स्तर एव प्रवृत्ति के अनुशीलन के लिए तत्कालीन विनोदको की समीक्षा अपेक्षित है । आलोच्य वणरत्नाकर (३ २२ ख, २३ क) के अनुसार विनोदको का दल यह है —श्रोत्रिय, आध्यायिक, मोहुर्त्तिक, मणि मर्म्मज्ञ, सारण्यकुशल, गन्धकार, छुरिकार, मल्ल, आम्नायिक, ऐन्द्रजालिक, भाषाविद, लिपिवाचक, श्रुतिधर, महाकवि, शास्त्रज्ञ, विषवैद्य, नरवैद्य गजवैद्य, अश्ववैद्य, चूडामणि, कुतूहली, भार्गव, जोध, वयकार तथा वादनिक । इनमे कोई भी व्यक्ति 'खाओ पीओ, मौज करो' के दल का नही लगता । ये, जीवन के परमलक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्वद्धनकर्त्ता है । इनके द्वारा मात्र सुखोपभोग नही, अपितु जीवन के सर्वाङ्गाण विकास मे सहायता भी मिलती है । अन्यत्र वणरत्नाकर की 'चतु षटि कला वणना' (४ ३४ ख) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिकाश मनोविनोद, कला का रूप ग्रहण किए हुए हैं । यथा—नृत्य, सगीत, वादन, चित्ररचना, इन्द्रजाल, वाकपाटव, शास्त्र-ज्ञान, भाषाज्ञान, जुआ-

१ जिण० ६६ । २ वादा० २८, ३१ । ३ वही, २८, ३१ ।

शतरज प्रहेलिका आदि । फलत , कौतुक की उदात्तता देवताओ को भी यहा आकर उसे देखने के लिए उत्प्रेरित करती है—

> कउतिग आया छइ देवता ।
> मुरग थी आविया सुरह बिमाण । वीरा० १२

देवगण कौतुक देखने के लिए स्वग से विमान पर आते हैं ।

कन्नौज मे कवि चद ने '८० सहस्र शूर और घने सामतो के मध्य मे कविता की[1]' जिससे ज्ञात होता है कि लोगो के मनोरजनार्थ बैठने के लिए विशाल मडपो की व्यवस्था का परम्परा विद्यमान था ।

इब्राहीम शाह द्वारा असलान पर आक्रमण करने के पूव कीर्तिलता (४ ३४ १३६-१३८) मे लिखा है कि—'सिकार खेलन्ते, तीर मेलन्ते वन विहार जल क्रीडा करन्ते मधुपान बसन्तोत्सव करी परिपाटी राज्य सुख अनुभवन्ते ।'

—शिकार खेलने, तीरन्दाजी करने, वन विहार तथा जलक्रीडा करने और मधुपान तथा रत्योत्सव की परिपाटी का पालन करते हुए मुलतान ने राज्य सुख की अनुभूति की । इससे ज्ञात होता है कि आक्रमण करने के पूर्व सेना मे उपरोक्त मनोरजक कायक्रमो को पूरा करने का विवेच्य काल मे सभवत कोई विशेष प्रचलन था । यद्यपि अन्यत्र इसके समर्थन मे प्रमाण नही उपलब्ध है ।

आधुनिक काल मे 'द्यूत' का तात्पय जुआ से है । किन्तु वर्ण रत्नाकर (मिथिला) के 'द्यूत वर्णना' प्रकरण (४ ३७-३९) मे शतरज का विशद विवरण दिया गया है । पुनश्च, प्रद्युम्न चरित (उत्तर प्रदेश) के 'जूवा'[2] खेल मे कुक्कुट-युद्ध द्वारा जय-पराजय का निणय किया गया है । कौडी वाले जुवे के अतिरिक्त सयोग पर हार जीत का निर्णायक यह खेल जुआ के रूप मे आज भी प्रचलित है । समकालीन चतुरग क्रीडा आज कल से कुछ भिन्न है । यथा, ऊँट गोट के स्थान पर नाव व्यवहृत है जबकि प्राचीनकाल मे यहा रथ का प्रयोग होता था । आजकल दो हाथी, दो घोडे आदि की स्थापना की जाती है किन्तु विवेच्य साहित्य मे चार-चार की व्यवस्था है । सभवत चार व्यक्ति एक साथ खेलते थे ।

तत्कालीन वाड मय के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि क्रीडा-विनोद की ओर लोक रुचि अपेक्षाकृत कम थी । मात्र मानसोल्लास (१२वी सदी) मे वर्णित

१ असिय सहस तिहि सथ्यि । सकल सूर सामत घन मधि कविता किय चन्द ।
पृ० ५ ३०, ३१ । २ प्रच० ६१६-६२० ।

अनक क्रीडाओ का सौ वष (१४वी सदी) के साहित्य मे नामोल्लेख तक भी नही मिलता। यथा, गजवाह्याली वाजिवाह्याली, अक लावक युद्ध, मेषयुद्ध, महिष युद्ध, पारावत, सारमेय, श्येन, भूवर, आ दोलन, सेचन, शादल, बालुका, ज्यात्स्ना, सस्य अक्ष, वराटक, फणान्द्र, पजिका, तिमिर तथा वीर आदि क्रीडाएँ। सभव है, राजनीतिक परिस्थितियो मे प्रत्यावतन के कारण समसामयिक जीवन मे यह स्थिति उत्पन्न हुई हा।

यह उल्लेखनीय है कि गजनी मे शहाबुद्दीन गोरा आदि हदफ[1] (लक्ष्य भद) के खेल मे रुचि लेते थे तो भारत के जयचद तथा पृथ्वीराज प्रभृति राजन्य की दृष्टि मे कामक्रीडा मे रत रहना ही जीवन का तत्वपूण मत्र था। 'तत्त धरम्मह मतु यह रत्तह काम सु वित्तु।' पृ० ५ ३५ १। फलत, तत्कालीन समाज मे ऐसी रुचि का अभाव मिलता है जो महाभारत काल मे कोरव पाण्डव एकलव्य तथा द्विजराज द्रोणाचाय आदि का शस्त्र विनोद के प्रति उपलब्ध था। यहा तक कि 'वर्ण रत्नाकर' सदृश वणक ग्रन्थ मे परम्परागत प्रसिद्ध शस्त्र विनोदो की चर्चा तक भी नही हुई है, जबकि दो सौ वष पूव सोमेश्वर कृत मानसोल्लास मे खडग, कामुक (धनुष विषयक हस्तलाघव), कुन्त, गदा चक्र आदि विनादो तथा राधा, खर्जूरी, पत्रच्छेद, यमलाजुन, विकटाजुन, अद्धच-द्राह्वय और माला-विद्यावर प्रभृति बेधो का विशद विवरण सुलभ है। मानसोल्लास के अध्ययन स यह अवश्य ज्ञात होता है कि ये शस्त्र विनोद मात्र मनोरजन के लिए प्रचलित थे। इनका उत्सव होता था जिसमे राजा निर्जीव लक्ष्यो को बेधता था। विवेच्य कालीन मनोरजक कायक्रमो मे प्रमुख कामक्रीडा[2] तथा शास्त्र विनोद[3] परिवर्वित युग के प्रति अनुरूपता नही स्थापित कर पाये। उनमे उदात्त भावना चाहे जितनी समाहित हो।

मनोरजन के साधना मे त्योहार और उत्सव भी थे। कजरी, तीज, करवाचौथ, दशहरा, दिवाला तथा होली त्योहार मनाये जाते थे। पुत्रोत्पन्न, विवाह, छठी, अभिषेक, स्वजन-मिलाप, मदिर निर्माण तथा उस पर कलशदड की प्रतिष्ठा, ध्वजारोहण, तीर्थ यात्रा आदि अवसरो पर उत्सव-समारोह के आयोजन की प्रथा थी।[4] पृथ्वीराज रासो के अन्य प्रतियो मे नवरात्रि, शिवरात्रि तथा वसतोत्सव का भी उल्लेख है।[5]

---

१ पृ० १२ १२ २। २ दे० 'पुरुषाथ चतुष्टय' तथा 'कला' का अध्याय।

३ दे० 'कला' अध्याय मे साहित्य।

४ त्योहारो और उत्सवो के सदर्भ के लिए परिशिष्ट की 'सामाजिक शब्दावली' देखिए।

५ देखिए 'पृथ्वीराज रासो': एक समीक्षा, वि० वि०, त्रिवेदी, पृ० ६५-११०।

अध्याय ४

सामाजिक उपलब्धियाँ

क-वण व्यवस्था—

हिन्दू सामाजिक सगठन की इस उपलब्धि पर देश विदेश के अनेक समाज-शास्त्र-वेत्ताओ का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट हुआ है। सामान्यतया विश्व का प्रत्येक समाज किसी न किसी रूप मे विभाजित है। अधुना उन्नत समाज ने भी धर्म, अर्थ एव शिक्षा के माध्यम से अनेक वर्गों को प्रश्रय दिया है और वस्तुत ये ही व्यक्तियो के सामाजिक सम्मान एव उत्तमता के स्तर के मापदड के साथ-साथ राष्ट्रीय तथा सामाजिक प्रगति के आधारभूत स्रोत है। समाज का स्वत अनेक भागो मे विभक्त होकर काय करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कि तु भारतीय समाज का मात्र चार भागो मे विभक्त होकर दृढ तथा शाश्वत बना रहना यह एक अनोखी उपलब्धि है। इस परम्परा पर अनेक सशक्त आक्रमण हुए। बाह्य तथा आतरिक प्रतिक्रियाये व्यक्त हुई। किन्तु, यह छिन्न-भिन्न होने के स्थान पर और दृढतर होता गया।

भारत के कृषि-युग मे ज्ञानाजन, सुरक्षा एव धनोपाजन प्रभृति अनिवार्य आवश्यकताओ की उपलब्धि के लिए ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों की उद्भावना हुई थी। समाज को इनकी अपेक्षा थी और ये सामाजिक आवश्यकताओ की उपज थे। सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित तथा सुदृढ करने के लिए प्रत्येक वण के कतिपय सामाजिक उत्तरदायित्व निर्धारित थे। इन नैतिक कर्त्तव्यो के पालन मे वर्ग विशेष तथा समाज दोनो की समुन्नति की भावना निहित थी। समाज मे वस्तुत ब्राह्मण को शिक्षा एव धार्मिक मा यताओ के निर्माण का श्रेय था। एतदर्थ स्वय शिक्षित तथा धार्मिक बन कर लोगो मे शिक्षा एव धर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना उनके व्यक्तित्व का अविच्छेद्य अग था। धार्मिक उपदेश, उसका प्रचार एव प्रसार इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। इन्द्रिय सयम तथा सदाचार इनके जीवन

के अपक्षित गुण थे। इनका जीवन तपोमय था। फलस्वरूप इस वग ने समाज को अनेक प्रभुता सम्पन्न गुरुओ, तप पूत मनीषियो एव प्रकाड दाशनिको को देकर समाज के निर्माण मे अद्वितीय योगदान दिया।

विवेच्य साहित्य मे ब्राह्मण वग शिक्षा के क्षेत्र मे अग्रणी है।[१] सामाजिक बौद्धिक स्तर को समुन्नत करने का श्रेय इन्ही को है। वे षट अग (शिक्षा, व्याकरण निरुक्त, छद, ज्योतिष तथा कला), चार वेद, मीमासा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र-इन चौदह विद्याओ मे निष्णात होते थे।[२] इसीलिए बृहत्कल्पभाष्य[३] ने इन्हे शकुनीपारक (चौदह विद्या स्थान) कहा है। अबूजेद सराफी,[४] अलमसूदी,[५] सिसली निवासी अलइदरीसी,[६] मेगस्थनीज तथा अल्बरूनी प्रभृति विदेशी यात्रियो ने भी भारत के इन विद्वान लोगो को ब्राह्मण कहा है। इनके अभिमत मे भारत के कवि, दार्शनिक, लेखक, ज्योतिषी, चिकित्सक, न्यायवेत्ता तथा ऐन्द्रजालिक लोग ब्राह्मण माने जाते थे। इनके कथन से यह भी सिद्ध होता है कि ब्राह्मण वर्ग की ही इस क्षेत्र मे गति थी और दूसरे वग की नही।[७] इसीलिए श्वानच्वाग ने भारत के लिए ब्राह्मण देश का प्रयोग किया है।[८] मध्ययुगीन विवरणो के अनुसार भी ब्राह्मण समाज का नेता और बुद्धि मे अग्रणी था। ब्राह्मण का काय ही पठन-पाठन तथा अध्ययन मनन का था, इसलिए इनका विद्वान, कवि, दाशनिक एव न्यायवेत्ता आदि होना स्वाभाविक सा प्रतीत होता है।

अपनी तपश्चर्या से ब्राह्मण वग भविष्य की दुघटनाओ से अवगत हो जाने तथा उसका निदान करने मे सक्षम है। वे अपने सस्कारगत लोक कल्याण की भावना से प्रेरित हो नि स्वाथ भाव से उसका विमोचन भी सम्पन्न कर देश और जन का हित करते है। एक अवसर पर एक ब्राह्मण रात को अकस्मात् जगा और उसने आकाश मे शुक्र तथा बृहस्पति से अवरुद्ध च द्रमण्डल को देखकर अपनी गृहिणी को उठाया और चन्द्र मण्डल से सूचित होने वाले राजा का प्राणभय जानकर कहा कि—नृपति की

१ वीरा० १४, चादा ४१, ३०३, ३६५, क्रौ० ३ ३४ १४१, प्रचि० ५ २१०, २१८, २२२, प्रच० ४ ३१८, ५६८, पृ० २ १० ५, ए०आइ०, भाग २, पृ० १३३, १३७।
२ उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ५६ अ। ३ ३ ४५ २३।
४ सिलसिल तुतवारिख पेरिस १८११ ई०, पृ० १२७, दे० अ०भा०स०, पृ० १०५।
५ आइ० सी० एच० भाग २७, स० २, अप्रल १९५३, पृ० ६१। ६ इडी० भाग १, पृ० ७६। ७ ग्यारहवीं सदी का भारत, डा० ज० मिश्र, पृ० १०३।
८ वाटस १, पृ० १४०।

जीवन शान्ति के लिए हवनीय द्रव्य को इकट्ठा करो, हवन करूगा। गृहिणी न प्रतिरोध करते हुए कहा कि इस राजा ने पृथ्वी को तो ऋणमुक्त किया है किन्तु मेरी सात कन्याओ के विवाहार्थ कुछ द्रव्य नही दिया। फिर शान्ति कम करके उसे सकट से मुक्त करने मे क्या लाभ है ? पत्नी के इस कथन की ओर ध्यान न देकर ब्राह्मण ने दो साडो से घिरे विपत्तिग्रस्त नृप की प्राणरक्षा की।[१]

पृथ्वीराज सयोगिता के रस-रास-विलास मे निमग्न होकर छ मास तक राजकाज से सवथा उदासीन एव पृथक रहे। प्रजागण ने सामयिक गतिविधि से अवगत होने के लिए राजगुरु के सान्निध्य मे उपस्थित होकर अपना इच्छा व्यक्त की। इस अवसर पर कवि चन्द ने भी राजगुरु से कहा कि 'तुम समदिष्ट अरिष्ट न देक्खउ।' (तुम समदर्शी हो, अरिष्ट नही देखते)। राजा ने सब कुछ इस सीमा तक विस्मृत कर दिया है कि 'विभउ भुम्मि भ्रतु जाउ सु जाई'—(वैभव, भूमि तथा भृत्य जाएँ तो जाएँ)। कवि च द्र के इस कथन पर राजगुरु ने एक पत्र द्वारा नृपति को समझाया कि 'गोरी रत्तउ तुव धरा तु गोरी अनुरत्त' (गोरी शहाबुद्दीन) तुम्हारी धरा पर अनुरक्त है, और तुम गोरी (सयोगिता) पर अनुरक्त हो) अप्पज्ज बान चहुआन सुनि प्रान रसिक प्रारम्भ करि'—(हे चहुआन, सुन, वाण तो अपने अधीन है, [इसलिए यदि और कुछ तुझसे न हो सके तो उसके ही द्वारा] प्रारम्भ (उद्योग) करके अपने प्राणो की रक्षा कर)। पत्र पढ कर राजा लज्जित हुआ और भूमि पर जा पडा। तदनन्तर उसने केलि-विलास त्याग, सन्नद्ध होकर सयोगिता के लाख मना करने पर भी, अपने को शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित कर वह रण के लिए उद्यत हो गया।[२]

राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक शुभ कर्मो का सम्पादन-कर्त्ता ब्राह्मणवग है। न्यायिककर्म, म त्रणा तथा राजनीतिक समारोह से लेकर जन सामान्य के प्रत्येक सस्कार सम्पादन मे ब्राह्मण का सहयोग अपेक्षित है। धार्मिक कृत्यो के व्यवस्थापन मे वह एकमात्र अधिकारी है।[३] तेरहवी सदी मध्य के पर्सियन लेखक जकरीय अल-कजवीनी के अनुसार हजारो ब्राह्मण सोमनाथ मूर्ति के पूजन तथा दशनार्थियो की सेवा मे नियुक्त थे।[४] कट्टर ब्राह्मण विरोधी जैनधमावलम्बी भी सस्कार के अवसरो पर ब्राह्मण की शरणागति प्राप्त करते हैं।[५]

१ प्रचि० १।११। २ पृ० १०, पृथ्वीराज का उद्बोधन।
३ वीरा० ७, ८, चा० ३३, ३५, ४१, राबट चाल्यर्स, जे० आर० ए० एस०, १८६८, पृ० ३६४ ए० आइ० भाग १, पृ० १००, भाग २, पृ० १३३, कृत्य-कल्पतरु राजधमकाड पृ० १७६। ४ इ० डी० II, पृ० ६८।
५ प्रच० ४.३१८, ५६८।

ब्राह्मण वग अपने वैदुष्य से लग्न मुहूत्त, स्वप्न तथा शारीरिक चिह्नो भविष्य की बातो को बताकर समाज का सेवा-काय भी करता है। भोजराज सभा मे अग्रगण्य लोग बैठे है जिनमे चतुर्दिक के राजा तथा राणा भी सम्मिलित ह रानी आकर विनय करती है कि 'हे नरेन्द्रदेव, पडित को बुलाकर शुभ-मुहूर्त राजकुमारी का विवाह सम्पन्न करवाइए। पडित पत्रा लेकर अन्त पुर मे सम्मान साथ आता है तथा विचार कर लग्न-मुहूत निश्चित करता है।[१] वीसलदेव प्रयाण काल मे पडित को अन्त पुर मे बुलाता है और यात्रा के लिए शुभ दिन निकालने लिए निवेदन करता है। निर्दिष्ट-तिथि पर ही वह यात्रा के लिए प्रस्थान करता है। कामलुब्ध राजा रूपचद्र अपने पडितो द्वारा अपशकुन मे आक्रमण के लिए मना कर पर उनकी अवहेलना करता है और उसके दुष्परिणाम से दुखी होता है।[३] ज्योतिषिय मे शुभ लग्न लेकर कुमारपाल ने सोमेश्वर-प्रसाद का जीर्णोद्धार काय प्रारम्भ किय और अपने मन्तव्य मे सफल हुआ।[४] काशी मे शालापति की पत्नी ने गगातट पर भ्रमण करते समय साप के सर पर खजन पक्षी देखा। वही पर स्नानार्थ आए हुए किसी ब्राह्मण के पैरो पडकर उसने उस असभव शकुन का विचार पूछा। उस नैमित्तिक ने स्त्री द्वारा यह शत स्वीकार कर लेने पर कि भविष्य मे ब्राह्मण के आदेश का सवदा पालन करूँगी, उद्घाटित किया कि आज से सातवे दिन तुम पटरानी बनोगी। निर्णीत दिन पर बात सत्य हुई और राजा ने ब्राह्मण के असीम चातुय की पर्यालोचना करते हुए उसे सर्वाधिकार के भार का धारण करने वाला धुरन्धर पद दिया। राजा की कृपा से वह साक्षात् देवतावतार के सदृश दिव्य भोगो को भोगता हुआ नित्य अठारह हजार ब्राह्मणो को यथेष्ट भोजन दान करने के अनन्तर स्वय भोजन ग्रहण करता था।[५]

वस्तुत इन गुणो एव विशेषताओ के कारण विवेच्य काल मे ब्राह्मण का 'भूदेव' कहा गया है।[६] लोगो की धारणा थी कि ब्राह्मण और राजा दोनो कही एकत्र नही मिलते।[७] राजन्य भी ब्राह्मण को सम्मान देते थे।[८] जन सामान्य तो बौद्धिक सस्कार से विरत, मात्र जन्मजात ब्राह्मण को भी पूज्य मानता था।[९] समाज की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था मे ब्राह्मणो की सर्वोच्चता परम्परा-

१ वी० रा०, ६, ७। २ वी० रा० ५५, ५६। ३ चा० ८७, ६१।
४ प्रचि० ४ १४०। ५ प्रचि० ५ २१०। ६ की० १ २१ ६४। ७ वही।
८ चा० ३०३, की० २ ३७ २५१, २ ३८ २५४ वी० रा० ८५, ६५, ६६।
९ पृ० १०, असस्कृतमतयोपि जात्येव द्विजन्मानो माननीया। हर्ष चरित, पृ० १८।

गत है ।[1] श्वानच्याग[2], शुक्र अल्वीरुनी, हिन्दू ग्रन्थ, अबूजेद सराफी[4] अल मसूदी[5] तथा अलइदरीसी[6] प्रभृति का भी यही अभिमत है ।

सदियो पूव से ही जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बी ब्राह्मणो की अवमानना करते आ रहे थे । इन्होने क्षत्रियो को श्रेष्ठतम बनाने का प्रयास किया । सभी तीर्थङ्करो को क्षत्रिय कुलोत्पन्न बताया । स्वत भगवान महावीर को देवनन्दा ब्राह्मणी-गभ से परिवर्तित कर त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ से उत्पन्न प्रचारित किया ।[7] फिर भी निशीथचूर्णी,[8] आचारागचूर्णी,[9] सयुक्त निकाय, समण ब्राह्मण सुत्त प्रभृति जैन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि वे ब्राह्मणो को हृदय से उच्च मानने की भावना से सवथा विलग न हो सके । जैन सूत्रो मे अनेक अवसरो पर महावीर को 'माहण' तथा 'महामाहण' शब्दो से अभिहित किया गया है ।[11] मिलिन्दप्रश्न[12] मे बुद्ध को ब्राह्मण कहा गया है ।

देश ओर समाज की व्यवस्था का रक्षात्मक दायित्व क्षत्रिय वर्ग पर था । क्षत्रिय शब्द क्षतात्त्राणम्[13] (लोगो की हानि अथवा भय से रक्षा करना) से बना है । मनु, पराशर, पठीनसि, हारीत, बौधायन, आपस्तम्ब और देवल को उद्धृत करते हुए मध्ययुगीन विद्वान् लक्ष्मीधर का अभिमत है कि राजा के रूप मे क्षत्रियो का मुख्य कर्त्तव्य शस्त्र धारण कर वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए देश का निष्पक्ष शासन प्रबन्ध करना है ।[14]

१ राबर्ट चाल्मस, जे० आर० ए० एस०, १८९४, पृ० ३९४ एसक्यू० सीएफ० फिक०, पृ० १९ । २ वाटर्स, १, पृ० १४० । ३ १ ४० । ४ सिलसिल तुतवारिख, पेरिस, १८११ ई०, पृ० १२७, दे० अ० भा० स०, पृ० १०५ । ५ आई० सी० एच०, भाग २७, स० २, अप्रल १९५३, पृ० ६१ । ६ ई०डी०, भाग १, पृ० १९ ।
७ कल्पसूत्र, २ २२ आदि, आवश्यक चूर्णी, पृ० २३९, बौद्धो की निदान कथा १, पृ० ६५ मे भी क्षत्रिय प्रथम है, ललितविस्तर, पृ० २० आदि—वाजसनेय सहिता ३८ १९, कठक २८ ५, क्षत्रिय ब्राह्मण से श्रेष्ठतर बताने का प्रयास । डा० जी० एस० घुये, कास्ट एड रेस इन इडिया, पृ० ६३ मे भी वशिष्ट (ब्राह्मण) तथा विश्वामित्र (क्षत्रिय) मे कौन श्रेष्ठ है द्रष्टव्य । ८ १३ ४४ २३ ।
९ पृ० ९३ । १० २, पृ० १२९ । दे० जन, ज० श०, जैन, पृ० २२५ ।
११ सूत्रकताग ९ १ । १२ हिन्दी अनुवाद, पृ० २७४ । १३ कृत्यकल्पतरु, गहस्थ०, पृ० २५२ । १४ ग्यारहवीं सदी का भारत डा० ज० श० मिश्र, पृ० ११३ ।

विवच्य साहित्य मे क्षत्रिय राजन्य अपन दायित्व क प्रति सजग है। रा (पृथ्वीराज) तो धन, स्त्री तथा मरण से तृण का श्रेष्ठ समझता था जब कामद से पीडित होकर नव विवाहिता परमसुन्दरी पत्नी सयोगिता क वश हुआ तथ छ मास तक राज-काज भूलकर बाहर नही दिखाई पडा और प्रजागण के प्रयत्न जब राजगुरु का यह सदेश उसके पास पहुचा कि 'गोरी रत्तउ तुव धरा तु गोर अनुरत्त', 'सामत करि जिनि बोलइ ढिल्लिय जु धरि (राजा, वह मत्र कर कि दिल्ल की धरा को तू डुबो न दे), तो यह सुनकर उसन अपना हाथ पीटा और कहा, 'धर (राज्य) की रक्षा गुरु तथा भट्ट करे और मैं विलास लिप्त रहूँ।' तदन तर वह केलि विलास त्याग कर तूणीर आदि शस्त्रास्त्रो म इस प्रकार अलकृत होता है जैसे का कुशल नट पूववर्ती वेष छोडकर नवीन वेष धारण कर लेता है।[२] सयोगिता ने लाख समझाने का प्रयत्न किया कि 'हे कन्त, यदि धन रक्खा रह गया तो धन नही। वही सुख सुख है जिसम कामदेव का उत्कष हो, काम विहीन जीवन ससार मे मानो मरण है। धरा तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है ता मैं भी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूँ, मुझ अर्द्धाङ्गिनी क अर्द्धाङ्ग करो। देखो, सर ओर पकज भी अन्त तक साथ निभाते है।' किन्तु, राजा हृदय को कठोर बनाकर रणस्थल को चल पडा। क्षत्रियो की रक्षा-सेवा-काय क लिए तत्परता के और भी अनेक प्रमाण द्रष्टव्य है।[५]

उस समय, क्षत्रिय राजन्य वीर[६] थे। वे प्रजा हितार्थ वीरचर्या[७] करते थे। इनकी रण कुशलता अद्वितीय थी।[८] दिग्विजय कर[९] विजय-स्तभ बनवाना इनका अभीष्ट था। सज्जनो को दुष्टो से बचाते थे[१०] एव चोर लुटेर इनके भय से दिखाई नही देते थे।[११] उत्तम और परम धर्म मानकर खूब दान देते थे।[१२] शरणागत को अभयदान,[१३] कलाकारो को सम्मान तथा प्रोत्साहन देते और अनेक मदिर-विहार बनवाते थे।[१४]

गुप्त काल के अन तर भारतीय वाङ्मय, ताम्रपत्र एव शिलालेखो से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय राजाओ का एक कर्त्तव्य चातुवर्ण्य धर्म का पालन कराना भी

---

१ पृ० १० ५ ३। २ पृ० १० २३, १० २० २। ३ पृ० १० २४। ४ पृ० १०। ५ की० २ ३, चा० ८ २, की० ३ ३६ १५६। ६ की०, पृ०, जिण०, चा०, प्रच०, प्रचि०, समदा० आदि द्रष्टव्य। ७ प्रचि० १ ६, २ ५२ ७४ ८ पृ०, प्रचि० ५ २०४। ९ स्थूलि० ४ १५, प्रचि० ४ २०५। १० की० २ ३। ११ जिण० ३५, की० ३ २० ८४। १२ प्रचि० इसके उदाहरणो से भरा पडा है। १३ की०, पृ०, प्रचि०। १४ प्रचि० मे अत्यधिक दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

था। यह भी उल्लिखित है कि शूद्रो के लिए तप करना वर्जित था और इसके उल्लघन मे राजा उनको कठोर दड देता था।[१क] किन्तु आलोच्य काल मे लोक साहित्य अपभ्रश तथा हिन्दी ग्रन्थो मे इस प्रकार के सकेत अनुपलब्ध हैं। सभवत तत्कालीन अधिकाश राजन्य के चातुर्वर्ण्य विरोधी जैन बौद्ध धर्म के समर्थक हो जाने से ऐसा हुआ हो। सस्कृत ग्रन्थो मे राजाओ के लिए चातुर्वर्ण्य धर्म का पालन करवाना अवश्य लिखा हुआ मिलता है।

देश तथा समाज की आर्थिक स्थिति को सुव्यवस्थित एव सुदृढ करने हेतु वैश्य वर्ण का नियोजन है। इस व्यवस्था का ही यह सुपरिणाम है कि देश धन-धान्य से परिपूर्ण है। राजा-महाराजाओ की बात कौन कहे सेठानी भद्रा (शालिभद्र की मा) ने सवा सवा लाख के सोलह कम्बलो का क्रय कर उनके दो, दो टुकडे बना कर अपनी बत्तीस पुत्र बधुओ का पैर पोछने के लिये दे दिया।[२] एक कवि के यहा एक राजा गया। उसने देखा कि कवि के घर की सचारक भूमि काच से जडी है, देवालय की भूमि मरकत से गच थी।[३] कठौती से द्रव्यो को तौला जाता था।[४] ग्वालिन लडकी चादायन जहा सोती थी वहा ६० दीपक तीन खम्भो पर जलते रहते थे। रत्न तथा बहुमूल्य पदार्थ जगमग-जगमग करते थे। उसके हार मे जडे मोती मानो नक्षत्र थे।[५] एक अहीर के सतखडे मकान के खभे मणियो से जडित सोने से निर्मित थे। उसकी ८४ रानिया थी। एक एक रानी के साथ ८१, ८१ चेरिया थी। उनके ज्योनार अलग-अलग होते थे। विभिन्न महलो मे उनकी शय्याये सजाई जाती थी। उस महर के अर्थ, द्रव्य, घोडे तथा हाथी अगणित थे। उसके सिंहद्वार पर सिंह बैठे हुए थे जिन्हे विज्ञानी ने ऐसा गढ कर रखा था कि बहुतेरे वीर भी उन्हे देखकर भाग जाते थे, उन्हे हृदय मे डर लगता था कि वे दौड कर उन्हे खा न जायें। पारी को चमका

१. कापस [फ्लीट] भाग ३, स० ३५, प्लेट २२, पक्ति, १६, ई० आई० भाग २१ पृ० ७४, हर्षचरित, अध्याय ३, महाराज हरिवर्मा का ताम्रपत्र, कलेक्शन आफ सस्कृत एड प्राकृत इन्स्कृप्शन, स० ५, पृ० ५०, ध्रुवसेन [६२६ ई०] का ताम्रपत्र वही, पृ० ४४, स्वधर्म आरोपित वर्णाश्रम एफ० आई०, भा० १५, स० १, पृ० ३, ई० आई०, भाग २३, १९३५-३६, पृ० १५० डा० रा० गो० बासक हिस्ट्री आफ नार्थ ईस्ट इडिया, १९३४, पृ० ३१४। विस्तार के लिए दृष्टव्य डा० बै० ना० सिह यादव का शोध प्रबन्ध। १क भवभूति के रामचरित मे शूद्र का तप करने के अपराध मे दडित होना। २ शालिभद्र रास हि० सा० स० पत्रिका, भाग ५५, स० १-२। ३ प्रचि० २५६। ४ प्रचि ५ २०४। ५ चा० १९२।

कर उस पर चादी का पान। ढाला हुआ था । सात चादरो के लोहे को एक मे ओटा कर बनाए हुए फौलाद के कपाट उस पौरी मे गढ कर लगाये हुए थे ।[१] जिणदत्त के दहज मे नीलमणि, मरकतमणि, पद्मराग मणि, वैडूर्य तथा चन्द्रकान्त मणि का भडार दिया गया था ।[२] चादा अहीरिन के दायज मे तीस अच्छे गाव तथा एकसठ भैसे द्रव्य से भरकर दिए गए थे । पचास घोडे जिनके लाख-लाख टके बँधे हुए थे, एक सहस्र सेवक-सेविकाएँ, अगणित गाय भैस, हीरे-मोती लगे अनेक प्रकार के कपडे तथा शय्याएँ चावल, आटा, खाड, घी, नमक, तेल, मसालो का टाडा लादकर रवाना हुआ तो इनकी बरदिया बेसँभाल हुइ ।[३] बीसलदेव के स्वागतार्थ मोतियो के अक्षत पडते थे ।[४] प्रवास से घर लाटने समय उडीसा के राजा न वीसलदेव को अथ, द्रव्य, हीरे तथा बहुमूल्य मणियो म लाद कर ४०० साडिए दिये ।[५] चीन के शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त अधिकारी-तत्र मडारिनो की भाति यहा ऐसा कोई वर्ग नही था जा व्यापारियो को दबाकर रखना चाहता हो ।[६] कि तु ऐसा सही जचता है कि 'उद्योग ओर व्यापार, जो मुख्यत कृषि उत्पादन पर आधारित थे, दस्तकारियो तक सीमित थे । नदियो के किनारे पर बसे व्यापार केन्द्रो मे जो छोटे-बडे पैमाने पर स्थानीय उद्योग ध धे चलाये जा रहे थे, वे पीढी-दर पीढी प्राप्त किए हुए उच्च स्तरीय अभ्यास ओर दक्षता के परिणाम थे, कि तु उनमे कोई विज्ञान या प्रौद्योगिक प्रगति नही थी । पिछली कई शताब्दियो मे कृषि अथवा परिवहन के साधनो मे कोई प्रगति नही हुई । मुख्य सरिताओ पर पुलो का अभाव था और देश का अधिक भूभाग बनो से भरा पडा था ।'[७]

दूसरी ओर, तत्कालीन राजलुब्ध असलान ने राजा गणेश्वर को धोखे से मार डाला जिससे वहा अव्यवस्था व्याप्त हो गई । काम-धँधे सब ठप्प हो गए । इधर सुलतान इब्राहिम का आक्रमण हुआ । फलस्वरूप स्थिति यह हुई कि वस्तुओ का ऐसा अभाव हुआ कि सेर के हिसाब से पानी खरीद कर लाया जाता था । चदन के मोल ईधन बिकने लगा । मडियो मे अनाज की यह दशा हुई कि बटखरे के रूप मे व्यवहृत कौडियाँ अधिक और गेहूँ के दाने कम थे । घी के कुप्पे या हडे बेचने वाले को साथ मे अपना घोडा भी दे देना पडता था । शरीर मे लगाने के लिए सुगधित तेल तो मिलता न था, कटसरैया के तेल से काम चलाना पडता था । बादी और बैल समान

१ चा०, गोबर वणन खड । २ जिण० ४४५ । ३ चा० ४२ । ४ बी० १७ ।
५ बी० ११० । ६ जे० नीडम साइस एड सिविलिजेशन इन चाइना, भाग १ ।
७ हिदी और प्रादेशिक भाषाओ का वैज्ञानिक इतिहास, शमशेर सिंह नरुला, पृ० ७६ ।

मूल्य मे बिकने लगे। इससे वर्ण-व्यवस्था के वैश्यो की कार्य कुशलता पर स्पष्ट प्रकाश पडता है।

शख स्मृति,[१क] मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति,[२] विष्णु पुराण,[४] गौतमधर्म सूत्र[५] बौधायन धर्मसूत्र[६] वशिष्ट धर्मसूत्र,[७] कौटिल्य अर्थशास्त्र[८] तथा शुक्रनीतिसार[९] मे वैश्यो के लिए मुख्य काम खेती, पशु-पालन और वाणिज्य निर्धारित है। पूर्वमध्य काल तक आते-आते वैश्यो के कार्यों मे कुछ कमी आ गई। अलबीरूनी लिखता है कि वैश्य का धर्म खेती, भूमि कर्षण, पशुपालन एव ब्राह्मणो की आवश्यकता की पूर्ति करना है।[१] इस कथन मे वैश्यवर्ण के व्यापार कर्म का उल्लेख नही है। अलबारूनी के पूर्व नवी शती के उत्तरार्द्ध का लेखक इब्नखुर्दाज्बा वैश्यो के कामो के अन्तर्गत कारीगरी और घर-गृहस्थी का काम अनुस्यूत करता है।[११] अलबीरूनी के परवर्ती, ग्यारहवी शती के उत्तरार्द्ध के अल इदरीसी के विचार से भी वैश्यो का कारीगर और मिस्त्री होना प्रकट होता है।[१२] अत स्पष्ट है कि बारहवी शती तक आते-आते वैश्यो के कर्मो मे परिवर्तन हुआ। सम्प्रति ये व्यवसाय प्रधान हो गये। जैन तथा बौद्ध शिक्षाओ से यह वर्ग अधिक प्रभावित हुआ और हिंसा परक कार्यों—कृषि तथा व्यापार से विरत हो गया।[१३]

चौदहवी शताब्दी अपभ्रश तथा हिन्दी वाङ्मय मे ऐसा कोई सकेत उपलब्ध नही है कि वैश्यो का व्यापार एव कृषि कर्म के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण हो। जैन समाज का अत्यधिक लोकप्रिय सेठ जिणदत्त व्यापारियो को देखकर हृदय से गद्गद् हो गया और हाथ जोडकर विनयपूर्वक अपने पिता सागर दत्त से व्यापार कर्म करने की अनुमति मागी। प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति प्रदान करते हुए सागरदत्त ने स्वय भी उनके साथ व्यापार हेतु घर से प्रस्थान किया।[१४] वर्णरत्नाकर[१५] के अनुसार राज दरबार मे वणिक पुन समाहृत थे। वे धर्म्मिष्ठ, तत्वज्ञ, मणि मर्मज्ञ, पुरोधक, परितोषक, वणिक, पेशल, वदान्य, वक्ता, विवेकी, विश्वासभूमि सर्वगुण सम्पन्न थे।[१६] मरुदेश निवासी मालवशीय 'उदा' वणिक अपने सद्प्रभाव से कर्णावती का लोकप्रिय

१ कौ० ३ २२ ६५। १ क १४। २ १ ६०। ३ ३ १ ११८।
४ ४ ३ ८, ३० ३१। ५ १० ४८। ६ १ १० १८ ४। ७ २:१६।
८ १ ३७। ६ १ ४२। १० ए० आई०, भाग २, पृ० १३६। ११ ई० डी० II, पृ० १६। १२ वही, पृ० ७६। १३ ग्यारहवी सदी का भारत, डा० ज० मिश्र, पृ० ११६। १४ जिण०, १७७-१७८। १५ वर० ३ २२ क
१६ वही ८ ७४ क।

उदयन मत्री ना ।[1] विमल सेठ तथा विमला सेठानी की कीर्ति महिमण्डल मे व्याप्त थी ।[2] समरसिंह का ज्येष्ठ भ्राता सहजपाइ दक्षिण मडल देवगिरि मे वाणिज्य करता था। उसने २४ मदिर बनवाये। वणिक कुल की इतनी मान्यता थी कि बालक हेमचन्द्र का देखकर गुरुदेव चन्द्राचार्य ने भविष्यवाणी की थी कि यदि यह बालक ब्राह्मण अथवा वणिक कुलोत्पन्न होगा तो महामत्री बनेगा। हेमचन्द्राचार्य के पिता के अनुसार एक क्षत्रिय का मूल्य एक हजार अस्सी हाथी है तो अत्यन्त मामूली बनिये का मूल्य ९९ लाख हाथी होता है।[5] सात-सात सौ के समूह मे व्यापारियो का टाडा चलता था। पण्यो की वर्णित समृद्धि तथा सम्पन्नता से ऐसा भास नही होता कि व्यापार कर्म की मान्यता मे कुछ अभाव की अनुभूति की जाती हो। सम सामयिक इब्नबतूता के अभिलेख भी इसका समर्थन करते है कि तत्कालीन अन्तर्देशीय व्यापार मे कोई शिथिलता नही समाविष्ट हुई है।

कहावतो तथा मुहावरो से प्रकट है कि लोगो के प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन थे। रानी राजमती भी अभिलाषा करती थी कि 'आजणी काइ न सिरजीय करतार। षेत कमावती स्यउ भरतार।[7] जिसके घर ४ बैल, २ गाये और मधु-भाषिणी पत्नी हो, उसके लिए अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नही समझी जाती थी।[8] जन सामान्य मे कृषक एव वणिक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी थे। वेवहार मुल्लाहि वणिक विक्कण कीनि आनहि वव्वरा[9] (पण्यो मे वणिक लोग मूल्य लेकर विक्रय करते थे और वव्वरा (किसान उनका क्रय।)। कवि की भी महत्वाकाक्षा है कि वे नैननि कब देषिहौ बन बन चारत वेन।'[10] ब्राह्मणो के आपत्तिकालीन कार्यो मे कृषिकर्म की सर्वप्रथम मान्यता मिलने[11] से इसकी श्रेष्ठता ही अनुमोदित होती है। पुनश्च ओपपातिप सूत्र[12], उत्तराध्ययन टीका[13], आवश्यक-चूर्णी[14] ज्ञातृधर्मकथा[15] प्रभृति जैन वाङ्मय मे भी जैन धर्मावलम्बी वेश्यो द्वारा कृषि एव वाणिज्य कर्मो की अवमानना नही प्रतीत होती।

प्रत्येक समाज की अनिवार्य आवश्यकताओ मे मानवतावादी दृष्टिकोण का सम्बर्द्धन (धर्म, शिक्षा के माध्यम से) सुरक्षा एव धनोपार्जन प्रमुख है। इनके

१ प्रचि० ३ ९०। २ जिण० ८९। ३ समरा०। ४ प्रचि० ४ १४१।
५ वही। ६ उव्य०, पृ० ८१। ७ बीरा० ८२। ८ प्रचि० ३५।
९ की० २ १७ ९०। १० सनेह, २९। ११ पराशर माधव १ ४२८ २६ तथा ४३५। १२ २७, पृ० २५६। १३ २ पृ० ४५। १४ पृ० ४४, १९७, १९८ तथा २९७। १५ १३, पृ० १४०।

सम्पादन के लिए कुशल, विज्ञ सक्षम तथा वार व्यक्तिया की अपेक्षा है। इन अनिवाय आवश्यकताओ की आपूर्ति क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य वग के द्वारा होती आई है। इन महत्त्वपूण उत्तरदायित्वो के निर्वाह के उपलक्ष्य मे समाज ने इनको कतिपय सुविधाये प्रदान की ह। इन्हे द्विज, द्विजाति, सवण अथवा अभिजात नामो से अभिहित किया जाता है। इनके अतिरिक्त ऐसे अशक्य व्यक्तियो का विशाल जनसमूह है जो अपर्याप्त नपुण्य, वैदुष्य, विदग्धता, प्रतिभा शारीरिक क्षमता, सदाचरण एव माननीय सख्या मे निवन हैं। इन्हे शूद्र, अछूत अस्पृश्य तथा अन्त्यज नामो से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार भारतीय समाज दो वग-विशेष सुविधा प्राप्त सवण अथवा द्विज और उपेक्षित अछूत अथवा अन्त्यज अथवा अस्पृश्य अथवा शूद्र—मे विभक्त है, किन्तु यह चातुवण्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य तथा शूद्र) नाम से अधिक विश्रुत है। इसी को जन सूत्रो मे पाच[1] तथा मेगस्थनीज, ग्रीक लेखक स्ट्रेबा, अरब लेखक इब्नखुर्दाज्बा तथा अल इदरीसी ने सात[2] जातियो के रूप मे उल्लिखित किया है। किन्तु वैदिक युग से चार वर्णो मे विभक्त भारतीय समाज मध्ययुग मे भी तदनुरूप ही रहा।

इस चतुथ वण क प्रचुर सख्यक लागो ने अपना-अपनी जावकोपाजन हेतु बुनाई लाहारी सानारी, कुम्हारी तथा चमकारी प्रभृति अनक शिल्पो मे से किसी न किसा एक शिल्प का अपना लिया। परम्परागत व्यवसाय हो जाने से इसमे कुशलता का प्राप्ति हुई आर दश-विदेश मे भारतीय शिल्प विशेष रूप से ख्यात हो सका। ढाक की अद्वितीय मलमल निमाण शिल्प की समता आधुनिक शिल्प भी कर सकन मे अक्षम हैं। ताजमहल तथा कुतुबमानार के शिल्प-चातुय से आज भी देश गोरवान्वित ह। स्थापत्य, मूर्ति एव वास्तु कलाओ से सम्बद्ध भारतीय अभ्युदय मे शूद्र वग के इन शिल्पियो का महान योगदान सिद्धप्राय है। समसामयिक विज्ञानी एव कुशल शिल्पियो द्वारा निर्मित अनेक दुग, जलाशय, बडे-बडे नगरो के प्राकार, बिहार-मदिर तथा प्रासाद आदि शूद्र वण के परिश्रम एव कलात्मक नपुण्य के प्रतीक हैं।

चोदहवी शती के अपभ्रश तथा हिन्दी वाङ मय मे वर्णित असवर्णो की स्थिति सम्पन्न एव सुदृढ प्रतीत होती है। गावर क महर के यहा अनक कूप, वापी तथा आम्राराम थे। उसके उद्यानो मे नारियल, गूवा (सुपारी विशेष), अनार, अगूर, नारगी, कटहल, जामुन, कैथ, बास, खजूर, वट, पीपल तथा इमली इस प्रकार अधिकता से लगे हुए थे कि वाटिका मे दिन मे ही अन्धकार रहता था। उसकी पौरी

१ प्रज्ञापना १ ६७-२१। २ ग्यारहवीं सदी का भारत, डा० ज० मिश्र, पृ० १००।

ने एक ही सूत मे उठाया था। उसे चमका कर उस पर चादी का पानी था। साठ सहस्र सशस्त्र सेनिक वहा पहरा देते थे। उसके सतखडे प्रासाद बाखडिया थी जिन पर सोने का पानी किया हुआ साठ कलश रखे हुए थे। महर की ८४ रानियो के लिए अलग-अलग ८४ सुन्दर सदन थे। उनमे मणियो से जटित साने के खभे लगे थे। हिंडोले रचे हुए थे, जिन पर नारिया झूलती थी। महर के अर्थ, द्रव्य, घोडे तथा हाथी अगणित थे। वह सदैव अपने धन-धान्य मे भूला रहता था।* इस सदभ मे चादा का विवाह, दोनो पक्षो की साज-सज्जा तथा पारस्परिक व्यवहार द्रष्टव्य है। जैत ग्वाला जाति करम गुन आगर देस मान सम लोग' (जाति कम तथा गुणा मे वह अग्र (बढा-चढा है) और देश मे सभी लोग उसको मानते है)।[1] महर का ज्योतिष ज्ञान द्रष्टव्य है।[2]

मनुस्मृति,[3] याज्ञवल्क्य स्मृति,[4] शखस्मृति, महाभारत शान्तिपव, गोतम धमसूत्र,[7] बोधायन गृह्यसूत्र[8] वशिष्ट धर्मसूत्र,[9] शुक्रनीति सार,[10] पराशर स्मृति,[11] बृहत् गौतम स्मृति,[12] प्रभृति ग्र थो मे बताया गया है कि शूद्रो का एक मात्र कर्तव्य सवर्णो की सेवा शुश्रूषा करना है। 'एकमेवतु शुद्रस्य प्रभु कर्मसमृदिशत्। एतेषामेव वणाना शुश्रूषामनसूयया' किन्तु व्यवहार मे किसी भी द्विज के यहा शूद्र द्वारा शुश्रूषा काय करने का उल्लेख नही प्राप्त हुआ है। इसके प्रतिकूल ऐसे अवसर अवश्य उल्लिखित हैं जिनमे विवाहादि समारोहो पर शूद्रो द्वारा ब्राह्मणो को बुलवाकर उनकी सेवाये ली गई हैं। जैत शूद्र ने अपने लडके के विवाह के लिए ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि 'लडकी के पिता के पास जाओ और जो भी कुछ मेरे सम्बन्ध मे जानते हो उसे सँवार कर उससे कहना। हो न हो, आज ही जाओ और हम जो काय चाहते हे, उस काय को करो।"[13] चादा का जब ससुराल कटु हो गया तो उसने अपनी चेरी स कहा कि 'जाओ ब्राह्मण को बुला लो'। ब्राह्मण ने आकर आशीर्वाद दिया। चादा ने कहा, 'ऐ ब्राह्मण तुम जाकर महर से मेरी दुख की वार्ता कहना।' ब्राह्मण गया ओर उसने चाँदा का काय सम्पादित किया।[14] शूद्र चादा के जन्म पर ब्राह्मणो की सभा आकर उसके घर बैठी है और पुराण (ज्योतिष ग्रन्थ) निकाल उसकी राशि गिन कर देखी गई।'[15] सेवा-शुश्रूषा करने वाले शूद्रो का जमघट धनी असवर्ण के यहाँ दिखाई

* चादा० २, गोबर वणन खड।

१ चा० ३६। २ चादा, ३७। ३ १ ९१। ४ ५ १२०। ५ १ ५।
६ ७२ ८। ७ १० ५६-५६। ८ १ १० १८ ५। ९ २ २०।
१० १ ४३। ११ १ १ ६४। १२ २२ ६१। १३ चा० ३५।
१४ चा० ४ ४८, ४९। १५ चा०, ३३।

देता है। गोबर के सहदेव शूद्र की ८४ रानिया थी। उन सबकी ८१-८१ चेरिया थी। शुद्रिन चादा के दहेज मे एक सहस्र सेवक-सेविकाएँ दी गई ५। शूद्रो के लिए उल्लिखित यह सेवा-काय वण-व्यवस्था की अपेक्षा आर्थिक-सामाजिक प्रतिष्ठा पर अधिक आधारित प्रतीत होता है।

समकालीन लोक साहित्य से अलबीरुनी का यह कथन भी प्रमाणित नही होता कि शूद्र खेती नही कर सकते थे। यह काय उनके लिए पाप माना जाता था और चोरी के अपराध के समान था।[३] गोबर के सहदेव महर के घर बहुतरे कूप, वापी तथा आम्राराम थे। उसने अपनी कन्या की विदाई मे 'चावल, आटा खाड, घी नमक, तेल तथा मसाले का टाडा लादकर दिया तो उसकी बरदिया बेसँभाल हो गई।'[४] गोपालन ग्वालो का मुख्य व्यवसाय था।[५] य्वान च्वाग[६], इब्न खुदाज्बा[७] तथा अलइदरीसी[८] के अभिलेखो से भी अलबीरुनी का यह कथन अप्रमाणित होता है। महापुराण[९] के इस श्लोक से भी प्रकट होता है कि शूद्रजन खेती करते थे—'ग्रामा वृत्तिपरिक्षेपमात्रा स्युरुचिताश्रया शूद्र कषकभूयिष्ठा सारामा सजलाशय।'

अपराक,[१] सवत[२], अत्रि,[१२] श्वानच्चाग[१३], बृहद्धर्मपुराणा[१४], ब्रह्मवैवत-पुराण[१५], कल्हण[१६], कुल्लूकभट्ट[१७], उत्तराध्ययन टीका[१८] व्यवहारभाष्य[१९], निशीथभाष्य,[२०] अगुत्तरनिकाय[२१], निशीथचूर्णी[२], प्रभृति के अनुसार अन्त्यज जातिया अस्पृश्य थी। गाव अथवा नगर के बाहर उनका पृथक निवास स्थान होता था। उनके स्पशमात्र से स्नान करना पडता था किन्तु इस प्रकार के घृणित तथा अमानवीय व्यवहार का वणन विवेच्य अपभ्रश एव हिन्दी वाङमय मे कही भी देखने को नही मिलता। जौनपुर के बाजार मे ब्राह्मण का यज्ञोपवीत चाडाल के अग मे लटक जाता था,[२३] किन्तु स्पृश्यता सम्बन्धी कोई अव्यवस्था नही उत्पन्न होती थी।

१ चा० ३१। २ चादा, ४२। ३ ए० आइ०, भाग २, पृ० १३७।
४ चा० ४२। ५ उ० व्य०, पृ० ८१, चा० ३९६। ६ वाट्स आनय्वान च्वाग, भाग १, पृ० १०८। ७ ई० डी०, भाग १ पृ० १६। ८ वही, पृ० ७८।
९ ७ १६४। १० पृ० २९३। ११ वही, पृ० ११९६। १२ २६०-६९ तथा २८८-२८९। १३ वाटस, १, पृ० १४७। १४ २ १३-१४।
१५ १ १० १२२। १६ राजतरगिणी ८ २४०७। १७ कुल्लूक मनु० १० ३१।
१८ १३, पृ० १८६। १९ २ ३७, ३ ९२। २० ११ ३७०७-८।
२१ २ ४, पृ० ८९। २२ व्यवहारभाष्य, ३ ९४। २३ कौ० २ २१ १ २।

जन-मध्य प्राप्त तनावो[1] के विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पारस्परिक वैमनस्य एव खीचातानी के मूल कारणो मे वर्ग व्यवस्था का कोई हाथ नही है। आपसी शातयुद्ध के मूल मे राज्य-लोभ तथा यशलाभ की भावना ३६ प्रतिशत कार्यशाल है जिसमे क्षत्रिय वर्ग के राजन्यो का प्रमुख योग है। बीस प्रतिशत तनाव नारी परक है जो अछूत विशेष कर अहीर जाति मे व्याप्त है। कामातुरो की अतृप्त काम भावना से नौ प्रतिशत तनाव पैदा हुए है। ६ प्रतिशत जातिगत, ५ प्रतिशत सम्पदा के लिए, चार-चार प्रतिशत व्यक्तिगत अह, सोतिया डाह, बदला और धर्म के लिए, तीन प्रतिशत कलात्मक प्रतियोगिता हेतु तथा एक-एक प्रतिशत पारिवारिक मर्यादा, भोजन, ब्राह्मण निन्दा, जुआ, चोरी जन्मभूमि और राजनीतिक सुरक्षा के लिए तनाव उत्पन्न होने के अवसर आये है।

प्रतिशत जातिगत तनावो मे सब के सब आभीर जाति से सम्बन्धित है। इसमे ८६ प्रतिशत पति की शक्ति हीनता एव पत्नी की कामातुरता स्त्रीहरण तथा विवाह से सम्बन्धित है। मात्र एक अवसर ऐसा आया है जिसमे ब्राह्मण तथा आभीर के मध्य अन्तर्जातीय तनाव का रूप उभड कर सामने आया है। आभीर जाति के एक अग्रणी द्वारा ब्राह्मण के अधिक खाने की निन्दा की गई है। तनाव उत्पन्न करने वाला ब्राह्मण वेशधारी वास्तव मे एक आभीर (प्रद्युम्न) है। यह प्रसग भी ब्राह्मण निन्दक बौद्ध धर्मावलम्बी अग्रवाल जाति के एक श्रावक लेखक के मस्तिष्क की उपज है। आभीर जातिगत यह स्थिति उत्तर प्रदेश तथा गुजरात प्रान्त की है। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत कोई जाति अन्य जाति से भयाक्रान्त नही है और न तज्जनित आशका से रक्षा के लिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से क्रियाशील है। निम्न-वर्गीय लेखक तथा अग्रगण्य दोनो अपने-अपने कुल के प्रति आत्माभिमानी है। उनमे कही भी जातीय लघुता की भावना नही उभडती दिखाई पडती। वर्ण व्यवस्था के नाम पर कोई भी जातीय अथवा अन्तर्जातीय तनाव, सघर्ष एव असतोष दिखाई नही देता।

वर्ण व्यवस्था के अस्तित्व का विश्व के विद्वान समाज शास्त्रियो ने परम्परागत, प्रजातीय[4] व्यावसायिक, ब्राह्मणवादी राजनीतिपरक[6] विकासवादी,[7] वर्ण

१ द्रष्टव्य परिशिष्ट २। २ प्रच०, ४४४ ४४६। ३ जिण० २८, ४५, प्रच० ६८४, ६६५। ४ अध्येता-रिजवे, घुरिए, मजूमदार, राधाकृष्णन, एन०के० दत्त
५ अध्येता जौन सी० नेसफील्ड। ६ अध्येता-डुलाय, घुरिए, डेंजिल इण्टसन।
७ डेंजिल इण्टसन।

सिद्धा त,[१] आदिम सस्कृति सम्बद्ध सघष मूल्क,[२] अर्थप्रधान[३] प्रभृति आधारो पर विस्तृत विवेचन किया है, किन्तु प्रत्येक परम्परा म वण व्यवस्था की कोई न कोई एक विशिष्ट विशेषता ही उभड कर सम्मुख आई है। विवेच्य ग्रन्थो के अनुशीलन मे इन सैद्धान्तिक तथ्यो मे स किसी एक का वैशिष्टय प्रमुख रूप म लोगो के व्यवहार मे दृष्टिगत नही होता। चतुवण के सभी जन सम्बद्ध होकर पारस्परिक सौहार्दपूण वातावरण मे अपने-अपने सन्तोषप्रद जीवन यापन मे निरत हैं।[४] चतुवर्णान्तगत अन्त-जातीय शीतयुद्ध एव विलगाव की भावना तथा निम्नवर्गीय व्यक्तियो के विकास मे आभिजात्य द्वारा प्रतिष्ठापित अवरोध प्रक्रिया का सवथा अभाव है। वण व्यवस्था अपने व्यक्तियो का कुशलतापूर्वक कत्तव्य पालन पर निश्चित सामाजिक प्रभुता, सत्ता एव सम्मान प्रदान करती है[५] समाज मे ससृष्ट जीवन का निर्माण करती है,[६] व्यवसायो का सरक्षण तथा उनकी काय कुशलता म वृद्धि करती है, परिवारो मे निरन्तरता और रक्त शुद्धता को अक्षुण्ण बनाती है,[८] वाह्य प्रभावो से समाज मे सरक्षण एव प्रजातीय सघर्ष से मुक्ति प्रदान करती है।[९]

वर्ण व्यवस्थान्तगत समाज मे परिवतनकारी तत्व

ऐतरेय ब्राह्मण, कौशितकी आपस्तम्भ, धर्मशास्त्र[१] मनु[१२] पातञ्जलि महाभाष्य महाभारत[१३] धम्मपद,[१४] ब्राह्मण वग।[१५] तथा गीता प्रभृति अनेक वम

---

१ अध्येता—डी० मीज०। २ अध्येता—शमशेर नरूला। ३ अध्येता—काल माक्स।

४ (i) चादा० ५४, ८७, १५१, १५४, ३०८ ३३०-३८, की० २ २१ १२१ २२।
(ii) की० २ २१ १२३। (iii) प्रच० १६-२०, चादा० १४, २०, २८, २८, चादा ४१, जिण० ४३ ४४ ४५, चादा० २४५ जान अरविन का मत तथा म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी—वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति, पृ० २०२, ३।

५ चादा०, उसके पिता लोरिक जिण० तथा उसके पिता, प्रद्युम्न तथा उनके पिता आदि की स्थिति, प्रचि० ३ १०६ २ ५०, वीग० ६०, प्रचि० १, ५ २०७, प्रच० ४ २६८ प्रचि० ३ १२४। ६ पूर्वार्द्ध भाग तथा ऊपर की टिप्पणी ५।

७ जिण०, की०। ८ की० ४ ६ ३४, चादा २३३, २७२ प्रचि० ३ ११०, वर ४ २ १६ क, चादा० ८७, ३४ विप० ५। ९ की०, पृ०, प्रा० पे० १८५, जिण ४५६, चादा ३१७, जिण ५६ ४८, की० १ १६ ५४, ३ ३२ १३५ ६, वीरा० ३८। १० २ ८ १-७ ३३ ६। ११ २ ५ १०-११। १२ १० ६६।

१३ शान्ति पव, अनुशासन पव, वन पव २१२, २१६। १४ ३६। १५ ६ ११।

ग्रन्थो द्वारा चतुर्वर्णों के गुण, कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का विस्तृत, स्पष्ट एवं सशक्त निर्देश देते हुए बार-बार तप के सहित कर्म प्रधान (जन्मना नहीं) मानव मूल्यों पर बल देने पर भी समाज के पथ प्रदर्शक कतिपय ब्राह्मण असहिष्णु[१] पिशुन,[२] मार्ग-अवरोधक[३], निंदक[४] पेटू, लालची,[६] विद्वेषी,[७] भिखमंगे[८] एवं मूर्ख[९] रूप मे चित्रित है।

प्रजा और देश रक्षक कतिपय क्षत्रिय राजन्य अतिशय भोगी एवं विलासी हो गये है। वे ठगी और डकैती के कार्य करने लगे।[११] उनमे अमर्ष तथा विध्वंस कारी मनोवृत्ति की प्रधानता हो गई।[१२] युद्ध क्षेत्र से भाग आने मे उन्हे लज्जा की कोई अनुभूति नही होती है।[१३] उनके अधिकारीगण रोती कलपती विधवा नारियो से अत्यधिक मात्रा मे कर संग्रह कर लेते है।[१४] वैश्यो के लेनदारो द्वारा जनता संकट ग्रस्त थी।[१५] निम्नवर्ग के अग्रगण्य के लिए नारी एक विकट समस्या बनी हुई है। इसके कारण युद्ध तथा रक्तपात उनके जीवन का एक सामान्य पक्ष बन गया है।[१६] मुसलमानो मे जाति के प्रति अभिमान और उत्साह बहुत तीव्र है।[१७]

———

१ प्रचि० ४ १६२, ३ १३६। २ प्रचि० ४।१६४ ३ १३६।
३ प्रचि० ४ १६४, ३ १०८। ४ प्रचि० ४:१६२, ३ १०८। ५ प्रचि० ४ १५५, ५ २१८, प्रच० ४४४। ६ प्रच० ४४४ प्रचि० ३ १२३। ७ ४१ १३९।
८ ४ १६२, २ ६२। ९ प्रच० ४ ३६१, कछूली०। १० पृ० मे पृथ्वीराज और जयचन्द विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। ११ की० २ २ १०, प्रचि० ५ २०३।
१२ प्रचि० ४२, ४ १२६, पृ० मे पृथ्वीराज और जयचन्द। १३ प्रचि० ५ ६४८
१४ प्रचि० ४ १४३। १५ प्रचि० २ ४६ ४९। १६ चावायन तथा प्रद्युम्न चरित। १७ पृ० १२, १२।

ख—आश्रम व्यवस्था

भारतीय सामाजिक सगठन मे आश्रम वर्ण-सिद्धान्त का दूसरा पूरक पक्ष है। मनुष्य की प्रकृति, गुण, कर्म तथा स्वभाव के आधार पर मानव मात्र का वर्गीकरण चार वर्णों मे हुआ है और व्यक्ति के जीवन को समय सापेक्ष लोकिक एव पारलौकिक प्रगति के लिए चार भागो मे विभाजित कर आश्रम की व्यवस्था की गई है। विश्व की मानवीय सस्थाओ मे यह अद्वितीय है। इसमे निहित सिद्धान्त की गरिमा स्तुत्य है।[1]

आश्रम का सदर्भ प्राचीनतम है, किन्तु इसके प्रचलन, व्यवहार के प्रति आग्रह, प्रतिष्ठा एव कर्म की अनिवार्यता मनु आदि स्मृतिकारो के अनन्तर अधिक सशक्त दिखाई पडती है।[2] तब भी, इसके महत्व के दृष्टिकोण से आश्चर्य है कि विवेच्य साहित्य मे ग्रन्थकारो ने आश्रम के प्रति कोई आस्था एव अनुराग नही व्यक्त किया है। सभव है, उसका कारण यह हो कि किसी भी काव्य का नायक ऐसा सवर्ण नही है जिसके सम्पूर्ण जीवन का चित्रण कवि को अभीष्ट हो और आश्रम का सम्बन्ध सवर्ण वर्ग से विशेष रूप से है।

साथ ही अधिकाश ग्रन्थकर्त्ता जैन धर्मावलम्बी हैं जो वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रतिकूल विचार रखते थे। प्रमाणस्वरूप हेमचन्द्राचार्य से सम्बद्ध वह घटना द्रष्टव्य है जिसके अनुसार गुरु देवचन्द्राचार्य, गाव के मुख्य श्रावक सघ तथा मन्त्री उदयन के सयुक्त प्रयास से अभिभावक की इच्छा के प्रतिकूल बाल्यावस्था मे ही उन्हे अन्य प्रारंभिक आश्रमो की उपेक्षा कर प्रव्रजन स्वीकार करना पडा।[3] इसके पूर्व स्वय भगवान महावीर ने माता के प्रबल अनुरोध तथा उनकी कारुणिक स्थिति के प्रतिकूल मेघ-

१ इनसक्लोपीडिया आव रेलिजन एड एथिक्स मे आश्रम से सम्बद्ध टिप्पणी मे डायसन का अभिमत। २ हिन्दी विश्वकोश डा० राइस डेविडस द डायलाग आव द बुद्ध, भाग १, पृ० २१२, व्या० भा० जय० मिश्र, पृ० १२६।

३ प्रचि० ४ १४१।

कुमार को श्रमण दीक्षा दी थी।¹ अस्तु तत्कालीन साहित्य मे आश्रम के प्रति वह दृष्टिकोण नही रह गया जो परम्परा मे मान्य था। उसमे सामयिक परिवर्तन के चिह्न स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते है।

आश्रम व्यवस्था मे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ एव सन्यास २५-२५ वर्ष की अवधि क्रम मे चार अवस्थाये है। पहले मे विद्याध्ययन करना, दूसरे मे विवाह करके वश तथा वृत्ति चलाना तीसरे मे सासारिक भोगो से अवकाश प्राप्त कर अध्यात्म विद्या का अभ्यास तथा चित्त शुद्धि के लिए व्रतोपवास आदि करना और चौथे मे समस्त कार्यो का परित्यक्त कर मात्र ज्ञान एव योग निष्ठा का प्रयास करना होता है।

चौदहवी सदी के व्यावहारिक जीवन मे गार्हस्थ्य सर्वाधिक वर्णित है। इसका अत्यधिक महत्व परम्परागत भी है, क्योकि लोगो की ऐसी सामान्य धारणा है कि प्राणी अकेला जन्मता और मरता है। मरण के अनन्तर यहा से कोई कुछ नही ले जाता। यदि कोई साथ जाता है तो वह धर्म है। यही धर्म नरक से रक्षा भी करता करता है। अस्तु, गृहस्थाश्रम एक ऐसा सोपान है, जहा व्यक्ति शुभ धर्म-कर्म करके अपना परलोक सुधार सकता है और गृहस्थाश्रम का मूल उद्देश्य धर्मार्जन करना तथा ऋणो से मुक्ति पाना है। यह मुक्ति वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन एव यज्ञो के सम्पादन से सुलभ होती है। अस्तु, जयचन्द सत्क्षेत्र का सेवन कर धर्म मे रुचि रखता था। उसने पवित्र राजसूय यज्ञ किया।² जिणदत्त ने सभी प्रकार की विद्याओ और कलाओ को सीखकर धर्मानुकूल गृहस्थ जीवन यापन किया। इसी भाति प्रद्युम्न, जीवदेव, जीवजसा तथा चन्द्रशेखर प्रभृति जैन धर्मावलम्बियो ने भी अपने-अपने गार्हस्थ्य जीवन मे धार्मिक कृत्यो से पुण्य कमा कर परलोक सुधारा³ जबकि सिद्धान्तत वैदिक गृहाश्रम के प्रति उनकी कोई आस्था नही है।

इस गृहस्थाश्रम मे व्यावहारिक पक्ष की प्रधानता है। यहा ब्राह्म मुहूर्त मे जागरण से रात्रि मे शयन पर्यन्त धर्म विषयक अनेक लघु कृत्यो का विवेचन अपेक्षित नही है। धर्म के जिस अग पर सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, वह दान एव मन्दिरो के निर्माण द्वारा परलोक का मार्ग प्रशस्त करना है।⁴ मरणासन्न उदयन के इस पश्चात्ताप मे कि शत्रुजय तथा शकुनी विहार के जीर्णोद्धार की इच्छा पूरी कर देव

१ ज्ञातृ धर्म कथा, पृ० २५, उत्तराध्ययन सूत्र १९, जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज डा० ज० च० जैन, पृ० २३५। २ पृ० २१। ३ जिण० उत्तरार्द्ध। ४ प्रचि० मे इसके अनेक दृष्टान्तो की भरमार है।

ऋण स उऋण नही हो पा रहा हूँ,[1] इस तथ्य का सकेत मिलता है कि देव ऋण न मुक्ति का साधन यज्ञ तथा मन्दिर-निर्माण आदि मे परिवर्तित हो गया है जिनका पुष्टि सम सामयिक वाङमय से होती है। परम्परागत पच महायज्ञ का कम अपना लोकप्रियता सम्भवत खो चुका है, किन्तु मनुष्य यज्ञ मे अतिथि-सत्कार भाव को मान्यता उपलब्ध है। पथिक मार्ग मे भूखे नही जाने पाते थे। केला दाख तथा छुहारे आदि स उनका सत्कार होता था। गावो मे पथिक को देखत ही अनिवार्य रूप से भोजन प्रदान किया जाता था। भारत की इस भावना मे यह विश्वास निहित है कि अतिथि क रूप म ऐसा न हो कि कोइ महात्मा आ जाय और उसका निरादर सम्भव हो जाय। समाजोपयोगी कार्य निरत परोपकारियो का ससम्मान भरणपोषण गृहस्थो का परम कर्त्तव्य माना जाता रहा। दान तथा त्याग की भावना सम सामयिक जीवन का प्राण है। मोक्ष के लिए समष्टि के हित मे अपने हित का यह त्याग सम्भवत वैयक्तिक भोग मे लिप्त मनुष्य के समक्ष एक उच्च आदर्श एव महान् भावना के रूप मे प्रतिष्ठित है।

मात्र गृहस्थ जीवन एसा महत्वपूर्ण आश्रम ह जिसमे वेदाध्ययन द्वारा ऋषि ऋण से, पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ ऋण स तथा यज्ञ द्वारा देव ऋण से उऋण हुआ जा सकता है। इसमे सतानोत्पत्ति तो अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्य माना गया है। गृहस्थ की पूर्णता इसी मे निहित है। इसके बिना मोक्ष सुलभ नही है। समसामयिक युग मे हिन्दू दम्पति सन्तान प्राप्ति के लिए अत्यन्त आतुर है।[6] पुत्र की यह आकाक्षा हिन्दू समाज अन्य कारणो की अपेक्षा इस कारण से करता है कि बिना पुत्र के उसके

---

१ प्रचि० ४ १४५। २ रा० पाण्डेय के हिन्दू सस्कार पृ० ३५० से तुलना कीजिए।
३ वेद का अध्ययन-अध्यापक ब्रह्मयज्ञ, अग्नि मे देवताओ के लिए आहुति देना देवयज्ञ, पितरो का तर्पण पितृयज्ञ, विभिन्न भूतो और प्राणियो को बलि देना भूतयज्ञ तथा अतिथियो की पूजा मनुष्य यज्ञ है। ४ जिण० ३३।

५ वर० ४ ३५ क, की० २ १७ ६१, १ २३ ७२, शालिभद्र रास, प्रा० प० २, १८८, जिण० ४५, चा० १५, प्रा० पै० २ १२८ तथा प्रचि० मे अनेक दृष्टान्त द्रष्टव्य है। ६ शुक्ल यजुर्वेद १९।११, शतपथ ब्राह्मण १ ७ २ ११, तैत्तिरीय सहिता ६ ३ १० ५, ऐतरेय ब्राह्मण ३३ १, वसिष्ठ० १७ १, विष्णु० १५।४४, शख, दाय० १६१, महाभारत (अनु०) १ १२० १५, मनु० ९ १०६, जमिनी० ६ २ ३१, बौधा० २ ११ ३४, आपस्तम्ब २ २४ ८, हरि० वेदा० हि० प० मि०, पृ० २१३-१४ से उद्धृत।

जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति सुलभ नही माना जाता । अन्तिम सस्कार का सम्पादन यदि पुत्र के द्वारा हो, तो सर्वोत्तम हे । श्राद्ध-तपण के अभाव मे मृतात्मा भ्रमित रहती है ।

सम सामयिक कवि बब्बर की गृहस्थाश्रम के प्रति मान्यता हे कि धर्म चित्त गुणवान् पुत्र, सुकर्मरत विनयशील पत्नी, विशुद्ध देह और धनयुक्त गृह, स्वर्ग से भी उत्तम है।[१] तत्कालीन शास्त्रकारो का भी अभिमत है कि गृहस्थ के यहा भिक्षा मिलती हो तो राजा के दान की इच्छा न करनी चाहिए।[२]

विवेच्य साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट नही होता कि यह गृहस्थाश्रम २५ वष का ही था और आयु के २६वे वष से प्रारम्भ होकर ५०वे वष मे समाप्त हो जाता है। विवाह के अवसर पर मारवणा-ढाला की आयु क्रमशः १॥ वष और ३ वष,[३] चादा की आयु १२ वष[४] तथा राजमती की भी आयु १२ वष होने स यह प्रकट होता है कि गृहस्थाश्रम का अवधि सम्बन्धी बन्धन सम्प्रति शिथिल था। सम्भवत लोक गाथाओ मे नायक नायिका के वय क्रम का यह विवेचन कौतूहल उत्पन्न करने की दृष्टि से समाविष्ट किया गया है। अथवा सम सामयिक लौकिक व्यवहार की पृष्ठ भूमि मे अभिव्यक्त है जो शास्त्रीय परम्परा से सवथा पृथक लगता है। जयचन्द, जीवदेव, जीवजसा, चन्द्रशेखर, महर सहदेव तथा श्रीकृष्ण आदि के जीवन से भी स्पष्ट नही होता कि इस आश्रम की उत्तरवर्ती सीमा का दृढता से पालन होता था।

लाक रुचि के आधार पर आश्रमो मे दूसरा स्थान इस काल मे सन्यास को उपलब्ध है। यह निवृत्तमूलक है। समस्त कार्यो को परित्यक्त कर मुक्ति मार्ग का चिन्तन किया जाता है। तप अभीष्ट प्राप्ति का पमुख साधन स्वरूप है।

वण रत्नाकर[५] मे महामुनि के सम्बन्ध मे लिखा हे कि वे श्रद्धा के पुत्र, अग्नि के सहोदर, ज्ञान के सखा, ममत्व के शत्रु लोभ क कृतान्त सयम के प्रतिबिम्ब तथा सन्तोष की राशि सदृश परमहस दशापन्न हे। वे यम, नियम, प्राणायाम प्रत्याहार, समाधि, ध्यान, धारणा, बन्ध, मुद्रा, आसन, अन्तर्योग तथा बहिर्योगादि से सयुक्त हाते है।

१ जिण० ४८, ४६, ५६ १६४, ४८१-८५, ४८६-६०, प्रच० २ १४० ४५, प्रा० प० II, ४४ ६१, ६५, ११७, १७१। २ प्रचि० ४ १३६ १८५।
३ ढोमा० ६१। ४ चादा० ४३। ५ ५ ५५ क।

वृद्धावस्था में सन्यासाश्रम की व्यवस्था से अर्थ लोलुपता तथा उसके दुर्गुणों से बच कर सन्यासी वर्ग ने आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने का अभ्यास किया है जिसके माध्यम से भ्रमित जन का भ्रम निवारण तथा मिथ्यात्व की शान्ति हुई।[१] इनके आचरण से लोगो का सामान्य धारणा है कि ऋषि-मुनि का कथन झूठा नहीं होता।[२] ये दिव्य दृष्टि के अधिकारी होते हैं।[३] तप बल से आकाशगामी होकर अपनी इच्छानुकूल कही भी आ-जा सकने मे ये सक्षम हैं। सर्प-दंश से मरे व्यक्ति को जीवनदान देने,[४] असाध्य रोगी को स्वस्थ बनाने,[६] पर-काय-प्रवेश की विद्या जानने[७] तथा पिछले जन्म की सम्पूर्ण कथा बता सकने[८] की इनकी कुशलता उल्लेखनीय है।

सन्यास आश्रम के प्रति भारतीय समाज की इतनी गम्भीर आस्था है कि लोग अपना सर्वस्व त्याग कर अपनी इच्छा तथा रुचि के साथ विपुलसंख्या मे इसकी सदस्यता स्वीकार किये हुये है। गोबर नगर के राजकीय आम्राराम मे चार सहस्र योगी तन को क्षुण्ण करने वाले अनेक तपस्वी, कल्पमास करने वाली स्त्रिया एव सिद्ध पुरुषो का भीड एकत्रित रहती थी।[९] इन्द्रभूति के अष्टापद शैल पर चढते समय गौतम स्वामी को १५०० तापस आते दिखाई पडे।[१०] अनुपमा देवी द्वारा साधुओ को दान देते समय यतियो तथा मुनियो की भीड लगी रहती थी।[११] कन्नौज के महानगर मे समूह के समूह नगरा साधुओ तथा करोडो नगे साधुओ की उपस्थिति का साक्ष्य उपलब्ध है।[१२]

असामाजिकता—

गृहस्थ आश्रम मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र प्रभृति चारो वर्णों द्वारा अपने-अपने उत्तरदायित्वो के प्रतिकूल किये गये असामाजिक कार्यों का उल्लेख वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत हो चुका है। सन्यासी समाज मे सभी वर्णो के लोग अभिन्न रूप से सम्मिलित होकर मोक्ष प्राप्ति की एक मात्र उद्देश्य के लिए प्रयत्नशील हैं। किन्तु, कतिपय असामाजिक व्यक्तियो द्वारा उनकी वेशभूषा का दुरुपयोग अपने-अपने उद्देश्यो की सिद्धि के लिए किया गया है।[१]

१ गौतम० २२, प्रचि० २ ५७ ८४। २ जिण० ५८। ३ वीरा०, १११।
४ वीरा, १११, प्रचि० ५ २०४। ५ ढोमा० ६२१। ६ प्रचि० ४ १६६-७०।
७ प्रचि० ६। ८ प्रच० २ १६०। ९ चांदा, २०। १० गौतम० ३३।
११ प्रचि० ४ १६२। १२ पृ० ४-२३-१२। १३ चांदा० १६१, १६७।

परिवर्तन लाने वाले तत्व—

भारतीय गृहस्थ अतिशय भाग्यवादी हो गये हैं।[१] फलत उनकी आत्मशक्ति में क्षीणता, और टोना-टोटका तथा शकुन-अपशकुन ऐसे विश्वासो मे दृढता के भाव विद्यमान हैं।[२] कतिपय सन्यासी क्रोध, अभिमान, अज्ञान, मत्सरता तथा मिथ्यात्व ऐसे दुर्भावो के वशीभूत हैं।[३] आशीष वचन देने के प्रतिफल मे कुछ भी न पाने पर उनमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठती है[४] और वे कुवचन बोलने लगते हैं।[५] उनके पारस्परिक व्यवहार मे व्यग, ताना, अवमानना तथा निन्दा की प्रधानता है।[६] कुछ सन्यासी तन्त्र, मन्त्र, ध्यान और गुरु के प्रति अनास्था की स्थिति मे मद्य पीने, मास खाने तथा स्त्री के साथ रमण करने मे ही मोक्ष की प्राप्ति समझते हैं।[७] अहिंसा पर इतना अधिक बल दिया गया है कि कपडे मे जूँ, दात मे बदबू तथा नाक मे मल होने के कारण समुचित उच्चारण भी नही हो पाता है।[८] किसी-किसी मे सदाचार का अभाव[९] और चारित्रिक भ्रष्टता[१०] विद्यमान है। फलत सन्यासी लोग वेश्यागामी भी होते थे।[११] सन्यासी समाज के इस प्रकार पतनो मुख होने का कारण यह है कि कतिपय लोगो के सन्यासी होने के मूल उद्देश्य मे काम वासना की तृप्ति[१२] पुत्र प्राप्ति की उत्कट कामना निहित है। कतिपय अपने यश लाभ के साधन स्वरूप मे इसे अपनाए हुए हैं। उनके समक्ष सन्यासाश्रम का पवित्र तथा महत् उद्देश्य प्रपच मात्र है।

———

१ की० २ ३५ २३६, २ ६ २६, ढोमा० २७३, ३९५, चादा ८ ४, वीरा० ४७, प्रच० १ १२६, विप० १२, प्रा० प० II, १०१, सनेह० १०१, पृ० १२ ४६ ५ ११ १७ १। २ पृ० १० २९ ३५, चादा १५४, वीरा० १२, प्रचि० ३ ११ १०९ प्रचि० ४ १८८ २२०, ढोमा० ५१६ २०, चादा ३७, ८७, ९१, १२२, २६०, ३३०, प्रच० ४ ३५९, जिण० ५७, वीरा० ७, ३९, ५४-५६, ६६, प्रचि० ३ ८७, ४ १२६, १५५ ५।२०४ २१०। ३ गोतम०, प्रचि० २ ५७ ८४ ४।१३८। ४ प्रच० ३५ ३६। ५ की० २ २९-३० १८९।

६ प्रचि० २ ५८ ६७, २ ५८ ९५-१०१, ३ ९७, ३ १०९ १५६, ५ २२६, २ ५७ ८४

७ प्रा० पै० II १०७-११५। ८ प्रचि० ४ १६२ २००।

९ अही, ४ १८७ २१४ १७। १० रास और रासान्वयी काव्य, पृ० ५२ द्रष्टव्य।

११ प्रचि० ३ ९३। १२ वीण ३९, ४४, ९१, चादा०, १६४, ३२१, जिण० १५८, ढोमा० १७१, ४७७, विप० १४, (६) जिण० ४८, ५२-५४, ४८७-८८।

ग—सस्कारो की योजना

आश्रम भारतीय सामाजिक जावन के प्रमुख मोड हैं तथा सस्कार मार्गों पर अवस्थित कतिपय लघु मील क पत्थर सदृश है जो मनुष्य को जीवन के भावा चरण का कतव्य बोध एव अभिनव परिस्थितियो का परिचय कराते ह। मुसलमानो की "सुन्नत" तथा ईसाइयो के 'वप्तिस्मा' से मिलते जुलते हिन्दू सस्कार मे वे धामिक अनुष्ठान समाविष्ट हैं जिनका उद्देश्य दैहिक, बौद्धिक तथा आत्मिक परिष्कार द्वारा पूणता प्राप्त करना है। इनके द्वारा व्यक्ति को समाज का सक्षम तथा प्रगतिशील सदस्य बनने मे सहायता मिलती है। समाज मे सङ्गठन, समरूपता तथा मतैक्य प्रतिष्ठित करने के लिए व्यक्ति के सम्मुख कतिपय सस्कारो के रूप मे आदश स्थितिया प्रस्तुत की गई हैं जो मनुष्य को निरन्तर वाछित प्रगति के लिए प्रत्येक स्तर तथा दिशा से पृष्ठ-भूमि निमित करती हैं।

हिन्दू सस्कार की मान्यताये वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, गृह्य तथा धर्म सूत्र, स्मृति एव परवर्ती निबन्ध वाङमय के रिक्थक्रम मे अनेक परिवतनो को आत्मसात करती हुई विवेच्य काल तक उपलब्ध होती हे। इनकी सख्या के सम्बन्ध मे शास्त्रो मे मत भेद है। आश्वलायन, पारस्कर, बौधायन, बाराह प्रभृति गृह्यसूत्र तथा मनु न सस्कारो की सख्या १३ दी है। गौतम स्मृति मे चालीस सस्कारो का उल्लेख है। अगिरा का सूची मे पच्चीस सस्कारो की चर्चा है। किन्तु सोलह सस्कार सर्वाधिक लोक प्रचलित है।[१] वस्तुत, इनमे पाच सस्कार के ही सकेत विवेच्य वाङमय मे उपलब्ध होते हैं। साहित्यकार द्वारा सस्कारो की अभिव्यक्ति मे इस प्रकार अधिक रुचि, मा यता तथा उत्साह न होने का कारण जैन धर्म बौद्ध धम तथा भक्ति माग के कर्मकाड विरोधी अभियान का प्रभाव हो सकता है क्योकि सस्कार मे मूलत धामिक विश्वास, व्यवहार, सामाजिक प्रथाये एव विधिया आदि कर्मकाड की ही प्रधानता है। सस्कारो की

१ देखिये स्वामी दयानन्द सरस्वती, 'सस्कार विधि' और प० भीमसेन शर्मा, 'षोडस सस्कार विधि।'

रहस्यात्मकता तथा अस्पष्ट प्रकृति की सुरक्षा के लिए लोक मे अप्रचलित सस्कृत भाषा मे परिवतन न करने की पुरोहितो की प्रवृति सस्कारा के प्रति जन-साधारण की आस्था मे शिथिलता उत्पन्न करने मे कम उत्तरदायी नही है, यह तथ्य भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि विजेता इस्लाम राजसत्ता ने हिन्दू सस्कृति को पराभूत किया और देश के अधिकाश भागो मे धामिक अनुष्ठानो को सम्पन्न करने की स्वतन्त्रता तथा अवसरो मे भी कमी आई। सामान्य जनता ने वाह्य एव प्रदर्शनीय धार्मिक विधि विधानो का परित्याग किया। मात्र कुछ परम्परावादी आभिजात्य साम त परिवार ही सङ्कट मोल लेकर धार्मिक कृत्यो के सम्पादन का साहस कर सकते थे।

सस्कारो की दीघ परम्परा मे, अनेक परिवर्तनो के मध्य यदि कोई ऐसा सस्कार है जिसने अपना महत्व कभी नही खोया तो वह विवाह सस्कार है क्योकि यह समस्त सस्कारो का उद्गम अथवा केन्द्र स्वरूप हे। स तानोत्पादन द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति पाना बिना विवाह के असम्भव है। इसी से भारतीयो मे यह एक अनिवार्य धार्मिक एव सामाजिक कतव्य माना गया है। इससे वश-परम्परा की निरन्तरता, पितरो की अविच्छिन्न पूजा तथा सम्पत्ति के उत्तराधिकार की समस्या का समाधान होता है। वस्तुत विवेच्य काल मे भी अन्य सस्कारो की अपेक्षा विवाह सस्कार को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की गई है। पुत्र जिणदत्त के लज्जाशील, शीलवश धार्मिक तथा शुद्ध विचार, अविषयी स्वभाव को देखकर सेठ जीवदेव को चिन्ता हुई कि कही मेरा वश न डूब जाय। अस्तु, उसने एक लाख दाम उस व्यक्ति को पुरस्कार स्वरूप देने की घोषणा की जो जिणादत्त को विषय वासना की ओर प्रेरित कर विवाह सस्कार के लिए उसे उद्यत करा सके।[1] मारू के विवाह सस्कार के सम्बन्ध मे रानी ने राजा पिङ्गल से अनुरोध किया कि कोयल और आम्रवृक्ष, तथा मेढक और सरोवर की भाँति मारु को भी उसके योग्य वर के साथ रहने का अवसर यथाशीघ्र प्रदान करे।[2] चादा[3], प्रद्युम्न, रूपकुमार, सुभानुकुमार, वीसलदेव[5] तथा सयोगिता[6] प्रभृति के विवाह सस्कार के लिए उनके अभिभावको की आतुरता तथा उत्साह का वणन इस प्रसङ्ग मे द्रष्टव्य है।

हिन्दू विवाह सस्कार विश्व के अन्य विवाहो के सदृश पति-पत्नी के मध्य, व्यक्तिगत हित से पूण एक समझौता मात्र नही है, अपितु अपने अनुष्ठानो के द्वारा प्रतीकात्मक ढङ्ग से अधिक सशक्त तथा विलक्षण प्रभाव सहित सहयोगी, परिवार तथा

१ जिण० ६५-७२। २ ढोमा० ५ १०। ३ चांदायन। ४ प्रद्युम्न चरित।
५ वीसलदेव रास। ६ पृथ्वीराज रासउ।

समाज के कल्याणार्थ स्वेच्छापूर्वक त्याग एवं आत्मसमर्पण की भावना दृढ़ करता है। विवेच्य वाङमय मे कन्यादान,[१] राष्ट्रभृतादि होम[२] तथा सप्तपदी[३] आदि वैवाहिक कृत्यो का उल्लेख हुआ है जिनमे परिवारो तथा सम्बन्धियो के कल्याण, ऐश्वर्य सम्पन्नता और सुख पहुँचाने का सङ्कल्प किया जाता है।[४] इसी सङ्कल्प का यह प्रभाव है कि अपनी तरुणाई की चरमावस्था मे भी राजमती,[५] मारवणी, मालवणी,[६] चादायन, मैना,[७] विमलामती, श्रीमती, शृङ्गारमती तथा विमलमती प्रभृति विवेच्य वाङमय की नव-विवाहिता भारतीय नारियो ने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वो को त्याग कर प्रवासी पति के सन्निकट चली जाने का साहस नही किया। वैवाहिक सुखोपभोग के भ्रम मे न पडकर पति के अभाव का कष्ट झेलती हुई इन्होने त्याग, आत्मसयम तथा साधनापूर्ण जीवन ग्रहण किया है। वस्तुत विवाह काम-भोग का प्रमाण पत्र मात्र नही है।

विवाह सस्कार दो सामाजिक प्राणियो के मध्य एक अभिनव सम्बन्ध स्थापित करता है। इसके मुख्य अनुष्ठान पाणिग्रहण के अवसर पर सूर्य, चन्द्र, वायु, जल धरती तथा आकाश आदि को साक्षी बनाकर वर, वधू का दाहिना हाथ इस मन्त्र के उच्चारण के साथ पकड कर विश्वास दिलाता है कि 'मैं तेरा हाथ सौभाग्य के लिए ग्रहण करता हूँ, तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त जरदष्टि (जीवित) रहे[९]।' वीसलदेव रासो मे राजमती ने पण्डित द्वारा अपने प्रवासी पति को देवताओ के समक्ष इस सङ्कल्प को मार्मिक ढङ्ग से स्मरण दिलाकर उपालम्भ दिया है कि मेरे साथ अविश्वास न करे।[१०] वर्ण रत्नाकर[११] मे उल्लिखित विवाह वर्णना के स्थाली कृत्य से भी वर, वधू के भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्वो के सयुक्त होने की भावना को शक्ति प्राप्त होती है जिसमे वर, वधू को कुछ पक्वान्न इन वचनो के साथ खिलाता है कि, 'मैं अपने प्राणो से तेरे प्राणो को धारण करता हूँ, अपनी अस्थियो से तेरी अस्थियो

१ वर० ७३ क। २ वही,। ३ वही, प्रच० ५८५, ६५६, वीरा० १९-२१।
४ समस्त पितॄणां निरति शयानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्या दान कल्पोक्त फलावाप्तये द्वादशावरान् द्वादशापरान् पुरुषांश्च पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्री लक्ष्मी नारायण प्रीतये कन्यादानमहं करिष्ये। जगन्नाथ कृत विवाह पद्धति। हिस०, पृ० २७२-७३।
५ वीसलदेव रासो। ६ ढोला मारू रा दोहा। ७ चादायन।
८ जिणदत्त चरित। ९ अथर्ववेद १४ १ ४९, आश्वलायन गृह्यसूत्र १ ७ ३, गोभिल गृह्यसूत्र २ २ १६ हिस०, पृ० २८८। १० वीरा० ८६।
११ वर० ७३ क।

को, मास से मास को, तथा त्वचा से त्वचा को धारण करता हूँ। वर्ण रत्नाकर[२] मे उल्लिखित अन्य वैवाहिक अश्वारोहण कृत्य से भी वर वधू के सम्बन्ध मे स्थायित्व तथा दृढता की भावना उत्पन्न होती है। इसमे पति पत्नी का एक प्रस्तर खण्ड पर इन वचनो के साथ आरूढ कराता है कि तू इसी के समान स्थिर तथा दृढ हो।[३] इन वैवाहिक सस्कारो का विवेच्य वाङमय के चरित्रो पर स्पष्ट प्रभाव द्रष्टव्य है। यथा, वीसलदेव का राजमता, ढाला का मारवणी तथा मालवणा लोरिक का मैना तथा चादायन, पृथ्वीराज का सयोगिता, जीवदेव का जीवजसा, तथा जिणदत्त का विमलामती, श्रीमती, शृगारमती तथा विमलमती के पारस्परिक पति-पत्नी सम्बन्धो मे विशेष कर दूर दूर रहने की स्थिति मे भी, किसी के भी चरित्र मे दुबलता की गन्ध नही प्रतीत होती। गर्विता पत्नी से अपमानित और रुष्ट वीसलदेव अपनी पत्नी के प्रति उत्तरदायित्व के निर्वाह हेतु उडीसा की महारानी द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य सम्पदा तथा राजाओ की चार सुदर सुकुमारियो के प्रलोभन से किंचित मात्र भी विचलित नही हुआ।[४] दूसरी ओर, वीसलदेव के वियोग मे राजमती सदृश समस्त हिदू नारियो पर ऐसा सस्कार पडा है कि पति से विमुख होने पर वे योगिनी बनकर तप करने, हिमालय पर गलने, पवत से कूद कर या नदी मे डूब कर मरने[५] के अतिरिक्त भोग विलास पूण अन्य मार्ग सोचती हुई नही उपलब्ध होती। प्रतिवाद स्वरूप, चादायन के चरित्र मे प्रथम पति की निबलता, कुरूपता तथा गन्देपन के कारण कुछ शिथिलता अवश्य प्रकट हुई है किन्तु समाज मे उसकी सवत्र और सब प्रकार से निदा की गई है।

विवाह दो व्यक्तियो के सयुक्त जीवन मे एक सर्वथा नवीन अध्याय का उद्घाटन करता है जिसमे अनेक दुशकाओ की सभावनाये रहती है। वैवाहिक विधि विधानो मे इनके निवारण के लिए अनेक प्रयत्नो का समावेश है। वणरत्नाकर मे उल्लिखित कन्यादान[६] के अवसर पर, गृहस्थी की सचालिका वधू से, उसकी दुर्भाव नाओ के रक्षार्थ पति, परिवार तथा आश्रितो के प्रति स्नेहपूण दयालु तथा उदार-मना होने के लिए कन्या के अभिभावक द्वारा सकल्प करवाना सर्वाधिक महत्वपूण कृत्य है।[७] राष्ट्रभृत कृत्य[८] मे वर देवताओ से विवाहित जीवन की भावी आपदाओ से बचने के लिए प्राथना करता है कि, प्राणियो के अधिष्ठाता अग्नि मेरी रक्षा करो,

---

१ हिस०, पृष्ठ ८८-८९ पारस्कर गृहसूत्र १ ११ ५। २ वर० ७३ क।
३ हिस०, पृ० २८९, शाख्यायन गृहसूत्र, १ ८ १९। ४ वीरा० १०७।
५ वही, पद ४४। ६ वर ८३ क। ७ हिस०, पृ० २९३ पारस्कर गृहसूत्र, १ ४ १७। ८ वर ७३ क।

महान का अधिष्ठाता इन्द्र मेरी रक्षा करे, पृथ्वी का अधिष्ठाता यम मेरी रक्षा करे।[1] अभिसिंचन क्रिया[2] मे आपा (जल) से शाति तथा स्वास्थ्य के लिए, और सुमगली अथवा आशीर्वाद के क्रम मे कल्याण के लिये लोग देवो से प्रार्थना करते हैं।

विवाह के पूव, दिन मे विवाह मण्डप मे विघ्न विनाशक गणेश की प्रतिमा का स्थापन, होम के लिये यज्ञीय वेदी का निर्माण, वधू के पिता का अपनी पत्नी के साथ स्नान कर मङ्गल सूचक वस्त्र पहन आचमन तथा प्राणायाम के सहित स्वस्ति-वाचन, मडप-प्रतिष्ठा, मातृपूजन, वसोर्धारापूजन, आयुष्य जप तथा नान्दि श्राद्ध करना, विवाह प्रक्रिया मे अनेक विभिन्न देवताओ को मडप मे आमन्त्रित कर उनकी यथोचित पूजा, आराधना तथा उनको साक्षी बनाकर अनेक सकल्पो का करना, और अन्त मे समस्त देवी-देवताओ तथा पितरो को उनके अपने-अपने स्थान पर ससम्मान विदा करना, आदि कृत्यो से[3] प्रकट होता है कि हिन्दू विवाह सामाजिक अनुबन्ध की अपेक्षा एक धार्मिक सस्था अथवा सस्कार है जिसमे वर और वधू के दो पक्षो के अतिरिक्त एक तीसरा अतिमानवीय, आध्यात्मिक अथवा दैवी तत्व भी विद्यमान है जो वैवाहिक सम्बन्धो का मूलाधार है। पारस्परिक उत्तरदायित्वो के अतिरिक्त पति-पत्नी मे इस तृतीय तत्व के प्रति महत्तर निष्ठा की भावना भी समाविष्ट हो जाती है जो दाम्पत्य जीवन मे आकषण तथा स्थायित्व, और विवाह के शब्दार्थ 'ऊपर उठाना, योग देना, ग्रहण करना तथा धारण करना' को सार्थकता प्रदान करती है। विवेच्य वाङ्मय मे वैवाहिक जीवन के सकट काल मे राजमती, विमलामती शृगारमती, श्रीमती आदि समस्त चरित्र एकमात्र इसी तृतीय तत्व, देवी शक्ति, का आश्रय ग्रहण करते दिखाई देते है। यथा जिणदत्त के प्रवास गमन पर दुखित विमलामती यह विलाप करती हुई कि, 'हा देव, तूने यह क्या किया,' उसने निश्चित रूप से जिन मन्दिर मे आश्रय लेकर सदैव णमोकार मन्त्र का स्मरण किया।[5] शृगारमती, श्रीमती तथा विमलमती आदि ने भी ऐसा ही किया।[6]

दूसरा सस्कार जिसका सम-सामयिक साहित्यकारो ने कुछ वर्णन किया है, वह मरणान्तर अन्त्येष्टि सस्कार दाह कर्म[7] और पिण्डदान[8] है। आश्वलायन गृह-

१ हिस०, पृ० २९३ पारस्मर गृहसूत्र १ ५ ७-११। २ वर० ७३ क।
३ वर० ७३ क, जिण० १२१ १२५, प्रच० ३५६ ७, ६५५, वीरा० १२ १९।
४ हिस०, पृ० २९५। ५ जिण० १५८। ६ जिणदत्त चरित।
७ ढोमा० ४०५, पृ० ३ ३२ ३, चादा, ३१७, वीरा, ६६। ८ पृ० ८।३० ३।

सूत्र[1] तथा भारद्वाज गृहसूत्र[2] के अनुसार दाह संस्कार हिन्दू समाज के मूलाधार यज्ञ की आह्वनीय अग्नि में प्रदत्त आहुति के सदृश है जो शव को स्वर्ग पहुँचाती है। चिता में अग्नि प्रदीप्त करते समय प्रार्थना की जाती है, 'हे अग्ने ! इस देह को तू भस्म न कर, न इसे कष्ट दे और न इसकी त्वचा तथा अवयवो को इतस्तत विकीर्ण ही कर। जातवेद, जब यह शरीर पूर्णत ध्वस्त हो चुके, तो इसकी आत्मा को पितृलोक में ले जा।'[3] तदनन्तर मृतक के विभिन्न अवयवो को इस प्रकार सम्बोधित किया जाता है, 'नेत्र सूर्य के निकट जाए, प्राणवायु वायुमण्डल मे विलीन हो, अपने अपने पुण्य कर्मों के अनुरूप तू स्वर्ग, पृथ्वी या जलीय किसी भी लोक को, जो तेरे लिए कल्याणप्रद हो, जा, तुझे वहाँ भोजन प्राप्त हो और तू वहा सशरीर निवास कर।[4] इस तरह लोग मृतात्मा को परलोक भेजते है और वह स्वगवासी होता है। वस्तुतः 'मरने' के लिए 'स्वगवास हुआ', परलोक गामी हुए', स्वर्गारोहण किया' 'सदृश वाक्यो द्वारा लोगो ने अपनी भावाभिव्यक्ति विवेच्य ग्रन्थो मे सामान्य रूप से प्रकट की है।[5] दाह कर्म को स्थायित्व और मान्यता प्रदान करने का मूल श्रेय वैदिक काल मे प्रसृत भारतीय आर्यों की यह दृढ आस्था क्रियाशील थी कि अग्नि इहलोक मे स्वगदूत हैं और उसमे प्रदत्त आहुतियाँ स्वर्ग तक पहुँचाने वाले दूत की भाँति है (वह्नि यशस विदथस्य केतु सुप्राव्य दूत सद्यो अर्थम्।) अस्तु, हिन्दू दाह क्रिया, और्ध्वदैहिक-कृत्य कहलाया जिसका तात्पर्य स्वग की ओर गति के लिए आत्मा को शरीर से मुक्त करने वाली क्रिया है।[7]

यद्यपि शव व्यवस्था की अनेक विधियो मे दाह कर्म वैदिककाल से ही हिन्दुओ मे मान्य है, किन्तु जौहर के देश राजस्थान की एक नारी मारवणी द्वारा अपने पति के सौत-गृह से न आने पर उपालभ रूप मे यह कथन, 'स्वामी, न तो मिलते हो, न आते ही हो और न ले जाते हो, विलम्ब करने पर मारवणी के अस्थिपजर पर कौए उड़ाओगे,[8] प्रकट करता है कि उसने अवश्य शव को कही खुले मैदान मे छोड़े हुए देखा होगा। इससे इस प्रकार की प्रथा के प्रचलन का भी अनुमान करना असगत न होगा। शव व्यवस्था, उस जाति के सास्कृतिक और धार्मिक विश्वास पर आधारित है। शव को खुले मैदान मे छोड़ देने की आदिम प्रथा घुमन्तू जाति की है जो

---

१ छ १ २। २ १ २, हिंस० पृ० ३२०। ३ ऋ० १० १६ १, हिंस०, पृ० ३३०। ४ ऋ० १८ २७ हिंस० ३०१। ५ जिण ५४६-५४७, पृ० १२ ४६ ४, ८ १४ ३। ६ ऋ० ? ६०, हिंस० पृ० ३०६।
७ हिंस०, पृ० ३०७। ८ ढोमा० १५७।

शव व्यवस्था का अन्य उपाय कर सकने मे सक्षम नही होती । हिन्दू जाति तो वैदिक काल से ही उन्नत और सभ्य है । इस असभ्य प्रथा के प्रचलन का स्पष्ट सकेत कही भी नही उपलब्ध है । दाह क्रिया वैदिक काल से ही मान्यता प्राप्त कर चुकी है । इस सदर्भ मे, इसी काल मे पाटन (आधुनिक बिहार प्रान्त के अ तर्गत) के एक जगल मे सर्प दश से अपनी पत्नी की मृत्यु पर आभीर जाति के लोरिक का यह सकल्प कि चिता जला कर सपत्नीक भस्म हो जाऊँगा,[१] उल्लेखनीय है । निम्नजाति के असहाय व्यक्ति पर ही दाह क्रिया का सस्कार स्पष्ट परिलक्षित होता है । मारवणी द्वारा अस्थिपजर पर कौवे उडने की उक्ति, सभव हो सकता है कि कवि ने कही किसी निधन का शव उसके सम्बन्धियो द्वारा किसी कारण विशेष से त्याग दिये जाने के दृश्य को दैवयोग से देख लिया हो और विस्मृत पति का ध्यान आकर्षित करने के लिये इस मर्मस्पर्शी दृश्य को प्रयुक्त कर लिया हो । राजस्थान की दूसरी नारी राजमती को पति के वियोग मे पौषकालीन राजभवन श्मशान सदृश्य दिखाई पडना, दाह सस्कार के परम्परा का पोषक है ।[२]

शव व्यवस्था मे भू-निखात की प्रथा तत्कालीन मुस्लिम समाज मे प्रचलित है । जौनपुर तुक बस्ती मे कब्र मकबरो से पृथ्वी भर गई थी, ऐसा कीर्ति सिंह ने देखा ।[३] समसामयिक साहित्य मे हिन्दू जाति मे यह प्रथा सवथा अनुपलब्ध प्रतीत होती हे, किन्तु शिशु और उच्चकोटि के साधु महात्माओ के शव का भू-निखात वर्तमान हिन्दू समाज मे इतस्तत दिखाई देता है । मुसलमानो के मकबरे सदृश हिन्दुओ मे भी अपन विगत सम्बन्धियो की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए शव के अस्थि-अवशेषो पर समाधि या स्तूप का निर्मित होना शतपथ ब्राह्मण[४] के उल्लेखो से प्रमाणित होता है, किन्तु यह प्रथा रूप मे सावजनीन नही भासित होता, नही तो अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ भी इसकी चर्चा करने मे अवश्य रुचि लेते । बौद्ध श्रमणो तथा सिद्ध महात्माओ और सन्यासियो की समाधि या स्तूप के निर्माण की प्रथा हिन्दू समाज मे विद्यमान है, किन्तु सामान्य जनता मे यह काय लोकप्रिय नही है ।

अन्त्येष्टि सस्कार का पिंडदान कृत्य भी विवेच्य वाड्मय मे उल्लिखित है ।[५] इससे, लोगो का यह विश्वास उद्भासित होता है कि आत्मा मरने के पश्चात भी जीवित रहती है । उसको भोजन, आवास, पाथेय तथा मार्ग दर्शक की सुविधा कम से कम एक वर्ष पयन्त अपेक्षित है । अस्तु, महापात्रो के माध्यम से साल भर के लिए

१ चादा; ३१७ । २ वीस० ६६ । ३ की० २ ३१ २०८ ।
४ १३ ८, हिस०, पृ० २३२ । ५ सनेहलीला ४६, की० ४ ३८ १५२ ।

भोज्य पदार्थ और गृहस्थी के अन्य सामान दान मे अर्पण किये जाते हैं। स्वर्ग लोक की यात्रा सफल बनाने के लिये वृषोत्सर्ग सम्पन्न करवाया जाता है।

चांदायन[१] मे महर सहदेव की कन्या के छठी सस्कार का वर्णन है। वस्तुत यह निष्क्रमण सस्कार है और सामान्यत जन्म से बारहवे दिन सम्पन्न किया जाता है। कन्या के सन्दर्भ मे इसका छठवे दिन ही सम्पन्न होने का प्रचलन आधुनिक काल मे भी है। इसमे, नव-जात शिशु को प्रसूति-गृह से उसकी जिज्ञासा तथा विभिन्न अङ्गो की गतिविधि की तुष्टि के लिए अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र मे धार्मिक विधिविधानो के साथ लाया जाता है। इस सस्कार का महत्व, नवजात शिशु की दैहिक सम्बर्द्धन और उसके मस्तिष्क पर सृष्टि की असीम प्रभुता का अङ्कन होने मे समाविष्ट है।

प्रद्युम्न चरित[२] और जिणदत्त चरित[३] मे जातकर्म सोत्साह सम्पादित किया गया है। घर-घर मे भेरी, तुरही, महुवर तथा शङ्ख ध्वनि के साथ स्त्रियो ने बधावा, मङ्गलाचार और मङ्गलगीत गाये, मोतियो के चौक पूरे और केशर तथा रोली के चिह्न लगाये। ब्राह्मणो ने वेद मन्त्रो का उच्चारण किया। अभिभावक ने ताबूल, सुपारी, पान, सूती-रेशमी वस्त्र और बहु सख्या मे द्रव्य वितरित किये। ब्रह्म तथा आदित्य पुराण के अभिमत मे पुत्र का जन्म दिन शुभ तथा महत्त्वपूण है। इसे देखने देव और पितर आते हैं,[४] क्योकि ऐसा विश्वास है कि पुत्र का मुख देखते ही पितर अमरत्व को प्राप्त होते है[५] और पितरो की प्रसन्नता से पुण्य होता है। अस्तु इस दिन यथाशक्ति दान पुण्य करना चाहिये जिससे सद्य प्रसूता माता के कष्ट और शिशु की भावी आपदाओ का निवारण हो सके। जातकर्म तथा निष्क्रमण प्रधानत दोष मार्जन करने वाले सस्कार हैं।

विवेच्य वाङ्मय मे जनेऊ[६] तथा पन्द्रह वर्ष की आयु मे उपाध्याय कुल (विद्यालय) मे जाकर विद्याध्ययन[७] के उल्लेख से विद्यारम्भ, उपनयन तथा वेदारम्भ सस्कारो के सम्पन्न होने का सकेत उपलब्ध होता है। वैदिक युग से उपनिषद् काल तक विद्यारम्भ तथा वेदारम्भ, उपनयन सस्कार मे ही समाविष्ट

१ चा० ३३।   २ प्रच० १२०, १२१।   ३ जिक्ष० ६०-६१।
४ वीर मित्रोदय सस्कार प्रकाश भाग १, पृ० १९९, हिस०, पृ० ९८।
५ ऋणमस्मिन सन्नयति अमृतत्वश्च गच्छति। पिता पुत्रश्च जातस्य पश्येच्चैज्जीवितो मुखम॥ याज्ञवल्क्य स्मृति, १७ १।   ६ वीरा० २२, प्रच० ४३७४।
७ जिण० ६३, प्रच० १३६-१३८, प्रचि० ४ १४८ १९४।

थे ।[१] गृह्यसूत्र, धर्म सूत्र, प्राचीन स्मृति, सस्कार विषयक मध्यकालीन तथा आधुनिक निबन्धो मे भी विद्यारम्भ की चर्चा नही है । वीर मित्रोदय,[२] स्मृति चन्द्रिका,[३] गोपीनाथ भट्ट की सस्कार रत्नमाला तथा याज्ञवल्क्य स्मृति की अपरार्क कृतवाख्या प्रभृति ग्यारहवी सदी के परवर्ती कर्मकाड सम्बन्धी वाड्मय मे विद्यारम्भ सस्कार की परम्परा का स्पष्ट और प्रमाणित उल्लेख उपलब्ध होता है ।[४] वेदारम्भ का सवप्रथम उल्लेख व्यास स्मृति[५] (दूसरी से पाचवी सदी के मध्य) मे प्राप्त होता है । वस्तुत बालक का गुरुकुल जाना ही उपनयन था जिसके अनन्तर विद्यारम्भ और वेदाध्ययन प्रारम्भ हो जाता था ।[६] उपनयन सस्कार प्रमुख ओर प्राचीनतम है किन्तु विवेच्य काल मे उपनयन का कही उल्लेख नही है । इसकी मान्यता का सकेत जनेऊ[७] द्वारा प्रकट होता है । इस युग मे वेदाध्यथन को प्राथमिकता उपलब्ध है ।

सामान्यत , यह सार्वभौम परम्परा है कि प्रत्येक व्यक्ति के वयस्क होते समय उसको सामाजिक जीवन मे प्रवेश कराने के उपलक्ष्य मे किसी न किसी प्रकार से दीक्षा सस्कार का सम्पादन अवश्य कराया जाता है जिसके द्वारा युवक मे सामाजिक और जातीय मूल्यो के प्रति आस्था और उनकी सुरक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना सुस्थिर होती है । व्यक्ति को समाज की पूण सदस्यता की प्राप्तिके लिये मुसलमानो की 'सुन्नत' तथा ईसाइयो के 'बैप्टिज्म' की भाति हिन्दुओ के इस उपनयन सस्कार, जिसके

---

१ उप समीपे आचार्यादीना बटोर्नीतिनयन प्रापणमुपनयनम् । भारुचि०, वीरमित्रोदय सस्कार प्रकाश भाग १, पृ० ३३४, उद्धृत्वा अयानि । ४ ४, हिंस०, पृ० १४७ ।

गुरोर्व्रताना वेदस्य यमस्य नियमस्य च
देवताना समीप वा येनासौ नीयतेऽसौ ॥ अभियुक्त, वही

उपनयन मात्र विद्यालय मे गुरु के निकट जाने पर ही नही होता था, अपितु वेद के किसी भी शाखा के अध्ययन प्रारम्भ करते समय बार-बार इसका अनुष्ठान अपेक्षित था (यच्छाखीयैस्तु सस्कारै सस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् ।

तच्छाखाध्ययन कार्यमेव न पतितो भवेत् ॥ वसिष्ठ, वीरमित्रोदय, सस्कारप्रकाश, पृ० ३३७)

छान्दोग्य उपनिषद ५ २ ७, याज्ञवल्कय स्मृति १।१५ आपस्तम्ब धर्म सूत्र १ । २ सस्कार प्रकाश, भाग १, पृ० ३२१ ।

३ सस्कार काड, पृ० ६७ । ४ हिंस०, पृ० १३८ ।

५ १ १४ ,हिंस० पृ० १८२ । ६ वही । ७ वीरा०, २२, प्रच० ४ ३७४। ।

आदश आयोजन मे अग-भग करना[१], युवती के साथ अस्थायी एकान्तवास[२] तथा सहन शक्ति की परीक्षा[३] प्रभृति अशिष्ट प्रतिब ध न होकर व्यापक शिक्षा का अनिवाय निब धन है, जिसके अनन्तर दीक्षित व्यक्ति को द्विज कहलाने, आय-क या के साथ विवाह करने तथा विशाल साहित्य-भण्डार के अध्ययन करने आदि के सदृश अनेक अधिकारो एव सुविधाओ का माग प्रशस्त हो जाता है।

उपनयन सस्कार का उल्लेखनीय कृत्य भिक्षाटन, जिसे अध्ययन काल पर्यन्त निर्वाह के प्रमुख साधन रूप मे ब्रह्मचारी को अपनाना होता है, का प्रद्युम्न तथा जिण दत्त के उपाध्याय कुल (विद्यालय) मे रहते समय उल्लेख नही किया गया है। सभव है, आभिजात्य वर्ग मे यह प्रचलन अनिवार्य और लोकप्रिय न रहा हो। इस परम्परा से ब्रह्मचारी के मनमे समाज के प्रति कृतज्ञता और सम्मानपूण धारणा सदैव के लिए सुस्थिर हो जाती है।

सामा यत , नव निर्मित मण्डप तथा शुभ मुहूर्त मे कृत सस्कारगत देवी देवताओ का प्रतिष्ठापन, स्तुति, प्रार्थना, मन्त्रोच्चारण, आशीवचन और अभिषिचन प्रभृति क्रियाये ऐसा धार्मिक एव आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करती है कि व्यक्ति उच्च भावनाओ से अभिभूत परिष्कृत एव पवित्र होने की अनुभूति करने लगता है। सस्कार अपने अनुष्ठान के समय गृहस्थोपयोगी समस्त अपेक्षित वस्तुओ की याचना, अशुभ प्रभावो का प्रतिकार, नैतिक सद्गुण, चरित्र-निर्माण तथा व्यक्तित्व के विकास को प्रश्रय देकर सासारिक जीवन को अनुशासित, सुनियोजित तथा सोद्देश्य बनाते हैं। साथ ही यज्ञ, यजन और व्रतो के विधान से सस्कार्य व्यक्ति को ऐसा अनुभव कराते हैं कि उसका जीवन किसी अदृश्य शक्ति से अनुप्राणित है। फलत प्रद्युम्न, जिणदत्त, जीवदेव, जीवजसा, चन्द्रशेखर, पृथ्वीराज, महाकवि चन्द, कयमास, हर्रसिह, कनकबड गूजर, राठौर निडर राय, छगन, कन्ह अल्हन, अचलेश, विझ, सलष पमार, लखन बघेल तथा तोवर पहाडराय आदि व्यक्ति इस असीम तथा अदृश्य शक्ति को आत्म-समर्पण करते तथा उससे स्वय सचालित होते दिखाई पडते हैं।[४]

१ हर्बट स्पैन्सर, प्रिंसिपुल्स आव सोश्योलाजी, १ १८६, २६० ।

२ फ्रेजर, गोल्डन बॉउ १, पृ० ८२६, ३ २०४, हिस०, पृ० १६४ ।

३ फ्रोबेनियस, चाइल्डहुड आव मैन, अध्याय ३, फ्रेजर, गोल्डन बॉउ, द्वितीय सस्करण, ३ पृ० ४४२, हिस०, पृ० १४४

४ प्रद्युम्न ६६०, जिण० से चन्द्र तक जिण० ५०७-५४६, पृथ्वीराज १०:२६, चन्द (पृ० १२ १), कयमास (पृ० ३:२ ४) हर्रसिह से पहाड राय तक, पृ० ८ १०-३४

सस्कार मे प्रसृत परिवर्तनकारी तत्व—

आपस्तम्ब धर्मसूत्र, छान्दोग्य उपनिषद् वसिष्ठ धर्मसूत्र, भारद्वाज गृह्यसूत्र, तथा याज्ञवल्क्य स्मृति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मूलत उपनयन सस्कार का मुख्य प्रयोजन शिक्षा ग्रहण करना था[१]। किन्तु सस्कार के कर्मकाण्ड को लाकदृष्टि मे सर्वाधिक महत्वपूण स्थान प्राप्त हो गया है। विवेच्य साहित्य से यह ज्ञात होता है कि चौदहवी शताब्दी के भारत मे जनेऊ अथवा उपनयन सस्कार का महत्व विद्याध्ययन की भूमिका के रूप मे गौण हो चला था। केवल इसका कर्मकाड मात्र अधिक प्रचलित था। तात्पर्य यह कि द्विजो का विशेषकर ब्राह्मणो का इस युग मे भो अनिवार्यत उपनयन सस्कार होता था कि तु उपनयन सस्कार के अनन्तर विद्यारम्भ का आरम्भ अनिवायत सम्पन्न होता नही दिखाई पडता है। वीसलदेव, यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् अपनी पत्नी से मनमुटाव कर धन कमाने विदेश चला जाता है।[२] प्रद्युम्न चरित मे जनेऊ और ब्राह्मणवश का प्रयोग, अधिक खाने की शक्ति से किसी यशस्वी व्यक्ति की मर्यादा नष्ट करने और उसे चिढाने के अभिप्राय से हुआ है।[३] यज्ञोपवीत सस्कार, मौलिक तत्वो का अतिक्रमण कर महत्वहीन बन गया है।

रामायण तथा महाभारत काल तक प्रौढ कन्याओ के विवाह के समथन मे अनेक दृष्टात उपलब्ध हैं।[४] किन्तु परवर्ती काल मे विवाह की निम्न आयु सीमा उत्तरोत्तर घटती गई। वसिष्ठ के अभिमत मे 'प्रयच्छेन्नग्निका कन्या ऋतुकालभयात् पिता। ऋतुमत्या हि तिष्ठन्त्या दोष पितरमृच्छति।'[५]-ऋतुकाल के भय से पिता को

---

१ आपस्तभ धर्मसूत्र १—उपनयन विद्याथस्यश्रुवित सस्कार इति। 'उपनयन विद्याध्ययन के लिए इच्छुक व्यक्ति के श्रुति के अनुसार सस्कार' को कहते हैं।
—छा दोग्य उपनिषद ५ २ ७
—वसिष्ठ, वीरमित्रोदय सस्कार प्रकाश, भाग १, पृ० ४१५ पर उद्धृत, हिंस, पृ० १५०—यच्छारवीयैस्तु सस्कारै सस्कृतो ब्राह्मणो भवेत्।
तच्छारवाध्ययन कायमेव न पतितो भवेत्॥—वेद के किसी शाखा का अध्ययन प्रारम्भ करते समय बार बार उपनयन का अनुष्ठान करना पडता था। हिंस०, पृ० १५०। — भारद्वाज गृह्यसूत्र—हिंस०, पृ० १५०।
—याज्ञवल्क्य स्मृति १ १५–उपनीय गुरु' शिष्य महाव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेन शौचाचाराश्च शिक्षयेत्॥

२ वीरा० २२ और उसके आगे। ३ प्रच० ४ ३७४।

४ हिंस०, पृ० २३७। ५ वसिष्ठ स्मृति १७।

नग्निका अवस्था मे ही क`या का विवाह कर देना चाहिये, क्योकि ऋतुमती कन्या के घर पर रहने से पिता दोषभागी होता है । विवाह के लिए नग्निका सर्वोत्तम समझी जाने लगी—'यावलज्जा न जानाति यावत् क्रीडति पासुभि । तावत कन्या प्रदातव्या न चेत् पित्रोरधोगति ।' इस धारणा को मुस्लिम सस्कृति के प्रभाव के अनन्तर हिन्दुओ के इस धार्मिक विश्वास ने भी दृढ किया कि क यादान कौमार्य अवस्था मे देने से पुण्य और उपभोक्ता स्त्री के कन्यादान से पाप लगता है । फलस्वरूप मारवणी ढोला, चाँदा तथा राजमती की आयु उनके विवाह के समय क्रमश १।।, ३, ४, तथा १२ वर्ष थी ।[२]

आश्वलायन तथा मनु के अनुसार विवाह-विषयक अपेक्षित तथ्यो मे 'कुल' की उच्चता प्रधान है—कुलमग्रे परीक्षेत मातृत पितृतश्चेति ।[३] उत्तमैरुत्तमो नित्य सम्बन्धानाचरेत्सदा । निनीषु कुलमुत्कषमधमानधमास्त्यजेत ।[४] परवर्ती काल मे कुल का महत्व इतना अधिक बढ गया कि क`या कुल को दी जाने लगी, वर तथा उसकी क्षमता गौण हो गई । ब्राह्मणस्य कुल ग्राह्य न वेदा सपदक्रमा । कन्यादाने तथा श्राद्धे न विद्या तत्र कारणम् ।[५] विवेच्य काल मे चाँदा के विवाह मे 'कुल' को प्राथमिकता प्राप्त है[६] जब कि उसका पति काना, गन्दा और सब प्रकार से अक्षम है[७] जिसका दुष्परिणाम पर पति के साथ अनैतिक सम्बन्ध तथा दो कुलो मे अपयश, अव्यवस्था और दु ख का प्राप्ति है ।

———

१ हिंस०, पृ० २४१ । २ ढौमा० ६१, चादा० ३५, वीरा० ३० ।
३ आश्वलायन गृह्यसूत्र १ ५ । ४ वीर मित्रोदय, २, पृ० ५८७ पर उद्धृत, हिंस०, पृ० २३१ । ५ वीर मित्रोदय २, पृ० ५८७ पर उद्धृत, हिंस०, पृ० २३२ । ६ चादा० ३५-३६ । ७ चादा ४३ ।

घ—ऋणत्रयी

व्यक्ति तथा समाज दोनो को सुस्थिर एव प्रगतिशील बनाने की प्रक्रिया मे हिन्दू सामाजिक सगठन के ऋणत्रयी-ऋषिऋण, पितृऋण तथा देवऋण—का महत्वपूण योगदान है। इसमे आभाय व्यक्ति अपने जीवन के सम्बर्द्धन-हेतु, बिना किसी मूल्य के दूसरो से उपलब्ध कृपा एव देय के प्रति उपकृत होता है जिसके फलस्वरूप समाज तथा अनुग्राहक को पुन जीवन शक्ति एव गतिमयता प्राप्त होती है। ऋषियो की उस महान् विचारधारा को, जिनके माध्यम से वैदिक काल से वेदादि ग्रन्थो द्वारा मानव जीवन को पवित्र, उच्च तथा सुखी बनाने के सदुपाय उपलब्ध हुये, जननी-जनक की उस कष्ट सहिष्णुता तथा त्याग को, जिसके द्वारा शिशु पालित पोषित तथा सम्बर्द्धित हुआ, तथा देवो की उस कृपा को, जिससे प्रकृति प्रदत्त अनेक जीवनदायक वस्तुएँ और शक्तियाँ मिली, मानव पर उसकी ऋणवत् मान्यता स्थापित कर, उससे उऋण होने के लिए, क्रमशः वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन तथा यज्ञ-कर्म को सामाजिक जीवन का अनिवार्य अग निर्धारित किया गया एव इस प्रकार हिन्दू समाज शास्त्रियो ने, व्यक्ति को कृतज्ञ एव कत्तव्यनिष्ठ बनाने की दिशा मे एक अनोखा प्रयास किया है।

वस्तुत, तैत्तिरीय सहिता बहु चर्चित तीन ऋण की ही चर्चा करती हैं—जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिऋ णवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवे य प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो य पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासि। किन्तु, आदि पव मे चौथे मानव ऋण का भी उल्लेख है जिससे अनृण होना, समस्त जीवो के प्रति उदारमना बनने की भावना अनुस्यूत है।[२] अनुशासन पर्व[३] मे पाँचवाँ ब्राह्मण अतिथि ऋण भी उँल्लिखित है।

---

१ ६ ३ा१० ', सा० वा० कणे, हिस्ट्री आव धर्मशास्त्र, भा। २, पृ० २७०, ५६०।
२ १२० १७-२०।   ३ ३७ १७।

ऋणो के प्रति वैदिक काल[1] से ही हिन्दुओ मे ऐसी धारणा विद्यमान है कि बिना अनृण हुए जीवात्मा मोक्ष नही प्राप्त कर सकती और उसे विभिन्न योनियो मे जन्म ले-लेकर उत्तम वण की दासता स्वीकार करनी पडती है। चौदहवी शताब्दी के अपभ्रश एव हिन्दी साहित्य मे उल्लिखित है कि मत्री उदयन देव ऋण से उऋण हुए बिना जीवनान्त समझ कर सकरुण स्वर मे विलाप करने लगा। स्वजनो समेत दोनो पुत्रो को उद्धार के लिए प्रतिश्रुत जान कर ही वह परलोक वासी होता है।[2] इसी काल मे, पितृ ऋण से मुक्ति पाने का प्रमुख साधन पुत्र प्राप्ति, जिसके लिए जीवदेव और जीवजसा अत्यातुर हैं, जिणदत्त चरित[3] मे द्रष्टव्य है।

परम्परा से, सव प्रथम, ऋषि ऋण शोधन के लिये ब्रह्मचारी बन कर ऋष्याश्रम मे वेदाध्ययन काय सम्पन्न करना पडता था। इस प्रथा का परिपालन प्रद्युम्न कुमार[4] तथा जिणदत्त[5] को उपाध्याय कुल (विद्यालय) मे भेज कर सम्पन्न किया जाता है, किन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि विवेच्य युग मे वेदाध्ययन का कायक्रम जन सामान्य के जीवन मे लोकप्रिय नही रहा, अन्यथा साहित्यकार अपने जन नायक की जीवन गाथा मे इसको महत्वपूण स्थान अवश्य प्रदान करते जबकि वेदाध्ययन में लक्षण शास्त्र, छद शास्त्र, तकशास्त्र, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, रामायण, महापुराण, ज्योतिष, तत्रशास्त्र, मन्त्र, धनुष-बाण, छुरी, तलवार चलाना, लडना, भिडना आदि सभी ७२ कलाओ का अभ्यास समाहित कर लिया गया था।[6]

'वण रत्नाकर'[7] मे ऋषि और उनके रहन-सहन का बडा सुन्दर निरूपण किया गया है। अक, पलाश, शमी, खदिर, दूर्वा, उदुम्बर, अश्वत्थ, अपामाग आठ यज्ञवृक्ष से आकीण, कन्द, मूल, फल, पुष्प, तिल, तडुल, यव, जल, कुश, समिधा, स्रुच, स्रुव, पवित्र, उपग्रह, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, वेदि, महावेदि, पचगव्य, पचामृत पचकषाय, अघ, पाद्य, विष्टर, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, चषान, उदूखल, चमस, कृशर, कुल्माषादि अनेक यज्ञ सम्भृति से उपशाभित, यव, गोधूम, नीवार, चरण, देवधान्य, कगु, श्यामाक सातो व्रीहि से सयुक्त भाटजोर, जटामसी, वच कूढ, सूरन, हरदि, दारुहरदि, चम्पक, वइसाठि, नगरमोथ दसो सर्व्वोषधि से वासित ऋषि का निवास स्थान होता था। वे आषाढदड कृष्णाजिन, कमडल, तरुत्वच, कोपीन, अन्तर्वास,

१ ऋ० ८ ४७ १७, १० ३४ १०, ८ ६६ १०, अथव० ६ ११७ ३, ब्राह्मण तैत्तिरीय ३ ७ ९ ८ तैत्तिरीय सहिता ३ ८ १-२, शतपथ ब्राह्मण १३ ४ ३ ११, निरुक्त ६ ३२, पा वा० क० हि० ध०, पृ० ४१५ से उधृत। २ प्रच० ४ १५।
३ ४७-५८। ४ प्रच० १३७'१३९। ५ जिण० ६३-६५।
६ टिप्पणी ४ और ५ दोनो। ७ ५ ५४ ख।

वहिर्व्वास विभूति, वृक्षी, अक्षमाला, दारुपत्र, करडक से अलकृत रहते थे । ऋषि यम, नियम, प्राणायाम प्रत्याहार, समाधि, ध्यान, धारणा, वन्ध वेन्ध मुद्रा, आसन, अन्तर्य्योग वहिर्योगादि व्यापारो से युक्त श्रद्धा के पुत्र, अग्नि के सहोदर, सन्तोष की राशि सयम के प्रतिबिम्ब, ज्ञान के सखा ममत्व के शत्रु, लोभ के कृतान्त परमहसदशापन्न होते थे ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ऋषि जगत की पूर्वावस्था मे प्राणस्वरूप थे—प्राणा वा ऋषभ ।[1] इसी से पितृ प्राण, देव प्राण, असुर प्राण, गन्धवप्राण तथा पशु प्राण विकसित हुए—ऋषिभ्य पितरो जाता पितृभ्यो देवदानवा । देवभ्यश्च जगत् सर्व चरस्थाण्वनुपूवश ।। वस्तुत ऋषिया के हृदय मे सवप्रथम ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ, उन्होने उसे छन्दोवद्ध किया तथा वाक्य रूप मे मुनियो को पढाया और मुनियो ने मनुष्यो मे उनका प्रचार किया[3]—

> यज्ञेन वाच पदवायमायन्तामन्वविन्दन्नृषिसु प्रविष्टाम् ।
> ता मा भृत्या व्यदधु पुरुत्रा ता सप्तरेभा अभिसनमन्ते ।।
>
> ऋग्वेद १० ७१ ३

आलोच्य साहित्य मे जीवजसा की भाति समसामयिक लोगो का विश्वास है कि 'रिसि भासियउ न झूठिउ होय ।'[4] ऐसे ऋषियो की वाणी मे चरित्र का सगठन, व्यक्तित्व का निर्माण सामाजिक-धार्मिक कत्तव्यो का सम्पादन एव उदीयमान पीढी का प्रशिक्षण सम्भाव्य होता हे ।[5]

शिशु की असहायावस्था मे पिता, बच्चे का भरण, रक्षण तथा शिक्षणा द्वारा सम्वद्धन करता है । अस्तु पुत्रो मे पिता के प्रति कृतज्ञता, प्रतिष्ठा तथा सम्मान का भाव प्रस्फुटित होना सवथा स्वाभाविक एव अपेक्षित है । योवन क प्रमाद मे इस उत्तरदायित्व का विस्मृत न होने देने के लिए इसे ऋणवत् मान्यता दी गई हे और स्नातक बनने समय गुरु यह आदेश देता ह कि 'मातृदेवो भव, पितृ देवो भव ।'[6] इनकी सेवा ही परम धर्म हे—'एष धम पर साक्षात् ।' अन्य समस्त धम यथा अग्निहोत्रादि उपधम कहे जाते है ।[7] 'पिता धर्म पिता स्वग पिता हि परम तप ।

---

१ काड ६ । २ मनुस्मृति, तृतीय पाद, म० म० गिरिधर श० च० वैवि० भास० पृ० १३१ । ३ म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी वेदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति, पृ० ५३ मे भावाथ उधृत । ४ जिण० ५८ ।

५ अल्तेकर एजूकेशन इन ऐंशिएट इडिया, पृ० ३२६ द्रष्यव्य है ।

६ तैत्तिरीय उपनिषद १ ११ २ । ७ मनु० २ २३६-३७ ।

पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वा प्रीणन्ति देवता ।'[1] अस्तु, आभाय पुत्र का नह सामाजिक तथा नैतिक कत्तव्य निधारित कर दिया गया कि प्रतिफल मे, पितृवश का निरतरता का सुस्थिर रखन के लिये गृहस्थाश्रम ग्रहण कर पुत्रो पन्न द्वारा पिता का मोक्षप्राप्ति मे सहायक हो। पुत्र प्राप्ति के लिए अत्यातुरता की वैशिष्टय से विवेच्य काल सम्पन्न है।

हिन्दू सामाजिक जीवन मे देव तत्व मूलत प्रधान है। मुख्य दव प्राण रूप है। निरुक्तकार के अभिमत मे प्राणरूप देवता मुख्यत तीन है—पृथ्वी का देवता अग्नि, अ तरिक्ष का देवता वायु ओर स्वग या द्युलोक का आदित्य। अन्य समस्त देवता इनके ही अवान्तर विशेष है। इन देवताओ की कृपा से प्रकृति के द्वारा विभिन्न जीवनोपयोगा वस्तुएँ और शक्तिया उपलब्ध हाती है जिसका प्रत्यपण यज्ञ-सम्पादन स होता था। विवेच्य काल मे देवताओ के स्वरूप ओर जेन-बौद्ध धम के कारण यज्ञ सम्पादन मे आमूल परिवतन स्थापित हो गया। सम्प्रति, शरीरधारा दवता प्रधान बन गये। महामहापाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के कथनानुसार अशरोरी देवो का चर्चा करना नास्तिकता समझी जाती थी। अस्तु, सगुण देवो के ऋण-शोधन का प्रमुख प्रणाली अब मदिर निर्माण मे परिवर्तित हो गयी। मन्त्री उदयन यह पश्चात्ताप करके करुण विलाप करने लगता है कि अपने जीवनान्त मे शत्रुञ्जय आर शकुना के विहार का जीर्णोद्धार न करके देव ऋण से मुक्त नही हो पा रहा हूँ। पवित्र राजसूय यज्ञ की परिस्थापना के सम्बन्ध मे ज्ञानसम्पन्न प्रधान अमात्य ने कन्नोजराज जयचन्द को मन्त्रणा दी कि यह कलियुग है। राजसूय यज्ञ का सम्पादन सगत नही है। हे देव अनेक देवालय निर्मित कर षोडश प्रकार के दान प्रति दिन दिया करे। इस युग मे मदिर तथा विहार आदि का निर्माण काय यज्ञ की तरह प्रतिष्ठित और लोकप्रिय हा गया था जिसके अनेक द्रष्टा त प्रबन्ध चिन्तामणि मे सुलभ हे।

---

१ महाभारत १२ २६६ २१। २ जिण० ४७-५८, प्रच० १२७ १३४-१३६, १४०-१४५। ३ शतपथ ब्राह्मण १४वा खड।
४ वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति, पृ० १८। ५ प्रच० ४ १४५।

ङ—पुरुषार्थ चतुष्टय

जीवन का लक्ष्य—प्रवास की दारुण विपत्ति म भयाक्रान्त कार्तिसिंह यह सोचता है कि हम लोगो का इतना कष्ट सुनकर मा कैसे जीवित बचेगा। वस्तुत ऐसी स्थिति मे वह अपनी इस धारणा से सन्तोष अर्जित करता ह कि धर्माधिकारा हरिहर का प्रबोधन जिससे चारो पुरुषाथ सहज सुलभ होते ह अवश्य मा का सान्त्वना और शक्ति प्रदान करेगा।[1] पुरुषार्थो के प्रति इस आस्था के सहित कीर्तिलता और वर्ण रत्नाकर की वेश्या वणना मे प्रसगत आशका प्रकट का गई है कि कनक-प्राकार मण्डित, पान नायिका, प्रति नायिका, सखा, सैरन्ध्रा, परिचारिका, दास-दासा, कामुकादि लोक स सकुल सुगधित कुसुम से ग्रथित, परिष्कृत तथा अलकार से युक्त शरीर, सम्मार्जित केश सर्वाङ्ग सुन्दरी, हृदयहारिणी, यौवनश्रा, लावण्या-यतना, परिहासपेसली वेश्या का देख कर कही तीसरा पुरुषाथ काम, इतना उद्दाम न हो जाय कि धम अथ एव मोक्ष आदि शेष पुरुषाथ विनष्टप्राय हो जाय। वस्तुत इन सदर्भो मे पुरुषाथ अपन सन्तुलित एव समन्वित रूप मे ही सर्वमान्य है।

पुरुषाथ चतुष्टय मे 'अथ' भौतिकता से सम्बद्ध है। भौतिक साधना की अपेक्षा एव उपलब्धि को जीवन के एक अनिवाय और उपयोगी अग के रूप मे स्वीकार किया गया है। प्राकृत पैंगलम्[4] मे अभिव्यक्त है कि 'ऊचे छाजन वाला विमल घर, विनयशील युवती पत्नी, धन से भरा हुआ मुद्रागृह तथा समय पर वर्षा सुखकर होते है—

उच्चउ छाअण विमल घरा तरुणी घरिणी विणअपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा वरिसा समआ सुक्खकरा ॥१७४॥
(हाकलि)

---

१ की० ३।१४, १२८, १४१, १४२। २ २।१४०। ३ ४४०।
४ १।१७४।

प्रबन्ध चिंतामणि मे कहा गया है कि एक दरिद्र ब्राह्मण ने एक राजा के पास जाकर इस आशय का एक श्लोक पढा कि "मा, मुझसे और मेरी पत्नी से सतुष्ट नही रहता, श्रीमती जी मुझसे ओर मा से अप्रसन्न है। मैं भ। मा और पत्नी स अनमना रहता हूँ ? हे राजन् ! बताइए इसमे किसका दोष है ?" बुद्धिमान राजा न अभिप्राय समझ कर उसे तीन लाख दान मे दिलवाया और बताया कि वस्तुत धनाभाव ही कलह का मूल है। प्राकृत पैंगलम मे इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—बुद्धि, शुद्धि, दान, मान तथा गर्व तभी तक है जब तक पास मे द्रव्य है—

ताव बुद्धि ताव सुद्धि ताव दाण ताव माण ताव गव्व,
जाव जाव हत्थ णच्च विज्जुरेहु रग णाइ एक्क दव्व।
एत्थ अत अप्प दोस देव रोस होइ णट्ठ साइ सव्व,
काइ बुद्धि कोइ सुद्धि कोइ दाण काइ माण कोइ गव्व ॥१९९॥
(गडका)

अर्थ का रूप—किन्तु "वित्ति बटोरइ कित्ति"[1] और 'वित्ते हीणउ नत्थि वणिज्ज"[2] सदृश सूक्तियो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण धन का उपार्जन, उद्यम तथा गुण द्वारा सम्पन्न करना श्रेयस्कर समझा गया है—

अवसओ उद्दम लक्षि वस अवसआ साहस सिद्धि
पुरुष विअख्खण जचलइ त त मिलइ समिद्धि।

विक्रम नामक एक राजपूत सैकडो प्रयत्न करने पर भी जब धन नही प्राप्त कर सका तो आजन्म दरिद्रता से दुखी होकर भट्टमात्र नामक मित्र के साथ रोहण पर्वत पर गया। मार्ग मे एक कुम्हार द्वारा लोभी मित्र को यह ज्ञात होने पर कि वहा, किसी पुण्यात्मा द्वारा ललाट की हथेली से स्पर्श कर 'हा देव!' ऐसा कहकर कुदाल से चोट करने पर अभागे को भी धन मिलता है, आशका हुई कि विक्रम धन के लिए इस प्रकार का दीन वचन कभी नही उच्चारण करेगा। उसने एक चाल चली। विक्रम जब कुदाल चलाने को उद्यत हुआ तो भट्टमात्र ने अकस्मात उससे कहा कि आपके देश से आये हुए एक यात्री से समाचार पूछने पर ज्ञात हुआ कि आपकी मा मर गई।' इसे सुनकर विक्रम ने हाथ से माथा ठोक कर 'हा देव!' कहा और कुदाल फेंक दिया जिसके अग्रभाग द्वारा खुदी भूमि से सवालाख मूल्य का रत्न निकल आया। लोभी मित्र ने उसे ले लिया। घर वापस आते समय मार्ग मे भट्टमात्र ने समस्त वृतान्त स्पष्ट कर माता के सकुशल एवं जीवित रहने

---

१ की० १ २१ ६२। २ की० ३ २६ ८। ३ की० २ १६ ७५-७६।

का नद न ाया। विक्रम न रत्न छान लिया और उमे राहण पवन पर जाकर फेंक दिया।

'वण रत्नाकर' मे उल्लिखित 'द्रव्य अइसन दुगम्य अन्धकार'[१] अर्थ—लिप्सा के दुगुणो की ओर सकेत करता है। लाख त्रिजा चरित्र करने पर भी जब अनावश्यक धन के लिए विदेश जाने वाले 'मूख तथा भेस के पीडाड (पडवा) मन्श पति वीसलदेव को रानी राजमती न रोक सकी तो उसे समझाया कि अथ और द्रव्य तो धरती मे गडा रह जाता है, किन्तु जो इसका सचय करता है यह उसी का खाता है। अन्य पुरुषार्थों' की सापेक्षता मे 'अथ' क प्रति नीक धारणा को विद्यापति ने इस प्रकार व्यक्त किया, 'कतन मीलिए नाधि उत्तिम नेअओ सत न छाडए। —अथात् कितनी भी निधिया क्यो न मिल जाय पर उत्तम व्यक्ति सत्य को नही छोडता।

वाणिअ होइ विअष्खणा धम्म पसाइ हट्ट।

वस्तुत चतुर व्यापारी धम क साथ हाट फैलाता ह।

'प्रब ध चिन्तामणि' मे उल्लिखित है कि एक उपाध्याय अपने शिष्यो को शिक्षा दे रहा था कि द्रव्य की तीन गति है—दान, भोग तथा नाश। जो व्यक्ति न दान देता है और न भोग करता है, उसके द्रव्य की तीसरी नाश गति होती है।' उपाध्याय के मेधावी छात्र ने अपनी धारणा इस प्रकार व्यक्त की है कि 'मों सौ प्रयास करके प्राप्त प्राणो से भी अधिक मूल्यवान धन की दान ही गति हो सकती है। अन्य गति नही, विपत्तिया है। बादविवाद के अनन्तर सब सम्मति से द्रव्य की एक ही गति दान, को मान्यता मिली।[५] इस विचारधारा की अमिट छाप युग के वाङ्मय मे प्रतिबिम्बित हैं। भोजराज ने अपने चित्त मे लक्ष्मी की अस्थिरता तथा जीवन को तरङ्ग की भाति उसको चचल समझ कर दान मडप मे बैठकर दान देना प्रारम्भ कर दिया। राजकोष को विनष्ट होता देखकर रोहक मन्त्री ने उसे रोकन के लिए अन्य उपायो को असमथ पाकर राजसभा की समाप्ति पर भारपट्ट पर खडिया से लिख दिया—'आपत्तिकाल के लिए धन का सचय अपक्षित है।' राजा ने उसे देखकर पाश्व मे यह अकित कर दिया—'भाग्यवान को आपत्ति कहा है? मन्त्री के पुन यह लिखने पर कि 'कभी देव कुपित हो जाय तो? राजा ने लिखा

१. ३ ३२ क। २ वीरा० ५३, ५०। ३ विप० १.१२।
४ की० ३ २८ ११८। ५ प्रचि० ५ २२३ २६४, २६५।

कि तब तो संचित भी विनष्ट हो जाएगा।'[1] एक अन्य राजा के संदर्भ में प्राकृत पैंगलम् में उल्लिखित है कि—

> जिणि आसावरि देसा दिण्हउ,
> सुत्थिर डाहररज्जा लिण्हउ।
> कालजर जिणि कित्ति थप्पिअ
> धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ।।१२८।।

—जिस राजा ने आसावरी देश दे दिया सुस्थिर डाहर राज्य ले लिया कालिंजर में अपनी कीर्ति स्थापित की, उसने धन को इकट्ठा करके धर्म के लिए अर्पण कर दिया। वसन्तपुर का सेठ जीवदेव भी समस्त धन दान और धर्म में देकर ऋषि के पास जाकर तप करने लगा।[3] दान की अत्यधिक लोक-प्रियता का पता प्रबन्ध चिंतामणि की गाथाओं में लगता है। कीर्तिलता में भृङ्ग भृङ्गी से वीर पुरुष की विशेषताओं के संदर्भ में बतलाता है कि वह गुप्त दान कर उसे भूल जाता है।[4]

'वर्णरत्नाकर' की वणिक पुत्र वर्णना में व्यापारी को धर्मिष्ठ तत्वज्ञ और विवेकी बतलाया गया है। फलतः सव्वे सुअन सवे सधन —सभी सज्जन तथा धनी हैं। सवइण पाउ वत्थ जहि ठाउ —जहा समस्त वस्तुएँ उपलब्ध हैं, समाज की ऐसी समृद्धि एवं वैभवपूर्ण स्थिति का उल्लेख 'रहन सहन' के अध्याय में समाविष्ट है।

काम की मान्यता—

यद्यपि पुरुषार्थ चतुष्टय में काम' के अंतर्गत शारीरिक, मानसिक तथा इन्द्रिय ग्राह्य समस्त आनन्द के माध्यम स्वभावजन्य कामनाएँ तथा इच्छाएँ समाविष्ट हो जाती है किन्तु विवाह को एक पवित्र संस्कार, सन्तानोत्पादन को ऋणत्रयी से मुक्ति का साधन तथा गार्हस्थ्य की प्रमुख आश्रम रूप में मान्यता में इङ्गित होता है कि 'काम' अपने सामान्य अर्थ में यौन सुख को व्यक्त करने वाला वासना के पर्याय रूप में ही व्यवहृत होता रहा। समाज सङ्गठन की दृष्टि से रति द्वारा उपलब्ध इन महत्वपूर्ण योगदानों की उपेक्षा समाज शास्त्रियों से सम्भाव्य नहीं। इसके द्वारा व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति को व्यवस्थित करने में अपूर्व सहायता मिलती है, वृद्धावस्था में असहाय तथा जर्जरित शरीर के पोषण के लिए सन्तान की उपलब्धि होती है, वंश पर-

---

१ प्रचि० २ ३६। २ प्रापै० १ १२८। ३ जिण० ४८।
४ १ १६ ४४। ५ की २ २१ १२३। ६ जिण, ३१।

म्परा का निरन्तरता मे सुस्थिरता आती है, मोक्ष सुलभ हो जाता है, भोगो के आनद की प्राप्ति के अनन्तर विषयो के प्रति कभी-कभी उदासीनता का भाव उदित होकर वैराग बुद्धि का उद्बोधन होता है, तथा जातीय जीवन एव संस्कृति की सुरक्षा मे अप्रतिम योगदान प्राप्त होता है।

रति रसराज शृङ्गार का स्थायी भाव होने के कारण वाङमय की समस्त विधावो मे परिव्याप्त है। विभिन्न देश, काल एव समाज के आवेष्टक होने के परिणामस्वरूप इसके स्वरूप मे वैभिन्य अवश्य विद्यमान है। ऋग्वेद[1] के यम-यमी सम्वाद से ज्ञात होता है कि उस समय तक मुक्त यौन-सम्बन्ध का प्रचलन सर्वथा समाप्त नही हुआ था। लौकिक सस्कृत के महान् ग्रथ वाल्मीकीय रामायण मे लोक-मङ्गल के लिए आत्मसुख की बलि और दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता प्रतिष्ठित है। अपवादो के अनन्तर महाभारत के प्रेमाख्यानो मे नारी का कामिनी रूप उसका दैहिक रूप-लावण्य तथा सभोग शृङ्गार ही उभरा है। कालिदास के साहित्य मे सौन्दर्य, प्रणय, विलास तथा काम क्रीडा का चिरन्तन रागात्मक रूप अभिव्यजित हुआ है। कामात्त यक्ष को नदी मे विवृत जघना' नायिका की छाया दिखाई पडती है। पवन शृङ्ग को पीनान्नत स्तन तथा पार्वत्य गुफाओ का सुरत-श्रान्त यक्षिणियो के विश्राम-स्थल रूप मे देख वह भाव विह्वल होता है। नग्न रतिक्रीडा के विभिन्न व्यापारो के राग रञ्जित चित्रण की दृष्टि मे कवि कालिदास की कृतियो का व्यापक समीक्षा हुई है। 'कुमार सम्भव' मे शिव एव पार्वती के प्रणय व्यापारो से कवि ने शृङ्गार वर्णन की पराकाष्ठा को स्पर्श कर लिया है।

चौदहवी सदी मे 'काम' के प्रति लोगो की गहरी आस्था दिखलाई पडती है। 'वर्ण रत्नाकर' मे 'नायक वर्णना', 'नायिका वर्णना' वेश्या वर्णना कुट्टनी वर्णना' के साथ साथ 'कामावस्था वर्णना' मे काम की दस अवस्थाओ के चित्रण के अनन्तर शय्या के ऊपर चार कोमलालिङ्गन, सात कठिनालिङ्गन, दस चुम्बन स्थान के दस प्रकार के चुम्बन, पाच नख विन्यास, पॉच दसन विन्यास तीन केशाकर्षण, चार सामान्य सुरत, सोलह उत्तान सुरत एव पार्श्ववन्ध, तिर्य्यक, अधोमुख, विपरीत, लता-बन्ध हिन्दोलवन्ध, कीर्तिवन्ध, पुरुषायितादि अनेक विबन्धो से हस, सारस, कपोत, हारीत, कलविक, लावकध्वनि के साथ पदरस, स्तनित, सीत्कृत, द्रुतकृत, मुर्म्मरादि सुरत चेष्टाओ सहित नायक नायिका दोनो की काम जनित आकाक्षाओ की पूर्ति का कामशास्त्रीय पृष्ठ-भूमि मे सविस्तार वर्णन मिलता है।

---

१ ऋग्वेद मडल-१०, सूक्त १०, वि० असि०, पृ० ५८।

'अभिनव जयदेव' तथा सरस कवि विद्यापति ने श्रृङ्गार रस का 'त्रिभुवन सार' तथा 'सगर समारक सार' माना है। 'पुरुष परीक्षा' कीर्तिलता, 'कीर्ति पताका' 'गारक्ष विजय' तथा गीति पदा मे काम भावना क अनेक सुरम्य चित्र सुलभ होत है 'विद्यापति पदावली' श्रृङ्गार एव उसकी अभिव्यजना करन वाले सौन्दर्य तथा प्रण॰ के चारु चित्रो से भरी पडी है। उदाहरणतया—

प्रथमहि हाथ पयाधर लागु,
पुलके प्रमोदे मनोभव जागु।
नीबीब ध के जान कि भेला,
चेतन पन कि ॥ध्रु०॥
कि सखि कहब मञे कहन न जाई
हरिक चरित कहइते रहओ लजाइ।
धम्मिल धरइ अधर मधु पीबें
जीबै।
दइा न मानए दोप न जान
गहबर गाढ आलिङ्गन दाने॥
अइसनि कहिनि न कहिअ आन
कह दो (स र पराने
भनइ विद्यापति एहु रस जान
राए सिबसिंह लखिमा द रमान॥[1]

इस सदभ मे 'चादा लोर मिलन खड'[2] के भा कुछ अश उद्ध त किए जा सकते है। लारिक चदा मिलन का वणन कवि क शब्दा मे देखिए—

आपनु मरम चाद जो कहा।
उठि कइ चाद लारु कर गहा।
गहि अकौ गिय दीन्ही बाहा। पिरम न सकै लारिकु नाहा।
आधी बीरी खडि मुखि दीन्ही। आधी छीनि लोरि पहि लान्हा।
तबहि सीसु लार सिरु बारै।
तक बही षेचि माझ मुष मारै।

---

१ प्रकाशक विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, भाग २, पद ६४।
२ पद २१५-२१८।

तक बही रास पाठ दे बैसा
तू तक बही हसि कै तोरे कसा ।

चलत लोर कछु मन न सुहावे । कहि कहि पपि रम चाद बारावे ।
भव कर चितु उपना लार मदन अति लाग ।
अति रस रसिकु सेज फुनि रावे चादा देय सुहाग ।।२१६।
पैठ भुजुगु राइ का बारी । फूल करी रसु लेइ फुलवारी ।
डार डार चहुँ दिसि फिरि आवै । षूटै दाख बेलि फर राव ।।२१७।।
खिन एक हाथ पाय रेगि आए । फुनि र फेरि दुहुँ हिय उर लाए ।
बहु सोहाग दइ सुदरि धरी । खरा अवटि जनु साचइ भरी ।
अधर अधर सौ कर करधरी । नाभी नाभी सो तानी रही ।
जाघि जोरि तस कइ लइ ल ए । जनु गज मैमत बर कह आए ।
काम सकति धनि अस कै गही । फुनि फूटि अम्रित नइ बही ।
धन सु राति जिहि सजन मिगावा रइनि छमासी होउ ।
पच भूत आतमा सिराने जस बिरसौ सम काउ ।।२१८।।

जयचद, पृथ्वीराज-सयोगिता कम।म, राजमती बीसलदव, मारवणी-मालवणा तथा कन्नौज-जौनपुर की वेश्याआ के काम बिषयक हाव-भाव भी उल्लेखनीय हु जहा उनके पीन वक्ष का स्पश होने से सन्यासिया का हृदय भी चूर-चूर हो जाता है ।[1] उनकी तियक कटाक्ष छटा कामदेव की वाण पक्ति के सदृश सभी नागरो के मन मे गड जाती है ।[2]

'काम' के प्रति लागा की वास्तविक धारणा का बाध जयचद के शब्दा द्वारा प्रकट होता है—

तत्त धरम्मह मतु यह रत्तह काम सु वित्तु ।
ता काम विरुध्ध न विधि किअउ नित्त नितबिनि नृत्तु ।[3]

(धम का तत्वपूण मत्र यही है कि चरित्र काम मे रत हो, अत उसी काम के अवराध के लिए मैंने नित्य नितबिनी नर्तकियो के नृत्य का विधान किया है।)

काम का रूप—

काम कला का अन्य कलाओ के साथ सम्बन्ध विषयक एक आख्यान दसवी सदी के एक जैन ग्र थ 'कालिका पुराण' मे उपलब्ध है जिसके अनुसार ब्रह्मा ने सन्ध्या

१ की० २ ११०-११ । २ का० ३ १५१ । ३ पृ० ५ ४१ ।

नामक एक पुत्रा आर मदन देव को उत्पन्न कर मदन को वरदान दिया कि तुम्हारे बाणो का लक्ष्य अचूक एव प्रभावपूण हागा । उसने इसका प्रयोग ब्रह्मा ओर सन्ध्या पर ही कर दिया । फलस्वरूप दोनो काम पीडा से सतप्त हुए । उनके इस समागम से अन्य वस्तुआ सहित ६४ कलाओ का भी आविर्भाव हुआ । इन कलाओ के साथ काम कला को विद्वान्, धूत तथा गणिका द्वारा सम्मान प्राप्त हुआ और इसको आनन्ददायिनी (नन्दिनी) कल्याणकारिणो (सुभगा), फलवती (सिद्धा), सोन्दर्यवर्द्धिनी (सुभगकारिणा) तथा नारीप्रिया होने की मान्यता मिली—'नन्दिनी सुभगा सिद्धा सुभगकरणीति च । नारा प्रियेति चाचार्ये शास्त्रेष्वेषा निरुच्यते ।।'[१] इस प्रकार की विचारधारा का व्यावहारिक रूप आलोच्य काल मे द्रष्टव्य है । एक प्रहर रात्रि के अनन्तर जयचद के 'कामिनि सुख रति समर' के अवसर पर काम सुख का उन्मेष करन क लिए कला गोष्ठी आयोजित होती है ।[२]

१ कामसूत्र २ १० ३८, वाचस्पति गैरोला कामसूत्र परिशीदन, पृ० ३३, २६ से उद्धृत ।

२ ततत्तथइ ततत्तथेइ ततत्तथेइ सु मडिय ।
थथु गथेइ थथु गथेइ विराम काम डडिय ।।
सरीगमप्पधन्निधा धुन धुन ति रष्षिय ।
भवति जोनि अग तान अगु-अगु लष्षिय ।।
कला कला सु भेद भेद भेदन मन मन ।
रणकि झकि नूपुर बुलति जे झनझन ।।
धमडि थार घटिका भवति मेष लेषयो ।
झुटित्त छुत्त केस पास पीत साह रेषयो ।।
जति गतिस्सु तारया कटिस्सु भेद कट्टरी ।
कुसम सार आवध कुसम सार उड्डु नट्टरी ।।
उरप्परभ मेष रेष मेषर करक्कस ।
तिरप्पि तिष्ष सिष्षयो सुदेस दक्खिन दिस ।।
सुरनि सग गीतने धरति सासने ध्रुन ।
जमाय जोग कट्टरी त्रिबिध्ध नच सचने ।।
उलट्टि पलट्टि नट्टने फिरक्कि चक्कि चाहने ।
निरत्तने निरष्षि जानु बभ पुत्ति वाहने ।।

(क्रमश आगे जारी)

(रति सुख मे सगीत सुख, कामिनी जघनो (नितबो) मे मृदग ताल, कोक कला मे राग, कामना कठ मे गायिका कठ कामिनी सुभाषण मे गायिका सुभाषण द्वारा जयचन्द ने काम कला मे सगीतकला का पोषण किया। उसने पुन कामिनी के उर से परिरभण करते हुए रात्रि के अन्तिम प्रहर मे मानो हरि और हर के गुणो से रमण किया और नि श्वास सुरभि को देवार्पित सुरभि के समान पवन को अर्पण किया। इस प्रकार सुखपूवक काम-कुभो को ग्रहण किये हुये राजा जयचन्द की रात्रि व्यतीत हुई)

प्रसङ्गगत पृथ्वीराज के हर्म्य की स्थित भी द्रष्टव्य है—

दादुर सादुर सोर नव नूपुर नारि घन।
मिलि सुरमध्धि मधु व्रत माधुर मजु मन।
सालक पच पचीस प्रजङ्क त दून तम।
तहँ-तह अथ्थि सुवान प्रवीन ति दासि दस ।।पृ० ९ ६ ।।
के जुव जूथ जि वाद प्रमादहि म द गति।
के चल अचल वायु निरूपहि सद्द रति।
के वर भाष पराक्रति सक्रति देव सुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राज वर ।।पृ० ९ ७।।

पिछले पृष्ठ का शेष—

विसेष देस ध्रुप्पद पद वदन रागया।
चक्रमेष चक्रवृत्ति वालि ता विसाजया ।।
उरध्ध मुध्ध मडलो अरोह रोह चालिन।
ग्रहति मुत्ति दुत्तिमा मनु मराल मालिन ।
प्रवीण वाणि अध्धरी मुनिंद्र मुद्र कुडली।
प्रतिष्ष भेष उध्धरउ सु भोमि लो अषडली ।।
तलत्तलस्सुतालिता मृदग धुक्कन धुने।
अपा अपा भणति भे अपनि जानि याजन ।।
अलष्ष लष्ष लष्षने नयन वयन्न भूषने।
नरे नरे नरिंद मा स मेस काम मुष्षने ।।पृ० ५ ३८।।

* * *

सुरख सुख्ख मृदग नार जघना राग कला कोकन।
कठी कठ सुभासन समइत काम कला पोषन।
उर भी रभ किता गुण हरिहरो सुरभीयपवनापिता।
एव सुष्ष सकाम कुभ गहिता जयराज रात्रि गता ।। पृ० ५ ४० ।।

(सघन नारियो के नव नूपुरो का रव दादुर तथा शार्दूल शोर सदृश था। उन नूपुरो के स्वर के मध्य मधुव्रती और मधुर प्रिय मधुकर मञ्जु मन से आ मिलते थे। उस हर्म्य मे पाच-पचीस (अनेक) शालिकाये (सारिया) थी। उनमे उनकी दूनी पयङ्के (प्रत्येक मे दो-दो) थी। उन सारियो मे वीणा मे प्रवीण दस-दस दासियो की अथाइया थी। युवती यूथ, जो वाद्यो का वादन करता था, अपनी मन्द गति से राजा को प्रमादित करता था, अपने हिलते हुये अचल की वायु से शब्द-रति का निरूपण करता था, श्रेष्ठ प्राकृत अथवा देववाणी संस्कृति मे सम्भाषण करता था, तथा गुण ज्ञान सुजान श्रेष्ठ राजा का मनोरजन करता था।[1]

काम को पुरुषार्थ रूप मे इतनी मान्यता प्राप्त होने पर लोगो की यह आशङ्का स्वाभाविक है कि 'सुन्दरी जबै देखिअ, तवे मन कर, तेसरा लागि तीनू उपेष्रिवअ'[2]— सुन्दरी नायिका को देखकर इच्छा होती है कि तीसरे पुरुषार्थ (काम) के लिए अन्य तीनो (धर्म, अर्थ, मोक्ष) को त्याग दू। इसीलिए इसको धर्म एव कर्तव्य से परि-वेष्टित कर दिया गया है। ६ मास तक अनवरत 'कामदेव त्रिय' के वश मे रहने के अनन्तर जब राजगुरु द्वारा पृथ्वीराज का उद्बोधन हुआ था तो सयोगिता के लाख अनुनय विनय करने पर भी वह यह कहते हुये उसका परित्याग कर दिया कि 'वाहूँ पुज्जउ वग्ग तुह कहिम मुध्ध रतिनाथ'—बाहुओ की पूजा करने वाली श्रेष्ठ स्त्री, इस समय कैसे तुम रतिनाथ की बाते कर रही हो? विवेच्य वाङमय के अधिकाश चरित्र कामार्त्त है, किन्तु वे कामान्ध होकर कोई ऐसा अपावन कार्य सम्पन्न नही किए है जिन्हे समाज विरोधी अथवा धर्म के प्रतिकूल कहा जा सके, यद्यपि वे काम मे आप्लुत हैं।

'नासिका जीव न होयडलइ सास।
पलिङ्ग हू ता धण भुइ पडी।
चीर न सम्भालए न पीवए जी नीर।
जाणे हियडइ हरिणी हणी।
उणिरउ गात्र उघाडा नइ विकल सरीर ॥ बी०६३ ॥

प्रतिवादस्वरूप कयमास[3] तथा रूपचन्द्र[4] का नामोल्लेख किया जा सकता है जो कामान्ध हो गए थे, किन्तु उनके कार्य अनियन्त्रण की दिशा मे अतिशय दूरगामी नही थे, फिर भी वे अपयश और मृत्यु के भागी हुये। कयमास का शव पृथ्वी मे गाड दिया गया और इस युग मे इसे इतना बडा अपराध माना गया कि सती होने के लिए पत्नी

---

१ अनुवादक-सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त।
२ की० २।१४०। ३ पृ० ३। ४ चादायन अध्याय ७।

क्र' शव दन का अनुमति भा नही मिल रही था, तब महाकवि च द ने एसे अपराधा का परम्परागत दण्ड पृथ्वीराज को समझाया—

रावन किनि गड्डिअउ क्राथ रघुनाथ बान दिय ।
बालि किनि गड्डिअउ मु न सुग्रीव जीव लिय ।
च द किनि गड्डिअउ काअ गुरुदार म किल्लउ ।
रवि न पड गड्डिअउ पुच्छि सहदेव पहिल्लउ ।
गडडअउ न इदु गोतम रषि बरु सराप छडिय जिनी ।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गडडइ सभरिधनी ।।पृ० ३ ३६।।

भारतीय वाड मय म सम्भवत दसवी सदा के आसपास काम विषयक उल्लेखो मे एक अभिनव विचारधारा प्रवाहित हुई कि कामक्रीडा के चित्रण मे कभी-कभी अध्यात्म-दशन की उपलब्धि कर ली जावे । वज्रयानी सिद्धो की कृतियो मे धर्म के नाम पर कामाचार का नग्न रूप दृष्टगत हुआ । बारहवी सदी क 'गीत-गोविन्द' के काम क्रीडा मे भक्तजनो को भक्ति भावना का आनन्द प्राप्त हुआ । बङ्ग, कामरूप तथा उत्कल मे विद्यापति को वेष्णव लीलापद कर्त्ताओ मे अग्रगण्य माना जाने लगा । हरि भक्त कविगोविन्द ने (१५३५ १६१३ ई०) अपन को विद्यापतिका शिष्य बताया । कृष्णदास कविराज क 'चैतन्य चरितामृत' मे अभिव्यञ्जित है कि विद्यापति के पदो को प्रेम से गाकर चेतन्य देव आत्मविभार होकर नृत्य करन लगत थ ओर मूर्च्छित भी हो जाते थे । गौडीय वेष्णव सम्प्रदाय विद्यापति के कृष्ण विषयक शृङ्गारिक पदो का भजन कीतन करता है ।

मोक्ष—अथ का मूल्य भौतिक है । यह मात्र कामोपभोग एव भातिक सुखो का साधन है । कामोपभोग क्षणिक सुख उत्पन्न कर दु ख, रोग तथा शोक मे परिणत हो जाता है । मानव जीवन के श्रेष्ठ पुरुषाथ बनने की इन दोनो मे क्षमता नही है । जावन का चरम लक्ष्य मोक्ष जिमे निर्वाण, कैवल्य, अपवग, ब्राह्मी स्थिति, मुक्ति, भूमा, सच्चिदानन्द, परमानन्द अहत्व सिद्धि तथा बोधि भी कहते है सर्वोत्तम पुरुषाथ है क्योकि यह अक्षुण्ण हे आर शेष पुरुषाथ सदा काल के भय से नियन्त्रित है । इसमे समस्त सीमाआ से मुक्ति ब्रह्मत्व तथा परम पूणता की उपलब्धि होती है । यह वह शक्ति है जिसका प्रदत्त करने का क्षमता ससार मे नही अपितु वह जीवन की पूणता मे सम्बद्ध पुरुषाथ है जिसका ससार द्वारा हरण भी सम्भव नही हे । शाकरभाष्य के अनुमार 'यह परम अर्थों म यथाथ, निर्विकार, नित्य, आकाश सदृश सवा तयामा, हर प्रकार क परिवतन स मुक्त, सव सन्तोषप्रद, अविभक्त, स्वय प्रकाश्य, धर्म-अधर्म एव कालो से परे हे—'इद तु परमार्थिकम्, कूटस्थम्, नित्यम्, व्योमवत् सवव्यापी,

सवविक्रियारहितम्, नित्य तृप्तम् निरवयवम्, स्वय ज्योति स्वभावम्, यत्र धर्म-धर्मी सह कार्येण कालत्रय च नापावतन्त तद् अशरार माक्षाख्यम् ।'

आत्माओ का लक्ष्य अपन निहित स्वाथ की प्राप्ति नही अपितु उसका आकषण सावभौम एव सवव्यापा सत्ता क प्रति होता है। प्रकृति के सम्पर्क मे आन पर ही आत्मा का विशिष्टता प्रकट हानी है जो नैसर्गिक न हाने से अपनीत किया जा सकता है। शारारिक सम्बन्धा क कारण भिन्न भिन्न व्यक्तित्व का निमाण होता है वह अनादि काल से न हान स नित्य नही है। जब उक्त सम्बन्धा का उच्छेद हो जाता है तो आत्मा अपने यथाथ स्वरूप मे आकर स्वतन्त्र एव सवज्ञ हो जाती है। समस्त बाधक मर्यादाएँ, स्वाथपरता एव अज्ञान विलुप्त हो जाते है। अपनी इच्छा से मुक्तात्मा शुद्ध सत्त्व स्वरूप शरीर धारण करता है। उसक साथ कोई आसक्ति नही ओर न वह किसा कम की देन ह क्याकि मुक्तात्माआ के समस्त कर्म ईश्वर की प्रेरणा से सम्पन्न हात है। भयानक आपत्तिया, आनन्द के उत्सवा तथा वैभवपूण अवस्थाआ मे रहते हुये भी उसे न उद्वेग होना है और न हष। उस भय, विवशता, दीनता तथा चिन्ताजन्य दुख नही सताते। सब क प्रति दया, करुणा, निष्काम सेवा तथा हित चिन्तन की भावना उसमे व्याप्त हो जाती है। मुक्तात्मा का अनन्त शक्ति तथा ज्ञान का उपलब्धि होता है। ससार के प्रति इसका मिथ्या दृष्टिकोण निमूल हो जाता है। अल्प मति व्यक्तियो की क्षणभगुर तथा मोहक वस्तुएँ उसे आकृष्ट नही कर पाती। चैतन्य के विस्तार एव प्रकाश के कारण यह अनन्तता ओर निरपेक्षता से आप्लुत हो जाता है। जन्म मरण और कमफल इसे नही बाध पाते।

विवेच्य साहित्य मे वर्णित जिणदत्त को गुरु द्वारा उपदेश और पूव जन्म का वृत्तान्त सुनने पर बोध (ज्ञान) उत्पन्न हो जाता है। उसने मोह माया को मिथ्या समझ कर त्याग दिया। अपने आत्महित मे उसने दुद्धष पञ्च महाव्रतो का पालन किया, ज्ञान जल से कर्मो के कीचड को धाया। जब वह परम समाधि के योग मे था, तप लक्ष्मी ने उसके पास अपना दूत भेजा। दूत ने कहा—'हे दयावान्, तुमने काम के दात ताड लिए ह, मोह रूपी योद्धा को रण मे मार दिया है। वस्तुत मुझे तुम्हारी श्री तपस्या ने भेजा है। मेरा नाम विवेक है। प्रसङ्गत जिणदत्त न स्पष्ट किया कि मुक्ति लक्ष्मी की कृपा से मुझे कामदेव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि मिली है तथा मैंने विगत दाषा को समझा है। मुक्ति, निश्चित रूप से मुझे इष्ट है और मैं अवश्य मिथ्या म रहित हा जाऊँगा।' इस भवसागर मे वही जीव सुखी है जो निर्विकार परमात्मा पर ध्यान लगाकर ज्ञान प्राप्त करता और कर्मों का क्षय करने के अनन्तर निर्वाण लाभ करता है।[1]

---

१ जिण० ५३६ ५४६।

प्रद्युम्न कुमार को सात मजिले के सुन्दर श्वेत महल मे नित्य नये-नय विविध भोग विलास के भोगने के अनन्तर चिन्ता हुई कि ससार समुद्र को तैरना बडा कठिन है। मन मे धम को दृढ धारण कर कैवल्य ज्ञान प्राप्त नेमिनाथ क समवसरण मे नारायण, हलधर तथा छप्पन कोटि यादव सहित वह गया। वहा सुरेन्द्र, मुनीन्द्र एव भवनवासी देव पहले से ही उपस्थित थे। सभी न प्राथना का कि हे केवल ज्ञानी नेमिनाथ भगवान्, काम का जीतन वाले तुम्हारा जय हा। दुष्ट कर्मों को क्षय करने वाले तुम्हारी जय हो। तुम्हार प्रसाद से मै इस ससार समुद्र का तिर जाऊँ और फिर न आऊँ।' तब नेमिनाथ न धर्म और अधम के गहन सिद्धान्त और आगम का उपदेश दिया। प्रद्युम्न को बाध हा गया। यह देखकर श्रीकृष्ण शोकाकुल होकर कहने लगे, 'हे मेर पुत्र ! तुम मे आज कौन सी बुद्धि उत्पन्न हा गई है ? तुम द्वारिका का राज्य लो आर सुख भोगा।' नारायण क वचन सुनकर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया कि राज्यकाय और घरबार से क्या करना है ससार ता स्वप्न के समान है। धन, पौरुष एव अपार बल लेकर क्या करना है ? माता पिता अथवा कुटुम्ब किसके है ? ये सब एक हा घडा मे नष्ट हो जायेंगे। आयु के नष्ट हा जाने पर कौन रख सकता है ?' यह समाचार पाकर माता रुक्मिणी वहा दौडा आइ। वह करुण विलाप करके चिल्लाने लगी और घरबार छाडने के लिए मना किया। माता का बचन सुनकर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया कि 'यह सुन्दर शरीर काल क रूठ जाने पर समाप्त हो जायेगा। माया, मोह और मान एक भा साथ न देंगे। रहट का माला के समान यह जीव फिरता रहता है और स्वग, नरक तथा पृथ्वा पर अवतरित होता रहता है। पूव जन्म के कर्मानुसार यह दुजन और सज्जन होकर शरीर धारण करता है। उसी कर्म ने हमे तुम्हे मिला दिया है। माता को ऐसा समझा कर पच-मुष्टि केश लौच किया, द्वेष क्रोध आदि त्याग दिया, तेरह प्रकार के चारित्र, दश लक्षण धर्म और बाइस प्रकार के परीषह को धारण किया जिससे उनका बाह्य और अभ्यतर शरार क्षीण हो गया। कर्मो का नाश होने पर उन्हे कवल ज्ञान की प्राप्ति हुइ। अपने ज्ञान-नत्र द्वारा लाकालोक का यथाथ वे समझने लगे। उनका हृदय-अलौकिक ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो गया। उनका सम्मान देने के लिये इन्द्र चन्द्र, विद्याधर, बलभद्र, धरणीन्द्र, नारायण तथा अन्य देवी दवता आये और श्रद्धापूरित वाणी से स्तुति करने लगे कि 'हे मोह रूपी अन्धकार को दूर करने वाले प्रद्युम्न ! तुम्हारी जय हो। तुमने ससार जाल को तोड डाला है।' इन्द्र न धनपति को आदेश दिया कि 'इस मूक केवली की विचित्र ऋद्धिया हैं, अत क्षण भर मे ही गन्ध कुटी की रचना करो।'[1]

---

१ जिण० ६५६-६६३।

स्वामी रामानन्द कर्मों के चार परिणाम मे 'भट्ट को वन्धा माही भूला हुआ' देखकर समझाते है कि 'मूरख तन धर कहा कमाओ ।'

'कहा भयो अति मान बडाई, धन मद अन्ध मति सोयो रे ।
अति उतग तरु देखि सुहाया, सैबल कुसुम सूवा मेयो रे ॥
सोई फल पुत्र कलत्र विषै सुख, अति सीस धुनि धुनि रोयो रे ।
रामानन्द रतन जम त्रासैं श्री पति पद काहे न जोयो रे ॥'[1]

'बिना जुगति परम पद नही प्राप्त होगा ।'[2] इस शरीर मे व्याप्त परम तत्व की अनुभूति के लिये तन और मन दोनो की साधना अपेक्षित है—

तन मन मेती कोई साधु जन जाग्या जिन किया निकवन (परमपद) वासा ।[3]

'सनेह लीला' की गोपियो द्वारा भी सासारिक दुखो से निवारण तथा परम आनन्द की प्राप्ति के लिये कृष्ण के युगलचरण के प्रति भक्ति की अपेक्षा व्यक्त की गई है—

नासत सकल कलेस जग, अरु उपजत मनु मोद ।
जुगल चरन मकरद मन, पावत परम विनोद ॥

ज्ञान, योग, कर्मकाड तथा सुधारक जैन ओर बौद्ध धर्मों के आचार मार्ग से भी सरल एव सुबोध ढग से युद्धस्थल मे वीरगति प्राप्त कर अविलम्ब मोक्ष उपलब्ध करना तत्कालीन रणशूरो ने उपयोगी समझा और उसे सहर्ष स्वीकार कर जीवन मे व्यवहृत किया । जूझते समय कनक बड गूजर की मुक्तात्मा आह्लादित है कि—

'हुउ रवि मडल भेदि जीव लगि सत्त न छडहु ।
षड षड हुइ तु ड मुण्ड हर हार सु मडहु ॥'[5]

बसन्त ऋतु मे वृक्षो की सुन्दरता बढ जाती है, वैसे ही मोक्ष की उपलब्धि पर मनुष्य मे असीम निरुपाधि तथा शाश्वत आनन्द की बाढ आ जाती है । अस्तु, प्राकृत पैगलम के माध्यम से युग की पुकार है कि—

उद्दटा चण्डी दुरित्ताखण्डी ।
तेल्लोक्का सोक्ख देउ मे मोक्खम् ॥३४

दुख भजिनी उद्भट चण्डी, हमे त्रैलोक्य का सुख मोक्ष प्रदत्त कर ।

---

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ६, ७ । २ वही पृ० १४ ।
३ वही । ४ १२६ । ५ पृ० ८१४३, ४ ।

धर्म—

धर्म वह पुरुषार्थ है जो जीवन में अर्थ और काम को सुव्यवस्थित कर मोक्ष का पथ प्रशस्त करता है। इसकी सुव्यवस्था में समाज अर्थ एवं काम की अपेक्षित उपलब्धि कर सुस्थिरता एवं उत्थान को प्राप्त करता है। यहाँ, धर्म का तात्पर्य उस विधि विधान से है जिसके द्वारा हमारा पारम्परिक तथा सामाजिक व्यवहार सुव्यवस्थित ढंग से जीवन क्रम में सम्पादित होता चलता है। यदि उन नियमों की मान्यता तथा पालन उचित रूप में न हो तो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाय, असामाजिक तत्व उभड़ जायें, स्वार्थ साधकों द्वारा परपीडन एवं विध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल कर दी जायं और अर्थोपार्जन तथा कामोपभोग की प्रबलता में मोक्ष की प्राप्ति असम्भाव्य हो जाय। वस्तुतः धार्मिक नियन्त्रण के अभाव में कामोपभोग तथा अर्थसिद्धि सामाजिक जीवन में दुःख और अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं, जो हमारे जीवन का कथमपि उद्देश्य नहीं हो सकता।

जीवन नश्वर है। वह बाल्य, यौवन, प्रौढ़ता, वार्द्धक्य तथा मृत्यु से युक्त है। अतएव इसका उपभोग इस प्रकार करना चाहिये कि पुरुषार्थ चतुष्टय सहज रूप में सुलभ हो सके। इसी पृष्ठभूमि में हिन्दू समाज शास्त्रियों ने जीवन को चार प्रमुख भागों में विभक्त कर आश्रमों के माध्यम से पुरुषार्थों की उपलब्धि के लिये मार्ग प्रशस्त किया है। ब्रह्मचर्याश्रम में उसकी सहज सिद्धि के लिये शक्ति, ज्ञान एवं क्षमता उपार्जित की जाती है। गृहस्थाश्रम में अर्थ तथा काम का धर्मानुकूल उपभोग करना अपेक्षित है। वानप्रस्थ में धर्म का विशेष रूप से आचरण और संन्यास में मोक्ष की उपलब्धि कर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ सानन्द जीवन यापन करना विहित है। पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा तब तक सम्भव नहीं जब तक कि समाज सुव्यवस्था तथा धार्मिक आस्था सम्पन्न न हो। वस्तुतः वर्ण धर्म की व्यवस्था इसलिये की गई जिसके अनुसार लोग अपने जन्म गुण और स्वभाव के अनुरूप व्यवसायों को ग्रहण कर ज्ञान प्रसार, रक्षा शान्ति, उचित अर्थ व्यवस्था तथा पारस्परिक सेवा सहयोग की भावना से सुव्यवस्थित तथा शान्ति सम्पन्न समाज की स्थापना कर सकें। चौदहवीं सदी के वाङ्मय की पृष्ठभूमि में वर्णाश्रम धर्म का विवेचन पहले हो चुका है। वर्ण रत्नाकर में दया, दान, दाक्षिण्य विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इङ्गितज्ञान कौशल सौहृद, उपचार, धर्मज्ञता, अनालस्य, साहस, सौवच, सदाचार सन्तोष, नीतिज्ञान, सभापाटव, ऊह, आपोह, वितर्क तथा छिद्रान्वेषणादि शिष्ट धर्म का उल्लेख है।[1] कीर्ति-

---

१ ७° १६ क।

स्वामी रामानन्द कर्मो के घोर परिणाम मे 'भट्ट को धन्वा माही भूला हुआ' दखकर समझाते है कि 'मूरख तन धर कहा कमाओ।'

'कहा भयो अति मान बडाई, धन मद अन्ध मति सोयो रे।
अति उतग तरु देखि सुहाया, सेंबल कुसुम सूवा सेयो रे॥
सोई फल पुत्र कलत्र विषै सुख, अति सीस धुनि धुनि रोयौ रे।
रामानन्द रतन जम त्रासैं श्री पति पद काहे न जोयौ रे॥'[1]

'विना जुगति परम पद नही प्राप्त होगा।'[2] इस शरीर मे व्याप्त परम तत्व की अनुभूति के लिये तन और मन दोना की साधना अपेक्षित है—

तन मन सेती कोई साधु जन लाया जिन किया निकवन्न (परमपद) वासा।[3]

'सनेह लीला' की गोपिया द्वारा भी सासारिक दुखो से निवारण तथा परम आनन्द की प्राप्ति के लिये कृष्ण के युगलचरण के प्रति भक्ति की अपेक्षा व्यक्त की गई है—

नासत सकल कलेस जग, अरु उपजत मनु मोद।
जुगल चरन मकरद मन, पावत परम विनोद॥

ज्ञान, योग, कर्मकाड तथा सुधारक जैन और बौद्ध धर्मो के आचार मार्ग से भी सरल एव सुबोध ढग से युद्धस्थल मे वीरगति प्राप्त कर अविलम्ब मोक्ष उपलब्ध करना तत्कालीन रणशूरा ने उपयोगी समझा और उसे सहष स्वीकार कर जीवन मे व्यवहृत किया। जूझते समय कनक बड गूजर की मुक्तात्मा आह्लादित है कि—

'हउ रवि मडल भेदि जीव लगि सत्त न छन्डहु।
षड षड हुइ तुड मुण्ड हर हार सु मडहु॥'[5]

बसन्त ऋतु मे वृक्षो की सुदरता बढ जाती है, वैसे ही मोक्ष की उपलब्धि पर मनुष्य मे असीम निरुपाधि तथा शाश्वत आनन्द की बाढ आ जाती है। अस्तु, प्राकृत पैगलम के माध्यम से युग की पुकार है कि—

उद्दडा चण्डी दूरित्ताखण्डी।
तेल्लोक्का सोक्ख देउ म मोक्खम्॥२४

दुख भजिनी उद्भट चण्डी, हमे त्रैलोक्य का सुख मोक्ष प्रदत्त कर।

---

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ६, ७।   २ वही पृ० १४।
३ वही।   ४ १२६।   ५ पृ० ८१४ ३, ४।

धर्म—

धम वह पुरुषाथ है जो जीवन मे अथ और काम को सुव्यवस्थित कर मोक्ष का पथ प्रशस्त करता है। इसकी सुव्यवस्था मे समाज अथ एव काम की अपेक्षित उपलब्धि कर सुस्थिरता एव उत्थान का प्राप्त करता है। यहा, धम का तात्पय उस विधि विधान से है जिसके द्वारा हमारा पारम्परिक तथा सामाजिक व्यवहार सुव्यवस्थित ढग से जावन क्रम मे सम्पादित होता चलता है। यदि उन नियमो का मर्यादा तथा पालन उचित रूप मे न हो तो समाज म अव्यवस्था उत्पन्न हो जाय असामाजिक तत्व उभड जाये, स्वाथ साधको द्वारा परपीडन एव विध्वसकारी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल कर दी जाय और अर्थोपार्जन तथा कामोपभोग का प्रबलता मे मोक्ष का प्राप्ति असम्भाव्य हो जाय। वस्तुत धार्मिक नियन्त्रण के अभाव मे कामोपभोग तथा अर्थसिद्धि सामाजिक जीवन मे दुख और अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं, जो हमारे जीवन का कथमपि उद्देश्य नही हो सकता।

जीवन नश्वर है। वह बाल्य, योवन, प्रौढता, वार्द्धक्य तथा मृत्यु स युक्त है। अतएव इसका उपभोग इस प्रकार करना चाहिये कि पुरुषाथ चतुष्टय सहज रूप मे सुलभ हो सके। इसी पृष्ठभूमि मे हिन्दू समाज शास्त्रियो ने जीवन को चार प्रमुख भागो मे विभक्त कर आश्रमो के माध्यम से पुरुषार्थो की उपलब्धि के लिये माग प्रशस्त किया है। ब्रह्मचर्याश्रम मे उसकी सहज सिद्धि के लिये शक्ति, ज्ञान एव क्षमता उपार्जित की जाती है। गृहस्थाश्रम मे अथ तथा काम का धर्मानुकूल उपभोग करना अपेक्षित है। वानप्रस्थ मे धम का विशेष रूप से आचरण और सन्यास मे मोक्ष की उपलब्धि कर प्राणिमात्र के कल्याणाथ सानन्द जीवन यापन करना विहित है। पुरुषाथ की प्रतिष्ठा तब तक सम्भव नही जब तक कि समाज सुव्यवस्था तथा धार्मिक आस्था सम्पन्न न हो। वस्तुत वण धम की व्यवस्था इसलिये की गइ जिसके अनुसार लोग अपने जन्म गुण और स्वभाव के अनुरूप व्यवसायो को ग्रहण कर ज्ञान प्रसार, रक्षा शान्ति, उचित अथ व्यवस्था तथा पारस्परिक सेवा सहयोग की भावना स सुव्यवस्थित तथा शान्ति सम्पन्न समाज की स्थापना कर सके। चोदहवं सदी के वाङ्मय की पृष्ठभूमि मे वर्णाश्रम धम का विवेचन पहले हो चुका है। वण रत्नाकर मे दया, दान, दाक्षिण्य, विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इगितज्ञान कोशल सोहृद, उपचार, धर्मज्ञता, अनालस्य, साहस, सौवच सदाचार सन्तोष, नीतिज्ञान, सभापाटव, ऊह, आपोह, वितक्क तथा छिद्रान्वेषणादि शिष्ट धम का उल्लेख है। कीर्नि-

१ २°१६ क।

स्वामी रामानन्द कर्मो के घोर परिणाम मे 'भटू को धन्वा माही भूला हुआ' उखकर समझात है कि 'मूरख तन धर कहा कमाओ।'

'कहा भयो अति मान बडाई, धन मद अन्ध मति सोयो रे।
अति उतग तरु दखि सुहाया, सैबल कुसुम सूवा सेयो रे॥
सोई फल पुत्र कलत्र विषै सुख, अति सीस धुनि धुनि रोयौ रे।
रामान द रतन जम त्रासैं श्री पति पद काहे न जोयो रे॥[1]

'विना जुगति परम पद नही प्राप्त होगा।,[2] इस शरीर मे व्याप्त परम तत्व की अनुभूति के लिये तन और मन दोना की साधना अपेक्षित है—

तन मन सेती कोई साधु जन त्यागया जिन किया नि केवल (परमपद) वासा।[3]

'सनेह लीला' की गोपिया द्वारा भी सासारिक दुखो से निवारण तथा परम आनन्द की प्राप्ति के लिये कृष्ण के युगलचरण के प्रति भक्ति की अपेक्षा व्यक्त की गई है—

नासत सकल कलेस जग, अरु उपजत मनु मोद।
जुगल चरन मकरद मन, पावत परम विनोद॥

ज्ञान, योग, कर्मकाड तथा सुधारक जेन ओर बौद्ध धर्मो के आचार माग स भी सरल एव सुबोध ढग से युद्धस्थल मे वीरगति प्राप्त कर अविलम्ब मोक्ष उपलब्ध करना तत्कालीन रणशूरा ने उपयोगी समझा आर उसे सहर्ष स्वीकार कर जीवन मे व्यवहृत किया। जूझते समय कनक बड गूजर की मुक्तात्मा आह्लादित है कि—

'हउ रवि मडल भेदि जीव लगि सत्त न छडहु।
षट षड हुइ तु ड मुण्ड हर हार सु मडहु॥[5]

बसन्त ऋतु मे वृक्षा की सु दरता बढ जाती है, वैस ही मोक्ष की उपलब्धि पर मनुष्य मे असीम निरुपाधि तथा शाश्वत आनन्द का बाढ आ जाती है। अस्तु, प्राकृत पेंगलम के माध्यम से युग की पुकार है कि—

उद्दट्टा चण्डी दूरित्ताखण्डी।
तेल्लोक्का सोक्ख देउ म मोक्खम्॥३४

दुख भजिना उद्भट चण्डी, हमे त्रैलोक्य का मुख मोक्ष प्रदत्त करे।

---

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ६, ७। २ वही पृ० १४।
३ वही। ४ १२६। ५ पृ० ८१४ ३, ४।

धर्म—

धर्म वह पुरुषार्थ है जो जीवन में अर्थ और काम को सुव्यवस्थित कर मोक्ष का पथ प्रशस्त करता है। इसकी सुव्यवस्था में समाज अर्थ एवं काम की अपेक्षित उपलब्धि कर सुस्थिरता एवं उत्थान को प्राप्त करता है। यहाँ, धर्म का तात्पर्य उस विधि विधान से है जिसके द्वारा हमारा पारम्परिक तथा सामाजिक व्यवहार सुव्यवस्थित ढंग से जीवन क्रम में सम्पादित होता चलता है। यदि उन नियमों की मान्यता तथा पालन उचित रूप में न हो तो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाय असामाजिक तत्व उभड़ आयें, स्वार्थ साधकों द्वारा परपीडन एवं विध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल कर दी जायें और अर्थोपार्जन तथा कामोपभोग की प्रबलता में मोक्ष की प्राप्ति असम्भाव्य हो जाय। वस्तुतः धार्मिक नियन्त्रण के अभाव में कामोपभोग तथा अर्थसिद्धि सामाजिक जीवन में दुःख और अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं, जो हमारे जीवन का कथमपि उद्देश्य नहीं हो सकता।

जीवन नश्वर है। वह बाल्य, यौवन, प्रौढता, वार्द्धक्य तथा मृत्यु से युक्त है। अतएव इसका उपभोग इस प्रकार करना चाहिये कि पुरुषार्थ चतुष्टय सहज रूप में सुलभ हो सके। इसी पृष्ठभूमि में हिन्दू समाज शास्त्रियों ने जीवन को चार प्रमुख भागों में विभक्त कर आश्रमों के माध्यम से पुरुषार्थों की उपलब्धि के लिये मार्ग प्रशस्त किया है। ब्रह्मचर्याश्रम में उसकी सहज सिद्धि के लिये शक्ति, ज्ञान एवं क्षमता उपार्जित की जाती है। गृहस्थाश्रम में अर्थ तथा काम का धर्मानुकूल उपभोग करना अपेक्षित है। वानप्रस्थ में धर्म का विशेष रूप से आचरण और संन्यास में मोक्ष की उपलब्धि कर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ सानन्द जीवन यापन करना विहित है। पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा तब तक सम्भव नहीं जब तक कि समाज सुव्यवस्था तथा धार्मिक आस्था सम्पन्न न हो। वस्तुतः वर्ण धर्म की व्यवस्था इसलिये की गई जिसके अनुसार लोग अपने जन्म, गुण और स्वभाव के अनुरूप व्यवसायों को ग्रहण कर ज्ञान प्रसार, रक्षा शान्ति, उचित अर्थ व्यवस्था तथा पारस्परिक सेवा सहयोग की भावना से सुव्यवस्थित तथा शान्ति सम्पन्न समाज की स्थापना कर सकें। चौदहवीं सदी के वाङ्मय की पृष्ठभूमि में वर्णाश्रम धर्म का विवेचन पहले हो चुका है। वर्ण रत्नाकर[1] में दया, दान, दाक्षिण्य, विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इंगितज्ञान कौशल सौहृद, उपचार, धर्मज्ञता, अनालस्य, साहस, सौवच, सदाचार, सन्तोष, नीतिज्ञान, सभापाटव, ऊह, आपोह, वितर्क तथा छिद्रान्वेषणादि शिष्ट धर्म का उल्लेख है। कीर्ति-

१ २°१६ क।

'कन्नौजराज अथ क पथ मे मनोहर था। वह जैन धम के जिन मदिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक एव श्राविका सप्तक्षेत्र का सेवन करता था और धरा पर धम मे रुचि रखता था। क्षत्रिय राजन्य के धर्मानुसार उसके पास राज्य की सुरक्षा के साधन रूप अनग्न हय और गज थे जिसके द्वारा क्षिति के छत्रबन्ध राजाओ से उसने सब कुछ जीता।'[1] वह समझता था कि चरित्र को काम मे रत रखना चाहिए। धम का तत्वपूण मन्त्र यही है। इसीलिए उस काम को प्रोत्साहित करने के लिए उसने अपन यहा नित्य नितबिना नतकियो के नृत्य की व्यवस्था की थी।'[2] अथ, धम तथा काम की सम्यक् उपलब्धि से वह युग का सर्वोच्च व्यक्ति था। परम पुरुषाथ मोक्ष की प्राप्ति हेतु उसने पवित्र राजसूय यज्ञ की प्रतिष्ठा की जिससे यश लाभ सुलभ हो सकता है।[3] वासलदेव को अथ-लाघव का अनुभूति असह्य हो गई। उसने पुरुषार्थ द्वारा धनोपाजन कर काव्य मे अपेक्षित यश प्राप्त किया।

कीतिलता मे स्पष्ट उल्लेख है—

पुरिसत्तणेन पुरिसओ नहि पुरिसओ जम्ममत्तेन
जलदानेन हु जलआ नहु जलओ पुजिओ धूमा
सा पुरिसो जसु माना सो पुरिसो जस्स अज्जन सत्ति
दूअरो पुरिमिआरा पुच्छ विहूना पसू होइ ।। कीर्ति० १ १७

पुरुष पौरुष से श्रेष्ठ होता है मात्र जन्म लेने से नही। जलदान से जलद-जलद है, धूम्र-पुज से नही। पुरुष वही है जिसका सम्मान हो तथा जो अजन का शक्ति रखता हो, इतर जन पुरुष के आकार मे पुच्छहीन पशु है। कीर्तिलता की प्रस्तावना मे भृङ्ग-भृङ्गी प्रश्नोत्तर रूप मे यह तथ्य अभिव्यक्त है कि मान सहित जीना और वीर पुरुष का ज म लेना ससार का सार है—

भिगी पुच्छइ भिग सुन की ससारहि सार
मानिनि जीवन मान सउ वीर पुरिस अवतार ।। १ १४ ३७ ३८

कीतिसिह इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त करता है—

मान विहीना भोअना सत्तुक देअेल राज।
सरण पइटठे जीअना तीनो काअर काज ।। कीर्ति० २ ६ ३५ ३६

मान विहीन भोजन, शत्रु पदत्त राज्य और शरणागत होकर जीना ये तीनो कापुरुष के काय है।

---

१ कल अथ्थ पथ्थ कनवज्ज राउ। ।पृ० २ १ १ ८ ।
२ पृ० ५ ३५ । ३ पृ० २ १ ४, १० ।

जिणदत्त, प्रद्युम्न तथा पृथ्वीराज आदि विवेच्य वाङ्मय के समस्त चरित्र' मे पुरुषार्थ चतुष्टय के माध्यम से कीर्ति एव सम्मान के प्रति अद्भुत आस्था परिलक्षित होती है । कीर्ति के लिए सर्वस्व त्याग की भावना उनमे विद्यमान है । पौराणिक महापुरुषो का चरित्र इसके प्रेरक स्रोत हैं । जैन काव्यो[१] मे चमत्कार उत्पन्न कर यशस्वी बनने की आकाक्षा भी दिखलाई देती है ।

परिवर्तनकारी तत्व—

निस्सदेह, भारतीय पुरुषार्थ मे काम को मान्यता उपलब्ध है किन्तु उसकी अतिशयता के नियमन के लिए विचारको ने उसे धर्म एव कर्त्तव्य मे सम्बद्ध कर उसके प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है । 'सुष सुष मार आरोहु असर ससार मरण मन'[२]—वही सुख सुख है जिसमे कामदेव का आरोह उत्कर्ष हो, स्मर विहीन जीवन ससार में मानो मरण है' सदृश समसामयिक काव्योक्ति 'तहा अदिष्ट अरिष्ट द्रिष्ट'[३] की ओर सकेत करता है । लोकनायक पृथ्वीराज का छ छ मास तक सयोगिता के साथ केलि विलास मे रत रह कर हर्म्य के बाहर न निकलना कर्त्तव्य के प्रति महान् उपेक्षा भाव का सूचक है । उसी मे उसने अपनी शक्ति अपव्यय कर दी । इस अवसर से लाभ उठाते हुए गौरी ने भारत पर आक्रमण कर दिया । उसने पृथ्वीराज को पराजित किया, जिससे भारतीय समाज को एक अन्य दिशा मे मुडने के लिए विवश होना पडा । पृथ्वीराज-सयोगिता केलि-विलास के प्रति राजगुरु ने भाविष्यवाणी की थी कि 'जस भावी नर भोगवहु तस विधि अप्पहु मत ।'[४] ऐसी परिस्थिति मे युगधर्म था कि राष्ट्र तथा सस्कृति पर आसन्न सकटो का सामना करने के लिए यथाशक्ति सामूहिक प्रयास किया जाय । जैन धर्म की पीठिका मे भी इसके लिए समयोचित वातावरण नही निर्मित हो सका । जिनेन्द्र ने धर्म के प्रति आह्वान करते हुए कहा कि कर्मों' का नष्ट करो मदिरा, मास, मधु की निर्भ्रान्ति त्यागो, पाच उदम्बर तथा रात्रि का भोजन न करो, नवनीत और बिना छने जल का प्रयोग अधम है ।'[५]

---

१ प्रद्युम्न चरित और जिण चरित । २ पृ० १० २५ २ ।
३ पृ० १० २८ ४ । ४ पृ० १० १३ २ । ५ जिण० ५१७-१८ ।

च—कर्मफल तथा पुनर्जन्म

विश्व के प्रमुख ईसाई तथा इस्लाम सम्प्रदाय पुनज म के स्पष्ट विराधी हे किन्तु चार्वाक मत के प्रतिवाद सहित हिन्दू परम्परा क अन्तगत शव, वेष्णव, भक्ति मार्गी, ज्ञान मार्गी, वेदान्ता बोद्ध तथा जेन समस्त सम्प्रदाय एव विचारक अन्य कितन ही प्रश्ना, समस्याओ तथा सिद्धा तो पर पर पर प्रतिद्व द्वी हाते हुए भी कर्मफल और पुनज म पर समान प म एक मत दिखाई देते हे। विवेच्य वाड्मय मे जिनन्द्र भगवान के जिणदत्त को पूवभव का वणन करते हुये पुनजन्म से मुक्ति पान के लिए कर्मों को नष्ट करने का उपदेश दिया है।[1] कैवल्य ज्ञानी भगवान नेमिनाथ ने नारायण के पूव और भावी ज म की बात बताकर सब का ससार समुद्र म तिर जान तथा फिर वापस न आने का माग बताया, जिसे सभी सुरन्द्र, मुनान्द्र, देव तथा मनुष्यो ने ग्रहण किया। मोह माया की नश्वरता तथा कर्म-फल-भोग को अटलता के प्रति स्वामी रामान द का कहना है कि—

मूरष तन वर कहा कमाया। राम भजन बिन जनम गमायौ ।।
राम भगति गत जाणी नाही। भदू भूलो वन्धा माही ।।
सुष माया स् षरो पियारो। कबहु न सिवरयौ सिरजन हारो ।।
जो तुम करम किया है भारी। सो अब सङ्ग सु चलै तुमारी ।।
मोक् दोस न दीजै कोई। जिसा करम भुगनाऊ सोई ।।

कम-फल तथा पुनजन्म पर जन सामान्य की इतना गहरा आस्था हे कि कष्ट पडन पर तत्क्षण उसे पूवजन्म के कर्मों का फल समझ कर वे सात्वना की शक्ति प्राप्त करते है। ग्वाला लोरिक अपनी प्रेयसी चाँदा के सप-दश पर दु खपूण अभिव्यक्ति कर आश्वस्त होता है कि—

जस कीन्हेउ तस पाएउ रहउ चाद मनु लाइ।
जो बाउर मनु सइ चितु बाधइ सो अइसेहि पछिताइ ।। ३१६ ।।

१ जिण० ५१७-५२८। २ जिण० ६६४-६७०।

पुत्र वियोग मे रुक्मिणी सतप्त हो आसू बहाते हुये चिल्लाने लगी कि—

पूब्ब ज म मैं काहउ कियउ, अब कसु देखि सहारउ हियउ ।[1]

पिता की मृत्यु से सतप्त कीर्तिसिह का उनके स्वजन कमफल से निर्मित भाग्य का आश्रय लेकर समझाते है कि—

माए जम्पइ अवरु गुरुलाए
मन्ति मित्त सिक्खवइ कबहुँ एहु नहि कम्म करिअइ ।
काह रज्ज परिहरिअ बप्प बैर निज चित्त धरिअइ ।।
लेहेन राए गएनेस गउँ सुरपुर इन्द समाज ।
तुम्हे सत्तुहिं मित्त कए भुजहु तिरहुत राज ।।

सोमेश्वर जाते हुये एक कापटिक नेकिसी लोहार के घर निशा-निवास किया। रात मे उस लोहार की पत्नी ने अपने पति को मार कर कापटिक के सिरहाने रख दिया। कापटिक अपराधी पाया गया और उसका हाथ राजाज्ञा से काट लिया गया। वह देव को उस कष्ट का कारण बताकर उपालम्भ देने लगा। रात्रि मे प्रत्यक्ष होकर देव ने स्पष्ट किया कि यह तुम्हारे पूव ज म के कर्मो का फल है। तुमने अपने पहले ज म मे एक बकरी को इसी प्रकार सताया था। उस बकरी ने स्त्री रूप मे अवतार लेकर अपना प्रतिफल लिया है। इसमे देव को उपालम्भ देना व्यर्थ है।[2] कर्मफल का कभी नाश नही होता इसको अवश्य भुगतना पडता है। मूलराज अपने त्रिपुरुष प्रासाद नामक शिव मदिर के प्रबधक के लिये कान्थडी नामक एक तपस्वी के पास गया। उस समय उसको तीन दिन से ज्वर था जिसे कथा मे सक्रामित कर वह वार्तालाप करने लगा। यह देखकर राजा ने पूछा कि 'गुदडी क्यो काप रही है ?' उसने स्पष्ट किया कि 'आपके साथ बात करने मे असमथ पाकर मैंने ज्वर को कथा मे सक्रामित कर दिया है। यदि इतनी शक्ति है तो ज्वर को सवथा क्यो नही हटा देते ?' राजा ने पूछा। शिवपुराण के इस वचन का कथन कर उसने बताया कि—'कम भोग बिना क्षय नही होते' यह जानते हुये मैं ज्वर को कैसे दूर करूँ ?[4]

कमफल के अक्षुण्ण होने की धारणा व्यक्ति की प्रकृति, चरित्र, विचारधारा एव भावनाओ को प्रभावित करती रहती है। कुकृत्यो की भयावह दुगति से बचने के लिए लोग बुराई करने से विमुख हैं। हुप्पा सेठ की स्त्रियो के कुम्भीपाक नरक भोगने की घटना का स्मरण कर बौने रूप मे जिणदत्त को उसकी चारो पत्नियो ने

---

१ प्रच० १४१। २ की० २ २३-२७। ३ प्रचि० / २२९।
४ प्रचि० १ २७ २६ से उद्धृत।

अस्वीकार कर दिया । प्रतिष्ठान मे हृप्पा नाम का एक धना सेठ था । उसके पास अस्सी करोड अपार द्रव्य था । वह व्यापार के कार्य मे विदेश गया हुआ था तब। एक धूत आ-ा और उसके धन तथा पत्निया का अपने अधिकार मे करके भोग विलास करन लगा । वापस आने पर स्त्रियो ने यह कह कर हृप्पा सेठ को त्याग दिया और धूत को अपना पति बनाया कि—

> दहिउ भातु घिउ परतिषु मीठु, आन जनमु वहिणी किन दीठु ।।
> हृप्पा सेठि तहु घालहु छारु, इसु धूतिहि सिउ कहहु भतारु ।।[1]

परिणामस्वरूप उन स्त्रिया ने इस दुलभ मानव जन्म को खो दिया और कुभ पाक नरक म आ पडी । जिणदत्त की पत्निया ने कहा कि हम उन स्त्रिया की भाति नही होगी । विद्याधरा अपन पति से स्पष्ट कहती ह कि— यदि तुम्हे कष्ट हाता है ता काई भा मेरा सराहना न करेगे । पति के पीछे जो स्त्री कुकम करती है वह स्त्री नही कुतिया हे । उसे मनुष्य-ज म दुबारा नही मिलता ।' रानी राजमती अपन प्रवासी पति को बुलान क लिय एतद्विषयक प्रभावशाली उक्ति का आश्रय अपने पत्र मे लेती है । वह लिखती हे कि ह राजा ! तुम ज्ञान की बाते जानते हो । यह तुमको ज्ञात है कि हमे दो शरीर किन्तु एक प्राण प्राप्त हुये हे । उस दूसरे शरीर को तुम दूर से क्यो छोड रह हा ? मे कुलीन क या हूँ, शील की शृङ्खला मे बँधी योवन को चार की भाति छिपाये हुइ हूँ । पग-पग पर इसका अपराध तुम्हे लग रहा है । इस जन्म मे तुम प्रवासी हो, ता अपर जन्म मे तुम काल सप होगे ।' चादा के सपदंश के अवसर पर लारिक चिन्ता करता है कि—'ह दव ! मरी इतनी बडी अवस्था हो गई हे और मैंने किसी चीटी तक का भी दुखित नही किया ह । इतना साच समझ कर चलन पर भी यह अप्रत्याशित दु ख मुझे क्या मिला है ?'

कमफल और पुनजन्म की धारणा स प्रेरणा मिलती ह कि बुरे काम न कर, सदैव अच्छे काम करे आर यदि बुराई हो गई है ता उसे सत्कार्यों द्वारा हटा दे, नही तो उसका फल किसी न किसी जन्म मे अवश्य भुगतना पडेगा । अभा अच्छा काम करे जिससे आगे चलकर हमे सुख मिले ओर कष्ट न हो । प्रतिष्ठानपुर मे सातवाहन राजा जब बहिर्भ्रमण करने जा रहा था ता नदी मे एक मछली को हँसते देखा । इस अस्वाभाविक घटना को देखकर राजा ने पडितो से रहस्योद्घाटन करन के लिए कहा । ज्ञानसागर नामक एक जैन मुनि ने अपने अतिशय ज्ञान के बल से स्पष्ट किया

---

१ जिण० ४२४ । २ वही, ४२६-४२७ । ३ वही, ३०५ ।
४ वीरा० ६२ । ५ चा० ३१६ ।

कि 'पिछले जन्म मे राजा तू इसी नगरी मे रहता था। तुम्हारे कुल वश मे कोई नही था। तू लकडी ढोकर जीविकोपार्जन करता था। नित्य भोजन के अवसर पर इसी नदी के तट पर सत्तू खाया करता था। एक दिन, एक मास के उपवास के पारण के लिए नगर मे जाते हुये एक जैन मुनि को सत्तू का दान दिया था जिसके माहात्म्य से इस जन्म मे तुम राजा हुये। उस काष्ठ भारवाहा जीव का राजा के रूप मे अभिज्ञान कर मछली प्रसन्न हुई और हँस पडी। पूर्व जन्म के वृत्तान्त को सुन कर उसी दिन से राजा दान धर्म की आराधना करने लगा।'[1] दो बुद्धिमान भृत्य राजा सिद्धराज का पैर दबा रहे थे। राजा को साता हुआ समझकर एक ने कहा कि राजा सेवको के लिए कल्पवृक्ष ओर राजोचित सभी गुणो का आलय है।' दूसरे ने राजा की महानता का श्रेय कर्मफल को दिया। राजा ने इस वृत्तान्त को सुना और कर्मफल की प्रशंसा को विफल करने के विचार से प्रथम भृत्य को बिना कुछ बताये, एक पत्र देकर अपने महामन्त्री के पास भेज दिया कि पत्रवाहक को सौ घोडे का सामन्त बना दिया जाय। वह चाकर इस पत्र को लेकर जब चन्द्रशाला की सीढियाँ मे उतर रहा था, पैर फिसल जाने से गिर गया और उसका अङ्ग-भङ्ग हो गया। वह खाट पर घर ले जाया गया। उसने दूसरे भृत्य को पत्र पहुँचाने के लिए कहा। वह गया और राजा-ज्ञानुसार सामन्त बना। तब राजा ने व्यक्त किया कि 'आकृति, कुल, शील तथा विद्या कुछ फल नही देते। पूर्व जन्म की तपस्या मे सचित पुण्य कर्म ही समय पाकर मनुष्य को वृक्ष की तरह फल देते है।' तदनन्तर उसने सत्कार्य मे अपना जीवन व्यतीत किया।[2]

कर्मो को निःशेष करने वाले आत्मभू जिनसे पुत्रजन्म और पुनर्जन्म की कोई सम्भावना न हो, देव तुल्य समझे गए है। ग्रथारम्भ सदृश शुभ कार्यो मे उनकी स्तुति की गई है। 'जिणदत्त चरित' रचने के पूर्व कविवर राजसिंह ने सर्व प्रथम प्रार्थना की है कि 'धर्म का उद्धार करने वाले वर्तमान तीर्थङ्कर ऋषभादि के सङ्घ मे पृथ्वी तल पर जो कर्मो का शोषण करने वाले सिद्ध है उनको नमस्कार है।'[3] हेमचन्द्राचार्य ने स्तुति की हे कि 'पुनर्जन्म के अकुर को पैदा करने वाले रागादि, जिसके नष्ट हो गये हैं वह ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव कोई हो – उसे हमारा नमस्कार है।'[4] मन्त्री तेजपाल के धर्म भाव की प्रशस्ति मे वर्णित है कि उसकी पौषधशाला मे स्त्रीविरहित ऐसे यती बास करते है जिनसे आत्मभू (पुत्र जन्म तथा पुनर्जन्म) की कोई सम्भावना नही है।[5]

---

१ प्रचि० १ १३। २ प्रचि० ३ १२५। ३ जिण० १।
४ प्रचि० ४ १८८। ५ प्रचि० ४ १८६ १६१।

छ—असबिअत

चोदहवी शताब्दी के अरबी साहित्य मे असबिअत', 'असबिअह' अथवा 'असबिआ' का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।[1] यह, अलग-अलग रहने वाले कबीलो का एक महत्वपूण गुण है जिससे उनके सगठित रहने मे अत्यधिक सहयोग प्राप्त होता है। 'असबिअत', कबीलो के सामाजिक सङ्गठन का मूलाधार है। इससे कबीलो मे रक्त-सम्बन्ध, कोम के प्रति प्रेम, सुख-दुःख तथा युद्ध मे पारस्परिक सहयोग की भावना बद्धमूल होती है। 'असबिअत' के अधीन व्यक्ति अपने कबीले के अतिरिक्त अन्यान्य व्यक्तियो को जीवित रहने का पात्र नही समझता। अनुचित पक्षपात तथा न्याय-अन्याय सभी बातो मे कबीले का प्रशस्ति-गान ही असबिअत का धर्म है।[2]

इस्लाम, अपने प्रारम्भिक काल मे दैवी चमत्कारो के आधार पर चला है। फिरिश्ते सहायता के लिए फिरते रहते थे। आकाशवाणी होती रहती थी। भिन्न-भिन्न घटनाओ के सन्दर्भ मे ईश्वर के आदेश समझाये जाते थे। कबीले चकित हुये और इस्लाम के लिए प्राणोत्सर्ग भी करने को उद्यत हो गए। इस्लामी सङ्गठन सुदृढ हुआ।[3]

कालान्तर मे चमत्कारो का युग समाप्त हुआ। वे लोग भी गए जिन्होने उन चमत्कारो को अपनी आखो से देखा था। इस्लाम के दूसरे चरण समसामयिक काल मे, इसके सामाजिक सगठन का मूल श्रेय 'असबिअत' की भावना की है। इस पर अब विशेष ध्यान दिया जाने लगा क्योकि इसी के माध्यम से सबको सङ्गठित रखकर पारस्परिक विरोध एव पृथकतावादी मनोवृत्तियो से त्राण पाना सम्भव है।[4]

चादायन' के स्तुति खण्ड मे मुल्ला दाउद ने व्यक्त किया है कि—'खुदा ने अकेले ही समस्त जगत का निर्माण किया, दूसरा और कोई नही हुआ है। उसने एक उज्ज्वल निष्पाप-पुरुष का निर्माण किया जिसका नाम मुहम्मद है और जो जगत का

१ द्रष्टव्य—"इब्ने खलदून का मुकद्दमा" (१४वी सदी) अनु० डा० सैयिद अतहर अब्बासी रिजवी, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-४८, प्रकाशनशाला, सूचना विभाग, भूमिका उ० प्र०, पृ० ६९। २ वही। ३ वही पृ० २०८, ४ वही पृ० २०९।

प्रिय है। उसके लिए ही सभा पृथ्वी निर्मित हुई। जिसने भी जिह्वा से उसका नाम न लिया, उसके लिए अच्छा यह होता कि वह अपना सिर काट कर आग मे डाल देता। उसके बाद दूसरे स्थान पर दैव ने उ हे निर्मित किया जि हे उसन अपना वचन-कलमा-सुनाकर अपन इस्लाम धर्म-पथ पर लगा दिया। उसने अबूबकर, उमर, उसमान तथा अली चार पुरुष सिंहो को इस्लाम का धर्मोपदेश दिया। उन्होने जैसा सुना, वैसा ही वे कहते आये। पृथ्वी के चारो चक्रों ने उ हे उच्चरित किया और उन पर प्रतीत की। चारो को मिलाकर एक ही पडित समझिये और पाचवा किसी को न जानिये। उसी ने पढा जिसको उन्होने पढाया और वे ही धर्म मार्ग शोध कर पा सके। जिसे वह नाम अच्छा न लगा वह आत्महता है।''

इस्लाम से इतर हि दू जाति के प्रति 'असबिअत' प्रधान तुर्कों के आचार-विचार विवेच्यकाल की एक रचना 'कीर्तिलता' मे इस प्रकार उल्लिखित है—

'हि दू गोहओ गिलिअ हल, तुरुक देखि होअ भान।' २ १२

'हिन्दू बोलि दुरहि निकार, छोटे आ तुरुका भभकी मार।' २ १०,११

—'बाजार मे तुर्कों को देखकर ऐसा लगता था मानो ये हिन्दुओ को पूरा का पूरा निगल जायेगे। वे हिन्दू कह दूर से ही उन्हे निकाल देते है। छोटे-छोटे तुर्क भी उन्हे भभकी—ब दर-घुडकी दिखाते रहते है।'

'असबिअत' के स दभ मे 'बैअत भी उल्लखनीय है। इसमे हाथ मिलाकर अपने अमीर स उसकी आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा की जाती है। व्यक्तिगत तथा इस्लाम धम सम्ब धी समस्त कार्यों मे अमीर के आदेश का मानना होगा। 'बैअत' धारी व्यक्ति अपने अमीर की आज्ञा का, चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल, पूण रूप से पालन करेगा। इसका कभी उल्लघन नही करेगा। 'बैअत 'बाअह धातु से बना है, जिसका तात्पय हाथ मिलाकर वचनबद्ध होना है।[२]

'शहाबुद्दीन पृथ्वीराज युद्ध' मे खुरासानखा तातारखा, तथा रुस्तम खा आदि हाथ जोडकर कहत ह कि शाह की आन है, कल सुबह हम शत्रु पक्ष के मर्दो की आन छुडा देगे। ह अमीर हम हि दू नही है हमारा दीन रोजा और रमजान का है। हमारी पाच नमाजे बेकार हो यदि इमसे विपरीत हो, हे गोरी, सुलतान की आन है, यदि हम कल चहुआन से चाल बाधकर न भिडे। तुम्हारे हाथ मे आज हम हाथ दे रहे हैं, हम न दरोग-झूठ, कहेगे और न दोजख मे पडेगे।'

वस्तुत, कबीलो का सामाजिक सङ्गठन सुस्थिर रखने के लिए 'बअत' प्रत्येक मुसलमान का सर्वोपरि धम था।

———

१ चादा ५-७। २ 'इब्ने खलदून का मुकदमा अनु० सै० अ० अ० रिजवी पृ० २१०

ज—कला

उन्नत एव समृद्ध देश कलाप्रिय हाता हे। यह स्वाभाविक हे कि वहा का कलाकार अपनी कलाकृतियो मे कला का जीवन्तता प्रदान करगा। विवेच्य साहित्य मे कला सुप्रतिष्ठित है। नायक, नायिका राज्याधिपति, सभासद, धर्माचाय तथा समृद्धवान् प्रभृति सभी के आदश जीवन चरित्र मे उनका कला वैशिष्ट्य अनिवायत सन्निहित है।

सख्या—वणरत्नाकर[1] मे ६४ कलाओ का नाम उल्लिखित हे।[2] इनमे अधिकाश कलाएँ ऐसी है जिनस कला का तात्पय आधुनिक ललितकला से भिन्न शौय, पराक्रम, पटुता तथा शास्त्रज्ञान आदि से अधिक सम्बद्ध लगता है। समसामयिक युग मे कला के प्रति लोगो का क्या अभिप्राय था इस प्रसङ्ग मे वण रत्नाकर[3] का एक अन्य कथन भी द्रष्टव्य है। 'आस्थान मण्डप का भीतर रूपे कन्दप, दाने बलि, परोपकारे जीमूत वाहन सत्ये युधिष्ठिर, शौय्य परशुराम आज्ञाजे लकेश्वर, अहङ्कारे, दुर्योधन, विलासे गापाल मर्य्यादाजे महादधि, गुरुताजे सुमेरु, ऐश्वय्य महादेव एवविध सर्वगुण-सयुक्त सर्व्वकलाकुशल नायक देषु।' जिणदत्त चरित[4] तथा पञ्च पाडव चरित रासु[5] मे ७२ कलाआ का उल्लेख हुआ हे।

'शुक्रनीति' तथा 'सभाशृङ्गार' के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारो ने 'कामसूत्र' की परम्परागत पृष्ठभूमि मे कतिपय नवीन कलात्मक सभारो की ओर हमारी दृष्टि आकृष्ट करना चाहा है। इनमे उल्लिखित अतिरिक्त कला रूपो से उनकी सामयिक उपादेयता सिद्ध होती है ओर प्रतीत होता है कि युग के सन्दभ मे महत्व प्राप्त सामग्री की लोकप्रियता को देखकर ही उ होने स्वत इनकी शास्त्रीय मान्यता प्रतिष्ठित करनी चाही है। अतिरिक्त कला रूपो मे निम्नलिखित कलाकर्म

---

१ ४ ३४ ख। २ नामो को देखिए परिशिष्ट १, सास्कृतिक शब्दकोश मे।
३ ३ २३ क। ४ जिण० १/, ६५। ५ पाडव ५१।

विवेच्य वाड्मय मे सुलभ है—वस्त्र सज्जा,[1] सासन रतिज्ञान,[2] शस्त्र सञ्चालन[3] कुश्ती,[4] गजादि द्वारा युद्ध कम,[5] विविध मुद्राओ द्वारा देवपूजा,[6] रगसाजी,[7] सेवा-काय ताबूल रक्षणा,[8] कला मर्मज्ञता[9] नटकम शकुन विचार,[9] स्वप्न विचार[9] असियुद्ध[9,6] धर्मविचार,[9] नीतिविचार[9] स्त्री पुरुष लक्षण[17] तथा याग[18] आदि।

'पृथ्वीराज रासउ' मे कला सम्बन्धी कतिपय ऐसी क्रियाओ का उल्लेख है जिनके द्वारा युग की विकसित कलात्मक रुचि का परिचय प्राप्त होता है और यह प्रतीत होता है कि इन मभारो ने समसामयिक समाज मे कुछ विशिष्ट उपयोगिता प्राप्त कर ली है जिसके प्रति अपनी गहरी आस्था को व्यक्त करते हुये ग्रथकार ने उनको व्यवहारिक रूप मे अनायास ग्रहण कर लिया है। ये है—प्रमादित करना, शब्द रति करना, सभाषण करना, मनोरजन करना, अप्रचलित शिष्ट भाषाओ का ज्ञान रखना—

के जुव जूथ जि वाद प्रमादित म द गति।
के चल अचल वायु निरपहि सद रति।
के वर भाष पराक्रति सक्रति देव सुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राज वर।। पृ० ६ ७।।

अदृश्य वणन करना[19] तथा दूसरो का मर्म बता देना[20] भी युग की कलात्मक विशेषताओ मे है।

कामकला—अनुराग पूण वृत्ति मे परिरम्भ के शासन रतिज्ञान कला का अत्यधिक प्रसार है। चरित्र का काम मे रत रहना धम का तत्वपूर्ण मन्त्र माना गया

१ पृ० ४ २४ २ ४ २५ १७ ४ १४ १३ आदि।
२ पृ० ५ ४०, ढोमा० ५८१-५८४, चादा० अध्याय १३। ३ सामान्य।
४ पृ० ४ १० ५। ५ सामान्य। ६ पृ० ४ १० ६ १, चादा० अध्याय १४।
७ पृ० ४ २३ १७ नायिकाओ की कुसभी चीर कीर की शाक्ता के है—कुसुभी सा चीर साकीर साभा। ८ सामान्य। ९ पृ० ५ २१,४८।
१० पृ० ५ ४, ५ ५ २, ५ ६-१३। ११ जिण० ३२८, पृ० १२ ६ १।
१२ सामान्य। १३ पृ० १० २८, २९। १४ सामान्य।
१५ सामान्य। १६ सामान्य, की० (शिव०) ? ७५, ३ १४३ आदि।
१७ नर० २। १८, सामान्य, नाथ०, रामा०, जिण०।
१९ पृ० ५ ६ ४ ५ १० १२। २० पृ० ५ २५ -।

ज—कला

उन्नत एव समृद्ध देश कलाप्रिय होता है। यह स्वाभाविक है कि वहा का कलाकार अपनी कलाकृतियो मे कला को जीवन्तता प्रदान करेगा। विवेच्य साहित्य मे कला सुप्रतिष्ठित है। नायक, नायिका राज्याधिपति, सभासद, धर्माचार्य तथा समृद्धवान् प्रभृति सभी के आदर्श जीवन चरित्र मे उनका कला वैशिष्ट्य अनिवार्यत सन्निहित है।

सख्या—वर्णरत्नाकर[1] मे ६४ कलाओ का नाम उल्लिखित है।[2] इनमे अधिकाश कलाएँ ऐसी है जिनमे कला का तात्पर्य आधुनिक ललितकला से भिन्न शौर्य, पराक्रम, पटुता तथा शास्त्रज्ञान आदि से अधिक सम्बद्ध लगता है। समसामयिक युग मे कला के प्रति लोगो का क्या अभिप्राय था, इस प्रसङ्ग मे वर्ण रत्नाकर[3] का एक अन्य कथन भी द्रष्टव्य है। 'आस्थान मण्डप का भीतर रूपे कन्दर्प, दाने बलि, पराप कारे जीमूत वाहन सत्ये युधिष्ठिर, शौर्य्य परशुराम आज्ञाजे लकेश्वर, अहङ्कारे, दुर्योधन, विलासे गोपाल मर्य्यादाजे महोदधि, गुरुताजे सुमेरु, ऐश्वर्य्य महादेव एवविध सर्व्वगुण-सयुक्त सर्व्वकलाकुशल नायक देषु।' जिणदत्त चरित[4] तथा पञ्च पाडव चरित रासु[5] मे ७२ कलाओ का उल्लेख हुआ है।

'शुक्रनीति' तथा 'सभाश्रृङ्गार' के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारो ने 'कामसूत्र' की परम्परागत पृष्ठभूमि मे कतिपय नवीन कलात्मक सभारो की ओर हमारी दृष्टि आकृष्ट करना चाहा है। इनमे उल्लिखित अतिरिक्त कला रूपो से उनकी सामयिक उपादेयता सिद्ध होती है और प्रतीत होता है कि युग के सन्दर्भ मे महत्त्व प्राप्त सामग्री की लोकप्रियता को देखकर ही उन्होने स्वत इनकी शास्त्रीय मान्यता प्रतिष्ठित करनी चाही है। अतिरिक्त कला रूपो मे निम्नलिखित कलाकर्म

---

१ ४ ३४ ख। २ नामो को देखिए परिशिष्ट १, सास्कृतिक शब्दकोश मे।
३ ३ २३ क। ४ जिण० १५, ६५। ५ पाडव ५१।

विवेच्य वाङ्मय मे सुलभ ह—वस्त्र सज्जा,[1] सासन रतिज्ञान,[2] शस्त्र सञ्चालन[3] कुश्ती,[4] गजादि द्वारा युद्ध कम[5] विविध मुद्राओ द्वारा देवपूजा,[6] रगसाजी,[7] सेवा-काय तावूल रम्णा,[8] कला मर्मज्ञता[10] नटकम शकुन विचार,[11] स्वप्न विचार[12] असियुद्ध[13] धर्मविचार,[14] नीनिविचार[15] स्त्री पुरुष लक्षण[16] तथा योग[18] आदि।

'पृथ्वीराज रासउ' मे कला सम्बन्धी कतिपय एस। क्रियाओ का उल्लेख है जिनके द्वारा युग की विकसित कलात्मक रुचि का परिचय प्राप्त हाता हे आर यह प्रतीत होता हे कि इन सभारा ने समसामयिक समाज मे कुछ विशिष्ट उपयोगिता प्राप्त कर ली हे जिसके प्रति अपना गहरा आस्था को व्यक्त करते हुय ग्रथकार ने उनको व्यवहारिक रूप मे अनायास ग्रहण कर लिया ह। ये हं—प्रमादित करना, शब्द रति करना, सभाषण करना, मनारजन करना, अप्रचलित शिष्ट भाषाओ का ज्ञान रखना—

के जुव जूथ जि वाद प्रमादित म द गति।
के चल अचल वायु निरपहिं सद्द रति।
के वर भाष पराक्रति सक्रति देव सुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राज वर।। पृ० ६ ७।।

अदृश्य वणन करना[19] तथा दूसरो का मर्म बता देना[20] भी युग की कलात्मक विशेषताओ मे हैं।

कामकला—अनुराग पूण वृत्ति मे परिरम्भ के शासन रतिज्ञान कला का अत्यधिक प्रसार है। चरित्र का काम मे रत रहना धम का तत्वपूर्ण मन्त्र माना गया

१ पृ० ४ २८ २ ४ २५ १७ ४ १४ १३ आदि।
२ पृ० ५ ४०, ढोमा० ५८१-५८४, चादा० अध्याय १३। ३ सामान्य।
४ पृ० ४ १० ५। ५ सामान्य। ६ पृ० ४ १० ६ १८, चादा० अध्याय १४।
७ पृ० ४ २३ १७ नायिकाआ की कु सभी चीर कीर की शाक्ता के है—कुसु भी सा चीर साकीर साभा। ८ सामान्य। ९ पृ० ५ २१,४८।
१० पृ० ५ ४, ५ ५ २, ५ ८-१२। ११ जिण० ३२८, पृ० १२ ६ १।
१२ सामान्य। १३ पृ० १० २८, २९। १४ सामान्य।
१५ सामान्य। १६ सामान्य की० (शिव०) २ ७५, ३ १४३ आदि।
१७ नर० २। १८, सामान्य, नाथ०, रामा०, जिण०।
१९ पृ० ५ ९ ४, ५ १० १३। २० पृ० ५ २५ ३।

है—तत्त धरम्मह मन्नु यह रत्तह काम सु वित्तु ।[१] अपूर्व सुन्दरि-रस रास-विलास स्वर्गीय भोग है ।

काव्य—विभिन्न कलाआ मे काव्य कला सर्वाच्च हे । काव्य-वार्ता सुनने के लिये देवतागण भी श्रवण लगाकर उत्सुक है ।[४] इससे गगा का प्रवाह शिथिल हो जाता है ।[५] मनुष्य के लिए ता यह काव्य-वार्ता मानो भूखे का शक्कर और दूध तुल्य है । 'विरयात कन्नौज-राज जयचन्द्र की सबसे बडी महत्वकाक्षा काव्य-यज्ञ[७] का प्राप्ति थी । वह अपने काल मे कव्वि पति[८] के नाम से प्रसिद्ध भी था । पृथ्वीराज रासउ' के अनुसार काव्य के द्वारा दिल्ला मे भासित होने के लिए ही पृथ्वीराज का जन्म हुआ था ।[९] उम समय—

गेह गेहे कलौ काव्य श्रोता तस्य पुरे पुरे ।
दशे देशे रसज्ञाता दाता जगति दुलभ ॥[१०]
सम्मान दान विवाह उच्छत गीअ नाटक कव्वही ।
आतिथ्य विनअ विवेक कौतुक समय पेल्लिअ सव्वही ॥[११]

———

१ पृ० ५ ३५ १ ।
२ पृ० १० १५ ३ १० १२ १—विस्तार क लिए देखिए पुरुषाथ चतुष्टय तथा परिशिष्ट १ । ३ देखिए परिशिष्ट १ । ४ पृ० ५ ५ ४ । ५ पृ० ५ ५ ३
६ पृ० ५ ६ ३ ४ । ७ पृ० २ १ १० । ८ पृ० ५ ४३ १ ।
९ पृ० १ ६ ४ । १० की० १ ४ ११ १२ । ११ की० २ १७ ६१-६२ ।

अध्याय ५

धर्म

धर्म की महत्ता—

भारत देश का व्यक्तित्व उसके धम प्रधान वैशिष्टय मे निहित है। यहाँ के लोगो की सदैव यह नीति रही कि प्रत्येक प्रश्न अथवा समस्या का समाधान व्यापक धर्मपरक दृष्टिकोण से होना चाहिये जो किसी भी प्रकार एकागी, विश्लिष्ट साम्प्रदायिक, इहलौकिक, गतिशील जीवन तक मीमित मात्र इन्द्रियानुभववाधित तथा विचार प्रधान नही था। पृथ्वीराज ने अनेक अवसरो पर गजनी नरेश मुहम्मद शहाबुद्दीन गौरी को पराजित करके मुक्त कर दिया, किन्तु एक बार गोरी को अपनी विजय का सयोग सुलभ हुआ तो उसने पृथ्वीराज को कारागार मे बन्दी बना कर नयन विहीन कर दिया। कवि चन्द के प्रयास से पृथ्वीराज को पुन जब गोरी को मार डालने का अवसर उपलब्ध हुआ तो उसने पहले अस्वीकार कर दिया। कृष्ण की भाति कविचन्द द्वारा यह समझाने बुझाने पर कि 'शरीर नाशवान् है, आत्मा अमर है, कोई इसे मारता जिलाता नही है, तू गोरी को मार कर ब्रह्म मे मिल जा', पृथ्वीराज गोरी वध के लिए उद्यत होता है।'[1] इस प्रकार स्वार्थ-साधना तथा अतृप्त लालसाये महान् आत्मिक उपलब्धि एव आनन्द के सम्मुख घुटने टक देती है। इस क्षण की मन स्थिति व्यक्तित्व को समुन्नत विशाल, गम्भीर तथा समृद्ध बनाकर विश्व के साथ एकात्म भाव स्थापित करन की प्रेरणा प्रदान करती है।

लोगो की चिन्तन-प्रक्रिया एव कायप्रणाली धर्ममूलक थी। जिणदत्त द्वारा बुढिया मालिन के बच्चे को अपना जान हथेली पर लेकर बचाना, दयार्द्र होकर विषैले साप का प्राण न लेना,[2] मूलराज द्वारा अनावृष्टि से आक्रान्त प्रजा की नि वाथ

१ पृ० १२ ३८।   २ जिण० २१४-२३२।

भलाई करना तथा राजा द्वारा मूलराज की स्मृति मे त्रिपुरुष प्रासाद नामक शिव मन्दिर बनवाना[1] आदि प्रसग धममूलक जावन की एसी प्रणाली है जो मनुष्य की दुष्टता, स्वाथ एव द्वेष को नियत्रित कर सच्ची आत्मदृष्टि दिलाती है। दूसरो के लिए आत्मोत्सर्ग तथा प्राणिमात्र को कष्ट न देने की प्रवृत्ति प्रकट करती है कि मनुष्य केवल प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से ही सर्वाधिक चालाक पशु, और माँग एव आपूर्ति से नियन्त्रित राजनीति केन्द्रित जीव नही है अपितु उसम ऐसे धार्मिक तत्व भी विद्यमान है जिससे शाश्वत सुखा की अपेक्षा सत्य को सर्वोत्कृष्ट समझना है। भौतिक उपकरण हमारे जीवन के साधन हो सकते है साध्य नही।

जन सामान्य का धम के प्रति इतना गम्भीर आस्था था कि दु साध्य काय को भी धर्म-बल स सम्पन्न कर लेते थे। सेठ जीवदेव धन-धान्य एव समस्त परिजनो से युक्त था परन्तु उसके कोई स तान न थी। सेठानी समेत सभी परिजनो ने मत्रणा दी कि 'धम मे सब दान कीजिए और तप करिए, तभी सम्भव है कि पुत्र लाभ हो।' सेठ ने ऐसा किया और उसे मनोवाछित फल मिला।[2] द्यूत कीडा मे हारा जिणदेव पश्चात्ताप करता है कि 'जो धम दान तथा परोपकार नही करता, वह पुत्र शोभित नही होता और क्षय को प्राप्त होता है।'[3] पिता ने भी उसको उपदेश दिया कि हे पुत्र, अपङ्गो एव दीनो की सेवा करके धम काय मे यदि आवश्यकता हो तो अपना बहुत कुछ विक्रय भी कर डालना चाहिए।' पति द्वारा त्यागी जाने पर विमलावती ने धम का सहारा लिया।[4] धम लोगो का अतिम आश्रय था।

किसी महान् उपलब्धि तथा सत्काय सम्पन्न होने पर लोग इसे धम का परिणाम समझते थे। भौतिकवादियो की सम्पन्नता मे उत्पन्न अमानवीय विकृति के फलस्वरूप अपने आपको धरती का देवता समझ कर धर्म से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना निरादृत था। सागरदत्त ने अपनी सुन्दरी पुत्रवधू और उसके दहेज मे उपलब्ध सम्पत्ति को अपने अधिकार म करने के लोभ मे अपने धर्म पुत्र जिणदत्त को धोखे से समुद्र मे ढकेल दिया। उसके दुष्कृत्य मे रक्षा पाने के लिए श्रीमती ने प्रार्थना की कि यदि मुझमे धम हो तो यह जहाज डूब जाय।' जहाज डगमगाने लगा। यात्रियो द्वारा श्रीमती के पाव पकडकर अनुनय-विनय करने तथा सागरदत्त को मारने से बोहित बच गया। इधर जिणदत्त एक धम करड (पटिका) के सहारे विषम, गहरे तथा गभीर सागर को पार कर तट पर पहुँचा। उसे सदैव ऐसा आभास होता रहा कि श्रीमती

---

१ प्रचि० ७९। २ जिण ४८ ४९। ३ जिण० १४० ४१।
४ जिण० १४४। ५ जिण० १५८।

का धर्म उसके साथ है और उसकी रक्षा कर रहा है—जहा जु रहणु वणिद हु कियउ, सिरिया धम्मु साथ पाइयउ[१]

त्रिकालज्ञ सूक्ष्मद्रष्टा एव समष्टिप्राण ऋषिमुनियो ने अपने तप, ध्यान तथा आत्म समर्पण द्वारा दिव्य शक्तियो की प्रेरणा से सत्यपूर्ण, जीवनोपयोगी और गहरी नीव पर आश्रित धर्म के विधि-विधान का श्रुति स्मृति तथा धर्मशास्त्रो की पृष्ठभूमि मे इस प्रकार विस्तृत तथा सम्भाव्य अवसरोचित नियमन एव सयोजन किया कि इसकी व्यापकता तथा उपयोगिता के प्रति लोगो की प्रगाढ आस्था निर्मित हुई और उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालकर वे सस्कारत धर्म काम बन। इसका पालन करना स्वत एक धर्म समझा जाने लगा। जिनेन्द्र भगवान ने तप, सयम आदि व्यक्तिगत धर्म पर बल देते हुए सामाजिक धर्म मे वर्ण धर्म को ग्रहण करने का उपदेश दिया।[२] 'धम्म मे चाउ' रखने वाले जयचन्द ने क्षत्रिय राजन्य से सम्बद्ध राजसूय यज्ञ, युद्ध एव काम धर्म का परायण किया।[३] ठाकुर के ठग होने, काम-धन्धे बन्द हो जाने, जाति कुजाति मे विवाह सम्पन्न होने तथा भृत्यो द्वारा स्वामियो के गृहीत होने मे कीतिलता का रचनाकार धर्म स्खलन समझता है।[४] कीर्ति सिह के अभिमत मे असलान द्वारा समर्पित राज्य को अगीकार कर सुखपूर्वक राज्य करने की मत्रणा मे माता की ममता और मत्री की राजनीति का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। वह तो वीर पुरुष के धर्म का पुजारी है, जिसमे मानहीन भोजन करना, शत्रु द्वारा प्रदत्त राज्य का भोग करना तथा शरणागत होकर जीना, तीनो को अधर्म माना गया है।[५] स्त्रियो मे विमलावती, श्रीमती, शृगारमती, मैना, मालवणी, मारवणी तथा राजमती प्रभृति पतिव्रत धर्म के प्रति निष्ठावान हैं। वस्तुत सभी व्यक्ति किसी न किसी विहित धर्म द्वारा सचालित दिखाई पडते हैं। इनमे न केवल जीने की अपितु गौरव के साथ जीने की आकाक्षा विद्यमान है जिसमे ब्रह्माडव्यापी सार्वभौम परम सत्य की उपलब्धि से एक विशिष्ट प्रकार का धार्मिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। भौतिक उपलब्धिया मनुष्य के स्वास्थ्य, समृद्धि, विराम और यहाँ तक कि स्वय जीवन की अभिवृद्धि मे सहायक अवश्य होती हैं, किन्तु इस प्रकार सन्तोषप्रद आन्तरिक सुख नही प्रदान कर पाती।

भारतीय धार्मिक दृष्टि की प्रधानता इस तथ्य मे सन्निहित है कि यह समस्त धर्मों के प्रति उदारचेता है। किसी धर्म दर्शन विशेष की सीमा मे आबद्ध न होकर यह

---

१ जिण० २४५-२६०। २ वही, ५१७-५१९। ३ पृ० २ '।
४ की० २-१०-१५। ५ वही, २-३३ ३६।

भलाई करना तथा राजा द्वारा मूलराज की स्मृति मे त्रिपुरुष प्रासाद नामक शिव मन्दिर बनवाना[1] आदि प्रसग धर्ममूलक जीवन की ऐसी प्रणाली हैं जो मनुष्य की दुष्टता, स्वार्थ एव द्वेष को नियत्रित कर सच्ची आत्मदृष्टि दिलाती है। दूसरो के लिए आत्मोत्सर्ग तथा प्राणिमात्र को कष्ट न देने की प्रवृत्ति प्रकट करती है कि मनुष्य केवल प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से ही सर्वाधिक चालाक पशु, और मांग एव आपूर्ति से नियत्रित राजनीति केन्द्रित जीव नही है अपितु उसमे ऐसे धार्मिक तत्व भी विद्यमान है जिससे शाश्वत सुखो की अपेक्षा सत्य को सर्वोत्कृष्ट समझता है। भौतिक उपकरण हमारे जीवन के साधन हो सकते है साध्य नही।

जन सामान्य का धर्म के प्रति इतना गम्भीर आस्था थी कि दुसाध्य कार्य को भी धर्म-बल से सम्पन्न कर लेते थे। सेठ जीवदेव धन-धान्य एव समस्त परिजनो से युक्त था परन्तु उसके कोई सन्तान न थी। सेठानी समेत सभी परिजनो ने मत्रणा दी कि 'धर्म मे सब दान कीजिए और तप करिए, तभी सम्भव है कि पुत्र लाभ हो।' सेठ ने ऐसा किया और उसे मनोवाछित फल मिला। द्यूत-क्रीडा मे हारा जिणदेव पश्चात्ताप करता है कि 'जो धर्म, दान तथा परोपकार नही करता, वह पुत्र शोभित नही होता और क्षय को प्राप्त होता है'।[3] पिता ने भी उसको उपदेश दिया कि हे पुत्र, अपङ्गो एव दीनो की सेवा करके धर्म कार्य मे यदि आवश्यकता हो तो अपना बहुत कुछ विक्रय भी कर डालना चाहिए।' पति द्वारा त्यागी जाने पर विमलावती ने धर्म का सहारा लिया।[4] धर्म, लोगो का अतिम आश्रय था।

किसी महान् उपलब्धि तथा सत्कार्य सम्पन्न होने पर लोग इसे धर्म का परिणाम समझते थे। भौतिकवादियो की सम्पन्नता मे उत्पन्न अमानवीय विकृति के फलस्वरूप अपने आपको धरती का देवता समझ कर मानवो से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना निराहत था। सागरदत्त ने अपनी सुन्दरी पुत्रवधू और उसके दहेज मे उपलब्ध सम्पत्ति को अपने अधिकार मे करने के लोभ मे अपने धर्म पुत्र जिणदत्त को धोखे से समुद्र मे ढकेल दिया। उसके दुष्कृत्य से रक्षा पाने के लिए श्रीमती ने प्रार्थना की कि यदि मुझमे धर्म हो तो यह जहाज डूब जाय।' जहाज डगमगाने लगा। यात्रियो द्वारा श्रीमती के पाव पकडकर अनुनय-विनय करने तथा सागरदत्त को मारने से वोहित बच गया। इधर जिणदत्त एक धर्म करड (पटिका) के सहारे विषम, गहरे तथा गभीर सागर को पार कर तट पर पहुँचा। उसे सदैव ऐसा आभास होता रहा कि श्रीमती

---

१ प्रचि० ७७९। २ जिण ४८-४९। ३ जिण० १४०-४१।
४ जिण० १४४। ५ जिण० १५८।

का धर्म उसके साथ है और उसकी रक्षा कर रहा है—जहाँ जु रहणु वणिद हु कियउ, सिरिया धम्मु साथ पाइयउ[१]

त्रिकालज्ञ सूक्ष्मद्रष्टा एव ममष्टिप्राण ऋषिमुनियो ने अपने तप, ध्यान तथा आत्म समर्पण द्वारा दिव्य शक्तियो की प्रेरणा से सत्यपूण, जीवनोपयोगी और गहरी नीव पर आश्रित धम के विधि-विधान का श्रुति स्मृति तथा धमशास्त्रो की पृष्ठभूमि मे इम प्रकार विस्तृत तया सम्भाव्य अवसराचित नियमन एव सयोजन किया कि इसकी व्यापकता वथा उपयोगिता क प्रति लोगा की प्रगाढ आस्था निर्मित हुई और उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालकर वे सस्कारत धर्म काम बन। इसका पालन करना स्वन एक धम समझा जाने लगा। जिनेन्द्र भगवान ने तप, सयम आदि व्यक्ति-गत धम पर बल देते हुए सामाजिक धम मे वण धम को ग्रहण करने का उपदेश दिया।[२] 'धम्म मे चाउ' रखने वाले जयचन्द ने क्षत्रिय राजन्य से सम्बद्ध राजसूय यज्ञ, युद्ध एव काम धर्म का परायण किया।[३] ठाकुर के ठग होने, काम-धन्धे बन्द हो जाने, जाति कुजाति मे विवाह सम्पन्न होने तथा भृत्यो द्वारा स्वामियो के गृहीत होने मे कीतिलता का रचनाकार धर्म स्खलन समझता है।[४] कीर्ति सिह के अभिमत मे असलान द्वारा समर्पित राज्य को अगीकार कर सुखपूवक राज्य करने की मत्रणा मे माता की ममता और मत्री की राजनीति का प्राधान्य दृष्टिगोचर हाता है। वह तो वीर पुरुष के धर्म का पुजारा है, जिसमे मानहीन भाजन करना, शत्रु द्वारा प्रदत्त राज्य का भोग करना तथा शरणागत होकर जीना, तीनो को अधर्म माना गया है।[५] स्त्रियो मे विमलावती, श्रामती, शृगारमती, मेना, मालवणी, मारवणी तथा राजमती प्रभृति पतिव्रत धर्म के प्रति निष्ठावान है। वस्तुत सभी व्यक्ति किसी न किसी विहित धर्म द्वारा सचालित दिखाई पडते हैं। इनमे न केवल जीने की अपितु गौरव के साथ जीने की आकाक्षा विद्यमान है जिसमे ब्रह्माडव्यापी सार्वभौम परम सत्य की उपलब्धि से एक विशिष्ट प्रकार का धार्मिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। भौतिक उपलब्धियाँ मनुष्य के स्वास्थ्य, समृद्धि, विराम और यहाँ तक कि स्वय जीवन की अभिवृद्धि मे सहायक अवश्य होती हैं, किन्तु इस प्रकार सन्तोषप्रद आ तरिक सुख नही प्रदान कर पाती।

भारतीय धार्मिक दृष्टि की प्रधानता इस तथ्य मे सन्निहित है कि यह समस्त धर्मो के प्रति उदारचेता है। किसी धम दर्शन विशेष की सीमा मे आबद्ध न होकर यह

१ जिण० २४५-२६०। २ वही, ५१७-५१६। ३ पु० २ ५।
४ की० २-१०-१५। ५ वही, २-३३ ३६।

भलाई करना तथा राजा द्वारा मूलराज की स्मृति मे त्रिपुरुष प्रासाद नामक शिव मन्दिर बनवाना[1] आदि प्रसग धर्ममूलक जावन का ऐसी प्रणाली हैं जो मनुष्य की दुष्टता, स्वाथ गव द्वेष का नियन्त्रित कर सच्ची आत्मदृष्टि दिलाती है। दूसरो के लिए आत्मोत्सग नथा प्राणिमात्र को कष्ट न देने की प्रवृत्ति प्रकट करती है कि मनुष्य केवल प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से ही सर्वाधिक चालाक पशु, ओर मांग एव आपूर्ति से नियन्त्रित राजनाति केन्द्रित जीव नही हे अपितु उसमे ऐसे धार्मिक तत्व भी विद्यमान है जिससे शाश्वत सुखा की अपेक्षा सत्य को सर्वोत्कृष्ट समझना है। भौतिक उपकरण हमारे जीवन के साधन हो सकते है साध्य नही।

जन सामान्य का धम के प्रति इतना गम्भार आस्था था कि दु साध्य काय का भी धम-बल स सम्पन्न कर लेत थे। सेठ जावदेव धन-धान्य एव समस्त परिजना स युक्त था परन्तु उसक कोई स तान न थी। सठानी समेत सभी परिजनो ने मत्रणा दी कि 'धम मे सब दान कीजिए और तप करिए, तभी सम्भव हे कि पुत्र लाभ हो।' सेठ न ऐसा किया और उसे मनोवाछित फल मिला। द्यूत-कीडा मे हारा जिणदेव पश्चात्ताप करता ह कि 'जो धम, दान तथा परोपकार नही करता, वह पुत्र शोभत नही होता और क्षय को प्राप्त होता है।[3] पिता ने भा उसको उपदेश दिया कि हे पुत्र, अपङ्गो एव दीनो की सेवा करके धम काय मे यदि आवश्यकता हो तो अपना बहुत कुछ विक्रय भी कर डालना चाहिए।' पति द्वारा त्यागी जाने पर विमलावती ने धम का सहारा लिया।[4] धम लोगो का अतिम आश्रय था।

किसी महान् उपलब्धि तथा सत्काय सम्पन्न होन पर लाग इसे धम का परिणाम समझते थे। भौतिकवादियो की सम्पन्नता मे उत्पन्न अमानवीय विकृति के फलस्वरूप अपने आपको धरती का देवता समझ कर रामा स सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना निरादृत था। सागरदत्त न अपनी सुन्दरी पुत्रवधू ओर उसके दहेज मे उपलब्ध सम्पत्ति को अपन अधिकार मे करन के लाभ मे अपन धम पुत्र जिणदत्त को धोखे से समुद्र मे ढकेल दिया। उसके दुष्कृत्य से रक्षा पाने के लिए श्रीमती ने प्रार्थना की कि 'यदि मुझमे धम हो तो यह जहाज डूब जाय।' जहाज डगमगाने लगा। यात्रियो द्वारा श्रीमती के पाव पकडकर अनुनय-विनय करने तथा सागरदत्त को मारने से वोहित बच गया। इधर जिणदत्त एक धम करड (पटिका) के सहारे विषम गहरे तथा गभीर सागर को पार कर तट पर पहुँचा। उसे सदव ऐसा आभास होता रहा कि श्रीमती

---

१ प्रचि० २ ७९। २ जिण ४८ ५९। ३ जिण १४० ४१।
४ जिण० १४४। ५ जिण० १५८।

का धर्म उसके साथ है और उसकी रक्षा कर रहा है—जहा ज्रु रहण वणिद हु कियउ, सिरिया वम्मु साथ पाइयउ[१]

त्रिकालज्ञ सूक्ष्मद्रष्टा एव समष्टिप्राण ऋषिमुनियो ने अपने तप, ध्यान तथा आत्म समर्पण द्वारा दिव्य शक्तियो की प्रेरणा से सत्यपूण, जीवनोपयोगी और गहरी नीव पर आश्रित धम के विधि-विधान का श्रुति, स्मृति तथा धमशास्त्रो की पृष्ठभूमि मे इस प्रकार विस्तृत तथा सम्भाव्य अवसरोचित नियमन एव सयोजन किया कि इसकी व्यापकता वथा उपयोगिता के प्रति लोगो की प्रगाढ आस्था निमित हुई और उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालकर वे सस्कारत धर्म काम बने। इसका पालन करना स्वत एक धम समझा जाने लगा। जिनेन्द्र भगवान ने तप, सयम आदि व्यक्तिगत धम पर बल देते हुए सामाजिक धम मे वण धर्म को ग्रहण करने का उपदेश दिया।[१] 'धम्म मे चाउ' रखने वाले जयचन्द ने क्षत्रिय राजन्य से सम्बद्ध राजसूय यज्ञ, युद्ध एव काम धर्म का परायण किया।[२] ठाकुर के ठग होने, काम-धन्धे बन्द हो जाने, जाति कुजाति मे विवाह सम्पन्न होने तथा भृत्यो द्वारा स्वामियो के ग्रहीत होने मे कीर्तिलता का रचनाकार धर्म स्खलन समझता है।[४] कीर्ति सिह के अभिमत मे असलान द्वारा समर्पित राज्य को अगीकार कर सुखपूवक राज्य करने की मत्रणा मे माता की ममता और मत्री की राजनीति का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। वह तो वीर पुरुष के धर्म का पुजारी है, जिसमे मानहीन भोजन करना, शत्रु द्वारा प्रदत्त राज्य का भोग करना तथा शरणागत होकर जीना, तीनो को अधर्म माना गया है।[५] स्त्रियो मे विमलावती, श्रीमती, शृ गारमती, मेना, मालवणी, मारवणी तथा राजमती प्रभृति पतिव्रत धर्म के प्रति निष्ठावान हैं। वस्तुत सभी व्यक्ति किसी न किसी विहित धर्म द्वारा सचालित दिखाई पडते हैं। इनमे न केवल जीने की अपितु गोरव के साथ जीने की आकाक्षा विद्यमान है जिसमे ब्रह्माडव्यापी सार्वभोम परम सत्य की उपलब्धि से एक विशिष्ट प्रकार का धार्मिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। भौतिक उपलब्धिया मनुष्य के स्वास्थ्य, समृद्धि, विराम और यहाँ तक कि स्वय जीवन की अभिवृद्धि मे सहायक अवश्य होती हैं, किन्तु इस प्रकार सन्तोषप्रद आन्तरिक सुख नही प्रदान कर पाती।

भारतीय धार्मिक दृष्टि की प्रधानता इस तथ्य मे सन्निहित है कि यह समस्त धर्मों के प्रति उदारचेता है। किसी धम दर्शन विशेष की सीमा मे आबद्ध न होकर यह

१ जिन० २४५-२६०। २ वही, ५१७-५१६। ३ पु० २ ।
४ की० २-१०-१५। ५ वही, २-३३ ३६।

सब धर्मों का समादर करता है। दम्भी विद्वानो के अपवाद स्वरूप सामान्यत सभी व्यवहार इस मूल नीति से उत्प्रेरित है। प्रबन्ध चिन्तामणि मे आचाय हेमाचन्द्र ने सिद्धराज को एक पौराणिक कथा के माध्यम से इस रहस्य को एतादृश समझाया है। किसी गृहस्थ ने अपनी पहली परिणीता पत्नी को छोडकर अपना सवस्व किसी रखेलिन को दे दिया। इससे उसकी वास्तविक पत्नी अपने पति को वशीभूत करने के लिए अभिचार के उपाय पूछा करती। किसी गोडदशोय जादूगर ने एक अचि त्यवीर्य औषधि उसको खिलवा दी। फलस्वरूप पति बैल बन गया। इसका प्रतिकार न जानने के कारण वह कष्ट मे पड गई। एक दिन जब वह पशुरूप पति को चराती हुई एक वृक्ष के नीचे विलाप कर रही थी, सयोग से भवानी समेत शिव का विमान उधर से निकला। भवानी द्वारा उसके दु ख के निवारण का समाधान पूछने पर शिव ने बताया कि उसी वृक्ष के छाया मे पुरुष बनने की ओषधि है। वह स्त्री वृक्ष के नीचे की सभी औषधियो को उखाडकर वृषभ के मुख मे डालने लगी। उस अज्ञात स्वरूप औषधि के मुँह मे पडते ही वह बैल फिर मनुष्य बन गया। अज्ञात स्वरूप होकर भी जैसे औषधि ने अभीष्ट काय किया है, वैसे ही सब धर्मो की आराधना करने से अविदित स्वरूप होने पर भी मुक्ति मिल जाती है, यह निश्चय है। हेमाचाय के सब धर्मो के सम्मत होने के उपदेश से सिद्धराज सभी धर्मो की समान आराधना करने लगा।

धार्मिक समग्रता एव सामजस्य का मुख्य श्रेय भारतीय दृष्टि की अध्यात्म-प्रधानता को है। इस सन्दर्भ मे यह कहना भी असगत नही कि इस आध्यात्मिक चेतना ने भारत की सम्पन्न सस्कृति की पृष्ठभूमि मे चिन्तन प्रक्रिया को एक विशेष मोड देकर सामान्य विचारधारा मे भव्यता प्रदान की और इसी के प्रकाश मे जीवन को सुसस्कृत बनाया।

आध्यात्मिक जीवन मे सामान्यत चार साधनात्मक प्रवृत्तिया प्रमुख रूप मे सक्रिय रही। पहली प्रवृत्ति थी नित्य एव अनित्य के मध्य जिज्ञासु भाव से स्पष्ट भेद समझने तथा उनमे सत्य के अन्वेषण करने की अडिग आस्था। दूसरी दृश्यमान वस्तुओं के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण धारणा न रख सत्य के लिए व्यक्तिगत नही, अपितु सार्वभौम प्रवृत्ति का विकास करना तीसरी, सासारिक प्रलोभनो से विचलित हुये बिना आत्मिक नियन्त्रण के साथ दया रहित आत्म-परीक्षण की प्रवृत्ति जिसमे उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सवस्व उत्सर्ग करने का साहस विद्यमान हो और चौथी, मुमुक्षा, नित्य के समीप पहुँचने की प्रवृत्ति। वस्तुत आध्यात्मिक व्यक्ति की चेतना समष्टिमूलक होती

है। वह मानव, जगत तथा परम सत्ता के वास्तविक स्वरूप की खोज अन्तर्दृष्टि जन्य अनुभव से करता है।

स्वामी रामानन्द, प्रद्युम्न तथा जिणदत्त के चरित्र मे सुलभ अध्यात्म परक प्रवृत्तिया मोक्ष' के सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है। ये लोग सासारिक सुखोपभोग के अनन्तर ज्ञानोत्पन्न होने पर परम सत्ता की प्राप्ति के प्रयास मे आत्मानन्द की अनुभूति करने लगे। जन मानस का आध्यात्मिकता के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण विवेच्य वाङ्मय मे प्रचुरता से सुलभ है। यथा तक्र विक्रय करने वाली ग्वालिन के सिर पर रखी छाछ से भरी हँडिया तेज दौडते हुये घोडे की टक्कर से नीचे गिर पडी और उसमे से छाछ बह जाने पर ग्वालिन का मुख-कमल खिल उठा। किसी दर्शक द्वारा विषाद के अवसर पर हर्षित होने का कारण पूछने पर उसने कहा कि— राजा को मार कर, पति को साप द्वारा दशित देखकर मैं विधिवश परदेश मे वेश्या हुई। पुत्र का अपने साथ वेश्यागामी पाकर मै चिता मे प्रविष्ट हुई। तदनन्तर गोप की गृहिणी बनी। यह ससार कुछ नही है। फिर मैं आज इस तक्र के लिए क्या सोच करूँ। वस्तुत सब व्यर्थ है।[1] एक राजा अपने वैभव से मुग्ध होकर कह रहा था कि 'मनोहर युवतिया, अनुकूल स्वजन, अच्छे बाधव और मृदुल भाषी मेरे सेवक है। द्वार पर हाथियो के झुड गर्जन कर रहे हैं तथा घोडे हिनहिना रहे हैं।[2] इस प्रकार जब वह बारम्बार कह रहा था निकटवर्ती एक व्यक्ति से यह न सहा गया। उसने सोचा कि 'जो होना हो सो हो, पर जो बात मन मे स्फुरित हुई है उसे कैसे दबाऊँ और व्यक्त कर दिया, कि, 'आखे मुँद जाने पर इनमे से फिर कुछ नही है।' इससे सन्तुष्ट हो राजा ने उसे मनोवाछित धन दिया।[3]

जैनाचार्य भद्रबाहु ने पुत्र को मृत्यु से सतप्त एक व्यक्ति को समझाते हुये कहा की रोना किस बात के लिये ? यह शरीर क्या है ? ये परमाणु तो अविनाशी हैं। यदि सस्थान् विशेष के लिये ही शोक करना है, तो कभी प्रसन्न होना ही नही चाहिये। ये सब भाव अस्तित्व अभावोत्पन्न है और माया के विभव से सभावित है। इसका अन्त भी अभाव ही मे सस्थित है। इस तथ्य के ज्ञान से सज्जनो के मन मे भ्रम नही उत्पन्न होता।' जितना ही किसी व्यक्ति मे समग्रता तथा सामजस्य का अश अधिक है, उतना ही उसमे उच्च आध्यात्मिक भाव विद्यमान है। आध्यात्मिकता से सम्बद्ध अन्य विचार 'दर्शन' प्रकरण मे द्रष्टव्य हैं।

१ प्रचि० ३ ७४। २ वही ३ ७३।
३ वही, ५ २१६ २६१-२६२।

सब धर्मों का समादर करता है। दम्भी विद्वानो के अपवाद स्वरूप सामान्यत सभी व्यवहार इस मूल नीति से उत्प्रेरित है। प्रबन्ध चिन्तामणि मे आचाय हेमाचन्द्र ने सिद्धराज को एक पौराणिक कथा के माध्यम से इस रहस्य को एतादृश समझाया है। किसी गृहस्थ ने अपनी पहली परिणीता पत्नी को छोडकर अपना सवस्व किसी रखेलिन को दे दिया। इससे उसकी वास्तविक पत्नी अपने पति को वशीभूत करने के लिए अभिचार के उपाय पूछा करती। किसी गौडदशीय जादूगर ने एक अचिन्त्यवीय औषधि उसको खिलवा दी। फलस्वरूप पति बैल बन गया। इसका प्रतिकार न जानने के कारण वह कष्ट मे पड गई। एक दिन जब वह पशुरूप पति को चराती हुई एक वृक्ष के नीचे विलाप कर रही थी, सयोग से भवानी समेत शिव का विमान उधर से निकला। भवानी द्वारा उसके दु ख के निवारण का समाधान पूछने पर शिव न बताया कि उसी वृक्ष के छाया मे पुरुष बनने की औषधि है। वह स्त्री वृक्ष के नीचे की सभी औषधियो को उखाडकर वृषभ के मुख मे डालने लगी। उस अज्ञात स्वरूप औषधि के मुँह मे पडते ही वह बैल फिर मनुष्य बन गया। अज्ञात स्वरूप होकर भी जैसे औषधि ने अभीष्ट काय किया है, वैसे ही सब धर्मों की आराधना करने से अविदित स्वरूप होने पर भी मुक्ति मिल जाती है, यह निश्चय है। हेमाचाय के सब धर्मो के सम्मत होने के उपदेश से सिद्धराज सभी धर्मो की समान आराधना करने लगा।

धार्मिक समग्रता एव सामजस्य का मुख्य श्रेय भारतीय दृष्टि की अध्यात्म-प्रधानता को है। इस सन्दर्भ मे यह कहना भी असगत नही कि इस आध्यात्मिक चेतना ने भारत की सम्पन्न सस्कृति की पृष्ठभूमि मे चिन्तन प्रक्रिया को एक विशेष मोड देकर सामान्य विचारधारा मे भव्यता प्रदान की और इसी के प्रकाश मे जीवन को सुसस्कृत बनाया।

आध्यात्मिक जीवन मे सामान्यत चार साधनात्मक प्रवृत्तिया प्रमुख रूप मे सक्रिय रही। पहली प्रवृत्ति थी नित्य एव अनित्य के मध्य जिज्ञासु भाव से स्पष्ट भेद समझने तथा उनमे सत्य के अन्वेषण करने की अडिग आस्था। दूसरी दृश्यमान वस्तुओं के प्रति पूर्वाग्रहपूण धारणा न रख सत्य के लिए व्यक्तिगत नही, अपितु सार्वभौम प्रवृत्ति का विकास करना तीसरी, सासारिक प्रलोभनो से विचलित हुये बिना आत्मिक नियन्त्रण के साथ दया रहित आत्म परीक्षण की प्रवृत्ति जिसमे उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सवस्व उत्सर्ग करने का साहस विद्यमान हो और चौथी, मुमुक्षा, नित्य के समोप पहुँचने की प्रवृत्ति। वस्तुत आध्यात्मिक व्यक्ति की चेतना समष्टिमूलक होती

३ १११।

है। वह मानव, जगत तथा परम सत्ता के वास्तविक स्वरूप की खोज अन्तर्दृष्टि जन्य अनुभव से करता है।

स्वामी रामानन्द, प्रद्युम्न तथा जिणदत्त के चरित्र मे सुलभ अध्यात्म परक प्रवृत्तिया 'मोक्ष' के सन्दभ मे द्रष्टव्य है। ये लोग सासारिक सुखोपभोग के अनन्तर ज्ञानोत्पन्न होन पर परम सत्ता की प्राप्ति के प्रयास मे आत्मानन्द की अनुभूति करने लगे। जन मानस का आध्यात्मिकता के प्रति सहज स्वाभाविक आकषण विवेच्य वाङ्मय मे प्रचुरता से सुलभ है। यथा तक्र विक्रय करने वाली ग्वालिन के सिर पर रखी छाछ से भरी हँडिया तेज दौडते हुये घोडे की टक्कर से नाचे गिर पडी और उसमे से छाछ बह जाने पर ग्वालिन का मुख-कमल खिल उठा। किसी दशक द्वारा विषाद के अवसर पर हर्षित होने का कारण पूछने पर उसन कहा कि— राजा को मार कर, पति को साप द्वारा दशित देखकर मैं विधिवश परदेश मे वेश्या हुई। पुत्र को अपने साथ वेश्यागामी पाकर मैं चिता मे प्रविष्ट हुइ। तदनन्तर गोप की गृहिणी बनी। यह ससार कुछ नही है। फिर मै आज इस तक्र के लिए क्या सोच करूँ। वस्तुत सब व्यर्थ है।[1] एक राजा अपने वैभव से मुग्ध होकर कह रहा था कि 'मनोहर युवतिया, अनुकूल स्वजन, अच्छे बाधव और मृदुल भाषी मेरे सेवक है। द्वार पर हाथियो के झुड गजन कर रहे है तथा घोडे हिनहिना रहे हैं।[2] इस प्रकार जब वह बारम्बार कह रहा था निकटवर्ती एक व्यक्ति से यह न सहा गया। उसने सोचा कि 'जो होना हो सो हो, पर जो बात मन मे स्फुरित हुई है उसे कैसे दबाऊँ और व्यक्त कर दिया, कि, आखें मुँद जान पर इनमे से फिर कुछ नही है।' इससे सन्तुष्ट हो राजा ने उसे मनोवाछित धन दिया।[3]

जैनाचाय भद्रबाहु ने पुत्र को मृत्यु से सतप्त एक व्यक्ति को समझाते हुये कहा की 'रोना किस बात के लिये ? यह शरीर क्या है ? ये परमाणु तो अविनाशी हैं। यदि सस्थान् विशेष के लिये ही शोक करना है, तो कभी प्रसन्न होना ही नहीं चाहिये। ये सब भाव अस्तित्व अभावोत्पन्न है और माया के विभव से सभावित है। इसका अन्त भी अभाव ही मे सस्थित है। इस तथ्य के ज्ञान से सज्जनो के मन मे भ्रम नही उत्पन्न होता।' जितना ही किसी व्यक्ति मे समग्रता तथा सामजस्य का अश अधिक है, उतना ही उसमे उच्च आध्यात्मिक भाव विद्यमान है। आध्यात्मिकता से सम्बद्ध अन्य विचार 'दशन' प्रकरण मे द्रष्टव्य हैं।

१ प्रचि० ३ ७४। २ वही ३ ७३।
३ वही, ५ २१६ २६१-२६२।

आध्यात्मिकता दुख की चरम निवृत्ति एव परमानन्द की प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति का मार्ग है। इसमे स्वार्थ सम्पन्न कार्यशीलता के आगे परमार्थ की कर्मठता को गति तथा शक्ति प्रदान की गई है। पृथ्वीराज, गोरी द्वारा पकडे जाने पर नयन विहीन कर दिये गये। फलत उनका प्रत्येक क्षण युग के समान बीतने लगा। यह सुनकर कवि चन्द पृथ्वी पर 'हरि हरि, हरिदेव' कहता हुआ गिर पडा। तदनन्तर पुत्र-मित्रादि समस्त माया के बन्धनो को छोडकर पृथ्वीराज की सहायतार्थ गजनी की ओर चल पडा। विभूति से युक्त उसके शरीर को देखकर हिन्दू कहइ हम देव हइ, मेच्छ कहइ हम पीर।' इसने अपनी कार्य कुशलता से सुल्तान गोरी से भेंट की और यह स्वीकृत कराया कि पृथ्वीराज कारागार से निकल कर दरबार मे तीक्ष्ण अग्रभाग रहित बाण द्वारा सात घडियालो के बेधन की कला प्रदर्शन करे। किन्तु नैराश्यपूर्ण पृथ्वीराज अपने बाण से सुल्तान गोरी को मार कर मुक्ति पाने का साहस नही कर रहा था। तब चन्द ने कहा, 'अरे नरेन्द्र, यह शरीर कच्चा है, इसमे निवास करने वाला चेतन जीव सच्चा है। जल, तेज, समीर धरा और आकाश से यह पिंड बना है और वृद्धता के जाल से आबद्ध काल के मुख मे खेलता रहता है। 'अह त्व', 'त्व त्व' का अजपा जाप और समभाव करके तू ब्रह्म मे मिल जा। जिस प्रकार हस हसिनी के साथ मोह तथा तन-पञ्जर छोडकर चल पडता है। तू भी पृथ्वीराज, आज वैसा ही सोच। तू मोक्ष और अर्थ सभी जानता है तथा सामर्थ्यवान है। अवश्य कुछ ऐसा कर जिससे तू उबर जा।' चन्द ने कुछ तत्त्व का मन्त्र तथा उसका अप्त (रहस्य) समझाया। फलत पृथ्वीराज मे साहस का सञ्चार हुआ और गोरी को मार मुक्ति प्राप्त की।[१] वस्तुत, आध्यात्मिक प्रवृत्ति की साधुता पर अकर्मण्यता की काली छाया किसी भी चरित्र में दृष्टगत नही है।

इहलोक की अपेक्षा परलोक का अधिक महत्व—

ससार के सम्बन्ध मे धुधुलीमल जी अपने 'सबदी' मे कहते है कि—

बाबा हम भी मरणा तुम भी मरणा।
मरणा सब ससार।
सुर नर गण गध्रब भी मरणा।
कोई बिरला उतरै पार ॥ ८ ॥ ४२१ ॥[२]

सासारिक व्यवहार क्या है? इस सम्बन्ध मे स्वामी रामानन्द जी का अभिमत है कि 'जीव, जगत मे मान तथा धन आदि के गर्व मे फूला रहता है। किन्तु यह सब

१ पृ० १२। २ नाथ सिद्धों की बानियाँ।

उसी प्रकार है जस सेमल के ऊँचे पेड का देखकर सुआ फल का आशा मे पड पर बठा रह और अन्त मे मात्र भुआ पाये।[1] पुत्र कलत्र तथा अय विषयो का सुख इसी प्रकार है जेसे चीटिया गुण की मिठास के लाभ मे गुड पर चिपटता है। सुख किंचित मात्र मिलता है, कि तु जब पख गुड मे सन जाते है तो फिर उडना कठिन हा जाता हे। ऐसी स्थिति मे पछतावा छाडकर कोई चारा नही रह जाता।[2] आदश सासारिक जीवन के लिए रामानन्द ने तन-मन का साधना', बुधुली मल न 'दान की साधना उद्धव ने याग-साधना तथा गोपियो न कृष्ण-प्रेम की साधना का सर्वोत्तम बतलाया ह। इहलाक का एक उत्कृष्ट जीवन इस प्रकार भी उल्लिखित है —

मनुष्य को नित्य उठन पर यह विचारना चाहिये कि आज उसने कौन सा सुकृत किया। दिन क पूरा होन पर आयु का एक टुकडा लेकर रवि अस्त हा जायगा।

लोग मनुष्य का कुशल पूछत हे। लेकिन यह नही साचते कि हम लागो का कुशल कैसा ? आयु तो प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है।

इसलिए, कल जो करना है उसे आज ही कर लेना चाहिये, जा दोपहर के बाद करना है उसे उसके पहले ही कर लेना चाहिये। मृत्यु इसका परीक्षा नही करती कि इसन किया है अथवा नही किया है।

क्या मृत्यु की मौत हो गई है, बुढापा बूढा हा गया है विपत्तिया विपदा मे पड गई है और व्याधिया बीमार हो गई है जो मनुष्य दप करत रहता ह ? इस तत्त्व का जानन के कारण सबको धर्म काय मे अप्रमत्त रहना चाहिय। बब्बर भी यहा कहता है कि—

'अइचल जोव्वणदेहधणा, सिविअणसोअर बन्धुअणा।
अवसउ कालपुरी गमणा परिहर बब्बर पाप मणा॥१०३॥

—यावन तन तथा धन अत्य त चचल है, बाधव स्वप्न के सदृश ह कालपुरी मे अवश्य जाना है। बब्बर कहता है कि अपने मन को पाप म हटाओ। कवि चन्द ने मनुष्य के लौकिक जीवन विषयक अभिव्यक्ति इस प्रकार का हे, मनुष्य माता के गभ मे वास करने के अनन्तर दिन पूरा होने पर जन्म लाभ करता है। एक क्षण वह ससार से अनुरक्त होता है तो दूसरे क्षण वह उससे खिन्न होकर रोता ह एक क्षण

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पद १। २ वही, पद ३।
३ प्रचि० ३६८। ४ प्रापै० भाग २, २-१०३।

व्यवहारिक जगत के तापत्रय—आध्यात्मिक, आधिभौतिक एव आधिदैविक—से प्राणिमात्र को मुक्त करा कर मीमासा, वेदान्त, जैन तथा बौद्ध धर्म के पूर्ण आनन्द की उपलब्धि अभिप्रेत है।

विवेच्य वाङमय का अनुशीलन करने से यह धारणा उत्पन्न होती है कि परलोक के स्वर्ग तथा नरक की मान्यता ने लोगो को पुण्य कमाने और पाप न करने की प्रेरणा प्रदान की है। एक राजा ने सायकाल की आरती के अनन्तर एक दास को पुरस्कार मे पान का बीडा दिया। उसने हाथ मे लेकर देखा तो उसमे कृमि दिखाई दिये। राजा के आग्रहपूर्वक पूछने पर उसने बात बता दी। यह सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। सब दान मे देकर ऐसा तप किया कि सूर्य मण्डल को भी भेद दिया।[1] एक अन्य राजा तीर्थोपासना की कामना से वाराणसी जा रहा था। मार्ग मे मालव नरेश ने रोक कर उससे छत्र चामरादि राजचिह्नो का परित्याग करके सन्यासी वेश मे आगे बढने के लिए आग्रह किया। इसे धार्मिक कृत्य मे बाधा मानकर उसने तीर्थ मे रहने और अपना परलोक सुधारने का दृढ सङ्कल्प किया।[2] इसी प्रकार जीवदेव, जीवजसा,[3] जिणदत्त, इनकी चारो स्त्रिया तथा प्रद्युम्न सभी अपना परलोक सुधारने मे प्रयत्नशील दिखाई पडते है।

धर्म-लक्षण—

भारतीय जीवन मे धर्म शब्द अनेक अर्थो मे व्यवहृत हुआ है। 'हिन्दू-धर्म' 'बौद्ध धर्म' 'इस्लाम धर्म' आदि के कहने से वर्ग विशेष के व्यवहार अथवा मजहब का बोध होता है। व्यक्ति अथवा जाति विशेष के लिए अवस्था विशेष मे निर्धारित कर्तव्य धर्म है। सङ्कट मे प्राण बचाने वाली क्रिया को आपद् धर्म कहा गया है। युधिष्ठिर धर्म के अवतार, धर्मराज और धर्मपुत्र कहे गये है। अपनीत भाई बहिन, धर्मभ्राता तथा धर्म भगिनी कहे जाते हैं। औरसपुत्र धर्मपुत्र और भार्या धर्म-पत्नी कही जाती है। भैसा को धर्मवाहन, गूलर को धर्मपत्र, गोलमिर्च तथा श्रावस्ती नगरी को धर्म पत्तन, गगा को धर्मद्रवी, पाखडी को धर्मध्वजी, विष्णु को धर्मयोनि, न्यायालय को धर्मसभा, यात्रियो के निःशुल्क ठहरने के स्थान को धर्मशाला, धर्मार्थ थोडा-थोडा अन्न सग्रह करने वाले पात्र को धर्मघट, कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र तथा वरुण को धर्मपति कहा जाता है। अनेक सदर्भो मे परोपकार ही धर्म लगता है। कहा भी है कि 'परहित सरिस धर्म नहि भाई।'

---

१ प्रचि० १२६। २ वही, १३३। ३, जिण० ५०८।
४ वही, ५३६।

हिन्दू धर्म का ऐतिहासिकता पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि धर्म का आदि रूप 'ऋत्' है। यह सृष्टि सचालक शाश्वत व्यवस्था के लिए प्रयुक्त नाम है। विश्व के अनन्त रूप का एक सूत्र मे पिरोने वाला तत्व ऋत् है। इसी के द्वारा उषा, सूर्य, अग्नि, जल तथा समस्त जड चेतन सचालित होते है। वेद मे विधान अथवा प्रचलन, यज्ञ और व्रत को भी धर्म कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ करना ही धर्म है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे धार्मिक अनुष्ठान तथा व्यवहार को धर्म कहा गया है। तैत्तिरीय आरण्यक मे धर्म का तात्पर्य सत्कार्य तथा दान से है। उपनिषदो मे धर्म की पृष्ठभूमि मे नैतिकता पर विशेष बल प्रदत्त है। गृह्यसूत्रो मे सस्कार, गृह्य यज्ञ, त्रिवर्ग धर्म, अर्थ तथा काम और धर्मसूत्रो मे वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, स्त्री धर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, न्यायिक व्यवस्था तथा प्रचलित विधि धर्म के रूप मे निरूपित है। स्मृतियो मे आचार जिसमे वर्णाश्रम धर्म आदि समाविष्ट है — व्यवहार प्रायश्चित, नैतिक सद्गुण, विधि, आय, मर्यादा अर्थात् साधारण धर्म तथा श्रुतिविहित नियमो के द्वारा सासारिक जीवन को सुखमय बनाने के आदर्श मिलते है। रामायण मे स्वधर्म पालन द्वारा मानव कल्याण के आदर्श की प्रतिष्ठा है। इसमे धर्म प्रत्यक्ष रूप मे निरूपित है और राम को विग्रह धर्म, कहा गया है।[1] महाभारत मे राजधर्म प्रजाधर्म जातिधर्म, कुलधर्म, वर्णाश्रम धर्म, आपद्धर्म, मोक्ष धर्म, स्त्री धर्म आदि धर्म के विभिन्न रूपो की मीमासा सुलभ है। सम्यक धर्म युग धर्म के अनुकूल उत्कर्षकारी होता है। देश काल की पृष्ठभूमि मे उपयुक्त धर्म देश काल की सापेक्षता मे अनुपयुक्त हो अधर्म मे परिणत हो जाता है तथा आपत्तिकाल मे अधर्म ही धर्म का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। गीता का निष्काम कर्म तथा पुराणो का सार्वजनीन नैतिक उपदेश अनुपालनीय आचार के रूप मे ही धर्म मे प्रतिष्ठित है। भागवत पुराण[2] मे ब्रह्मा के वक्षस्थल के दक्षिण पार्श्व से प्रादुर्भूत पाच जनकल्याणी वस्तुओ मे धर्म की भी परिगणना है। नदी पर्वत, वन तथा अन्य लघु देवताओ की पूजा का प्रचलन लोकधर्म के रूप मे पुराणो मे प्राप्त होता है।[3] लक्ष्मीधर (१२वी शती ईस्वी) के कृत्य कल्पतरु[4] मे निःश्रेयस का ही सर्वोत्तम धर्म कहा गया है।

वस्तुत, धर्मग्रन्थो मे आचार्यों का ध्यान धर्म के स्वरूप की अपेक्षा परिभाषा की ओर कम आकृष्ट हुआ है। सर्वप्रथम आपस्तम्ब धर्मसूत्र[5] मे शिष्ट जनो द्वारा

---

१ 'रामो विग्रहवान धर्म' उद्धृत द्वारा डा० वा० दे० श० अग्रवाल, कला और सस्कृति पृ० १८८। २ १ १६ २०-२६, वी० आर० आर० दीक्षितार, पुराणिक इण्डेक्स, जिल्द २, पृ० १६१-६२। ३ डा० वा० दे० श० अग्रवाल प्राचीन भारतीय लोक धर्म, पृ० २२-१८०। ४ ब्रह्मचारिकांड, जिल्द २, पृ० ६। ५ १ २० ६-७।

अनुमादित काय क। हा धम का लक्षण बनाया ह। महाभारत मे धारणात्मक तत्व का धर्म कहा है और धृ धातु से इसकी निष्पत्ति मानी गइ ह। जेमिनी सूत्र न 'चोदनालक्षणार्थोधम' कह कर धम का परिभाषित किया है जिसका मूल तत्व काय करने की आन्तरिक प्रेरणा है। अन्नम भट्ट के अनुसार मयादित अनुष्ठान। न उपलब्ध अदृश्य शक्ति ही धम है। शङ्कराचाय न विश्व स्थिति जावा के अभ्युदय तथा नि श्रेयस् हेतु का धम कहा है। आधुनिक मनीषी डा० भगवानदास के अभिमत मे नैसर्गिक गुण, कत्तव्य निष्ठा, सदाचार तथा विधि ही धम है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने धारणात्मक तत्व के वाचक शब्द रूप मे धर्म का स्वागत किया है। इसके अन्तगत वे नियम समाविष्ट हाते है जिनके द्वारा सृष्टि म नानशान्ता विद्यमान है। वस्तुत हिन्दू धम के आदि रूप ऋत का ही इस परिवार मे मानविक प्रश्रय मिला है।

सक्षेप मे हिन्दू धम का तात्पय धारणात्मक तत्व म ह। इसके प्रमुख धारणीय तत्व सत्य, नैतिकता सदाचार, सत्कम, उपसना, यज्ञ तथा दशन आदि हैं।

ऊपर भारतीय विचारधारा का मूलभूत विशेषताओ के पृष्ठभूमि मे प्रदर्शित किया गया है कि यहा जीवन प्रक्रिया एव चिन्तनधारा मूलत धार्मिक ह। धम का निधारण व्यक्ति तथा समष्टि की समग्रता का लक्ष्य कर किया गया ह। शरीर मन ओर आत्मा के रूप का क्रमश विवेचन कर इहलौकिक तथा पारलौकिक हितो के पृष्ठभूमि मे स्वाथ की अपक्षा पराथ पर अवलम्बित धम का निरूपण हुआ है। परदुखकातरता, दाक्षिण्य एव अहिंसा सदृश परोपकार सम्पन्न गुण आत्म कल्याण के प्रमुख साधन हे। इस्लाम को छोडकर इस देश मे प्रचलित सभी धमो मे विचार तथा साधना के क्षेत्र मे पूण स्वतन्त्रता मिलता है।

धर्म-सत्य रूप मे—

चोदहवी शताब्दी अपभ्रश एव हिदी वाङमय धम के व्यवहृत रूपो मे सत्य की अन्तर्निहित चेतना प्रमुख हे। सत की नगरी धम का राज। बाला जागी करें

१ कणपव ७२ ५८, सा० प० १०६ ११। २ १ १ २।
३ तर्क सग्रह-विहित कम जयो धम। ४ गीता (उपोद्घात), १ पर शकर भाष्य।
५ डा० भगवानदास, द साइस आव सोशल आगनाइजेशन, जिल्द १, पृ० ४६ ५०।
६ डा० वा० श० अग्रवाल वेद विद्या, पृ० २।

आवाज । [१] कनक बड गूजर का दृढ मत था कि जीव लगि मत्त न छडहु ।[२] हताश पृथ्वीराज को कविच द का यह उद्बोधन ससार सागर से मुक्ति दिलाता है कि—

अरे नरिंद वा बव पिड कच्चउ सुर सच्चउ ।
अप्पु तेज समीर धरा आयास ज पचउ ।
जरा जाल बधिय काल आनन महिषिल्लइ ।
ह तुह तु तुह अजप जाप्पि तरु सरु करि मिल्लइ ।
जिम चलइ हस हसी मरिस छडि मोह नन पजरहि ।
प्रथ्वीराज आज तिहिं मत्ति करि नरिद जिनि उव्वरहि ।। ३

अर्थात् अरे नरे द्र अथवा बधु (पृथ्वीराज), पिड (शरीर) कच्चा है और उस शरार मे निवास करने वाला सुर-चेनन जीव सत्य है । आप (जल), तेज, समीर, धरा, आकाश इन पाच से यह पिंड बना है । यह जरा (वृद्धता) के जाल बधा हुआ काल के आनन मे खेलता रहता है । अहत्व', 'त्व त्व' (मे तुम हूँ', 'तुम तुम है') का अजपा जाप और समानना (सम भाव) करके तू ब्रह्म मे मिल जा । जिस प्रकार हस हसिनी के साथ मोह और तन-पजर को छोड पडता है, तू भी पृथ्वीराज आज वही बुद्धि कर और ऐसा कुछ कर कि जिससे तू उबर जावे ।'

अभागे पुरुष के दरिद्र पुतले को पण्य मे कोई नही ले रहा था । गज्य के अधिपति ने नगरी का कलङ्क हटाने के लिये उसको क्रय कर लिया । ऐसा करन पर हाथी तथा घोडो के अधिष्ठातृ देव और लक्ष्मी ने अर्द्ध रात्रि को नरेन्द्र के समीप आकर कहा कि 'महाराज ने जब दरिद्र-पुतले को खरीद लिया ह तो फिर हम लोगो का यहा रहना उचित नही है । हमे चले जाने की अनुमति दीजिये ।' राजा ने अपना साहस भग न हो ऐसा सोचकर जाने की आज्ञा दे दी । चोथे प्रहर मे दिव्य तेज सम्पन्न सत्व ने प्रकट होकर जाने के लिए अनुज्ञा मॉगी । सत्व के चले जाने के पूव राजा ने अपना प्राणा त करना सोचकर तलवार चलायी । सत्य ने 'मै तुष्टमान हुआ' कह कर राजा को आत्मग्लानि से निवारण किया और स्वत भी चले जाने की इच्छा त्याग दी । मत्व के रुक जाने पर देवताओ सहित लक्ष्मी भी लौट आई ओर कहा, धन, गुण तथा कीर्ति तभी तक विद्यमान है जब तक सत्व चित्त रूपी नगर मे निवास करता है । राज्य, स्त्री तथा यश जायँ तो जायँ किन्तु सत्व को जीवन पय त नही जान देना चाहिये ।'[४] समसामयिक युग का यह बोध था कि 'असार मे सार का उद्धार करना

---

१ नाथ० ९२ । २ पृ० ८ १४ ३ । ३ वही, १२ ३८ ।
४ प्रचि० १३४ ।

चाहिये ।[१]' जन साधारण इसकी पूर्ति करता था—'धन से दान, वचन से सत्य, आयु से धम और शरीर से परोपकार द्वारा । इस प्रकार असार से सार के उद्धार की प्रक्रिया विद्यमान थी ।'[१] अन्यत्र सभ्यो के एक सम्मेलन मे यह निणय किया गया है कि 'वह धम नही जहा सत्य का निवास न हो ।'[२] धम के सत्य के प्रति इस दृढ आस्था ने देश मे अनेक क्रान्तिद्रष्टा आत्माओ को उत्पन्न किया है जिन्होने मृत मान्यताओ एव क्षीण परम्पराओ के बाह्य आवरण को हटाकर सत्य द्वारा उसमे नई जीवन शक्ति का सचार किया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता की निरन्तर प्रगति हो सकी ओर उसमे विजेताओ द्वारा समागत सस्कृतिया आत्मसात् हो गयी । यदि थोडा बहुत इनका प्रभाव पडा भी तो वह छिछला और बाह्य ढग का था । सम्भवत यह 'सत्य' ऋग्वेद के महत्वपूर्ण ऋत का रूपान्तर है जिसने कालान्तर मे धम की अवधारणा के विकास मे अप्रतिम योगदान दिया है । वस्तुत विवेच्य युग का सत्य परम्परागत पृष्ठभूमि मे प्रतिष्ठित है । युग की वाणी है कि जीवन चाहे जितनी आपदाओ से सकटापन्न हो जाय अथवा अनेक निधियाँ उपलब्ध हो जायँ अपितु उत्तम व्यक्ति को सत्य का आश्रय नही त्यागना चाहिये । भला बुरा तो विधाता की सृष्टि है ।' लौरिक को भी इस बात का बोध है कि 'सत्य छोडन से पत नही रहता, कुलकानि की हानि होती है ।'[४] किन्तु ऋत' की उदात्त एव सजनात्मक मूल भावना इस युग के सत्य मे विद्यमान नही है ।

धम नैतिकता रूप मे—

विवेच्य वाङ्मय मे सत्य समन्वित धम का दूसरा गृहीत रूप उदात्त नैतिक गुणो का है जो सम्भवत पडोसी की असत्य जनित घृणित दृष्टि के परिवेश मे निसृत है । राज्य के लोभवश असलान ने राजा गणेश्वर पर आक्रमण किया । गणेश्वर श्रेष्ठ दानी था जिसने याचको की अभिलाषा को सदैव पूण किया था । वह मान मे श्रेष्ठ था तथा उसने शत्रुओ के गारव को सदैव अवमानित किया । वह सत्य और रूप मे इन्द्र तथा पचशर के सदृश था । असलान राजा गणेश्वर से बुद्धि, विक्रम तथा शक्ति मे पराजित हुआ था । तदनन्तर उसने राजा गणेश्वर के पास बैठ विश्वास उत्पन्न किया तथा धोखे से उसे मार डाला । इस कुकृत्य से वह स्वय बहुत लज्जित हुआ । उसने सोचा कि 'मैने यह बुरा काम किया ।' धम का विचार करके वह सिर धुनने लगा तथा प्रायश्चित मे उसने गणेश्वर के पुत्र कीर्तिसिंह को राज्य समर्पित कर उस

१ वही २४४ ५७ । २ प्रचि० ३ ७६ १२६ । ३ विप० ११२ ।
४ चावा, ३१७ ।

सम्मानित करन का बात सोची । माता गुरु, म त्री तथा मित्रगण सभा ने कीर्तिसिह का राज्य भागने की मन्त्रणा दी किन्तु उसका नतिक धम पुनर्जाग्रत हुआ और उसन स्पष्ट अभिव्यक्त किया कि माता जो कुछ कहती है वह ममता के कारण है, मन्त्री न राजनीति की बात कही किन्तु मुझे तो एक मात्र वीर पुरुष की रीति प्यारी है । मान-हान भाजन, शत्रु प्रदत्त राज्य भोग ओर शरणागत होकर जीवन यापन य तीनो कायरो के काय हे । जो अपमान मे दु ख नही मानता, दान तथा खडग का मम नही समझता और परोपकार मे धम नही देखता, वह साधुवाद का भाजन नही है । सग्राम मे शत्रु से साहसपूवक लड्गा पर शरणागत होकर मुक्त न होऊँगा । दान से दारिद्रय का दलन करूँगा ओर कभी 'न' अक्षर नही उच्चरूगा । रणयान मे राज-पाठ करूँगा परन्तु नीच शक्ति का प्रदशन न करूँगा । अपने आत्माभिमान को प्राण का भाति सयाजित रक्खूगा पर नीच का कभी नही साथ करूँगा, चाहे राज रहे अथवा जाय ।'[१]

परिणामत कार्ति सिह और असलान के मध्य युद्ध हुआ । असलान ने पीठ दिखा दी । उसकी पराजय का देखकर कार्तिसिह ने उसे लक्ष्य कर वीरोचित दर्प से कहा कि 'जिस हाथ से तून मेर पिता का वध किया वह हाथ कहा गया ? अरे अर असलान, प्राण के लिए कायरता दिखाने वाले मन का अनादर करने वाले, युद्ध-भूमि मे साहस छोडकर भागन वाले, तुझे धिक्कार है । अर, जीवन मात्र से प्रेम करने वाले कायर, अपयश लेकर कहा जाता है ? शत्रु के सामने पीठ करके वैसे ही भाग रहे हो जसे अनुजबधू भ्रातृश्वसुर के सामन जाती हे । जहा जी लेकर जी सको वही जाओ । मैंने तुझे जीवनदान दिया । तू रण से भागा है, तू कायर है । जो तुझे मारेगा वह भी कायर है ।'

कीतिलता के प्रारम्भिक भृङ्ग-भृङ्गी सम्वाद से सम सामयिक नैतिक मूल्यो पर प्रकाश पडता है । भृङ्गी की इस जिज्ञासा के स दभ मे कि 'ससार मे सार तत्व क्या है ?' भृङ्ग ने बताया कि 'वीर के मान सहित जान मे ही जीवन की सार्थकता है । मात्र जन्म लेने से पुरुष श्रेष्ठ नही होता । जलदान से जलद जलद है धूम्र का पु ज मात्र जलद नही । पुरुष वही है जिसका सम्मान हो तथा जो अजन की शक्ति से सम्पन्न हो । इतर लोग पु ष के आकार मे पुच्छहीन पशु के सदृश है । पुरुष राजा बलि हुये थे जिनके आगे विष्णु को हाथ पसारना पडा । पुरुष रामचन्द्र हुये जिन्होने बल से रावण का मारा तथा पुरुष राजा भगीरथ हुये जिन्होने गगा को लाकर अपने कुल

१ की० २ ३२४८ । २ की० ४ २४४-२५१ ।

का उद्धार किया । परशुराम पुरुष थे जिन्होंने क्षत्रियो का विध्वस किया । सुपुरुष वह है जिसके कथन स पुण्य होता है, सुख मिलता है सुभोजन, सुभवन और पुण्य के कारण देवगृह स्वग-की प्राप्ति हाती है । पुरुष की महत्ता इस तथ्य मे है कि वह सग्राम मे वीरता दिखाये धम परायण हो विपत्तियो के बार बार आने पर भी दीन वचन का उच्चारण न करे, उसके धन का सज्जन लोग आनन्दपूवक स्वेच्छा मे उपभाग कर सके । वह एकान्त मे किसी को द्रव्य की सहायता देकर भूल जाय और सत्व भरे गुण तथा रूप सम्पन्न शरीर वाला हो । तीन वेद अधीत परब्रह्म एव परमाथ को समझने वाला हो । यश प्राप्ति मे बलि और कण को अवमानित करता हो तथा शरण की कभी इच्छा न करे । अर्थार्थी लोगो को विमन न करे, असत्य भाषण न करे एव कभा कुमार्ग पर न चले । इन्द्र के समान श्रेष्ठ भोगो का भोगने वाला, तेज मे हुताशन ओर कान्ति मे कुसुमायुध कामदेव सदृश हो । प्रताप, दान तथा सम्मान आदि गुणो से सबको वशीकृत करने वाला महिमण्डल मे कुन्द कुसुम की भाति धवल-यश को विस्तृत करने वाला तथा नीति विनय आदि गुणो से दशो दिशाओ मे अपनी कीर्ति कुसुम का सन्देश फैलाने वाला हो । प्रभुता शक्ति, दान शक्ति तथा ज्ञान शक्ति से सम्पन्न हो । १

नैतिक मूल्य के इस विवेचन से सम सामयिक, कतृ के स्वभाव एव चरित गत स्तर का बोध होता है । वस्तुत दो प्रकार के नैतिक स्तर स्पष्ट रूप से परि-लक्षित होते हैं । प्रथम, पश्चिमी एशिया का नवागत असलान है जिसके जीवन का लक्ष्य सासारिक सुखोपभाग है । उसन राज्य के लोभ मे बुद्धि, विक्रम तथा बल में राजा गणेश्वर से पराजित होकर उनके समाप बैठ विश्वास उत्पन्न कर छलपूवक उन्हे मार डाला । गणश्वर क पुत्र कीर्तिसिंह ने जीवन मात्र से प्रेम करने वाल कायर असलान को जब रण मे पराजित किया ता वह साहस त्याग कर अपयश के साथ युद्ध भूमि से पलायन कर गया ।' दूसरे प्रकार के नैतिक धमावलम्बी कीर्तिसिंह हैं जिन्होने शत्रु द्वारा दान रूप मे प्रदत्त राज्य के भोग की अपेक्षा आत्मसम्मान एव वीरता को अधिक गौरवपूर्ण समझा । राज्य धन के समक्ष उन्होने अपने नैतिक धन का त्याग नही किया । इसमे शुभाशुभ का निर्णायक तत्व वह अन्त प्रेरणा है जो निश्चय करती है कि सत्य एव असत्य की उपलब्धि का कौन मार्ग युक्तियुक्त है । उदात्त नैतिक भाव-नाओ के मूल मे किसी प्रकार के सामाजिक एव राष्ट्रीय पुरस्कार का प्रलोभन प्रेरक तत्व के रूप मे क्रियमाण नही है अपितु कर्मानुसार जन्म-जन्मान्तर से उपलब्ध सस्कार की अन्तर्निहित चेतना कायशील है । अनेक जन्मो मे असामाजिक तत्व से सङ्घष कर

१ कीо १ २३-८५ ।

उदात्त मानव मूल्या का स्थापित करने की प्रक्रिया से ही उच्च नैतिक धर्म की प्रतिष्ठा सम्भव हा सकती है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस प्रकार के नैतिक धर्म के आधार पर दीघकालीन स्वर्णिम इतिहास के साथ उन्नत समाज भी सुस्थिर हो सके। कीर्तिसिंह तथा वीरसिंह द्वारा राज्य वापस लेने के नैतिकतापूर्ण निणय से यह स्पष्ट हाता है कि मानव प्रकृति एव बाह्य परिस्थितियो से बाध्य होकर मात्र उनसे पूणतया परिचालित नही है। वे नैतिक उत्तरदायित्व का गौरवपूण ढग से सम्पादन कर सकने मे सक्षम है। विद्यापति का धार्मिक क्षेत्र मे यह महत्वपूण योगदान है कि उन्होने नैतिक मान्यताओ का सयोजन कर उसके सामासिक रूप को ऐसे समय प्रस्तुत किया जबकि भारतीय सस्कृति का नवागत इस्लामी विचारधारा से मेल हो रहा था। विदेशी नैतिकता के समक्ष उदात्त भारतीय नैतिक प्रतिमाना का उपस्थित कर उन्हे जीवन्त रूप मे प्रस्तुत करन का सामाजिक अपेक्षा थी।

युग के विशेष स दभ मे नैतिक गुण के रूप मे स्वामिभक्ति का विकास हुआ है। पृथ्वीराज क्षण भर रणक्षेत्र मे अपन सामन्तो को रोक कर नगर प्रदक्षिणा मे गये। इधर शत्रुओ की ओर से युद्ध की रणभेरी बजी, आक्रमण हुआ। सन्नाह से सुसज्जित अश्व सेना ऐसी प्रतीत होती थी माना अकाल प्रस्तुत करने वाली टिड्डिया का सघन प्रवाह पवत से छूट पडा हो। पृथ्वीराज के आदेश का स्मरण कर सामन्त गण अपने उत्साह एव अनुशासन पर दृढ थे। वे परस्पर कह रहे थे कि स्वामी का वचन किसी भी दशा मे भग न होन पावे।' पृथ्वीराज के आगमन पर भयकर सघर्ष हुआ। ऐसी विषम स्थिति मे कनक बडगूजर ने विनय किया कि 'हे पृथ्वीराज, समस्त परिस्थिति का मूल्याकन करे। जीवनरक्षा कर सकना अब कठिन है। इसलिए आप स्वय तो घर पहुँचिये। हम लोग रविमण्डल का भेदन करे। प्राणो के लिए सत्य नही छोडेगे, चाहे हमारा तुण्ड खण्ड-खण्ड हो जाय। हम अपने मुण्ड से हर-हार को मण्डित करेगे। हम लोग तो स्वामी के लाज पक मे आरुढ है।' सभी सामन्त अपने स्वामी के रक्षार्थ रण मे जूझ गये।[१] म्लेच्छ भी अपने स्वामी जयचन्द के प्रति 'स्वामिता चित्तषी' है।[२] 'ढोला मारू रा दूहा' मे ऊँट के माध्यम से स्वामिभक्त के प्रति आस्था द्रष्टव्य है। मालवणी के लाख मना करने पर कि 'मेरे स्वामी ढोला को सौत के घर न लेजा' ऊँट ने कहा कि 'यह मेरे स्वामी का काम है। यदि इसे न करूँ तो मैं ऊँटनी के पेट मे नही लेटा। मुझे पाप लगेगा।'[३]

वर्ण रत्नाकर[४] के नायक वणना प्रसग मे दया, दान, दाक्षिण्य, विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इगित ज्ञान, कौशल, सौहृद, उपचार, धर्म्मज्ञता, अनालस्य,

---

१ पृ० ६। २ पृ० ७ १५ १५। ३ ढोला० ३१५-३२३। ४ २.१६ क।

साहस संवेच, सदाचार, सन्तोष नानिनान, सनापाटव ऊह आपाह विनक्क छिद्रान्वेषणादि शिष्ट धम का उल्लेख है ।

यह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि भ ग्नाय नतिक गुण बाह्य निर्देशा म सचालित नही है । यह किसा शारीरिक आर्थिक एव मनारजन सम्बन्ध उपलब्धियो मे भी अनुप्रेरित नही ह । इनके मूल मे सस्कार नथा आन्तरिक प्रणा मनिय है । वस्तुत ये स्वत धार्मिक मूल्य स्वरूप ह ।

धर्म सदाचार रूप मे—

'जिन दत्त ने जिनन्द्र भगवान स धम के विषय मे प्रश्न किया । मुनीश्वर न धम का रहस्य प्रकट करते हुये उसका जो विस्तृत वणन किया है उसस ज्ञान हाता है कि हिन्दू धम से सम्बद्ध यज्ञ परम्परा की प्रतिक्रिया मे श्रमण सस्कृति न आचार मूलक धम द्वारा समाज की स्थिरता तथा शान्ति पर अप्रतिम प्रभाव डाला । सामान्यत , उपनिषदो ने धम के आचार मूलक रूप पर विशष बल दिया है । डा० पाडुरग वामन काणे के अनुसार धमशास्त्रो मे धम का ता पय किसी सम्प्रदाय अथवा मत से नही, अपितु जीवन की विशिष्ट आचार पद्धति से है जिसके द्वारा मनुष्य व्यक्ति एव समाज क सदस्य के रूप मे अपन कत्तव्यो का पालन करता हुआ अभाप्सित लक्ष्य को प्राप्त कर सक । गौतम धर्मसूत्र मे दया, शान्ति, अनसूया, शौच मङ्गल, अकापण्य एव अस्पृहा से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलाक का अधिकारी बताया गया है चाह वह चालीस सस्कारो से रहित ही क्यो न हो । इसके प्रतिकूल आचार धर्म से रहित चालीस सस्कारो से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक की प्राप्ति नहीं कर सकता, ऐसा उल्लिखित है ।[2] पुराणो ने भी धर्म को सार्वजनीन अनुपालनीय आचार के रूप मे प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है । लक्ष्मीधर (१२वी शती ई०) का कथन है कि आचार ही धर्म का विनिश्चय करता है ।

रामानन्द ने 'रहनी' मे तन और मन दोनो की शुद्धता पर बल दिया है । जिस हृदय मे दया नही वह उजाड है । दया ही हृदय को बसाती है । ज्ञानी के लिए शीलवान होना आवश्यक है । कृपाण को म्यान सुरक्षित रखता है, उस पर जग नही लगने देता, उसी प्रकार शील, ज्ञान की चमक को बनाये रखता है । यदि किसी

१ हिस्ट्री आव धमशास्त्र, जिल्द २ भाग १, पृ० ७ उमेश मिश्र कमेमोरेशन, पृ० ३१८ से उद्धृत । २ गो० ध० सू० ८ २४-२६ ।

३ कृ० क० ब्रह्मचारी काड, जिल्द १, पृ० ५ ।

उदात्त मानव मूल्यो का स्थापित करने की प्रक्रिया से ही उच्च नैतिक धर्म की प्रतिष्ठा सम्भव हा सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस प्रकार के नतिक धर्म के आधार पर दीघकालीन स्वणिम इतिहास के साथ उन्नत समाज भी सुस्थिर हो सके। कीर्तिसिंह तथा वीरसिंह द्वारा राज्य वापस लेने के नैतिकतापूण निणय से यह स्पष्ट होता है कि मानव प्रकृति एव बाह्य परिस्थितियो से बाध्य होकर मात्र उनसे पूणतया परिचालित नही है। वे नैतिक उत्तरदायित्व का गौरवपूण ढग से सम्पादन कर सकने मे सक्षम है। विद्यापति का धार्मिक क्षेत्र मे यह महत्वपूण योगदान है कि उन्होने नैतिक मान्यताओ का सयोजन कर उसके सामासिक रूप को ऐसे समय प्रस्तुत किया जबकि भारतीय सस्कृति का नवागत इस्लामी विचारधारा से मेल हो रहा था। विदेशी नैतिकता के समक्ष उदात्त भारतीय नतिक प्रतिमानो का उपस्थित कर उसे जीवन्त रूप मे प्रस्तुत करने का सामाजिक अपेक्षा थी।

युग के विशेष स दभ मे नैतिक गुण के रूप मे स्वामिभक्ति का विकास हुआ है। पृथ्वीराज क्षण भर रणक्षेत्र मे अपन सामन्तो को रोक कर नगर प्रदक्षिणा मे गय। इधर शत्रुओ की ओर से युद्ध की रणभेरी बजी, आक्रमण हुआ। सन्नाह से सुसज्जित अश्व सेना ऐसी प्रतीत होती थी मानो अकाल प्रस्तुत करने वाली टिड्डिया का सघन प्रवाह पवत से छूट पडा हो। पृथ्वीराज के आदेश का स्मरण कर सामन्त गण अपने उत्साह एव अनुशासन पर दृढ थे। वे परस्पर कह रहे थे कि 'स्वामी का वचन किसी भी दशा मे भग न होने पावे।' पृथ्वीराज के आगमन पर भयकर सघर्ष हुआ। ऐसी विषम स्थिति मे कनक बडगूजर ने विनय किया कि 'हे पृथ्वीराज, समस्त परिस्थिति का मूल्याकन करे। जीवनरक्षा कर सकना अब कठिन है। इसलिए आप स्वय तो घर पहुँचिये। हम लोग रविमण्डल का भेदन करे। प्राणो के लिए सत्य नही छोडेगे, चाहे हमारा तुण्ड खण्ड-खण्ड हो जाय। हम अपने मुण्ड से हर-हार को मण्डित करेगे। हम लोग तो स्वामी के लाज पक मे आरुढ है।' सभी सामन्त अपने स्वामी के रक्षार्थ रण मे जूझ गये।[1] म्लेच्छ भी अपने स्वामी जयचन्द के प्रति 'स्वामिता चित्तषी' है।[2] 'ढोला मारू रा दूहा' मे ऊँट के माध्यम से स्वामिभक्त के प्रति आस्था द्रष्टव्य है। मालवणी के लाख मना करने पर कि 'मेरे स्वामी ढोला को सौत के घर न लेजा' ऊँट ने कहा कि 'यह मेरे स्वामी का काम है। यदि इसे न करूँ तो मैं ऊँटनी के पेट मे नही लेटा। मुझे पाप लगेगा।'[3]

वर्ण रत्नाकर[4] के नायक वणना प्रसग मे दया, दान, दाक्षिण्य, विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इगित ज्ञान, कौशल, सौहृद, उपचार, धर्म्मज्ञता, अनालस्य,

---

१ पृ० ६। २ पृ० ७१५ १५। ३ ढोला० ३१५-३२३। ४ २:१६ क।

साहस, सत्वच, सदाचार, सन्तोष न।निनान, सनापाटव ज्ञ आपाह विनक्क छिद्रान्वषणादि शिष्ट धर्म का उल्लेख है।

यह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि नारनाय नतिक गुण बाह्य निर्देशो मे मचालित नही है। यह किसी शारीरिक आर्थिक एव मनारजन सम्बन्धी उपलब्धियो से भी अनुप्रेरित नही है। इनके मूल मे सस्कार तथा आन्तरिक प्रेरणा सक्रिय है। वस्तुत ये स्वत धार्मिक मूल्य स्वरूप है।

धम सदाचार रूप मे—

'जिन दत्त ने जिनन्द्र भगवान से धम के विषय म प्रश्न किया। मुनीश्वर न धम का रहस्य प्रकट करते हुये उसका जो विस्तृत वणन किया है उसम ज्ञात होता है कि हिन्दू धम से सम्बद्ध यज्ञ परम्परा की प्रतिक्रिया मे श्रमण सस्कृति न आचार मूलक धर्म द्वारा समाज की स्थिरता तथा शान्ति पर अप्रतिम प्रभाव डाला। सामान्यत, उपनिषदो ने धम के आचार मूलक रूप पर विशेष बल दिया है। डा० पाडुरग वामन काणे के अनुसार धमशास्त्रो मे धम का तात्पय किसी सम्प्रदाय अथवा मत से नही, अपितु जीवन की विशिष्ट आचार पद्धति से है जिसके द्वारा मनुष्य व्यक्ति एव समाज के सदस्य के रूप मे अपने कर्त्तव्यो का पालन करता हुआ अभीप्सित लक्ष्य को प्राप्त कर सके। गौतम धर्मसूत्र मे दया, शान्ति, अनसूया, शौच मङ्गल, अकापण्य एव अस्पृहा से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक का अधिकारी बताया गया है चाहे वह चालीस सस्कारो से रहित ही क्यो न हो। इसके प्रतिकूल आचार धर्म से रहित चालीस सस्कारो से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक की प्राप्ति नहीं कर सकता, ऐसा उल्लिखित है।[2] पुराणो ने भी धर्म को सार्वजनीन अनुपालनीय आचार के रूप मे प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है। लक्ष्मीधर (१२वी शती ई०) का कथन है कि आचार ही धर्म का विनिश्चय करता है।

रामानन्द ने 'रहनी' मे तन और मन दोनो की शुद्धता पर बल दिया है। जिस हृदय मे दया नही वह उजाड है। दया हो हृदय को बसाती है। ज्ञानी के लिए शीलवान होना आवश्यक है। कृपाण को म्यान सुरक्षित रखता है, उस पर जग नही लगन देता, उसी प्रकार शील, ज्ञान की चमक को बनाये रखता है। यदि किसी

१ हिस्ट्री आव धमशास्त्र, जिल्द २ भाग १, पृ० ७ उमेश मिश्र कमेमोरेशन, पृ० ३१८ से उद्धृत। २ गो० ध० सू० ८ २४-२६।
३ कृ० क० ब्रह्मचारी काड, जिल्द १, पृ० ५।

कारणवश जग लग भी जाय ता स तोष उमको फिर स चमका देन वाला मसकला ह ।[१]

खुरासान खा, ताना खा तथा रुस्तम खा आदि न शाह शहाबुद्दान की आन पर कहा कि हे अमार, हमारा दीन धम रोजा और रमजान का हे । हमारी पाच नमाजे बेकार हो यदि कल शत्रुआ की आन न छुडा द । तुम्हारे हाथ मे हम हाथ दे रहे है हम न दरोग (झूठ) कहेगे और न दोजख मे पडेगे ।[२] कीर्तिसिंह ने जानपुर मे देखा कि तुर्को मे कोई कलमा पढ रहा था तो कोई कलामा, कोई कसीदे काढ रहा था तो कोई मसीद भर रहा था अथवा किताब पढ रहा था ।[३] खुदा ने एक उज्ज्वल पुरुष, मुहम्मद, को बनाया जिसका नाम न लेने से अच्छा मर जाना है । फिर उमको बनाया जिसे उसन अपना कलमा मुनाकर अपने धर्म पथ 'इस्लाम' पर लगा दिया । उम धम पथ पर आचरण कर सद्गति तथा बडाई प्राप्त की जा सकती है । इसी पृष्ठभूमि मे पाप पुण्य की तालिका बनेगी । देव उनका समस्त लेखा मॉगेगा और उसी के अनुसार हमारे अपराधो का भार वह सँभालेगा । अबूबकर, उमर, उसमान और अली ने जब मुहम्मद से धर्मोपदेश ग्रहण किया तो उ होने इन चारो को इस्लाम का धमग्रन्थ दिया । उन्होने जैसा सुना, वैसा वे कहते आये तथा उसी पर प्रतीति की । इन चारो के अतिरिक्त पाचवा किसी को नही जाना जाता । मात्र उसी ने पन्ना और धम-माग का शोध कर पाया जिनको उ होने पढाया । धर्म मार्ग पर चलने से पाप नष्ट हाता है ।'

आचार सहिता का उद्देश्य व्यक्तिगत भौति लाभ की अपेक्षा आ तरिक शुचिता अधिक है जिससे आध्यात्मिक उत्कर्ष मे सहायता मिलती हे । रामानन्द के अनुसार शरीर मे व्याप्त परमतत्व की अनुभूति के लिए शरीर का पवित्र होना आवश्यक है । शरीर अन्न से निर्मित है । इसकी शुद्धता के लिए सात्विक आहार चाहिए । निकृष्ट आहार से तामसी हो जाता है और जीव के प्रकाशस्वरूप ज्ञान को आवृत्त कर देता है । लहसुन, प्याज जो स्वभाव से ही तीक्ष्ण, उत्तेजक तथा तामस प्रकृति के है शरीर के मल को बढाते हैं । किसी भी आत्मा को दुखाकर अन्याय तथा अत्याचार द्वारा अपहृत अन्न और द्रव्य मे दुखी आत्मा का अभिशाप सन्निहित रहता है । अस्तु ये त्याज्य हैं । जूठा, बासी, बालयुक्त एव अन्य कारण से जो अ न शुद्धता से स्खलित हो गया है अखाद्य हे । इनको अखाद्य समझकर ग्रहण न करना 'विवेक' कहलाता है ।

---

१ रामा० पृ० ६, ति० ८, ६ । २ पृ० १९८ ।
३ की० २ १७१-१७३ । ४ चा० ६-६ ।

जयचन्द की प्रशस्ति मे उल्लिखित है कि वह राजसूय यज्ञ सम्पादन हेतु देव-तुल्य आचरण करन लगा।[१] सुल्तान इब्राहीम के साथ रण प्रयाण मे कीर्तिसिंह ने विषम कठिनाइयो के बावजूद अपने आचार की रक्षा की—तुलुक सगे सचार परम कट्ठे आचार रख्खिअ। किन्तु ऐसा आभास मिलता है कि यहा आचार के वाह्य पक्ष पर अधिक ध्यान है।

प्रबन्ध चिन्तामणि' मे बताया गया है कि भीमेश्वर क नगर में बकुला देवे नामक एक वेश्या थी। उसके रूप तथा गुण की बहुत चर्चा थी। उसकी शील मर्यादा कुल ब धुओ मे भी अधिक कही जाती थी। यह सुनकर राजा ने उसकी परीक्षा हेतु सवालाख मूल्य की एक कटारी अपनी रक्षिता बनाने के अभिप्राय से उसके पास भेजा। सयाग से इसी रात मे दो वष के लिए विग्रह कायवश राजा को बाहर मालव देश मे रहना पडा। किन्तु बकुला देवी राजा द्वारा प्रेषित उक्त चिह्न के परिणाम-स्वरूप अन्य समस्त पुरुषो को त्याग कर शील धर्म का पालन करती रही। लौटने पर राजा ने जन साधारण द्वारा बकुला देवी की शील प्रवृत्ति की ख्याति सुनकर उसे ससम्मान अपने अन्त पुर मे स्थान दिया। राजमती अपने प्रवासी पति वीसलदेव स निवेदन करती है कि—'हे राजा, तुम ज्ञान की बाते जानते हो। यह तुम्हे ज्ञात है कि हमे दो शरीर और एक प्राण मिला है। तुम दूसरे शरीर को दूर रह कर क्यो छोड़ते हो? म कुलीन कन्या हूँ। शील की जजीर मे बँधी हूँ। अस्तु यौवन को चोर की भाति छिपाकर रखती हूँ। पग-पग पर इसका अपराध तुम्हे लग रहा है। इस जन्म मे तुम उलगाने-प्रवासी हुये हो, तो अपर जन्म मे तुम काले सर्प होगे।[४] इस सन्दर्भ मे प्रबन्ध चिन्तामणि'[५] का एक अन्य घटना उल्लेखनीय है कि कान्यकुब्ज देश के 'कल्याण कटक' नामक राजधानी के अधिपति ने एक स्त्री के शीलभग करने के अपराध मे हाथ कटाकर तापसी दीक्षा ग्रहण कर ली। वस्तुत यह, शतपथ ब्राह्मण,[६] गौतम सूत्र[७] महाभारत,[८] मनुस्मृति[९] तथा ब्रह्मवैवत पुराण[१०] आदि धर्म ग्रन्थो द्वारा नारी के शील विषयक इस निर्देश का प्रभावकारी रूप परिलक्षित होता है कि स्त्री के लिए पातिव्रत ही एक मात्र प्रधान तथा सनातन धर्म है। यही कारण है कि सेठ हृप्पा की सासारिक सुखापभोगवश शीलभ्रष्टा स्त्रिया घोर नरक गयी[११] और पति वियुक्ता विमलमती ने शील का एकमात्र सहारा लेने के अतिरिक्त कुछ सोचा ही नही।[१२] परिणामस्वरूप

---

१ पृ० २ ३ ५९। २ की० ३ २५-१०५। ३ ३ १२६। ४ वीरा० ६२।
५ १ १४। ६ ४ १ ५ ७। ७ १ ७ २। ८ स० १३ २ १८।
९ ९ ६७। १० १ ६ ६३-६७। ११ जिण० ४२७। १२ जिण० १५८।

उसका पति जिणदत्त अपनी विपत्ति मे पत्नी के शीलधर्म द्वारा अपनी रक्षा क रहस्य का अनुभव करता है।[१] अम्बिका देवी के शील तथा पुण्य प्रभाव से सूखे हुए तालाब मे जल भर आया और शुष्क आम्र वृक्ष मे फल लग गए।[२]

धम उपासना रूप मे—

साम्प्रदायिक कर्मकाड की दृष्टि से आलोच्यकाल मे स्वामी रामानन्द रचित 'रामार्चन-पद्धति' और 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' महत्वपूण ग्रथ हे। इनके अनुसार जीवन यापन के लिए व्यक्ति को विभिन्न व्यापार एव व्यवसाय करने पडते है, यथा हल जोतना खाना पकाना, जिनसे अनजाने मे ही जाव हत्या हो जाती हे तथा जिसका निराकरण सम्भव नही हे। इन दोषो को 'सूना दोष' कहत हे। इनके प्रायश्चित स्वरूप व्यक्ति का वेद-पाठ, होम, अतिथि सत्कार, पितृ तपण तथा बलि इन पच-महायज्ञो का करना विधेय है। पूजा क सोलह उपचार उल्लिखित है—आवाहन, आसन, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य ताम्बूल, प्रदक्षिणा और विसजन। प्रपन्नता की याचना करते हुए राम के चरणा मे साष्टाग प्रणाम करना विधेय है, जिसमे दोनो पाव, दोनो घुटने, छाती सिर और दानो भुजाए पृथ्वी का स्पश करती रहे। यह मात्र शारीरिक अभ्यास नही, अपितु इसमे दृष्टि, मन तथा वचन का भक्ति विषयक सहकार अपेक्षित है।'

'नित्य नमित्तिक कार्यो से निवृत्त होकर प्रात साय तथा मध्याह्न तीनो काला म रामाचन क साथ-साथ हनुमान, गरुण आदि की भी पूजा सम्पन्न की जाती है। इस पूजा का सक्षिप्त विधान है, किन्तु रामाचन पद्धति मे कमकाड की वास्तविक विधि, प्रात काल के जागरण से रात्रि के शयन पयन्त तक, विस्तृत रूप मे वर्णित है। अर्चना तथा जीवन वृत्ति के अनन्तर अवकाश के क्षण मे रामायण, महाभारत, वेदान्त सूत्र पर रामानन्द कृत भाष्य, श्री मद्भागवत तथा द्रविड भक्त आलवारो की रचनाओ के पाठ की व्यवस्था है। यदि स्वय न पढ सके तो दूसरे के माध्यम से इन पवित्र ग्रथो का श्रवण करना चाहिए। यहा वष पयन्त २४ एकादशी, चैत्र शुक्ल नवमी, कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, हनुमज्जयन्ती, वैशाख शुक्ल चतुर्दशी, नरसिंहावतार, भादो की कृष्णाष्टमी, वामन जयन्ती और वैशाख शुक्ल नवमी को सीता जन्म के रूप मे व्रतोत्सव सम्पन्न करने का विधान है। रथ-यात्रा आदि जन समाज मे प्रचलित शास्त्र विहित अन्य व्रतोत्सव भी मानना चाहिए। इनकी तिथिया बिद्ध नही, शुद्ध हो। रामानन्दी सम्प्रदाय विशेष के लिए पच-सस्कार और षडक्षर मन्त्र का विधान

१ जिण० २५४। २ अम्बिका देवी पूर्व भव वर्णन तलहारा ६।

है। राम का वास्तविक पूजन उनके विग्रह अर्चा अथवा मूर्ति के ध्यान द्वारा मानना चाहिये मूर्ति के रूप मे भगवान अवतार है।[1]

धर्म की धारणा के अन्तर्गत प्रतिष्ठापित अनुष्ठान से सामान्य मानव जीवन अपना विभिन्न मनोकामनाओ, हितो एव आवश्यकताओ का पूर्ति मे प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त करता है। राजमती अपन स्वामी स मिलने के लिये जपमाली लेकर जाप करता है।[2] पडित। न बताया कि 'यदि कोइ भी हवन जप और अगियार कराए, देवता का स्पश कर उसे हाथ जोडकर मनाए अ र माथा पकडकर देवता के पैरो मे लगाए तो हे चाँदा वह सूय का सा सुन्दर वर प्राप्त कर। अत सोमनाथ का पूजा सामग्री लीजिए ओर अक्षत फूल तथा माला मे उनकी अचना कीजिए। चादा ने वैसा कर अपनी मनोकामना पूरा की।[4] सारे देश के लोगो न सिन्दूर, फूल और ताम्बूल स सोमनाथ की पूजा सम्पन्न की।[5] चादा ने अपन पिता के समक्ष यह प्रकट किया कि 'जब तुम राव रूपचन्द से युद्ध कर रहे थे तो मने देवता पर फूल चढाया था और उनके पैरो से लग, हाथ जोडकर कामना की थी कि मेर पिता रण मे विजय प्राप्त करे। वह वाचा पूरी हुइ, अब अन्य पूजन का आयोजन होना चाहिये। सेठ जीवदेव पुत्र प्राप्तिके लिए एक थाल मे, जल, चन्दन अक्षत, उत्तम पुष्प, स्पश रहित निमल नैवेद्य दीपक, अगर, धूप और फल लेकर मन्दिर मे गया और जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दशन कर अष्ट विधि से पूजन करने लगा।[7] बत्तीस लक्षणो एव कला स युक्त तथा कुल का शोभा बढाने वाला जिणदत्त उसको पुत्र रूप मे प्राप्त हुआ। वासू ने ढोला से स्पष्ट किया कि प्रेम करने के लिए मारवणी सदृश प्रेयसी शिव की आराधना अथवा हिमालय मे गलने से ही मिल सकती है।[8] प्रिय मिलन के अवसर पर नायिका के इस कथन से जप के प्रति गम्भीर आस्था प्रकट होती है कि 'जुग दश जपल आजे भेलि सीधि।[9] इन अनुष्ठानो से उपासक की भावना इन्द्रिय ग्राह्य तथा साकार रूप मे अभिव्यक्त हुई है। कतिपय दाशनिको को छोडकर ईश्वर के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करने के लिए लोगो ने प्रतीक रूप मे किसी माध्यम को अवश्य स्थिर कर लिया हे जिसस विस्तृत एव परम वास्तविकता उद्बुद्ध होकर उपास्य के साथ मनोवैज्ञानिक सान्निद्ध की क्षमता उत्पन्न कर लेती है। अव्यक्त का ध्यान जिनके लिए दुरूह है वे अपनी प्रकृति के अनुरूप इष्ट के किसी अभीष्ट रूप का निर्वाचन कर अपने

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पी० द० बडथ्वाल, पृ० १६-२०।
२ वी० ९१। ३ चादा० २४४। ४ वही २४८। ५ वही, २४४
६ वही, १४१। ७ जिण० ५३। ८ ढोमा० ४७७। ९ विप० १ १४

कल्याणार्थ उस आन्तरिक सम्बन्ध का अनुभव करते हैं जो लोकोत्तर सत्य एवं मानवीय आत्मा के मध्य विद्यमान है।

'प्रद्युम्न चरित' में चैत्यालय की अष्टविधि पूजा,[1] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में हेमाचन्द्राचार्य द्वारा शिव पूजन दीक्षाविधि प्रसंग में वर्णित पंचोपचार विधि[2] तथा 'वर्ण रत्नाकर' में उपलब्ध पूजा के विस्तृत उपकरणों की अपूर्ण सूची[3] से कर्मकाण्ड के विकास, प्रसार तथा लोकप्रियता पर प्रत्यक्ष प्रकाश पड़ता है। 'गोबर नगर के चारों ओर मठ और देवालय निर्मित थे। उनमें खूना मथो तपस्वी, भागवत और मसवासी छिगा छाई रहती थी। वहाँ चार सहस्र योगी गाते, सींगी बजाते और भस्म चढ़ाते रहते थे। सिद्ध पुरुष एवं गुणी उसे देखकर लुब्ध रहते थे। कहने-सुनने से ऐसा जान पड़ता था कि माना चलकर उसे देख आऊँ।'[4] सेठ जीगदेव का विश्वास था कि वह उपासकों को आहार देता है जिससे उसका अनिष्ट न होगा।[5] अनुष्ठानों के प्रति इतनी आसक्ति थी कि सेना का चादा के लिए मसवासी (कल्पवासी) कहना स्वीकार नहीं था।[6]

पूजा करना चाहे जितना लोकप्रिय तथा बहुमान्य हो किन्तु हिन्दू धर्म में उपासना के लिए उसे सर्वोत्तम माध्यम नहीं माना गया है। परमात्मा का तादात्म्य ही सर्वोत्तम है। इस दृष्टि से ध्यान द्वितीय, जप पाठ तृतीय तथा बाह्य पूजा चतुर्थ स्थान के अधिकारी हैं।

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यम
स्तुतिजपोऽधमोभावो बाह्य पूजाऽधमाधम।
पूजा कोटि सम स्तोत्र स्तोत्रकोटिसमो जप
जप कोटिसम ध्यान ध्यानकोटि समोलय।

ध्यान साधना में स्वामी रामानन्द के अनुसार 'तन और मन दोनों के योग अपेक्षित है। तन का योग हठयोग है। यह मूलाधार को ब्रह्मरन्ध्र से जोड़ने वाला मार्ग है। इसकी प्राथमिक आवश्यकता संयम की है। काम भावना मन को सर्वाधिक चञ्चल बनाती है। सांसारिक कामनाएँ तथा विषय एषणाएँ इसी के रूप हैं। इनसे त्राण पाना महत्वपूर्ण है। कबीर ने जिज्ञासा व्यक्त की कि 'हे गुरु बन में जाता हूँ तो भूख और नगर में रहता हूँ तो माया सताती है। कंदर्प की मार दुःसह है। जल (वीर्य) से निर्मित इस काया को किस प्रकार सींचूँ।' स्वामी

---

१ ६ ६५९-६०। २ ४ १८८। ३ ३ २५ ख। ४ चादा २०।
५ जिण० ४६४। ६ चादा० २५३।

रामानन्द न सक्षेप मे स्पष्ट किया कि ह कबीर वज्र-कोपीन बाधा ।[१] मन शुक्र के वश मे है और बिन्दु अथवा जल पवन के वश म है । पवन के ही सयाग से आत्मा पुरुष जोव कहलाता है । स्वय ता आत्मा अविनश्वर है,[२] अस्तु आसन प्राणाय म द्वारा मन को वश मे करना चाहिए । 'योग चिन्तामणि' म रामानन्द न सिद्धासन मे बैठकर प्राणायाम तथा भ्रूमध्य दृष्टि क अभ्यास करन का आदश दिया है । प्रमित दश जा म सास का प्रभाव नास। रन्ध्रा से बाहर बारह अगुल तक आता है, इसलिए इसका द्वादश पवन कहा गया है । द्वादश पवन का पीकर घर की ओर उल्ट सिर मे चढान का व्यवस्था है ।[५] ध्यान योग मे आखो का बडा मह व है । भ्रूमध्य दृष्टि [illegible] का अभ्यास है, जिसमे दाना भौहो के मध्य के स्थान पर दृष्टि को केद्रित करना पडता है । रामान द न इन्ही दोनो आखा का बाण बनाकर, भौहो को उलट कर धनुष खीचना कहा है । उन्होने स्पष्ट व्यक्त किया है कि राम आखा मे रमता है, किन्तु कोई इसक मम नही जानता ।[६] इस प्रकार योग की प्रकिया से मनसा रूप कुडलिनी जिसे अन्यत्र महाशक्ति भी कहा गया है[७] सुषुम्ना म प्रवेश कर शू य मे निमग्न हो जायगी । परन्तु भूले भटके जटाधारी साधु शू य सरोवर की मछली न बन कर तीर्थों के पानी का मछली बनत हे । रामान द ने इस सदभ मे कबीर का उपदेश दिया है कि—योग युक्ति की लेजुरा (रस्सा) आर आसनो की तलया बना कर हे माली, पुष्पो मे और पुष्प द्रा स सजा हुई बाटिका का सिचन करा ।[८] राग राम आदि से ऊध्वगामी [illegible]स् का पवन ब्रह्मरध्र मे सोख लेता है । इस स्थिति मे नाद बिन्दु का ग्रन्थि म मन बँध जाता हे और उसकी चचलता मिट जाती है,[९] भ्रमरगुहा—शू य मडल—म निवास मिल जाता है तथा पचेन्द्रिया वश मे हो जाती है । इडा-पिगला सुषुम्ना म च द्र सूय के एक घर मे[११] मिल जान से मन उपराम हो जाता है, जगत् के ऊपर विजय-लाभ हो जाता है तथा फिर जानने के लिए कुछ शेष नही रह जाता । शू य मडल म शब्द प्रकट होता है । गैबी बाजा अनाहत नाद,[१३] बजने लगता है ।[१४] कुणकुणी, रुणरुणी, झुणझुणा ध्वनि करता हुआ[१५] यह शब्द राम-राम मे परिव्याप्त हो जाता है ।[१६] शब्द ही आत्मज्योति को वेष्टित किए रहता है, शब्द ही शब्द के द्वारा उसे निवृत कर

१ ज्ञान तिलक, ४२-४३ । २ वही, १९ । वही ५-३९ ।
४ ९-१२ । ५ वही, १० । ६ वही, १८ । ७ ज्ञानतिलक ३५ ।
८ वही, २१ । ९ वही, ४० । १० वही, ३६ । ११ वही, ११ ।
१२ वही, ३७ । १३ योग चितामणि १२ । १४ ज्ञानतिलक २७ ।
१५ रामरक्षा १६ । १६ वही, ११ ।

हमारे सम्मुख प्रकाशमान कर सकता है।[1] इस अनुभूति की प्राप्ति करने पर अमृत पान के द्वारा साधक अमरत्व प्राप्त करता है, क्योंकि योग से चित्त के निमग्न हो जाने पर अपने अन्दर ही ज्ञानात्मा के दर्शन होने लगते हैं।[2] शून्य मंडल में स्थित होकर मोह की निद्रा में जागरूक होने वाले लोग संसार में विरल हैं।[3] रामरक्षा में चाचरी भूचरी, खेचरी, अगोचरी तथा उन्मनी इन पांच मुद्राओं का उल्लेख है। उन्मनी के संबंध में कहा है कि इसमें सब इन्द्रियां शान्त हो जाती हैं और मन को विराम मिल जाता है।[4] यह नव्य प्रकाश से पूर्ण अवस्था है।[5] उन्मनी दृष्टि से ब्रह्मभाव का दर्शन होता है।[6] इस प्रकार कायागढ के ऊपर विजय प्राप्त होती है। काया रूप नगर में हृदय रूपी घर तथा महाशक्ति का रनिवास बना कर[7] निर्मल मन ही निरंजन प्रभु के रूप में विराजमान होकर पवन रूप प्रधान-मंत्री के सहकार से पंचेन्द्रिय रूप प्रजा पर न्यायनिष्ठ[8] शासन करता है।[9] स्वयं वज्र की अभेद्य कोठरी में सुरक्षित बैठा हुआ वह वज्र दण्ड और वज्र खड्ग से काल को मारता है।[10] निद्राकाल में काल निवास करता है।[11] योगी को मायारूप निद्रा नहीं व्याप पाती। वह सदैव काल से सचेत रहता है। जिसे लोग जागृत कहते हैं, उसमें वह सोता है अर्थात् माया-भोग की ओर आंखें बन्द किये रहता है, किन्तु जिसे लोग सुषुप्ति कहते हैं, उसमें वह जागता रहता है, सजग रहता है कि माया उसके हृदय में प्रवेश न कर जाय। एक प्रकार से वह सदा सोता और सदा जागता रहता है।[12] इसलिये योगी से काल डरता है।[13] वह उसके वज्र के समक्ष नहीं आता।

रामानन्द के अभिमत में तन का योग मन के योग से रहित होने पर छूँछा और निष्फल है। लुंचित (जिनके बाल नुचे हों), मुञ्चित जैन साधु—जिन्होंने घरबार त्याग दिया हो—नागा—जो वस्त्र नहीं पहनते तथा मौन धारण करने वाले बाह्य साधना में संलग्न साधुजन अपना जीवन व्यर्थ व्यतीत करते हैं।[14] इसी प्रकार एकादशी व्रत, रोजा, तीर्थाटन तथा वेद-कुरान पढना सब निष्फल है।[15] पढने गुनने मात्र में कुछ नहीं है, सारतत्व अन्तःकरण की शुचिता का होना है। तन तथा मन, बाह्य तथा अंतर दोनों पक्ष से साधना करना अपेक्षित है। 'ज्ञान लीला' में रामानन्द ने

---

१ ज्ञानतिलक १०। २ वही, १२। ३ वही, ४०। ४ रामरक्षा २०।
५ योगचिंतामणि, १६। ६ रामरक्षा १५। ७ ज्ञानतिलक, ३५।
८ योग चिन्तामणि, ६। ९ ज्ञानतिलक ७-८। १० रामरक्षा, ८।
११ ज्ञानतिलक, १०। १२ वही ३७ ३८। १३ वही ७।
१४ वही, ३। १५ वही, ५० ५२। १६ वही, २२।

सुमिरन —मन के आन्तरिक प्रयत्न—को महत्वपूर्ण बतलाया है। मनुष्य को सदैव सुरति—स्मृति ईश्वर-चिंतन—मे विभोर रहना चाहिये। उन्होने साधक को सुरति नगर मे भ्रमण करने का उपदेश दिया है। सुरति मे आत्मा का महल और निवास है। उसको वही ढूँढना चाहिये। वह समृद्धिपूर्ण नगर है जिसमे आत्मारूप सम्पत्ति सुलभ हैं। वहा का मार्ग लम्बा तथा दुरूह है।[1] शरीर मे सुरति सुरति मे आत्मा तथा आत्मा मे परमात्मा का दर्शन सुलभ है।[2] भगवान की सुरति तथा उसके अनन्त गुणो का स्मृति द्वारा आत्म तत्व तक सप्रेम पहुँचने वाली उलटी यात्रा सम्भव है। साधक के लिये ब्रह्म तथा माया की ग्रन्थि जगज्जाल बन्धन नही अपितु प्रेम-पाश बन जाती है। इसी प्रेमनद का परमात्मा की ओर उलटा प्रवाह सुरति है। सुरति रूप प्रेम नद, प्रेम सिन्धु अथवा प्रेम सरोवर का कूल निरति है,[4] जिस पर गुप्त तत्व का ध्वज फहराता रहता है।[5] इसमे डुबकी लगाने वाला शुद्ध आत्मा, हंस, निरति—परम प्रेमस्वरूप ब्रह्मानन्द—मे मग्न हो जाता है, जहा उसे निरन्तर शुद्ध प्रेम का आहार उपलब्ध होता है।[6] इस अमृत सुधानिधि का पान करते हुये वह कभी अघाता नही।[7] ऐसा होने पर बाह्य क्रियाये अनावश्यक हो जाती हैं तथा मन स्थिर हो जाता है। रामानन्द ने व्यक्त किया है[8] कि जब उनका चित्त चचल तथा मन पगु हो गया तो घर—अन्तर्यामी ब्रह्म—मे उनका अनुराग हो गया, उसके रंग मे रँग गये और अन्यत्र जाने की इच्छा जाती रही। उन्हे तीर्थो और मन्दिरो मे मात्र जल और पाषाण की अनुभूति होने लगी। ऐसा भी समय था जब स्वय रामानन्द चौवा चदन घिस कर साम्प्रदायिक प्रतीक के रूप मे उसका लेप कर मन्दिर-मन्दिर पूजा करने गये। परन्तु वे अब उस गुरु के प्रति उपकृत हैं जिन्होने उनके समस्त भ्रम का निवारण कर दिया तथा अचनीय ब्रह्म का अभ्यन्तर मे दर्शन करा दिया।'[9]

ध्याननिष्ठ महात्मा यम नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, समाधि, ध्यान, धारणा, बन्ध, मुद्रा, आसन, अन्तर्योग तथा बहिर्योगादि व्यापार समन्वित श्रद्धा का पुत्र, अग्नि का सहोदर, सन्तोष की राशि, सयम का प्रतिबिम्ब, ज्ञान का सखा, ममत्व का शत्रु लोभ का कृतान्त, परमहंस दशापन्न[10], सिद्धि रमणी तथा संयम-श्री के साथ भोग मे लीन हैं।[11] 'वर्णरत्नाकर' की ८४ सिद्ध वर्णना[12] तथा इन्द्रभूति के

१ योग चिंतामणि ८ ६ २ रामरक्षा १८। ३ योग चिन्तामणि १४।
४ ज्ञानतिलक, ६। ५ योग चिंतामणि २०। ६ ज्ञानतिलक १८।
७ पद ४। ८ पद ५। ६ रामानन्द की हिन्दी रचनाये, प्र० सम्पा० ह० प्र० द्विवेदी की भूमिका के आधार पर। १० वर० ५ ५५ क।
११ स्थूलि० २०। १२ ७ ६६ ख-६७ क।

अष्टापद शैल पर चढते समय गौतम स्वामी को १५०० तापस आते दिखाई पडने से इनकी पर्याप्त संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। इन तेज साधकों में रोग निवारण, इच्छानुकूल गमन,[१] आकाश विचरण,[२] पर-काय प्रवेश[३] तथा दिव्यदृष्टि के गुण उपलब्ध है।

'उपासना का सर्वोच्च उपलब्धि तन तथा मन के योग से साधक द्वारा अखंड सम्पूर्णता की अनुभूति है।[५] इस अनुभव का संकेत रामानन्द ने कई प्रकार से किया है। वह तेल एवं बत्ती रहित अखंड झिलमिली ज्योति है।[६] मोतियों की झालर लगी है और हीरों का प्रकाश हो रहा है।[७] हीरे से बिंधी श्वेत स्फटिक मणि ने तीनों लोकों के अंधकार को मिटा दिया है।[८] ज्ञान गुहा बड़ी सुखद है, आनन्द अनहद का सौंदर्य दिखायी देता है, अगम से मिलन होता है और तत्वरूप तरुवर की शीतल छाया में विश्राम की उपलब्धि होती है।[९] उस समय शरीर के समस्त अंग तथा उनके धर्म अपने न रह कर परमात्मा के हो जाते हैं और सारा अस्तित्व उसमें लीन हो जाता है।[१०] वहाँ प्रत्यक्षतः विरोधी धर्म विरोध छोड देते है। सारा अनुभव एकाकार हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ रामाभिमुख होकर प्रत्येक अनुभव का शुद्ध रूप में सुख लेने लगती है। इसीलिये झिलमिली ज्योति रुणकार ध्वनि के रूप में प्रकट होती है और रुणकार ध्वनि झलकती रहती है।[११] शून्यस्थ सहजानुभव में नित्य वसंत का आह्लाद प्राप्त होता है। वहाँ पहुँच कर साधक अन्यत्र जाने की कामना नहीं करता। वहाँ इच्छा का नाम नहीं है। इसलिये इच्छा से उत्पन्न ॐत्रिमूर्ति, चौबीस अवतार पंच तत्व इत्यादि सब विलीन हो जाते है। वहाँ माया का मण्डप नहीं दिखाई देता और वह अखंड आनन्द में विलीन हो जाता है।[१२] इस प्रकार सृजन का गङ्गा के प्रवाह उलट जाने पर, अमृत शोषक सूर्य के सुषुम्ना में विलीन हो जाने पर, साधक को प्रतिबिम्ब रूप से नहीं, बिम्ब रूप से तुर्या में ब्रह्म के साक्षात् दर्शन होते है, अपरोक्षानुभूति होती है[१३] और वह अमृतत्व प्राप्त कर स्वयं ब्रह्म हो जाता है। यह अनुभूति भाषा में अनुभूति पथ में नहीं लायी जा सकती। जो उसे स्वतः अनुभव करता है, वही उसके स्वरूप को जान सकता है।'[१४] ज्ञान, मनोजय, योग, भक्ति तथा

१ प्रचि० ४ १६६-१७०। २ वीरा० १११। ३ प्रचि० ५ २०४।
४ वही, ६। ५ योग चिंतामणि ७। ६ वही, २१।
७ योग चिंतामणि, २३। ८ रामरक्षा १६। ९ ज्ञानतिलक ५८।
१० रामरक्षा १२-१८। ११ हवी, ११। १२ पद ६।
१३ रामरक्षा १८। १४ ज्ञानतिलक १२ रामानन्द की हिंदी रचनाएँ प्र० सम्पा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८, ९ भूमिका।

ण मे आत्मासना के रा । रामानन्द, गौतम स्वामी, जिणदत्त, प्रद्युम्न, शालिभद्र, गोपिया कनकब्रह्म पुज समग कतिपय णवीरा का उपासना की सर्वोच्च स्थिति उपलब्ध हुई है ।

धर्म-दशन—

सामाजिक परम्परा का श्रेष्ठता एव जीवन साधना के सर्वोच्च स्तर आत्म साक्षात्कार की उपलब्धि का प्रमुख श्रेय भारतीय जीवन दर्शन का है जिसमे मानवीय क्रियाओ के समस्त पक्षो के अन्तर्गत आन्तरिक सत्य तथा नियम की अभिव्यक्ति हुई है। तत्त्व के शाश्वत स्वरूप तथा जीवात्मा से उसके सम्बन्ध का अपनी अन्तर्दृष्टि से उन मनीषियो ने स्पष्ट किया है जिन्हे आत्म साक्षात्कार सुलभ हो चुका है। स्वामी रामानन्द ने कहा है कि आत्मा अविनश्वर है। यह खीचने से खिचता, जलाने मे जलता और सुखाने से सूखता नही है। उसका जन्म तथा मरण नही होता। परन्तु माया की ग्रन्थि मे पडकर यह आत्म आवागमन के चक्र मे पड जाता है। आत्मा की चार कलाये है—(१) ऊ म (२) धूरम, (३) ज्योति और (४) उजाला। स्वय रामानन्द ने यह नही बताया है कि ये क्या है। गोरखनाथ आदि योगियो की रचनाओ मे भी इनका उल्लेख है, पर इनका सावनापरक अर्थ स्पष्ट नही है। सम्भवत ये जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तथा तुरीयावस्था जीव की इन चार अवस्थाओ के प्रतीक है।

रामानन्द के अभिमत मे 'तत्व त्रिविध है—ईश्वर, चित्-जीव-और अचित्-माया। परम तत्व मे तीनो निहित हैं। तीनो आनन्द और नित्य है। माया अज्ञा, अचेतना, समस्त विश्व की उत्पादिका, नाना वर्णात्मिका, त्रैगुण्य का घर, महत् आदि पदार्थो और अहकारादि गुणो की प्रसविनी होने पर भी मूल रूप मे अविकृत शुभा, अव्यक्त, व्यापारहीना और परार्थ की साधिका कहा गई है। ईश्वर सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान, अजर अमर, कलुषरहित, सनातन और मन वाणी द्वारा अगम्य है। ईश्वर और माया मे यह अन्तर है कि ईश्वर ज्ञान स्वरूप और माया अज्ञान है। ईश्वर विभु और माया अणु है। ईश्वर माया के मध्य निवास करता है, कूटस्थ है। उसके विभुत्व के प्रदर्शन के लिए माया का होना अपेक्षित है। दोनो विश्व के उत्पादक कहे गये है। माया विश्वयोनि है, बिना उसके ईश्वर सृष्टि नही कर सकता। माया के माध्यम से सृष्टि, नियमन, रक्षण और मनोनुकूल उद्देश्य पूर्ण हो जाने पर ईश्वर उसका सहरण भी

१ रामानन्द ज्ञानतिलक ३६।

२ रामानन्द की हिन्दी रचनाये, प्र० सम्पा०-ह० प्र० द्विवेदी, भूमिका, पृ० ७, ८।

करता है । माया के स्वयं ब्रह्म तत्व मे निहित होने से ब्रह्म विश्व का उपादान कारण है संकल्पमय ईश्वर रूप से निमित्त कारण है और अन्तर्यामी रूप से सहकारी कारण है । ईश्वर जीव तथा माया ब्रह्म की त्रिपाद विभूति और समस्त व्यक्त सृष्टि लीला विभूति है । जीव मे भी ईश्वर के गुण विद्यमान है । वह चित-चेतन ज्ञान शक्ति वाला, ज्ञानानंद स्वरूप तथा स्वयं प्रकाश, एक रस है—आदि, मध्य एवं अवसान रहित नित्य और अजन्मा है । वह इतना सूक्ष्म है कि उसकी कल्पना नही की जा सकती। ईश्वर और उसमे भेद यह है कि ईश्वर प्रभु है और जीव उसके अधीन है । प्रत्येक शरीर मे जीव का निवास है और व्यापक होने से विभु रूप मे प्रत्येक शरीर मे ईश्वर व्याप्त है । मैं अपने कर्मों का करने वाला हूँ इस प्रकार अहंकार करता हुआ बद्ध होने पर जीव शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है । ईश्वर का कर्मों का फल क्लेशादि नही होता । व्यापक होने के कारण वह जीव के कर्मो का साक्षी है । बद्ध, मुक्त और नित्य मुक्त जीव के भेद है । बद्ध वह है जो जन्म लेकर शुभाशुभ कर्मो का फल भोग रहा है । शुभाशुभ कर्मो के फल से मुक्त होकर मरने के अनन्तर जो पुन गर्भ मे नही गया वह मुक्त और जो कभी गर्भ मे गया ही नही वह नित्य मुक्त है । नित्य मुक्त भी दो प्रकार के होते है । एक तो किरीट मुकुट आदि और दूसरे शेष-लक्ष्मण आदि परि-जन । ऐसा ज्ञात होता है कि नित्य मुक्त किरीट, मुकुट कौस्तुभ मणि आदि के रूप मे भगवान का सायुज्य भोगता है । जिस बद्ध जीव को सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है, वह भी इन्ही मे लीन होकर उसे प्राप्त करता है । विश्व की समस्त विभूतियाँ राम की भोगी हुई है, इस मनोवृत्ति के साथ जो उन विभूतियो को भोगता है और राम के ध्यान मे मग्न रहता है[1] राम के गुणो का अनुसंधान करता हुआ उनकी कायिक वाचिक तथा मानसिक सेवा मे तत्पर रहता है[2] आत्मा को छोड कर अन्य पदार्थो को दुखमय समझता है अथवा आत्मानुभूति मे तल्लीन रहता है[3] वह बद्ध जीव भी मुक्त हो जाता है ।'

'यह जगत् रज प्रवर्तित है जिसमे सत्व और तमस का मिश्रण है । जगत के बन्धन से मुक्त होने के लिये रज रहित सत्त्वगुण सम्पन्न होना अपेक्षित है । वस्तुत विरजा नदी मे इह लोक की सीमा तथा उसके अनन्तर वैकुण्ठ की स्थिति है । विरजा को सीमान्त का सिन्धु भी कहा गया है । सफल साधक जीव राम की कृपा से सुषुम्ना नाम्नी मध्य नाडी द्वारा शरीर से बाहर निकल कर क्रमश अर्चिर्लोक, दिन, पक्ष,

१ रामानन्द वैष्णव मताब्ज भास्कर १४२ । २ वही, १४३ ।
३ वही, १४४ ।

माव षडमास तथा सवत्सर लोको से होता हुआ सूय और चन्द्र लोक[1] को पारकर इन लोक के देवताओ द्वारा पूजित हो विरजा नदी मे स्नान कर परमपद वैकुठ मे पहुँच जाता ह । तदनन्तर वहा से पुन नही लोटता ।'

भारतीय दशन की रुचि मानव समुदाय मे हे । दशन क सत्य और जन साधारण के दैनिक जीवन मे घनिष्ट सम्बन्ध है । यह जीव त श्रद्धा के रूप म जीवन मे इस प्रकार घुलमिल गया है कि मनुष्य क मानस को उद्वेलित कर उस चंत य से परिपूण कर देना है और यथेष्ट अवसर पर अपने नैसर्गिक स्वरूप मे स्वत प्रस्फुटित हो जाता है । चादा लोर के प्रथम मिलन पर ग्वालिन चादा ने चरवाहे लोरिक का सच्चे बने रहने के लिए समझाया कि 'ऐ लोरिक मे तुझसे पूछती हूँ कि किस अपनी असत्य-निष्ठ ने तुझे यह बुद्धि दी कि मुझसे प्रेम करने तू यहा आया । तू मुझसे सत्य कह । सत्य से ही सागर मे नाव तिरती है । बिना सत्य के वह डूब जाती है क्योकि उसे थाह नही मिलती । जिसमे सत्य होता है, वह किनारे लग जाता है और सत्य से हीन जल के मध्य मे ही डूबता है । सत्य ही गुण—रस्सी—को खीचकर नाव को तट पर लगाता है । सत्य का सबल होता हे, तो थाह मिल जाती है और बिना सत्य के थाह का स्थल भी गहरा हो जाता है । सत्य ही साथी, सत्य ही सबल और सत्य ही नाव का कणधार है । तू सत्य का आश्रय लेगा तो सृष्टिकर्त्ता तुझे श्रेष्ठ सिद्धि देगा ।'[2] चादा के सपदश पर लारिक कहता हे कि 'दुसर न कोउ जो कर उप गारा । सिरजन हार देहि निस्तारा ।' कयमास की मृत्यु पर उसकी स्त्री कहती हे कि 'जिस जीवन के कारण ही मनुष्य धर्म का पालन करता है और उसके द्वारा मृत्यु को जलाता है, जिस जीवन के कारण ही मनुष्य अर्थोपाजन के साधनादि से चित्त को उबारता है जिस जीवन के कारण ही मनुष्य सब कुछ शत्रु को अर्पित करके भी दुग की रक्षा करता है, जिस जीवन के कारण ही वह भूमि नवग्रह को शाति के लिए सकल्प मे देता है, यदि वह मूल्यवान जीवन है, तो नृपति के बहुतेरे बचनो का भी भय होता है, किन्तु सरोवर सूख गया तो हस-प्राण-सूर्य-भी चला गया और हस प्राण सूय के सिमट कर पख बटोर कर उड जान पर अँधेरा हो जाता है ।[4] इस पर कवि चद ने कयमास की पत्नी को समझाया कि 'मनुष्य माता के गभ मे वास करने क अनन्तर दिन पूरा होने पर जन्म लाभ करता है । एक क्षण वह ससार मे सलग्न होता ह तो दूसरे क्षण वह उससे खिन्न होकर रोता है, एक

१ मिलाइए, गीता ८ २४, छादोग्य ५ १० १ ।   २ चादा० २०५ ।
३ वही, ३२० ।   ४ पृ० ३ ३१ ।

क्षण वह मान हो जाता है तो दूसरे क्षण वह अभागा हँसने लगता है। उसका शरीर विशेष रूप से सवर्धित होता है, किन्तु अन्त मे वह जलाये जाने के डर से डरता है। कच, त्वचा और दांत आदि की झंझट छोड कर और किसी न किसी प्रकार उनसे उबरता है। इसलिए समस्त मान भंग की भावना को छोडकर, क्योकि जो निर्धारित है वह एक क्षण के लिए नही मिटेगा, दूसरे के लिए तू आज नृपति से याचना कर और पति का शव लेकर अपने प्राण को मुक्त करो।'[१] शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज के आत्माभिमान से चिढ कर उसे नेत्र विहीन कर बंदी-गृह मे डाल दिया। किंकर्त्तव्यविमूढ पृथ्वीराज की यातना एवं नैराश्यपूर्ण स्थिति पर कवि चन्द ने कहा कि 'अरे नरेन्द्र अथवा बंधु, पिंड शरीर कच्चा है। उस शरीर मे निवास करने वाला सुर चेतना जीव सच्चा है। जल तेज, समीर, धरा तथा आकाश से निर्मित यह पिंड वृद्धता के जाल मे बँधा हुआ है और काल के मुख मे खेलता रहता है। 'अहं त्वं', 'त्वं त्वं'—'मै तुम हूं', 'तुम तुम हो'—का अजपा जाप और समानता-समभाव-करके तू ब्रह्म मे मिल जा। आज तू यह सोच कर कुछ ऐसा कर कि जिससे तू उबर जा—मुक्त हो जा।'[२] वस्तुत, दार्शनिक विचार मानसिक कौतूहल के निराकरण मात्र नही अपितु जीवन के दु खो मे द्रवीभूत होकर उसके कारण एवं निदान की अनुसंधित्सा से प्रेरित है।

स्वामी रामानन्द के अनुसार 'प्रत्यक्ष तथ्य यह है कि जीव बद्ध दशा मे है। इसके मुक्त होने का प्रधान साधन पराभक्ति है। साक्षी रूप से जो विभु माया बद्ध जीव के कर्मो और फलभोग को देख रहा है उस प्रभु राम के प्रति निष्काम अनुरक्ति ही, उसकी साधिका है। यह नित्य राम स्मरण से उत्पन्न होकर प्रभु से हमारे सान्निध्य स्थापन मे सहायक होती है। यशकीर्तन, चरणवंदना, विधि-विधान से पूजा, दास्य, सख्य भाव तथा आत्म समर्पण आदि से भी ईश्वर से सम्बंध स्थापित किया जा सकता है, किन्तु प्रपत्ति—भगवत्शरण मे अपने आप को समर्पित करना—सर्वोत्तम साधन है।[३]

जीव मुक्ति के साधनो मे भक्ति तथा ज्ञानयोग के सापेक्षिक महत्व का विवेचन कवि विष्णुदास रचित 'सनेह लीला' मे गोपियो तथा उद्धव के माध्यम से हुआ है। इन्द्रिय निग्रह करते हुये ज्ञान के द्वारा परम ब्रह्म के अव्यक्त, अदृश्य तथा शाश्वत स्वरूप का अन्तर्बुद्धि से धारण करने की अपेक्षा गोपियो ने परमेश्वर के सगुण, साकार

१ पृ० ३३२। २ पृ० १२-३८। ३ रामानन्द०, भूमिका, पृ० १२-२५

्व प्रत्य त स्व प के प्रति प्रेमपूवक आत्मसमर्पण कर जा मायता स्थापित करना सरल, बोधगम्य तथा श्रेयस्कर समझा है।

जीव-मुक्ति भावना की भक्ति, ज्ञान तथा कम मूलक समस्त प्रवृत्तिया किस न किसी देव विशेष की ओर उन्मुख है। प्रकृति के शक्तिशाली उपादाना के प्रतीक वैदिक देव वैयक्तिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर क्रमश देव परिवार के रूप म विवेच्य वाडमय मे विकसित दिखाई पडते है। यथा, शिव, पावती, कार्तिकेय तथा गणेश आदि।[१] वैदिक देव परिवार के कीर्तिमान मे भी परिवतन हुआ। वैदिक वाङ्मय म इन्द्र सम्बन्धी जितने मन्त्र हैं उतने अन्य सब देवो के लिए मिलाकर भी नही हैं। अनेक मन्त्रो मे इन्द्र की अकेले प्रार्थना की गई है तथा वह सर्वाधिक सशक्त देव के रूप मे अभिव्यक्त है। पौराणिक युग मे इन्द्र की उपासना प्रमुख नही रही एव उसका स्थान विष्णु तथा शिव को प्राप्त हो गया।

इस युग मे शिव की मान्यता सर्वाधिक परिलक्षित होती है। इनको 'ईस इद' तथा 'देव देवेन' कहा गया है। पुराणो की पृष्ठभूमि मे इन्द्र की पदावनति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु पुराणा की भाति इनके चरित्र को कलुषित नही चित्रित किया गया है। इनका शौय पूण राजसी व्यक्तित्व पूववत् सर्वोच्च दृष्टिगोचर होता है तथा वह इसके आदश रूप मे उद्धृत है। सत्त्व, आत्मदान तथा मध्य मे श्रेष्ठ, कर्मों का शोषण कर मुक्ति ओर आनन्द के प्रदाता देवगण धर्म त्राता तथा प्रतिष्ठापक रूप मे शुभ कर्मों के प्रेरणा स्रोत है। सृष्टि के निर्माता, त्राता, सम्बद्धक तथा सहारक देव गण श्रेष्ठ भोगो को भोगने वाले मानव इच्छा की पूर्तिकर उससे परे भी हैं। नर इच्छा मे सशक्त सकल चराचर का भेदज्ञ तथा कवि, गुणी, रूपवान, सत्कर्त्ता एव पुण्यात्मा योद्धाओ मे आकर्षित ये देव गण पृथ्वी पर अवतार लेने का अभिलाषा से सयुक्त है। इन्ही की कृपा से सफलता सहज सभाव्य होती है। अनिरजित वणन मे कवि का उपमान के लिय इन्ही देवो का माध्यम बनाना पडता है। प्रभुता के लिए इन्द्र, निर्माण के लिए ब्रह्मा, विनाश के लिए शकर, बुद्धि, वाणी एव शुभ के लिए सरस्वती और गणेश, शक्ति के लिए देवी, यमराज के भृत्यो से बचने के लिए गगा, धन के लिये लक्ष्मी

---

१ की० १,१ प्रा० पै० १२०, १२२, २०६।

२ हिन्दू देव परिवार का विकास सम्पूर्णानन्द, पृ० ६८।

३ पृ० १ ३ २१। ४ पृ० २ २५ १, ४ १० १०।

५ पृ० २ ३ ६०, ४ ७ ३ ४ १२ २, ५ ३१ २, ५ ३८ २१-२२, ५ ८८ २, ५ ४७ २ ६ १५ १-२, ८ १० १०-१२, गौतम० ३, ढोमा० ८२, की० २ ६।

क्षण वह मान हो जाता है तो दूसरे क्षण वह अभागा हँसने लगता है। उसका शरीर विशेष रूप से सवर्धित होता है, किन्तु अन्त मे वह जलाये जाने के डर से डरता है। कच, त्वचा और दात आदि की झझट छोड कर धार किसी न किसी प्रकार उनसे उबरता है। इसलिए समस्त मान भग की भावना को छोडकर, क्योकि जो निर्धारित है वह एक क्षण के लिए नही मिटेगा दूसरे के लिए तू आज नृपति से याचना कर और पति का शव लेकर अपने प्राण को मुक्त करो।[1] शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज के आत्माभिमान से चिढ कर उसे नेत्र विहीन कर बन्दी-गृह मे डाल दिया। किंकर्तव्यविमूढ पृथ्वीराज की यातना एव नैराश्यपूर्ण स्थिति पर कवि चन्द ने कहा कि 'अरे नरेन्द्र अथवा बन्धु, पिंड शरीर कच्चा है। उस शरीर मे निवास करने वाला सुर चेतना जीव सच्चा है। जल तेज, समीर, धरा तथा आकाश से निर्मित यह पिंड वृद्धता के जाल मे बँधा हुआ है और काल के मुख मे खेलता रहता है। 'अह त्व', 'त्व त्व'—'मै तुम हूँ', 'तुम तुम हो'—का अजपा जाप और समानता-समभाव-करके तू ब्रह्म मे मिल जा। आज तू यह सोच कर कुछ ऐसा कर कि जिससे तू उबर जा—मुक्त हो जा।'[2] वस्तुत, दार्शनिक विचार मानसिक कौतूहल के निराकरण मात्र नही अपितु जीवन के दुखो मे द्रवीभूत होकर उसके कारण एव निदान की अनुसंधित्सा से प्रेरित है।

स्वामी रामानन्द के अनुसार 'प्रत्यक्ष तथ्य यह है कि जीव बद्ध दशा मे है। इसके मुक्त होने का प्रधान साधन पराभक्ति है। साक्षी रूप से जो विभु माया बद्ध जीव के कर्मो और फलभोग को देख रहा है उस प्रभु राम के प्रति निष्काम अनुरक्ति ही, उसकी साधिका है। यह नित्य राम स्मरण से उत्पन्न होकर प्रभु से हमारे सान्निध्य स्थापन मे सहायक होता है। यशकीर्तन, चरणवन्दना, विधि-विधान से पूजा, दास्य, सख्य भाव तथा आत्म समर्पण आदि से भी ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, किन्तु प्रपत्ति—भगवत्शरण मे अपने आप को समर्पित करना—सर्वोत्तम साधन है।[3]

जीव मुक्ति के साधनो मे भक्ति तथा ज्ञानयोग के सापेक्षिक महत्व का विवेचन कवि विष्णुदास रचित 'सनेह लीला' मे गोपियो तथा उद्धव के माध्यम से हुआ है। इन्द्रिय निग्रह करते हुये ज्ञान के द्वारा परम ब्रह्म के अव्यक्त, अदृश्य तथा शाश्वत स्वरूप का अन्तर्बुद्धि से धारण करने की अपेक्षा गोपियो ने परमेश्वर के सगुण, साकार

१ पृ० ३३२। २ पृ० १२-३८। ३ रामानन्द०, भूमिका, पृ० १२-२५

्व प्रत्यक्ष स्व प के प्रति प्रेमपूवक आत्मसमपण कर आ मीयना स्थापित करना सरल, बोधगम्य तथा श्रेयस्कर समझा ह ।

जीव-मुक्ति भावना की भक्ति, ज्ञान तथा कम मूलक समस्त प्रवृत्तिया किसी न किसी देव विशेष की ओर उन्मुख है। प्रकृति के शक्तिशाली उपादाना के प्रतीक वैदिक देव वैयक्तिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर क्रमश देव परिवार के रूप म विवेच्य वाडमय मे विकसित दिखाई पडते हे। यथा, शिव, पावती, कार्तिकेय तथा गणेश आदि।[१] वैदिक देव परिवार के कीर्तिमान मे भी परिवतन हुआ। वैदिक वाड्मय म इन्द्र सम्बन्धी जितन मन्त्र हैं उतने अन्य सब देवो के लिए मिलाकर भी नही हैं। अनक मन्त्रो मे इन्द्र की अकेले प्रार्थना की गई है तथा वह सर्वाधिक सशक्त देव क रूप मे अभिव्यक्त ह। पौराणिक युग मे इन्द्र की उपासना प्रमुख नही रही एव उसका स्थान विष्णु तथा शिव को प्राप्त हो गया।

इस युग मे शिव की मान्यता सर्वाधिक परिलक्षित होती है। इनको 'ईस इद'[२] तथा 'देव देवेन' कहा गया है। पुराणो की पृष्ठभूमि मे इन्द्र की पदावनति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु पुराणो की भाति इनके चरित्र को कलुषित नही चित्रित किया गया है। इनका शौय पूण राजसी व्यक्तित्व पूववत् सर्वोच्च दृष्टिगोचर होता है तथा वह इसके आदश रूप म उद्धृत है। सत्त्व, आत्मदान तथा भव्य मे श्रेष्ठ, कर्मों का शोषण कर मुक्ति आर आनन्द के प्रदाता देवगण धर्म त्राता तथा प्रतिष्ठापक रूप मे शुभ कर्मों के प्रेरणा स्रोत है। सृष्टि के निर्माता, त्राता, सम्बद्धक तथा सहारक देव गण श्रेष्ठ भोगो को भोगने वाले मानव इच्छा की पूर्तिकर उससे परे भी हैं। नर इच्छा मे सशक्त सकल चराचर का भेदज्ञ तथा कवि, गुणी, रूपवान, सत्कर्त्ता एव पुण्यात्मा योद्धाओ मे आकर्षित ये देव गण पृथ्वी पर अवतार लेन का अभिलाषा मे सयुक्त ह। इन्ही की कृपा से सफलता सहज सभाव्य होती हे। अतिरजित वणन मे कवि को उपमान के लिय इन्ही देवा का माध्यम बनाना पडता हे। प्रभुता के लिए इन्द्र, निर्माण के लिए ब्रह्मा, विनाश के लिए शकर, बुद्धि, वाणी एव शुभ के लिए सरस्वती और गणेश, शक्ति के लिए देवी, यमराज के भृत्यो से बचने के लिए गगा, धन के लिये लक्ष्मी

---

१ की० १,१ प्रा० पै० १२०, १२२, २०६।

२ हिन्दू देव परिवार का विकास सम्पूर्णानन्द, पृ० ८५।

३ पृ० १ ३ २१। ४ पृ० २ २५ १, ४ १० १०।

५ पृ० २ ३ ६०, ४ ७ ३ ४ /२ २, ५ ३१ २, ५ ३८ २१-२२, ५ ८५ २, ५ ४७ २ ६ १५ १-२, ८ /० १०-१२, गौतम० ३, ढोमा० ९२, की० २ ६।

तथा कुबेर, शील के लिये सीता ओर सो दय के लिये कामदेव आदि देवताओ की विभिन्न कार्यो के लिए काव्यगत आवश्यकता पडी हे। इनकी सख्या ३३ करोड, मानी गया[२] है। नये देवताओ मे गणेश की लोकप्रियता एव प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई है।[३] देवा की नामावली सास्कृतिक शब्दकोश मे द्रष्टव्य है।

१ सत्व मे श्रेष्टा इन्द्र—की० १ २५ ८०, आत्मदान मे श्रेष्ठ वलि—की० १ २३ ७२ सेव्य मे श्रेष्ठ शिव—की १ २६-८८, कर्मो का शोषक जिण० १, मुक्तिदाता चडी प्रापै० २ ४४, प्रापै० २ ११६ की० १ ३ १०, गौतम० ३२ जिण ९०, आनन्ददाता कृष्ण प्राप० २ ७१, २ १६५, सनेह० १२६, धर्म उद्धारक एव प्रवाहक जिण० १, शुभ कर्मो के प्रेरक और उत्साहवर्द्धक पृ० २ ३ २८, २ ३ ५६, ६ १५ २३, ८ ६ १८ ८ २० १, ८ २८ ३ ४, स्रष्टि निर्माता चादा० १-६, त्राता प्रा० पै० २ ४२ की० १ ६, वीरा० १२, प्रा० पै० १ १११, सम्वर्द्धक चादा० ३१२, सहारक, पृ० १ ३ १०, श्रेष्ठ भोगो को भोगने वाले इन्द्र की० १ २३ ७०, मानव इच्छा का पूर्ण करने वाले की० ४ १३, ३ १४ ५५ वीरा० ८१, सनेह० १२८, मानव इच्छा से परे पृ० ३ २ ४, २ १२ २, ५ १४ २, १० २८ ६, नरइच्छा से सशक्त पृ० २ १२ २ सकल चराचर का भेदज्ञ जिण ५२, पृथ्वी पर अवतरित होने की इच्छा प्रच० ५ ६००, ६१३ सफलता की प्राप्ति ढोमा० ७७, उपमान के लिए अन्तिम सहारा, पृ० ३ ११ १, ७ १२ २२,२३, ७ १७ २२, ८ २४ ३-६, ८ २६ ५, ८ २५ १, ८ ३२ ५-६, ८ ३४ ३-४, ११ १२ १३-१४, ६ ६ २, प्रभुता के लिए इन्द्र वर० ३ २३ क, की० २ ६ २६, पृ० २ ३ ६०, ५ ३१ २, निर्माण के लिए ब्रह्मा पृ० १ ६ ४, २ ३ ६४, २ ८ २, ८ ६ २, की० २ ३१ २४१, प्रापै० २ १६७, वीरा० ४६,८१ विनाश के लिए शकर पृ० १ ३ १०, बुद्धि तथा वाणी के लिए सरस्वती, पृ० १ २ १-२, ढोमा० ४५०, जिण० १४, १६ प्रापै० २ ३२, गणेश वीरा० १ २, जिण० ११, शक्ति के लिए देवी० पृ० ८ २४ २ हनुमान चादा० १८५, यमराज के भृत्यो से रक्षार्थ गगा, पृ० ४ ११ ७, धन के लिए लक्ष्मी की० ४ ४६, ८ ६२, कुबेर, पृ० २ ३ १८, शील के लिए सीता ढोमा० ४५१, सुन्दरता के लिए सूय, कवि ओर गुणी पर आकर्षित पृ० ५ ५ ३-४, रूपवान चा० ६६ १७१, २४७, जिण० १०२, वीरो की० ४१५३ २१६-१७, पृ० ७ ५ ४, ८ २४ ३-६। २ चादा० ७५, १३०।

३ शुक्ल यजुर्वेद के अश्वमेध अध्याय मे पूजा के समय 'गणाना त्वा गणपति हवामेह' का उल्लेख मिलता है। इनके अन्य नामो—विघ्नश्वर, विघ्न विनायक-से ये अनार्य

(शेष अगले पृष्ठ पर देखे)

धम सत्कार्य रूप म—

तैत्तिरीय आरण्यक क (१० ६२ ६२) गद्याश पर भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है कि यहा धर्म का तात्पय दानपरक सद्कार्यो से है, जिनक अन्तगत कूप सरोवर एव उद्यान आदि का निमाण समाविष्ट है। इसकी अभि यक्ति विवच्य युग मे भी सुलभ है।[2] प्रबन्ध चिन्तामणि' मे दान, मदिर-निर्माण तथा तीथयात्रा का

(पिछले पृष्ठ का शेष)

दवता प्रतात होने हे। पहले मगल कार्यो को प्रारम्भ करने से पूव विनायक की शान्ति कर दी जाती थी ताकि कोइ उपद्रव न खडा कर दे। कालातर मे अमगल कारण के स्थान पर इनकी पूजा मगल सिद्ध होन के लिए होने लगी। गणेश मगलकारी बने। तन्त्र के द्वारा बौद्धधर्म मे प्रविष्ट हुए और चीन, तिब्बत दक्षिण-पूव एशिया तथा जापान तक बढे। तुर्किस्तान मे इनकी मूर्ति मिलता है। पृथ्वी पर स्यात ही किसी देवी देवता का प्रभाव इतन व्यापक रूप स फैला हो। महाराष्ट्र म गणपत उत्सव बडे धूमधाम से मनाया जाता है। हिदू देव परिवार का विकास सम्पूणानन्द, पृ० १४७, पृथ्वीराज रासा एक समाक्षा, वि० वि० त्रिवुद पृ० ८२-८३। याज्ञवल्क स्मृति मे गणेश आर उनकी माता अम्बिका का पूजा का वणन है। चाथी शताब्दी के पूव इनकी मूर्ति तथा शिलालेखा मे काई उल्लेख नही उपलब्ध ह। इलारा का गुफाओ म कतिपय दवियो की मूर्ति के साथ गणपति की मूर्ति निमित हैं। ८६२ इ० के घटियाला के स्तभ मे श्री गणेश की चार मूतिया बनी हैं। गणेश के मुख मे सूड की बनावट इलौरा तथा घटियाला की मूतियो मे है। 'मालती माधव' मे भी गणेश के सूड का वणन है। जैनो न भी गणेश को पूजा की है—आचाय दिनकर स० १४६८, जर्नल आव इडियन हिस्ट्री, जिल्द १८, १९३९, पृ० १५८, धमशास्त्र का इतिहास, अनुवादक अर्जुन चौब काश्यप, पृ०३९८। विवेच्यकालीन वाडमय के वन्दना मे सव प्रथम स्थान इनका प्राप्त है। पृ० १ १, वीरा० १ २, की० १ १ ३।

१ डा० रणजीत सिंह का लेख 'धर्म के हिन्दू सिद्धान्त की उत्पत्ति एव विकास उमेश मिश्र कमेमोरशन वालूम १९७०, पृ० ३०९

२ मदिर-जिण० ४२, ७७, १५२, १५४ प्रच० १ ५९, ६१, ६७ की० २ २०७ वीरा०४७, चादा० २६३। दान-व ० ४ ३५क, ३ २३क, की०१ ४२ ७२ २ ८ २९, १ १७ ४७ २ १० ३८, ३ २९ १२४, २ १७ ९१, शालिभद्र गाम

बहुल वणन है। पृथ्वीराज रासउ' मे जयचद ने अपने प्रधान अमात्य से राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने के प्रसङ्ग मे परामश किया तो ज्ञानी मन्त्री ने उत्तर दिया, 'कलियुग इतर युगो जैसा नही है। हे देव, अनेक देवालय निर्मित कर षोडस प्रकार के दान प्रतिदिन दे। हे नृप परजीव, मेरी सीख माने, यह कलियुग है। प्रबन्ध चिन्तामणि[२] मे उल्लिखित है कि दान लता, बलि के समय उत्पन्न, दधीचि के समय मूलबद्ध, राम के समय अकुरित, कर्ण के समय टहनी युक्त, नागार्जुन के समय कली सम्पन्न, विक्रमादित्य के समय पुष्पित और मूलराज के समय फलवती हुई। वैदिक यज्ञ के स्थान पर मूर्तिपूजा तथा मदिर-निर्माण की परम्परा विवेच्य युग मे अत्यधिक लोकप्रिय हुई। पृथ्वीराज द्वारा चदबरदाई तथा अन्य साथियो सहित कन्नोज मे गगा तट पर प्रात कालीन शान्त एव रहस्यपूर्ण वातावरण मे सदेह देवी के मन्दिर मे परिलक्षित उपासक दानी, यज्ञकर्ता तथा उनके वन्दना गान, सगीत आदि से धर्म की अमोघ शक्ति की अनुभूति होती है। धर्म के दृश्य प्रतीक इन मन्दिरो के प्रति सहज आस्था मन को परमात्मा के रहस्यमय शान्ति य के लिए प्रेरित करता है। कुडलपुर, नदनवन[४], वसन्तपुर[५] कन्नोज[६] तथा जौनपुर[७] के देवल मस्जिद मे विद्यमान वास्तुकौशल, सगीत, गान, एव मूर्ति-शिल्प की सुन्दरता के समस्त पावन रूप व्यक्ति के अन्त करण मे शाश्वत के प्रति नवचेतना जागरूक करते प्रतीत होते है।

धर्म यज्ञ रूप मे—

ऐतरेय ब्राह्मण[८] के 'यज्ञेन वै तद देवा यज्ञ मयज त तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् । छद तथा इस पर सायण भाष्य,[९] 'यानिज्योतिष्टोमादीनि कर्मण्य अनुष्ठितानि (तानि) सर्वाणि प्रथमानि धर्माण्यादि-सृष्टि-कालानानि सुकृत साधनानि।' के अनुसार यज्ञ करना ही धर्म है। बार्थ ए० के मतानुसार ब्राह्मणकालीन धर्म ऋग्वदिक यज्ञ-यज्ञादि कार्यों से सम्बधित था।[१०] किन्तु विवेच्य वाङ्मय से धर्मशास्त्र प्रतिपादित धर्म के समस्त रूपो के परिवेश मे अपवादस्वरूप यज्ञ की लोक मान्यता के प्रति शिथिलता परिलक्षित होती है। जयचद अपने प्रधान अमात्यो से यश-लाभ हेतु राजसूय यज्ञ सम्पादित करने की मन्त्रणा प्रसग मे ज्ञानी मन्त्री का

---

१ पृ० २ १ ६ १ ८। २ १ ४१। ३ प्रच० १ ५९-६७।
४ जिण० ७७, १५२, १५४। ५ जिण० ४५। ६ पृ० ४४२।
७ की० २ ३१ २०७। ८ ३ ५।
९ आवर हैरिटज, जिल्द ७, भाग १, पृ० १७ पर डा० आर० सी० हाजरा का लेख।
१० बार्थ ए० रेलिजेन्स आव इडिया, पृ० ३७७।

त्वोत्साहपूण परामश ही प्राप्त करता है ।[१] राजगृह (मगधदेश) निवासी, तेजस्वी, प्रखर प्रतिभा सपन्न विद्वान् इन्द्रभूति द्वारा कृत यज्ञ-कार्य को कवि विनय प्रभ उपाध्याय 'मिथ्यात्व से मोहित मतिवाला कर्म समझता है—'करे निरतर यज्ञ कर्म मिथ्यामति मोहिअ' ।[२] इन दो स्थला के अतिरिक्त मात्र उपमान रूप मे यज्ञ-स्तभ,[३] बलिदान[४] तथा निर्मोली[५] आदि यज्ञ परक शब्द व्यवहृत हुए हैं। उन सत्कार्य रूप मे अवश्य प्रतिष्ठित है ।

वर्णाश्रम धर्म—

कम, पुनर्जन्म तथा मोक्ष सम्ब धी हिन्दुओ की मूलभूत अवधारणा ने वणाश्रम धम को युक्तिसगत एव आदश रूप प्रदान किया है । बृहदारण्यक उपनिषद्[६] से यह भावना बद्धमूल होती है कि मनुष्य अपने पूव जन्म के कारण विशेष वण मे जन्म लेता है और निम्न वण का मनुष्य अपने वण के लिए निर्दिष्ट धम का पालन कर मृत्यु के अनन्तर उच्च वण मे स्थान पा सकता है । सामाजिक जीवन को सुसगठित तथा व्यवस्थित करने के लिए मनुष्य के विस्तृत कत्तव्य से सम्बद्ध वर्णाश्रम धम के न्यायिक रूप का क्रमबद्ध विवेचन धमसूत्रो से उपलब्ध होने लगता हैं। विवेच्य वाङमय में जिनेन्द्र भगवान ने अपने तत्वोपदेश मे चारो वर्णो को धारण करने का आग्रह किया है ।[७] समसामयिक वर्णाश्रम धर्म की व्यावहारिक स्थिति का रूप अध्याय ४ मे द्रष्टव्य है ।

धर्म शब्द के अन्य प्रयोग—

पर उँअआरे धम्म न जोअइ । (परोपकार मे धर्म नही देखना चाहिए) की ०२ १० ३६ ।

धम्म दिगपाल धर धरनि षड (जयच द धरणि के खड को धारण कर दिग-पाला का धर्म वहन कर रहा है ।) पृ० ५ १३ २

धम्मु विषे णरू भोजणु देहि । (धर्मकार्यों मे नर भोजन देते थे) जिण० ३४

वणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ। (राजा ने धन का सग्रह कर धर्म के लिए अर्पण कर दिया ।) प्रा० पै० १ १२८

१ पृ० २ १ । २ गौतम ६ । ३ पृ० ६ १५ ७, ८ १० १७-१८ ।
४ पृ० ७ ६ १० । ५ पृ० २ १८ ३ । ६ ४ ४ ५–५ ।
७ जिण० ५१६ । ८ २ १६क ।

बहुल वर्णन है। 'पृथ्वीराज रासउ' में जयचंद ने अपने प्रधान मंत्री से राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने के प्रसङ्ग में परामर्श किया तो ज्ञानी मन्त्री ने उत्तर दिया, 'कलियुग इतर युगों का सा नहीं है। हे देव, अनेक देवालय निर्मित कर षोडस प्रकार के दान प्रतिदिन दें। हे नृप पगजीव, मेरी सीख माने, यह कलियुग है।[1] प्रबन्ध चिन्तामणि[2] में उल्लिखित है कि दान लता, बलि के समय उत्पन्न, दधीचि के समय मूलबद्ध, राम के समय अंकुरित, कर्ण के समय टहनी युक्त, नागार्जुन के समय कली सम्पन्न, विक्रमादित्य के समय पुष्पित और मूलराज के समय फलवती हुई। वैदिक यज्ञ के स्थान पर मूर्तिपूजा तथा मंदिर-निर्माण की परम्परा विवेच्य युग में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। पृथ्वीराज द्वारा चंदबरदाई तथा अन्य साथियों सहित कन्नौज में गंगा तट पर प्रातःकालीन शान्त एवं रहस्यपूर्ण वातावरण में सदेह देवी के मंदिर में परिलक्षित उपासक दानी, यज्ञकर्ता तथा उनके वंदना गान, संगीत आदि से धर्म की अमोघ शक्ति की अनुभूति होती है। धर्म के दृश्य प्रतीक इन मन्दिरों के प्रति सहज आस्था मन को परमात्मा के रहस्यमय सान्निध्य के लिए प्रेरित करता है। कुंडलपुर,[3] नंदनवन[4], वसंतपुर[5] कन्नौज[6] तथा जौनपुर[7] के देवल मस्जिद में विद्यमान वास्तुकौशल, संगीत, गान, एवं मूर्ति-शिल्प की सुन्दरता के समस्त पावन रूप व्यक्ति के अन्तःकरण में शाश्वत के प्रति नवचेतना जागरूक करते प्रतीत होते हैं।

धर्म यज्ञ रूप में—

ऐतरेय ब्राह्मण[8] के 'यज्ञेन वै तद देवा यज्ञ मयजन्त तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। छंद तथा इस पर सायण भाष्य,[9] 'यानिज्योतिष्टोमादीनि कर्मण्य अनुष्ठितानि (तानि) सर्वाणि प्रथमानि धर्माण्यादि-सृष्टि-कालीनानि सुकृत साधनानि।' के अनुसार यज्ञ करना ही धर्म है। बार्थ[10] के मतानुसार ब्राह्मणकालीन धर्म ऋग्वैदिक यज्ञ-यज्ञादि कार्यों से सम्बन्धित था।[10] किन्तु विवेच्य वाङ्मय से धर्मशास्त्र प्रतिपादित धर्म के समस्त रूपों के परिवेश में अपवादस्वरूप यज्ञ की लोक मान्यता के प्रति शिथिलता परिलक्षित होती है। जयचन्द अपने प्रधान अमात्य से यश-लाभ हेतु राजसूय यज्ञ सम्पादित करने की मन्त्रणा प्रसंग में ज्ञानी मन्त्री का

---

१ पृ० २१८१।   २ १२१।   ३ प्रच० १५६-६७।

४ जिण० ७७, १५२, १५४।   ५ जिण० ४५।   ६ पृ० ४४२।

७ की० ४३१ २०७।   ८ ३ ५।

९ आवर हैरिटेज, जिल्द ७, भाग १, पृ० १७ पर डा० आर० सी० हाजरा का लेख।

१० बार्थ ए० रेलिजेन्स आव इंडिया, पृ० ३७७।

त्वोत्साहपूर्ण परामश ही प्राप्त करता है ।[१] राजगृह (मगधदेश) निवासी, तेजस्वी, प्रखर प्रतिभा सपन्न विद्वान् इन्द्रभूति द्वारा कृत यज्ञ-काय को कवि विनय प्रभ उपाध्याय 'मिथ्यात्व से मोहित मतिवाला कर्म समझता है—'करे निरतर यज्ञ कर्म मिथ्यामति मोहिअ' ।[२] इन दो स्थलो के अतिरिक्त मात्र उपमान रूप मे यज्ञ-स्तभ,[३] वलिदान[४] तथा निर्मालो[५] आदि यज्ञ परक शब्द व्यवहृत हुए हैं । यज्ञ सत्कार्य रूप मे अवश्य प्रतिष्ठित है ।

वर्णाश्रम धर्म—

कम, पुनजन्म तथा मोक्ष सम्ब धी हि दुओ की मूलभूत अवधारणा ने वणाश्रम धर्म को युक्तिसगत एव आदर्श रूप प्रदान किया है । बृहदारण्यक उपनिषद्[६] से यह भावना बद्धमूल होती है कि मनुष्य अपने पूव जन्म के कारण विशेष वण मे जन्म लेता है और निम्न वण का मनुष्य अपने वण के लिए निर्दिष्ट धर्म का पालन कर मृत्यु के अन तर उच्च वण मे स्थान पा सकता है । सामाजिक जीवन को सुसगठित तथा व्यवस्थित करने के लिए मनुष्य के विस्तृत कत्तव्य से सम्बद्ध वर्णाश्रम धम के न्यायिक रूप का क्रमबद्ध विवेचन धमसूत्रो से उपलब्ध होने लगता है। विवेच्य वाड्मय में जिनेन्द्र भगवान ने अपने तत्वोपदेश मे चारो वर्णों को धारण करने का आग्रह किया है ।[७] समसामयिक वर्णाश्रम धम की व्यावहारिक स्थिति का रूप अध्याय ४ मे द्रष्टव्य है ।

धर्म शब्द के अन्य प्रयोग—

पर उँअआरे धम्म न जोअइ । (परोपकार मे धर्म नही देखना चाहिए) की० २ १० ३६ ।

धम्म दिगपाल धर धरनि षड (जयच द धरणि के खड को धारण कर दिग-पाला का धर्म वहन कर रहा है ।) पृ० ५ १३ ३

धम्मु विषे णरू भोजणु देहि । (धर्मकार्यों मे नर भोजन देते थे) जिण० ३४

धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ । (राजा ने धन का सग्रह कर धर्म के लिए अर्पण कर दिया ।) प्रा० पै० १ १२८

१ पृ० २ १ । २ गौतम ६ । ३ पृ० ६ १५ ७, ८ १० १७-१८ ।
४ पृ० ७ ६ १० । ५ पृ० २ १८ ३ । ६ ४ ४ ७-५ ।
७ जिण० ५१६ । ८ २ १६क ।

दीजइ हीण दीण कहु पूत, धम्मु काजि बैचियइ बहूत। (हे पुत्र हीन एव दीन को देना चाहिए ओर धम काय के लिए बहुत कुछ वेच भी डालना चाहिए।) जिण० १४४

दइय लागि काजु जो करा। ता कहु धरमु तुहूँ जगि धरा। (देव के सहारे जो काय करता है उसके लिए धर्म दोनो जगत मे सुरक्षित रहता है।) च३८

दाण धरमु सपइ सबु दीज। (दान-धय मे सब सम्पत्ति दे दीजिए।) जिण० ४८

फ्रूर न बोलै सूजण धम्ममति कह जाउ। (सज्जन सत्य न बोले तो फिर धर्म मति कहा जाय।) की० ३ १६२

सजमु नेमु धम्मु नस जाणु, जा णिणुणइ जिणदत्त पुराण। (जो जिनदत्त पुराण को सुनता है सयम नियम तथा धम उसको प्राप्त हुआ जानो) जिण० २

मन्द करिअ हआ कम्म, धम्म सुमरि निज सीस धुन्नइ।

(गणेश्वर का मार डालने तथा उसके राज्य मे उत्पन्न बुराइयो पर असलान धम का स्मरण कर शिर धुनता हे।) की० २ १८

धम्म पेष्खई अवरु सुरुतान।

(कीर्तिसिंह और असलान के युद्ध को धम ओर सुलतान देख रहे है।) की० ४ १८८

वाणिअ होइ विअष्खणा धम्म पसाइ हट्ट।

(वह व्यापारी विलक्षण है जो धम के साथ हाट फलाता है।) की ३ ११८

धार्मिक विश्वास और पव—

भाग्य-अभाग्य, स्वग, सिद्धिया, अमृत, जादू-टोना-मत्र, स्वप्न, शपथ, अग फडकना, पशु-पक्षियो का मिलना-बोलना तथा मूर्ति के हँसने-बोलने खिसकने विषयक शुभ अशुभ शकुन पर लोक-विश्वास की आस्था है।[1] अशुभ फल के निवारणाथ

1 भाग्य-अभाग्य की० २ २६, ३५, ३ १५५, ४ २३, २२२, चा० ८, ३७, ५२, वीरा० २६, ४७, ढोमा ७१, २७३, ३६५, विप० १ १२, प्रच० १ १२६, सनेह० १०१, प्रा० पै०, २ १५१, १८५, जादू-टोना-मत्र-गौतम० २१, ढोमा० २४५, प्रचि० ३ ११, १०९ चादा ३२७, ढोमा १६६, ६२१, वीरा० ६०, वर० ३ २१ स्वप्न, पृ० १० २८, शपथ चादा ५०, अग फडकना की० २ ९, जिण० ४८४, ढोमा ५१६-५२०, रास और रासान्वयी, वसत विलास, पृ० १६५, पशु पक्षी-रास और रासान्वयी, वसन्त विलास, पृ० १६५, चा० ९१, १२२, १३०, ढोमा ५१६-२० पृ० ४ २, मूर्ति का हसना बोलना खिसकना पृ० ४२२, चादा २४७, वीरा० ६६ प्रचि० ३ ८७।

स्नान कर अथ-द्रव्य वारण और ब्राह्मण को दान उपचार के रूप में मान्य है।[१] तीजा, कजरी, महालक्ष्मी पूजन, करवा चाय, दसहरा, दीपावली तथा होली आदि धार्मिक त्योहार मनाये जाते हैं। मदिर-निमाण, ध्वजारोहण तथा तीथ यात्रा प्रसम के समारम्भ पर उत्सव मनाने की प्रथा विद्यमान है।[३] पृथ्वीराज रासो के अ य सस्करणो मे नवरात्रि, नौ दुर्गा तथा शिवरात्रि का उल्लेख है।

धार्मिक साहिष्णुता एव एकता—

कतिपय अधार्मिक कृत्य—तथा, ब्राह्मण कवि का अभिव्यक्ति-फकीर द्वारा कुछ न पाने पर गाली देन[५], सुलतानी सेना द्वारा गाय एव ब्राह्मण व करन, देवालय तोडने इस्लाम द्वारा अन्य धर्म का उपहास करने तथा तुक द्वारा हिन्दुओ का सार्वजनिक दुर्व्यवहार करने का दोषपूण नही समझा गया[७]—तथा मुल्ला दाउद का समथन कि मुस्लिम धार्मिक नेता इस्लाम से इतर कुछ न मानकर विधर्मियो को मार डालना अपना धर्म समझते थे।[८] जैन धर्मावलम्बियो द्वारा ब्राह्मण धर्माव-

---

१ पृ० १० २६, चादा० १८२। २ तीजा० ढोमा १४६-५०, कजरी वारा० ७६, महालक्ष्मी पूजन प्रचि० ३ १ ६, चउथ करउ वीरा० २, दसहरा ढोमा २७३-२७४, दिवाली चादा १६५, १६८, ३४६, प्रचि० ३ ११६, होली फाग पृ० ४ २३, चादा ६४, ढोमा १४५, ३०२, वीरा० ७२।

३ मन्दिर निर्माण तथा ध्वजारोहण प्रचि० ३ ६६, तीर्थ यात्रा महोत्सव प्रचि० ४ १६४। ४ पृथ्वी राज रासो एक समीक्षा, वि वि० त्रिवेदी, पृ० ६५-११०

५ की० २ २६-३० १८६। ६ की० ४ १८ ८०। ७ की० २ ३१ १६३।

८ पंडित येकु चहू मिलि गनी। चहु महि पञ्चवा और न सुनी।
सो पढति जाकौ ति पढावहि। ते बहु पथ सोधि कै पावहि॥
तिहु करि जिह वाहु नाउ न भावा। आपनु क्यो बैरी स कहावा।
अबाबकर उमरै उसमाना अली स्यध ये चारि।
जे निद तु कर विज ति सतुरहि घालै मारि॥। चा० ७

टीका—अबूबकर, उमर, उसमान, और अली—चारो को ही पडित समझिये। उसी ने पढा जिसको उन्होंने पढाया, वे ही वह धर्म मार्ग शोध कर पा सके। इस प्रकार जिसे वह नाम अच्छा न लगा वह अपना ही बैरी क्यो कहलाया? इन चारो ने (इस्लाम के) शत्रुओ को मार डाला। उद्धृत चा० ७ के अर्थ से।

दीजइ हीण दीण कहु पूत, धम्मु काजि बेचियइ बहूत। (हे पुत्र हीन एव दीन का देना चाहिए ओर धम काय के लिए बहुत कुछ बेच भी डालना चाहिए।) जिण० १४४

दइय लागि काजु जो करा। ता कहु धरमु तुहूँ जगि धरा। (देव के सहारे जो काय करता है उसके लिए धर्म दोनो जगत मे सुरक्षित रहता है।) च३८

दाण धरमु सपइ सबु दीज। (दान-धर्य मे सब सम्पत्ति दे दीजिए।) जिण० ४८

फूर न बोलै सूजण धम्ममति कह जाउ। (सज्जन सत्य न बोले तो फिर धर्म मति कहा जाय।) की० ३ १६२

सजमु नेमु धम्मु नस जाणु, जा णिणुणइ जिणदत्त पुराण। (जो जिनदत्त पुराण को सुनता है सयम नियम तथा धर्म उसका प्राप्त हुआ जानो) जिण० २

मन्द करिअ हुआ कम्म, धम्म सुमरि निज सीस धुन्नइ।

(गणेश्वर का मार डालने तथा उसके राज्य मे उत्पन्न बुराइयो पर असलान धम का स्मरण कर शिर धुनता ह।) की० २ १८

धम्म पेष्खई अवरु सुरुतान।

(कीर्तिसिंह और असलान के युद्ध का धम ओर सुलतान देख रहे है।) की० ४ १८८

वाणिज हाइ विअष्खणा धम्म पसाइ हट्ट।

(वह व्यापारी विलक्षण है जा धम के साथ हाट फैलाता है।) की ३ ११८

धार्मिक विश्वास और पव—

भाग्य-अभाग्य, स्वग, सिद्धिया, अमृत, जादू-टोना-मत्र, स्वप्न, शपथ, अग फडकना, पशु-पक्षियो का मिलना-बोलना तथा मूति के हँसने-बोलने खिसकने विषयक शुभ अशुभ शकुन पर लोक-विश्वास की आस्था है।[1] अशुभ फल के निवारणाथ

१ भाग्य-अभाग्य की० २ २६, ३५, ३ १५५, ४ २३, २२२, चा० ८, ३७, ५२, वीरा० २६, ४७, ढोमा ७१, २७३, ३६५, विप० १ ४२, प्रच० १ १२६, सनेह० १०१, प्रा० पै०, २ १५१, १८५, जादू टोना-मत्र-गौतम० २१, ढोमा० २४५, प्रचि० ३ ११, १०६ चादा ३२७, ढोमा १६६, ६२१, वीरा० ६०, वर० ३ २१ स्वप्न, पृ० १० २८, शपथ चादा ५०, अग फडकना की० २ ६, जिण० ४८४, ढोमा ५१६-५२०, रास और रासा वयी, वसन्त विलास, पृ० १६५, पशु-पक्षी-रास और रासान्वयी, वसन्त विलास, पृ० १६५, चा० ६१, १२२, १३०, ढोमा ५१६-२० पृ० ४ २, मूर्ति का हसना बोलना खिसकना पृ० ४२२, चादा २४७, वीरा० ६६ प्रचि० ३ ८७।

स्नान कर अथ-द्रव्य वारण और ब्राह्मण को दान उपचार के रूप मे मान्य है।[१] तीजा, कजरी, महालक्ष्मी पूजन, करवा चौथ, दसहरा, दीपावली तथा होली आदि धार्मिक त्योहार मनाए जाते है। मदिर-निर्माण, ध्वजारोहण तथा तीर्थ यात्रा प्रसग के समारम्भ पर उत्सव मनाने की प्रथा विद्यमान है।[३] पृथ्वीराज रासो के अन्य सस्करणो मे नवरात्रि, नौ दुर्गा तथा शिवरात्रि का उल्लेख है।

धार्मिक साहिष्णुता एव एकता—

कतिपय अधार्मिक कृत्य—तथा, ब्राह्मण कवि का अभिव्यक्ति-फकीर द्वारा कुछ न पाने पर गाली देने[५], सुलतानी सेना द्वारा गाय एव ब्राह्मण वध करने, देवालय तोडने इस्लाम द्वारा अन्य धर्म का उपहास करने तथा तुर्क द्वारा हिन्दुओ का सार्वजनिक दुर्व्यवहार करने का दोषपूर्ण नही समझा गया[७]—तथा मुल्ला दाउद का समर्थन कि मुस्लिम धार्मिक नेता इस्लाम से इतर कुछ न मानकर विधर्मियो को मार डालना अपना धर्म समझते थे।[८] जैन धर्मावलम्बियो द्वारा ब्राह्मण धर्माव-

---

१ पृ० १० २६, चादा० १६२। २ ताजा० ढोमा १४६-५०, कजरी वारा० ७६, महालक्ष्मी पूजन प्रचि० ३ १ ६, चउथ करउ वीरा० २, दसहरा ढोमा २७३-२७४, दिवाली चादा १६५, १६८, ३४६, प्रचि० ३ ११६, होली फाग पृ० ४ २३, चादा ६४, ढोमा १४५, ३०२, वीरा० ७२।

३ मन्दिर निर्माण तथा ध्वजारोहण प्रचि० ३ ६६, तीर्थ यात्रा महोत्सव प्रचि० ४ १६४। ४ पृथ्वी राज रासो एक समीक्षा, वि वि० त्रिवेदी, पृ० ६५-११०

५ की० २ २६-३० १८६। ६ की० ४ १८ ८०। ७ की० २ ३१ १६३।

८ पंडित येकु चहू मिलि गनी। चहु महि पञ्चवा और न सुनी।
सो पढनि जाकौ ति पढावहि। ते बहु पथ सोधि कै पावहि॥
तिहु करि जिह वोहु नाउ न भावा। आपनु क्यो बैरी स कहावा।
अवाबकर उमरे उसमाना अली स्यध ये चारि।
जे निद तु कर विज ति सतुरहि घालै मारि॥ चा० ७

टीका—अबूबकर, उमर, उसमान, और अली—चारो को ही पडित समझिये।
उसी ने पढा जिसको उन्होने पढाया, वे ही वह धर्म मार्ग शोध कर पा सके।
इस प्रकार जिसे वह नाम अच्छा न लगा वह अपना ही बैरी क्यो कहलाया?
इन चारो ने (इस्लाम के) शत्रुओ को मार डाला। उद्धृत चा० ७ के अर्थ से।

लम्बियो की कतिपय चारित्रिक त्रुटियो के उभाडने के[१] निर्देश —के अतिरिक्त जन साधारण मे धार्मिक सहिष्णुता की प्रचुर भावना विवेच्य वाड्मय मे उपलब्ध होता है। भारतीय धर्म के दीर्घ तथा परिवर्तनशील इतिहास मे वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्म सूत्र, स्मृतिया, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता और पुराण प्रभृति युग प्रवर्तक ग्रन्थो तथा सुप्रतिष्ठ महापुरुषो के प्रति, विभिन्न मतावलम्बियो द्वारा अवमानना नही अपितु समुचित समादर भाव परिलक्षित होता है। आलोच्य साहित्य के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अपने विचार को अभिनव सत्ता दे आकर्षण उत्पन्न करने की अपेक्षा उसको आकर ग्रथ अथवा महापुरुष के प्रमङ्गगभत्व मे प्रभावपूर्ण और प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया गया है।[२] वेदो का सृष्टि नियत्रक ऋत सम्बन्धी विचार अपने परिवर्तित रूप सत्यानुसरण द्वारा मरण के अनन्तर शुभ-गति पाने मे दिखाई देता है। सहिता तथा ब्राह्मण ग्रथो का यज्ञ कर्म अपने निहित उद्देश्य परोपकार एव सत्कार्य के प्रतीक रूप मे[३] विद्यमान है। उपनिषदो का ब्रह्म एव आत्म विषयक शोध—मै ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है तथा सब कुछ ब्रह्म है' नवीन आदर्श रूप मे प्रस्तुत है। धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र, स्मृति तथा जैन बौद्ध और इस्लाम धर्म के विस्तृत आचार सहिता के अनुयायी समष्टि रूप मे एक स्थान पर एक साथ मिलकर रहते दिखाई पडते है। जयचन्द जैन धर्म के सप्तक्षेत्र-जिन मन्दिर, जिन-प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका-का सेवन करता था। उसने पवित्र राजसूय यज्ञ की प्रतिष्ठा की थी। उसके ज्ञानी मन्त्री ने अनेक देवालय निर्माण कर प्रतिदिन षोडश प्रकार के दान द्वारा उसे सत्कार्य करने की मन्त्रणा प्रदत्त की।[४] धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से कन्नौज,[५] जौनपुर[६] तथा गोबर[७] नगर मे लोग उसी प्रकार की स्थिति मे निवास करते दृष्टिगत होते है जिस प्रकार आधुनिक धर्म-निरपेक्ष प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे नागरिक रह रहे है। मुल्ला दाउद ने हिन्दुओ के धार्मिक नेताओ का ससम्मान दृष्टात देकर इस्लामी नेताओ का वर्णन किया है।[८] अडहिल पुर का सुलतान अलप खा हिन्दुओ का बहुत आदर करता था। समरसिंह ने आदि बिंब का उद्धार करने के लिए उससे मिलकर फरमान प्राप्त की।

१ प्रद्युम्न चरित्र मे ब्राह्मण का लालची तथा पेटू होना। अम्बिका देवी पूर्व भव वर्णन तत्रहारा। प्रबोध चिन्तामणि भी द्रष्टव्य। २ चादा० ४ १६, का० १, पृ० २१

३ यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धन। गीता ३ ९-१६ तथा यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म। ब्राह्मण ग्रन्थ। ४ पृ० २१। ५ पृ० ४२३ ६ को० २

७ चादा० २ ८ चादा० १। ९ समरा रास, तृतीय भाषा।

साराश

ग

पुनजन्म कमवाद तथा आध्यात्मिकता आदि मूलभूत विशषताओ का पृष्ठ-भूमि मे हिन्दू धर्म सत्य, परापकार, सत्काय, सदाचरण तथा उदात्त नैतिकना का प्रमुख विचारधारा को आत्मसात कर आचारमूलक इस्लाम का तीव्र मजहबी धारा के सम्पक मे आना है समकालीन साहित्य से इसकी पुष्टि हाती है। मनिक शक्ति तथा साम्प्रदायिकता मे मदा ध तुर्को द्वारा किए हुए कतिपय अधार्मिक कृत्यो क बावजूद युग के धार्मिक मतवाद मे सहअस्तित्व सहयोग एव समन्वय की भावना विद्यमान है।

———

अध्याय ६

आर्थिक स्वरूप

अर्थ नीति और उपभोग

सामाजिक वणन के पुरुषाथ चतुष्टय प्रसङ्ग मे चौदहवी शताब्दी के अपभ्रंश एव हि दी वाङ मय की पृष्ठभूमि मे भारतीय अथ-नाति के सम्यक् विवेचन से ज्ञात होता है कि अथ, शेष पुरुषाथ धम, काम तथा मोक्ष की उपलब्धि से सन्निवत है। अर्थोपाजन नितात आवश्यक है कि तु अनुचित रूप से नही। व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक हित मे धन का उपभोग श्रेयस्कर समझा गया हे, विशेष कर दान, मन्दिर तथा सरोवर आदि के निर्माण मे। अथ का वयक्तिक उपभोग भी उच्च स्तर का था।[१]

उत्पादन

भूमि—अर्थोत्पादन के मुख्य साधन भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध तथा साहस माने गये है। जहा तक भूमि का सम्बन्ध है, भारत दश सदेव की भाति तत्कालीन जीवन मे भी गावो मे प्रसृत है। 'ढोला (पूगल देशोन्मुख) म्हा (मालवणी, नर वर राज्य) बिच मोकला बासा घणा वसेरा' (ढोमा० ३६४)। दोनो राज्य के मध्य बहुत से वास गाँव-बसते थे। बिहार ओर जौनपुर के मार्ग मे बहुत सी पट्टियाँ, प्रान्तर तथा गाव बसे थे—बहुल छाडल पाटि पातरे, जहा जाइअ जेहे गाजो। (की० २ १५ ६३) रानी मारवणी भा उलाहने मे अपना गाव छोड देने के लिए पपीहे से कहती है—

'बाबहिया डूँगर-दहण छाडि हमारउ गाम' (ढोमा० ३६)।

वस्तुत गावो का भोग ही राज्य का शासन था—

'छत्तीस कुरी राजयुत भूजहि सासन गाउ। चादा० २६।

'भूँजहि सासन पाटन गाऊ। चादा० १०१।

---

१ देखिए सामाजिक वणन मे 'रहन सहन'।

इन गावो की अर्थ-व्यवस्था का नीव खेती बारी है। स्वतन्त्रता प्रेमी राजमता अपनी आकाक्षा व्यक्त करती है कि 'हे वि गाता ! तूने मुझे जाटनो क्यो नही बनाया कि मै अपने भतार के साथ खेत कमाती और उनके साथ रहकर स्वच्छदता पूवक सुखोपभोग करती।'[१] खेती बारी के काम मे स्वतन्त्रता अधिक प्रतीत होती है। इमी-लिए भारत देश मे दास तथा सामन्ती व्यवस्था मे उतना अमानवीय शोषण नही मिलता जितना कि पाश्चात्य देशो मे था। भूमि सम्बन्धी व्यवस्था का ही परिणाम है कि यहा आध्यात्मिक चिंतन को प्रश्रय मिला ओर आग्ल शासन का छोडकर राजनीतिक परिवतन आत्म निर्भर ग्रामीण आर्थिक ढाचे पर कोई विशेष विध्वसकारी का प्रभाव नही पडा।

साहित्य मे खेती बारी द्वारा उत्पादन का वणन समसामयिक कृतिकारो को अभीष्ट नही था। इसकी परम्परा सम्भवत मुसलमानी काल से प्रचलित होती है। विवेच्य साहित्यकारो ने आदश अग के उपमान, शृङ्गार प्रसाधन[२] कामकेलि की पृष्ठभूमि,[३] धार्मिक[४] भावना, कीडा विनोद,[६] युद्ध की भयङ्करता तथा भय[७] के प्रतीक रूप मे भूमिगत उत्पादन का कुछ उल्लेख अवश्य किया है[८] जिनके अनुशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि खाद्यान्न, फल, फूल तथा उपयोगी जडी बूटी ओर घास का पर्याप्त उत्पादन होता था।[९] खनिज पदाथ, विशेष कर सोना, चाँदी (हिरण्य अथवा रुपया) मणि, रत्न, वज्र, लवण तथा हिंगुलक की बहुलता थी।[१०] इनसे निमित खानपान, वस्त्राभूषण, आसन, वाहन, मनोरजन शृङ्गार, कला तथा गृह आदि सम्बन्धित विविध उपयोगी पदार्थों का बाहुल्य था।[११]

श्रम—लोक की धारणा है कि उद्यम म ही लक्ष्मी का निवास है।

१ वीरा० ८२।   २ पृ० ३ १८ ३३, १० ११ १० ४ १४ ८, ५ ७ १, ३ १७ १६, २ ७ १५, ४ २० २६, १० ११ ५, २१-२२, ५ ७ १, ६ १४ ३, ४, २० २१, ३ १७ ३९-४० २ ५ १७, २ २० ३, २ ५ ३७ ६ १४ ३, ८ २० २, २ ५ १७, ४ २० ३३-३४, की० १ ६ १५।

३ पृ० ४ २५ ३७, २ ५ १९, २ ७ ११, २ ७ ८, ६ १५ ८।

४ पृ० २ ५ ३२-४२, ढोमा० ७८, १२१, १४६, २५०, २६४, २८२-२८३, वीरा० ७३, विप० १ ९।   ५ पृ० ८ ३० ३ ४ १२ २।

५ पृ० २ ४ १।   ७ पृ० ७ ६ १-२, ८ १० १९-२० ८ १७ १९-२०, ८ २६:२, ४, ७ १७ २७, ३३, ८ १० २१-२२।

८ देखिए सास्कृतिक शब्दकोश का 'उपज' भाग।   ९ दे० आर्थिक शब्द-कोष।

१० वही।   ११ दे० सामाजिक शब्दकोश।

अवसआ[१] उद्दम लच्छि बस । की० २ १६ ७५ । जा व्यक्ति श्रम कर लक्ष्मा का अजन करता है वही सुपुत्र है, दूसरा का गभ मे ही मर जाना श्रेयस्कर है—

उद्दिमु कर ।
विढइ लछि जे पुरवहि आस जाए गुणि यहि दस माम ।।
ना विढवहि ।
णासत घर बैठे सु खियाहि पाणिउ पिवहि वार चउ खाहि ।
आसु पराइ करइ जू मुयउ, सोभित न पूतु गग्भ ही मुयउ ।।

जिण० १३९-१४१

लोगो को यह ज्ञात है कि लक्ष्मा का उपलब्धि बडी कठिनाई स होती है—
वडइ खखदि लछि पाइयइ, जिण० १४३ ।

वस्तुत भारतीय सस्कृति की कुछ एसी प्रकृति रही है कि किसान, शिल्पा तथा व्यवसायी आदि श्रम द्वारा जीविकोपार्जन करन वाले समाज मे अपेक्षाकृत कम सम्मानित रह । विवेच्य युग इसका अपवाद नही ह । इनसे अधिक सम्मान राजा के कर्मचारियो का मिलता था जिनका श्रम प्रत्यक्ष रूप स उत्पादक नही प्रतात होता । रानी राजमती अपने प्रवासी वीसलदव को सीख प्रदान करती है, कि राजा के नाई और साहुनी को बहुत सम्मान करना—

'बइठा राजा सभा परधान ।
तिण सु मीठा बोलिज्या ।।
नाई साहुणी नइ घणउ देज्या मान । बारा० ६०

श्रम का 'बेगार' रूप भी मिलता हे । जौनपुर के बाजार मे कही तुर्क रास्त मे जात हुये मनुष्यो को बलपूवक बेगार मे पकड लेते थे—

'कतहु तुरुक वर कर । बाट जाइते बगार धर ।'

की० २ ३१ २०१

पूँजी—'रहन सहन'[३] के स्तर से ज्ञात हाता है कि देश मे पूँजी का बाहुल्य था । इसका मुख्य श्रेय वैश्य वण को था । राष्ट्रीय पूँजी का स्रोत कर के माध्यम से किसान, व्यवसायी तथा व्यापारी आदि वैश्य वण ही था जिसका अधिकाश भाग

१ अवसओ-अवश्य ही । २ देखिए सामाजिक उपलब्धिया ।
३ दे० सामाजिक अध्याय ।
४ दे० वही, 'वर्ण व्यवस्था' और आर्थिक अध्याय का व्यापार ।

भोग-विलास और दान सदृश अनुत्पादक कार्यों मे प्रवृत्त होना था। प्राकृतिक साधनो की दृष्टि से देश पूजी के क्षेत्र मे पर्याप्त समृद्ध है।

प्रबन्ध—उत्पादन के लिए सामूहिक प्रबन्ध की दृष्टि से अर्वाचीन सहकार तथा ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनी की भाति कोई व्यवस्था नही थी। लाभ-हानि के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर उत्पादक अपना स्वतन्त्र व्यवसाय चलाता था। इसमे उपभोक्ता और व्यवसायी का सीधा सम्पर्क रहता था।

समसामयिक घटनाओं से ज्ञात होता है कि व्यापारी वर्ग दुर्गम यातायात की आपदाओ से त्राण पाने के लिए सङ्गठन बनाकर चला करते थे। यह सङ्गठन व्यापार सम्बन्धी हानि-लाभ के उत्तरदायित्व से अनुबन्धित नही था। जिणदत्त ने अपने आतिथेय सागरदत्त से व्यापार हेतु बाहर जाने के सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त किया। इसी समय व्यापारियो का दल जाता दिखाई पडा। जिणदत्त सागरदत्त समेत बहुत से अन्य व्यक्ति भी अपना-अपना सामान लेकर टाडे के साथ चल पडे। उन सब मे सागरदत्त प्रधान बन गया—सब महिं उवहिदत्त परधान।[२] गोबर युद्ध मे लोरिक ने आगे बढने के लिए अपने दल को टाडे के समान हाक कर चलाया।

आगे देइ लिहेसि दरु आपनु हाकि चलाए तस टाड। चादा० १३२ ६

व्यावसायिक साहस—उत्पादन कार्य मे साहस का योगदान महत्वपूर्ण है। साहस के अभाव मे अपनी भूमि, पूजी तथा श्रम के विरुद्ध खतरा उठाना सभाव्य नही है, विशेष कर विवेच्य काल मे जबकि कटकाकीर्ण मार्ग, यातायात की असुविधा तथा चोर-डाकुओ की अधिकता से जान-माल दोनो असुरक्षित थे। व्यापारी, जहाजो को भर कर गन्तव्य स्थान को चले। साथ मे बहुत सा अन्न एव इधन उस पर चढा लिया। बारह वर्ष का सम्बल (खर्ची) लेकर सभी वस्तुओ को जलयानो मे लाद दिया। जल-जन्तुओं, समुद्री गिद्ध-डाकू तथा तूफान के भय से उनके शरीर कापते थे—

दुद्धर मगरमच्छ घडियार पाणिउ अगम न सूझइ पार।
जल भय कपई सयल शरीर, लहरि पयउ झकोलइ नीर॥जिण १९४॥

इतना दुर्द्धर साहस करने का एकमात्र उद्देश्य लक्ष्मी की उपलब्धि मे सिद्धि प्राप्त करना है।

अवसआ उद्दम लक्षि वस अवसआ साहस सिद्धि। की० २ १६ ७५

---

१ द० आर्थिक शब्दकोश। २ जिण० १७७-१८८।

वितरण

विवेच्य युग म धन की मर्वात्तम गति दान माना गया है। किन्तु अथशास्त्रीय दृष्टि स विभाजन का तात्पय उत्पादन के विभिन्न साधना मे आय के वितरण स है। दान पाने वाले का उत्पादन मे कोई हाथ नही रहता। समसामयिक जीवन मे अर्थ शास्त्रीय वितरण के कर (टैक्स), पारिश्रामिक, तथा लाभ तीन प्रमुख रूप है।

कर—किसान, व्यवसायी तथा व्यापारी वर्ग कर, दण्ड (कर)[१] तथा दाण[२] (मालगुजारी) रूप मे अपनी आय का कुछ भाग[३] राजा को देता था। सुलतान इब्राहीम दिग्दिग तर स कर वसूल करता रहा हे।[४] शासनादेश से ग्रामो का भोग करने वाले छत्तीस कुलो के कुमार भुक्तो द्वारा देश भर के दण्ड (कर) महर के यहा आता था।

छत्तीस कुरी राजपुत भुजहि सासन गाउ।
देश क डाड आव महरइ कह तिन्ह कुँवरनिक नाइ। चादा० २६

पारिश्रमिक—सामान्यत यह वस्तु रूप मे प्रदत्त था। इब्राहीम शाह के तुक सैनिका को ग्रास[५] (गुजारा) मिलता था। छत्तीस कुलो के राजपुत्र वेतन रूप से ग्रामों का भोग करते थे।[६] यह प्रथा आज भी गावो मे विद्यमान हे।

मुद्रा मे भी पारिश्रमिक भुगतान होता था। कसारे का दुकान पर गागर घिसने के काम मे वणिक पुत्र प्रतिदिन पाच विंशायक का उपाजन कर लेता था।[७] जार्ण प्राकार (जूनागढ) क माग पर पद्या (पत्थर का साढा) बनवाने मे ६३ लाख दाम लगे थे[८] राजा द्वारा एक लाह-पुतल का बनवाई का पारिश्रमिक एक लाख दीनार दिया गया।[९]

लाभ—कर तथा पारिश्रमिक देने क अनन्तर शेष समस्त उत्पादन का अधिकारी व्यवसायी होता था। वही व्यवसाय का एकमात्र प्रबन्धक, पूँजीपति तथा अपने जान-माल का खतरा मोल लेकर लाभ कमाने वाला व्यक्ति होता था। वस्तुत व्यवसाय के हानि-लाभ का पूर्ण उत्तरदायित्व व्यवसायी स्वतन्त्र रूप से वहन करता

---

१ चादा० २६। २ प्रचि० ३ ७६। ३ विवेच्य वाङ्मय म निश्चित भाग क अभाव मे कुछ भाग लिखा हे। यद्यपि यह भाग निश्चित था।
४ की० ३ १६ ८२। ५ की० ४ २४ ६८ वा० श० अग्रवाल द्वारा व्याख्या म।
६ चादा० २६। ७ प्रचि० ३ ११०। ८ प्रचि० ४ १६८ २०४।
९ प्रचि० १ ८।

था। ग्वाला, कुम्हार, चर्मकार तथा बुनकर आदि छोटे-मोटे व्यवस
करके समस्त आय स्वत ले लेते थ। दूसरो को पारिश्रमिक देने क
आता था।

लाभ के प्रति लोग सजग थे। बाजुर सोचता है कि वह कौन-सा वाणिज्य उसके सामने आया कि लाभ तो नही कमाया, किन्तु मूल गँवा बैठा—

कउनु बनिजु मोहि आगे आवा। लभ न विसवा मूर गँवावा (चादा ५८ ४)

जौनपुर के बाजार मे लोग किसी न किसी व्याज से रूपवती स्त्रियो से बोल कर आत्मसुख के लिए स्वय बिक जाते थे। इस प्रक्रिया मे दृष्टि की प्रसन्नता का लाभ ही उनके हाथ लगता था—

विक्कणइ वेसाहइ अप्प सुखे डीठि कुतूहल लाभ रह।
—की० २ १९ ११८

विनिमय

सम सामयिक जीवन की आर्थिक गतिविधिया मुख्यत नगरो[१] मे केन्द्रित थी। उनमे विभिन्न वस्तुओ की भिन्न-भिन्न पण्यवीथी[२] प्रस्तुत थी। पट्टन के हाट जनाकीर्ण होने से अगम्य थे। उनमे क्रय-विक्रय की सक्रिय व्यवस्था थी। देश मे अन्तर्देशीय[४] तथा विदेशी[५] व्यापार द्वारा अपेक्षित पदार्थो का विनिमय क्रियमाण था।

मूल्य—सामान्यत वस्तुएँ व्यावहारिक मूल्य पर विकती थी। 'वेवहार मुल्लहि वणिक विक्कण कीनि आनहि वव्वरा[६]।' की० २ १८ ९०। मूल्य की अस्थिरता दुर्दिन का सूचक माना जाता था। इब्राहीम शाह द्वारा असलान पर आक्रमण के समय जल मोल मिलता था, वह भी छान कर पिया जाता था। पान का मूल्य सोने का टक था। इधन चन्दन के भाव और बहुत कौडी देने पर थोडा अन्न मिलता था। घी के लिए घोडा देना पडता था —

सेरे कीनि पानि आनिअ, पीवए षणे कापडे छानिअ।
पान क सए सोना क टङ्का, च दन क मूल इन्धन विका।

---

१ कन्नौज, पृ० ४, जौनपुर की० २। २ देखिए अध्याय ३ नगर का भाग।
३ पृ० ४ २५, २४। ४ दक्षिण से हरदी पाटन का व्यापार, चादा० ३४१।
५ जिण १७९ २०१। ६ वर्बर तुर्क।

बहुल कोडि कनिक थोड, घीवक बेचा दीअ नाड ।
कीं० ३ ९६-१०१

बिना मूल्य क चाहे जितना उपयोगी वस्तु हो, निरथक है । किन्तु माग तथा सम्मान क मेल स मूल्य मे वृद्धि हा जाती है । रानी मालवणी सोचती है कि पति विहीना वह अपना मूल्य काडी भी नहा पाती किन्तु पति द्वारा उसकी माग होने पर वह अपना मूल्य लाखो मे पाती है—

प्रीतम हूता बाहिरी कवडी ही न लहाइ ।
जब दखू घर आङ्गणइ लाखे मोल लहाइ ।। ढामा० २७० ।

मुद्रा—वस्तु विनिमय मे सुविधानुसार काई भी अपेक्षित सामग्री क्रय विक्रय का माध्यम वन सकती है । किन्तु मुद्रा सर्वोत्तम विनिमेय ह । समसामयिक लाक धारणा थी कि ऊँचे छाजन वाला स्वच्छ भवन, विनयशील युवा पत्नी, वित्तपूर्ण मुद्रागृह तथा सामयिक वर्षा सुखद हाते हैं—

उच्चउ छाअण विमल घरा तरुणी घरिणी विणअपरा ।
वित्तक पूरल मुद्दहरा वरिसा समआ सुक्खकरा ।। प्रा० पै० १ १७४ ।

दाम[1], कौडी[2] तथा सुवर्ण[3] मुद्राओ का सामान्य प्रचलन था । किन्तु इनके माप, तौल तथा मूल्य पर प्रकाश नही पडता है । कौडी का व्यवहार विदेशी व्यापार मे भी था ।[4] जौनपुर बाजार मे तुर्कों द्वारा 'दिरम'[5] से शराब-कवाब, खरीदत दिखाया गया है । 'प्रबध चिन्तामणि' मे 'दीनार' और 'विशोयक'[6] का भी उल्लेख है ।

क्रय शक्ति—जौनपुर म मध्या ह समय सम्पूण पृथ्वीमण्डल की उत्तम वस्तुएँ विक्रय हेतु आती थी । अनक प्रकार के व्यापारी बाजार घूमन आते थे तो एक क्षण मे सब बिक जाता था । सभा कुछ न कुछ क्रय-विक्रय करते थे । 'मध्यान्हे करी बेला

---

१ चादा० ३७५, जिण० ६१, ७२, १०३, १३०, वर० ३ ३२ क, ४ ३८ क, कीं० १ १६ ४४ प्रचि० ३ ६८, ४ १३४, १८६ । इसका सम्बध ग्रीक द्रव्य से सभाव्य है । ई० पू० २०० ई० मे भारत के साथ घनिष्ट सम्पर्क था ।

२ जिण १८४, कीं० ३:२३ ९९, ढोमा० ३७० ।   ३ वीरा० ९७, चादा० ३३८, प्रचि० १ ७, ९, २ ३९ । मुद्रा रूप मे सुवण का उल्लेख कात्यायन, कौटिल्य तथा पाणिनि को रचनाओ मे पाया जाता है ।   ४ जिण० १८४ ।

५ कीं० २ २८ १७८ ।   ६ प्रचि० १४ ।   ७ वही, ३ ११० ।

समद्द सा- सकल पृथ्वीचक्र करेओ वस्तु विकाइबा काज । बहुल भांति वणिजार टा- हिंडए जवे आवथि सने एक्क मवे विक्कणथि सब किछु किनइत पावथि। (की० २ १८ १०६-११८) अपनी पहली प-नी मारवणी के पास जाने के लिए ढो-ा जब राना मालवणी से बहाना बनाता है कि मुझे -डर (स्थान विशेष) की यात्रा पर जान दीजिए, वहा आभूषण बनवा-बनवा कर भेजूजा तो मालवणी कहता है—

ईडर की धर अउलगण, हूँ तउ जाणा ण देसि ।
घर बैइठाही आभरण, माल मुहगा लेसि ।। ढ़ोरा० ३२५ ।

—मैं तुम्हे ईडर-ग्वास को नही जान दूँगी । घर बैठे ही महा मूल्य पर आभूषण क्रय कर लूगी ।

सामान्य जीवन मे अनिवाय वस्तु सम्बन्धी क्रय-विक्रय की कोई समस्या नही है । कला, यात्रा और घोडे बहुत महगे है । दान वीरता युग धर्म सा था । ४ गाथा का मूल्य ४ करोड सुवण था ।[१] राइ रूपच द ने गीत, नाद, रसपूण कवित्व, कहानी तथा गाथा रात-दिन सुनने के लिए ग्राम और कोठार प्रदान किया—गीन नाद रस कवित कहानी कथा कहि गावनिहार । मोर मन रइनि दिवम सुखि राखहि भूजहि गाउ कोठार ।। चादा० ६१ । सेठ जीवदेव न शिल्पकार का एक लाख दाम और रेशमी वस्त्र दिया । एक लाख दीनार मे एक लाह पुतला क्रय किया गया । जीर्ण प्राकार (जूनागढ) के माग की पद्मा (पत्थर की सीढी) निर्मित करान मे ६३ लाख दाम लगे ।[४] चमत्कार के भ्रम मे डालने के लिए तीन लाख मुद्राएँ व्यय की गई ।[५] वीसल देवरासा (६७) मे सदशवाहक पडित न राजस्थान से उडीसा के लिए यात्रारम्भ के समय एक सहस्र मुद्राये माग व्यय के लिए बाध ली । लारिक न पडिन को हरदी (उत्तर प्रदेश) से गोबर नगर तक साथ चलन के लिए दा लाख दाम ओर एक सहस्र बरदिश (बला का बाझ) प्रदान किया ।[६] सुलतान इब्राहीम के घोडो का मूल्य सुवण के पवत मेरु मे भी अधिक था---लष्ख सख जानु घार । जासु मूले मेरु घोर । की० ४ २१ ४१ । पूगल नगर मे एक सौदागर आया । उमके पास अनेक घोड थे । उनको बेचने से एक-एक के लाख-लाख दाम मिलत थे ।

एक दिवस पूगल सहर, सउदागर आवत ।
तिण पइ घाडा अति घणा, बेच्या लाख लवत ।। ढाल० ८३ ।

१ प्रचि० १ ६ । २ जिण० १०३ । ३ प्रचि० १ ४ ।
४ वही, ४ १६४ २०४ । ५ प्रचि० ३ ११८ । ६ चदा ३७५ ।

यह वणन अतिशयोक्तिपूण लगता है क्योकि इतिहास के अनुसार समसामयिक काल मे चीजे सस्ती थी और उनमे घोडा विशेष कर ।[१]

ऋण—ऋण के प्रकार तथा उसके व्याज के सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश नही पडता । राजमती वीसलदेव के वाद-विवाद से यह लोक धारणा व्यक्त होती है कि ऋण से आक्रान्त व्यक्ति घर गृहस्थी का मोह त्याग कर विदेश का पलायन कर जाता है—

रिण का चपिया घर न सुहाइ ।
कइ मुहडउ लेइ नइ ऊनग जाइ ।। बीरा० ३९ ।

किंतु विदेश मे तो ऋण भी नही मिलता । कीर्तिसिंह का इसका कटु अनुभव था जिससे उनको कहना पडा कि— णहु विदेस रिण सभरइ' ।[२]—विदेश मे ऋण भी नही मिलता । वस्तुत उत्तम काय के लिए अपने परिचितो से ऋण सहष मिलता है । दुष्ट असलान को दण्ड देने हतु जाते समय माग मे अनेक परिचितो ने सहष ऋण-दान द्वारा कार्तिसिंह की सहायता की है ।

माप-तौल—समय सूचक माप सर्वाधिक और सजगतापूवक व्यवहृत है। इसकी सबसे छोटी इकाई तद्[४] (तत्काल), नयन सयन (निमिष मात्र), क्षण[६] तथा पल[७] है । ग्रन्थकार असाधारण रूप से पल की सूक्ष्मता व्यक्त करने मे सजग है। दासी द्वारा सूचना पाने के ९९ पल अनन्तर पृथ्वीराज, कयमास को मारने के लिए उद्यत हो गया ।[८] कयमास-काड के सम्बन्ध मे पृथ्वीराज रात मे दो घडी पाच पल दौडा था ।[९] तीन दिन, तीन रात्रि तथा तीन पहर मे पल भर कम था जब सामन्तो सहित पृथ्वीराज दिल्ली से कन्नौज पहुँचा ।[१०] आजकल की भाँति, समय को वार (बेलासमय) भी कहा है ।

इकु दिन प्रथीराज रस सुष कढ्ढी तिह वार ।
सिंगिनि सर वर अग्र विन सत्त हनन घरिआर ।। पृ० १२ २७

—एक दिन पृथ्वीराज ने आनन्द की बेला मे बताया कि अग्रभाग रहित वाण से भी मैं सात घडियालो को वेध सकता हूँ । 'नयन सयन' तथा 'क्षण', किसी एक काम

१ द० अध्याय १, आर्थिक स्थिति, पशुपालन और अन्तर्देशीय व्यापार ।
२ की० ३ २६ १०९ । ३ वही, २ १५ ६९ । ४ पृ० १ ३ १६ ।
५ पृ० ३ ४ ६ । ६ निमिष्ण, पृ० ३ ३२ ५, खिनन, पृ० १२ ९ २, षिन, पृ० ३ ३८ १, ६ १ १ षिनुक, पृ० ५ ४५ ५ । ७ पृ० ३ ९ १, ३ १८ ३, ३ ४ ६, ४ ५ ९ । ८ पृ० ३ ९ १ । ९ पृ० ३ १८ ३ ।
१० पृ० ४ ५ १ ।

के पूरा होने तक के समय को भी कहा गया है। पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों से कहा कि यदि तुम क्षण भर रण क्षेत्र में रुको तो मैं कन्नौज नगर की प्रदक्षिणा कर आऊँ। 'आज' तात्कालिक काल और 'आजकल' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

गणना में संख्या का प्रयोग आवश्यकतानुसार सामान्य रूप से कुशलतापूर्वक हुआ है। तौलने में 'काटा' और 'तिल' व्यवहृत हैं। जल की गहराई 'पुरिस' माप से व्यक्त की गयी है। तौलने वाला 'बया' कहा जाता था।

सारांश—

रहन सहन का स्तर ऊँचा था। जीवनोपभोग सम्बन्धी वस्तुएँ उपलब्ध थीं। उत्पादन के लिए भूमि पर्याप्त थी। पूँजी का अभाव नहीं था। श्रम, किन्तु श्रमिक नहीं, मान्य था। अर्वाचीन सहकारी तथा ज्वाइंट स्टाक कम्पनी की भाँति उत्पादन की सामूहिक व्यवस्था नहीं थी। प्रायः व्यवसायी अकेला ही पूँजीपति श्रमिक प्रबन्धक तथा अपने जान-माल का जोखिम उठाने वाला होता था। फलतः बिना वितरण किए उत्पादन की समस्त आय का अधिकारी स्वयं व्यवसायी ही होता था। स्थानीय, अन्तर्देशीय तथा विदेशी व्यापार व्यवस्थित थे। उनके केन्द्र नगर थे। सामान्यतः, मूल्य निश्चित था। मूल्य की अस्थिरता दुर्दिन की द्योतक थी। मुद्रा में दाम, कोडा तथा सुवर्ण का सामान्य प्रचलन था। वस्तुओं का क्रय करने में लोक सशक्त थे। कला, यात्रा एवं घोडे बहुत महंगे थे। गणना तथा समय सूचक मापों के उल्लेख पर्याप्त हैं।

———

१ पृ० ६ १ २, १२ ६ २, ३ ३८ १, ३ ४ ६, ४ ४५ ५।

२ जउ अच्छुउ षिन षेत मह तउ दक्खिन नयन विराज। पृ० ६ १ २।
इस संदर्भ में टिप्पणी १ में बताए गए अन्य संकेतों को भी देखिए।

३ अमात्य ने जयचन्द के यज्ञ के लिए कहा कि—
विद्वजन बोलि दिन धरहु आज, पृ० २ ३ ५४।

४ पृथ्वीराज के गुरु गोविन्दराज ने जयचन्द के दूत से कहा कि 'कलि मध्धि जग्ग को करइ आज' —पृ० २ ३ १४। ५ प्रा० पै० १ १०।

६ साठे पुरिसे नीर—ढोमा० ६६२। ७ च दा० ३७२।

अध्याय ७

राजनीतिक दशा

राजनीति

भारतीय जीवन म धम अथ, काम आर मोक्ष को अत्यधिक प्रधानता मिली है। इस दृष्टिकोण स राजनीति गोण ह। यह वर्णाश्रम के क्षात्र धर्म का एक अङ्ग मात्र है। भारतीय नीति-शास्त्र के इतिहास का अवलोकन करने मे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत मे राजनीति नही, अपितु धर्म प्रधान हे। वैदिक, ब्राह्मण, उप निषद, धर्मसूत्र तथा स्मृति काल मे सापक्षत राजनीति का चर्चा नगण्य है। तदनन्तर रामायण, महाभारत तथा पुराण काल मे राजनीति की महत्ता मे वृद्धि अवश्य हुई है किन्तु उसका सम्ब ध र्म मे नही छूट पाया है। रामायण मे यशस्वी राजा के लिए बलशाल' उच्चकुलीन दयावान्, जितन्द्रिय, कृतज्ञ एव सत्यवादी होना अपेक्षित बताया गया हे।

सत्वाभिजनसम्पन्न सानुक्रोशो जितेन्द्रिय ।
कृतज्ञ सत्यवादी च राजा लोके महीयते। किष्किधाकाड, सग ३४, श्लोक ७

विष्णुपुराण[१] के अनुसार राजा का सत्यवादी, दानशील, लज्जावान्, क्षमाशील, धमज्ञ कृतज्ञ, दयालु प्रियभाषी तथा यज्ञ परायण हाना चाहिए। यदु (ययादि के पुत्र), असमञ्ज, (सगर-पुत्र), बेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख तथा निमि आदि अनेक पौराणिक राजा चारित्रिक दोष के कारण पदच्युत किए गए ह। वस्तुत भारत मे आध्यात्मिक प्रयत्न द्वारा यथार्थ जीवन को आदर्शोन्मुख करने पर बल दिया गया हे।

राजा को ८८ राजनीतिक तत्वो मे कुशल होना अपक्षित हे। वण रत्नाकर (२ १३ ख-१६ क) मे राजनीति क उक्त तत्त्व इस प्रकार वर्णित ह—अश्व शिक्षा,

---

१ अश १, अध्याय १३, श्लोक ६१-६३।

गज शिक्षा, स्त्री चरित्र, सान्तन, ज्योतिष, वैद्यक, चूडामणि, इन्द्रजाल, आकरज्ञान, रत्न परीक्षा, तौर्य्यत्रिक, वीणावाद्य, हरमेखला, अश्वबन्ध, गजबन्ध, मृगबन्ध, मीनवध, लीनवन्ध, चट (१४वा और १५वा भाग अप्राप्य है) १६ क-सीनता, दुगरक्षा, दुग प्रवेश, व्यसन, परीहार, आत्मरक्षा, मत्रगोपन, राज वश्यता, भृत्यभरण, उपजाय सेनाप्रचार, देशरक्षा, बलाबल-ज्ञान, कोष सचय, व्युह रचना, व्युह प्रवेश, व्युह भङ्ग तथा शशय विचारादि। ८४ राजनीतिक गुणो के अतिरिक्त राजा को दृढ, दूर दुष्कर, लम्ब, लक्ष तथा छिद्र गुण सम्पूण, आठ उपसिद्धि स समन्वित, आठ प्राकृत सिद्धि मे कुशल आठ महासिद्धि मे पारगत छत्तीस पानायुध तथा दडायुध मे कृत अभ्यस्त, दया, दान, दाक्षिण्य, विनय, सेवन, आहरण, आश्वास, इगितज्ञान, कौशल, सौहृद, उपचार, धर्म्मज्ञता अनालस्य, साहस, सौवच, सदाचार, सन्तोष, नीतिज्ञान, सभा-पाटव, ऊह, आपोह, वितक्क, छिद्रान्वेषण आदि शिष्टधम से सयुक्त, सात्विक, सुशील, सत्यसध, सज्जन, सुजानि, शास्त्रज्ञ, सेवक, सुवेष, शुद्ध, सुन्दर, सानुव ध, सुवचन, साचार, सकरुण तेरह उपनायक गुण से पूण होना चाहिये।

राजा को परामश देने वाले राज सभासद होते थे—यथा मत्री, पुरोहित, धर्म्माधिकरण, सन्धिविग्रहिक, महामहत्तक, सेनापति, युवराज, नायक, प्रतिबल, करणाध्यक्ष शान्ति करणिक, स्थानातरिक, राजगुरु, राजवल्लभ, स्थगीवित्त अहि-कान्कि, नैव धिक आक्षपटलिक, खगग्राह, प्रमत्तवार, विश्वास, पूष्पभट्ट, शयनपाल, अन्तरग, अगरक्षक, आग्रजाणिक, सावत्सर, अश्ववाहक, हस्तिपक, क्रीडक, नम्म-सचिव, दण्डपान, दुगपाल, आज्ञापाल, गूढपुरुष, प्रणिधि, वार्त्तिक, सूपकार, सूपकार-पति, सम्बाहक, प्रसाधक, वट, गरिष्ट, वलिष्ट नत्तक, गायन, राजजीवक, कुहक, कुशीलव, वचक तथा भावक आदि।

राजनीति के ८४ तत्व, राजा के अपेक्षित गुण तथा उसके परामशदाताओ पर दृष्टिपात करने से समसामयिक राजनीतिक गतिविधियो की दिशा आसानी से समझी जा सकती है। तत्कालीन राजाओ के चरित्र मे धर्म और नीति की प्रधानता थी—'धरम नेम जाणइ ते घणउ'। राजनीति मे उदात्त बिचार है। विदेशी असलान राजा गणेश्वर से बुद्धि, विक्रम तथा बल मे पराजित होने पर उनके पास बैठ विश्वास दिलाकर उ हे मार डालता है। किन्तु गणेश्वर का पुत्र कीर्तिसिंह दान मे प्राप्त राज्य को ठुकरा देता है। अपने बाहुबल से पैतृक राज्य का अधिकारी होता है। रणक्षेत्र से भागते हुए असलान को प्राणदान देता है। पृथ्वीराज, गोरी को सात बार हराकर

१ प्रच० ३६।

छोड देता है। किन्तु गोरी प्रथम जीत मे ही पृथ्वीराज को अन्धा बना बन्दीगृह में उन्हे नाना प्रकार की यातनाये देता है। तब भी गोरी को धाखे से मारने के लिए पृथ्वीराज उद्यत नही होता। 'अह त्व, त्व त्व' का अजपा जाप और ब्रह्म के साथ समभाव प्रकट होने से उन्होने गोरी को मारकर मुक्ति प्राप्त की —

ह तुह तु तुह अजप जप्पि सरु वरु करि मिल्लइ।
प्रथीराज आज तिहिं मत्ति करि करि नरिद जिनि उव्वरहि ।।[१]

इस प्रसग मे, गजनी मे गोरी शाह के दरबार मे सम्मानित व्यक्तियो पर एक दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा—

राहमी, रोहगी, रुहेले, सुरमी। सुह नी, स्रवनी, सुहक्के, करमी।
वरेते, तरङ्के, सुधारे, सुमेले। तुरक्का, ममक्का, मनन्न, जलेले।
हवस्सी, हकम्मे, रह ने, मुह ने। पवगे, पवङ्गी, पवन्न, सुप न।
मिवाजी, विराजी, सकज्जे, हसल्ले। सम नी, सुस ना, मुगल्ले, मसल्ले।
सुभ सेष जादे, अवादे, पठाणे। दिपे साहि गारी गरज्ज मुठान ।।

राज्य—वण रत्नाकर[3] (मिथिला) म उल्लिखित ह कि राजसभा मे लाल चोल, डाहाल, चौहान, नेपाल, गौन, भोट, कार्णाट, श्रीहट्ट, वीर कोकण, कामरूप, उत्कल, सिहल, मालव, मगार, गुजर, मल्लिवार, महाराष्ट्र जरासिन्ध, अयोध्या, मगध तथा वैशनावर प्रभृति अनेक राष्ट्र के शासक राजा की सेवा मे रत थे। इससे इस परम्परा पर प्रकाश पडता है कि अनेक राजे एकत्रित होकर सभा किया करते थे। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्य नही प्रमाणित होता कि चोदहवी शताब्दी मे ऐसी सभा सम्पन्न हुई थी। यह, तत्कालीन मिथिला राज की महत्वाकाक्षा हो सकती है क्योकि करनाट के राजे उस समय प्रगतिशील थे।

उपरोक्त राष्टो की सूची सम सामयिक ऐतिहासिक देशो से मेल नहीं खाती है। यह नामावली परम्परागत रूप मे उल्लिखित है। पुराणो के भुवन काशो का जनपद सूचिया प्रसिद्ध हे। महाभारत[४] तथा मारकडे,[५] वायु,[६] ब्रह्माण्ड,[७] मत्स्य,[८] वामन[९] और ब्रह्म[१०] आदि पुराणो मे प्रारम्भ हुई यह परम्परा विवेच्य युग के अन तर भी प्रचलित है। कालान्तर मे इस प्रकार की सूची मे सस्करण होता रहा। इस्लाम काल

१ पृ० १२ २८। २ पृ० १२ ११। ३ ३ २२ क।
४ भीष्म पव, अध्याय ९। ५ अध्याय ५७। ६ अध्याय ४५।
७ अध्याव ४९। ८ अध्याय ११४। ९ अध्याय १३। १० अध्याय २७।

की 'पृथ्वीचन्द्र चरित'[१] (स० १४७८) मे ६८ देशो के नाम गिनाये गये हैं। 'सभा श्रृङ्गार' (१६वी शताब्दी) मे देशो के नामो की चार सूचिया सकलित है।[२] पहली सूची मे १५१ नाम हैं। वण रत्नाकर के खडित भाग मे देशो की वृहद् नामावली अवश्य रही होगी। ऊपरलिखित कतिपय राष्ट्रो के नाम तो 'स्थान वणना' के सदर्भ मे आ गये हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से चौदहवी सदी मे लगभग समस्त भारत पर तुर्कों का शासन था। इनमे अलाउद्दीन (सन् १२९६-१३१६), मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५ १५ तथा फिरोजशाह (सन् १३५१-८८) बडे सुलतान थे। अलाउद्दीन तथा फिराज शाह की चर्चा विवेच्य वाड्मय मे हुई है। प्राकृति पेगलम मे हम्मीर के प्रशस्ति गान मे उसके प्रतिद्वन्दी म्लेच्छ का वर्णन हुआ है जो सभवत अलाउद्दीन ही है। मुल्ला दाउद ने अपने ग्र थ 'चादायन' क प्रारम्भ मे शाहे वक्त फिरोजशाह का परम्परानुसार स्तवन किया है।

अलाउद्दीन कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने मैत्री भाव उत्पन्न कर साम्राज्य को सुस्थिर बनाने हेतु गुजरात मे हिंदू प्रेमी अलप खा को शासक नियुक्त किया जिसने अनेक मंदिरो के जीर्णोद्धार करने मे सहायता प्रदान की।[३क] अलाउद्दीन की इस प्रकार की राजनीतिक बुद्धि की ओर भी इतिहासकारो का ध्यान जाना अपेक्षित है।

स्वतत्र हिन्दू राज्यो मे मिथिला, मेवाड तथा उडीसा की चर्चा हुई है। मिथिला प्राचीन काल मे एक प्रसिद्ध राज्य रहा है किन्तु बौद्ध युग मे यह, मगध का एक भाग हो गया। विवेच्य युग मे यह पुन स्वतत्र प्रतीत होता है। इस पर कर्णाट तथा औइनवर वश[४] का शासन है। औइनवश के राजा कीर्तिसिह के क्रिया-कलाप का कीर्तिलता मे वर्णन है। इसी प्रसग मे उनके वश तथा असलान द्वारा उनके पिता गणेश्वर के बध का भी उल्लेख है।[५] प्राकृत-पेगलम के उदाहरणो मे रणथभार के राजा हम्मीर की म्लेच्छ राजा अलाउद्दीन की तुलना मे प्रशस्ति की गई है। वीसलदेव रास और चादायन के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि उडीसा स्वतत्र तथा समृद्धिशाली राज्य है। यहा राजनीतिक हलचल के चिह्न नही दिखाई पडते हैं।

१ अध्याय ? । २ पृ० ३-५ । ३ ? ७१, ९२, १९० आदि ।
३क समरा रास । ४ 'वण रत्नाकर' के लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर की दूसरी कृति धूर्त समागम द्रष्टव्य है। ५ देखिये कीर्तिलता, कीर्तिपताका कामेसर, भोगीसराय, गअणेश वीरसिह तथा कीर्तिसिह—की० १ २२ ९९-२७ ९० ।
६ देखिए कीर्तिलता पल्लव १, २ ।

राजनीतिक स्थिति (क) 'असबिअत' की प्रधानता—

विवेच्य वाड्मय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि विदेशी आक्रमणकारी मुसलमान अब देश के स्थायी निवासी हो गए है। देश की राजनीति मे उनकी प्रधान सत्ता है। विजेता मुसलमान जाति मे 'असबिअत'[१] और विजित हिन्दू जाति मे 'पुरुषार्थ' प्रवृत्तिया प्रमुख है और ये सक्रिय रूप से पतनोन्मुख है।

'असबिअत' प्रारम्भ मे पक्षपात, शक्ति अजन तथा प्रतिरक्षा की तीव्र भावना उत्पन्न कर प्रभुत्व बढाने के लक्ष्य की ओर ले जाती है। इसमे सर्वोच्च प्रभुत्व, शाहशाहियत, लोकप्रियता पर नही अपितु आतङ्क पर आधारित है। समसामयिक प्रसिद्ध इतिहासकार इब्ने खलदून (१३३२-१४०६) के अनुसार 'असबिअत' का अन्तिम एव एकमात्र उद्देश्य आतङ्क मूलक सर्वोच्च राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करना होता है[१]। काला तर मे प्रभुत्व की गम्भीरता के अनुपात मे शाहशाह को भोग-विलास एव समृद्धि के भोग की सुविधा सुलभ होती है जिसके लिए उच्च स्तरीय अधिकारियो मे पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष तथा अधिकार लोलुपता की भावना को शक्ति मिलती है। दूसरी ओर, कोई भी शाहशाह प्राप्त सुविधा को प्रसन्नतापूवक छोडने को तैयार न मिलेगा। वह जब तक पूणरूपेण विवश नही हो जाता शाहशाहियत को हाथ से नही जाने देता। सङ्घष द्वारा प्राय युद्ध एव रक्तपात के माध्यम से ही सल्तनत मे प्रशासकीय परिवतन सम्भव हो पाते है। तब तक मूल 'असबिअत' की शक्ति क्षीण हो जाती है। फलत राज्य अनेक भागो मे विभाजित होकर छिन्न-भिन्न हो जाता है। केन्द्रीय 'असबिअत' के निर्बल होने पर उसके अधीनस्थ अन्य विभिन्न असबिअतो की महत्वकाक्षाये क्रियाशील हो जाती है। अत, असबिअत' से उपार्जित सल्तनत के विरुद्ध सदैव विद्रोह का क्रम क्रियमाण रहता है। यह तथ्य इस्लाम के अभ्युदय से सम सामयिक एव आधुनिक काल पयन्त अनेक देशो मे द्रष्टव्य है।[२]

कीर्तिसिंह ने इब्राहीम शाह से बताया कि 'असलान ने आपके फरमान की अवहेलना की है। उसी शेर ने बिहार पर कब्जा किया है। उसके चलने पर चामर डोलने है। सिर पर छत्र रखकर वह तिरहुत से कर उगाहता है। असलान राज्य कर रहा है इस पर भी यदि आपको रोष न हो तो तुरन्त अपने अह को तिलाञ्जलि

१ इब्ने खलदून का मुकद्दमा, अनुवादक डा० सयिद अतहर अब्बास रिजवी हिन्दी समिति ग्रन्थमाला ४८, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उ० प्र० पृ० ७८।

२ वही पृ० १०४-१२०।

दान कर दीजिए । भुवन मे आपका प्रताप जाग्रत है । आपने खग से शत्रु का दलन किया । आप की सेवा करने सभी राजे आते हैं । आपकी कीर्ति सब लोग गाते हैं । यदि आपकी शत्रु के नाम से असहना (रुष्ट) न होगे तो दूसरे बेचारे क्या कर सकते है । आप तो वारत्व के स्थान है । यह सुनकर सुलतान को क्रोध हुआ । दोनो भुजाये रोमाञ्चित हो उठी । दोनो भौहो मे गाठे पड गयी । अधर बिंब प्रस्फुटित हुये । नयनो ने रक्त कमल की शोभा धारण की । खान तथा उमरा आदि सभी को आज्ञा हुई कि अपनी-अपनी तैयारी पूरी करो, आज तिरहुत पयान होगा । सुलतान गरम हुये । दरबार मे शोर मच गया । ससार जलन लगा, जैसे आज ही लङ्का उजड गई हो ।''[1]

तुर्कों की 'असबिअत' पर आधारित आतङ्क मूलक शाहशाहियत मे अधिकार को उत्सग करने की भावना का अभाव है । हिन्दुओ के 'पुरुषाथ' प्रधान राजत्व मे धम मोक्ष तथा उदात्त पौरुष की भावनाये अधिक सशक्त हैं । भोग-विलास को सहज भाव से त्यागने मे उदासीनता की अनुभूति नही दिखाई पडती । माता, गुरु, मन्त्र तथा मित्र सभी कीर्तिसिंह को सीख देते हैं कि शत्रुओ को मित्र बनाकर तुम्हे तिरहुत का राज्य करना चाहिये—

माए जम्पइ अवरु गुरु लोए
मन्ति मित्र सिक्खवइ
तुम्हे सत्तुहिं मित्त कए भुजहु तिरहुत राज ।[2]

कीर्तिसिंह का दृढ विचार है कि—

'मज्झु पियारी एक्क पइ वीर पुरिस की रीति
मान विहूना भोअना सत्तुक देअल राज
सरन पइट्ठे जीअना तीनू काअर काज
नीच समाज न करओ रति
ते रहउ कि जाउ कि रज्ज मम ।'

—मुझे एकमात्र वीर पुरुष की रीति ही प्यारी है । मानहीन भोजन करना शत्रुप्रदत्त राज्य भोगना तथा शरणागत होकर जीना, ये तीनो कापुरुषो के कार्य है मैं नीच का कभी साथ नही करू गा, चाहे राज रहे अथवा जाय । एतदथ लोग, परिवार, राजभोग, वाहन, परिजन, जननी, जन्मभूमि, नव-यौवना पत्नी और समस्त धन वैभव का त्याग कर पिता के वैर का बदला लेने के लिए गणेश्वर के पुत्र इब्राहीमशाह से मिलने चले—

---

१ की० (शिव०) ३ २२-४२ । २ वही, २ २३ २७ ।

लोअ छड्डिअ अवरु परिवार
रज्ज भोग परिहरिअ वर तुरङ्ग परिजन विमुक्किअ
जननि पाअ पन्नविअ जम्मभूमि को मोह छाड्डिअ
धनि छोड्डिअ नवयौव्वना धन छोड्डिआ बहुत्त
पातिशाह उद्देसे चलु गअन राय को पुत्त।[१]

प्रद्युम्न के पिता ने उससे कहा कि 'तुम द्वारिका ले लो और राज्य का सुख भोगो। तुम राज्य काय मे धुर धर हो, ज्येष्ठ पुत्र हो, तुम्हे बहुत विद्याबल प्राप्त है, तुम्हारे पौरुष को देव भी जानते है, तुमने अनेक रण जाते तुम अभी तप न धारण कर, राज्य सुख भोगो।' यह सुनकर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया कि 'राज्य क्या करना है, माता पिता और कुटुम्ब किसके हे? एक ही घडी मे सब नष्ट हो जायेगे।' यह कहता हुआ राजपाट छोड प्रद्युम्न ने नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षा ले ली।[२] बीसलदेव,[३] राजा चन्द्रशेखर,[४] रावल धवलदेव[५] नेमिनाथ[६] तथा पृथ्वीराज[७] आदि सभी के लिए धन, स्त्री और मरण तृण से भी अधिक महत्त्वहीन हैं—

'जिहि धन त्रिय मरणु त्रिनि वरिजानइ।' पृ० १० ५ ३

(ख) सङ्घर्ष का युग—

जहा तुर्कों की 'असबिअत' राज्य प्राप्ति के लक्ष्य की ओर ले जाती है वहाँ हिन्दुओ के इस प्रकार के विचार राज्य से वचित होने के सूचक है। किन्तु दोनो जातियो के शासको द्वारा राज्य प्राप्ति के लिए सघर्ष बराबर होता रहा है। हिन्दू राजन्य इस प्रयत्न मे थे कि वे अपना खोया हुआ राज्य वापस पा जायँ।

'अलुता जे धरन्ते कलह करन्ते हिन्दू उतरथि धूमा।'

—जो अभी तक लुप्त होने से बचे रह कर अपने राज्य को धारण किए हुए थे वे हिन्दू राजा युद्ध के लिए धुधुवा कर ऊपर उठ रहे थे।

हिन्दू और तुर्क दोनो वर्गो के राजनीतिक सङ्घर्ष मे प्रतिहिंसा तथा प्रतिरक्षा की भावना प्रमुख होनी चाहिए थी किन्तु समसामयिक अधिकाश सङ्घर्षों के पीछे व्यक्तिगत प्रभुत्व एव अपहरण की भावना प्रधान है। लूट मार सम्बन्धी तुर्कों के

१ की, २ ५४-५८। २ प्रच० ६७६ ६८८। ३ बीरा० ६२।
४ जिण० ४७६-४८०। ५ कछूलीरास। ६ नेमि० २३।
७ पृ० १० ५ ३। ८ की० ४ ३० ११६।

व्यवहार से प्रसिद्ध इतिहासकार इब्ने खलदून (१४वी सदी) का कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि 'अरब, तुर्क, तुर्कमान, कुर्द तथा इन सरीखी अन्य कौमे भाले की नोक से अपना जीविका प्राप्त करती हैं। अन्य लोगो के हाथो मे जो कुछ है उसे ये अपनी जीविका का साधन समझती हैं। जो अपनी सम्पत्ति को इनके हाथ से बचाते हैं उनसे युद्ध करने पर उद्यत रहती हैं। इन विचारा के अतिरिक्त इनका कोई अन्य लक्ष्य नही प्रतीत होता। इनका पूरा ध्यान इसी ओर आकृष्ट रहता है और इनका सदा यही दृष्टिकोण होता है कि किसी प्रकार अन्य लोगो के हाथ से धन-सम्पत्ति छीनी अथवा ऐंठी जाय।[२] तुर्कों द्वारा विजय के मुख्य कारणो मे 'असबिअत धूर्त, धोखा तथा रहस्यपूर्ण खुदाई क्रियाओ'[३] के अतिरिक्त निदयतापूर्वक लूट-मार का डर भी है।

विवेच्यकाल तक मुसलमानो का साम्राज्य स्थापित हो चुका है किन्तु हिन्दू तथा मुसलमान दोनो के समक्ष समष्टिमूलकता की दृष्टि का अभाव है। राजवश तथा व्यक्तिगत हित की प्रधानता है। देशभक्ति की भावना नही है। निजी स्वार्थ प्रबल है। अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए शासकगण विरोधी जातियो से भी सन्धि कर लेते हैं।[४]

१ की० २ तथा देखिए की० ४ ३४ १३४-५ —दलि विहलि चूरि चाप करन्ते— हमले मे पीसने तथा चूर्ण करने के कार्य होते थे। रणमल्ल० ३८-४०।

"लूलि अज्जन पेटे वए'—की० ४ २२ ६२
—लूट की ही कमाई से पेट का काम चलता था।

'असाए वृद्धि कन्दल खए' की० ४ २२ ६३।
—दुख, कलह तथा क्षय की वृद्धि करते थे।

"दूर दुग्गम आगि जारथि। नारि विभालि बालक मारथि।" की० ४ २२-९०-९१
—दूर तथा दुर्गम स्थानो पर पहुँच कर आग लगा देते थे। स्त्रियो को व्याकुल करके बालको को मार डालते थे।

"दलि विहलि चूरि चाप करन्ते।" की० ४ ३४ १३४।
—लोगो को पीस कर व्याकुल कर तथा चूर्ण करके दबाते थे।

२ इब्ने खलदून का मुकद्दमा अनु० डा० सैयद अतहर अब्बास रिजवी, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला ४८, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उ० प्र०, पृ० २९९।

३ वही, पृ० ३०८। ४ कीर्ति सिंह के अतिरिक्त प्रचि० ४ १९१।

शासन-प्रवन्ध—

शाहशाह—'असबिअत' द्वारा प्राप्त सल्तनत मे पहले कोम के लोग मिलजुल कर राज्य की एकता, स्थायित्व, प्रभुत्व, विस्तार तथा उन्नति के लिए जी-जान से प्रयत्नशील रहते हैं किन्तु कालान्तर मे शाहशाह सत्ता को अपने मे केन्द्रीभूत कर भोग-विलास मे फँस अन्य सब की असबिअत' को कुचल देता हे ओर उनको स्वतन्त्रता से वचित कर देता है। शाहशाह सबसे मिलना भी बन्द कर देता है। दूसरी ओर उसके सहायको मे शाहशाह के इन कामो से विद्रोह की भावना पनपती है और लोग बदला लेने के लिए यत्नशील हो जाते हे। इस प्रतिकूल परिस्थिति से लाभ उठाकर शक्तिशाली 'असबिअत' वाली अन्य कौम सल्तनत को अपने हाथ मे कर लेती है। 'असबिअत' पर आधारित सल्तनत का यह एक प्रमुख विशेषता है।[1]

विवेच्य वाङ्मय से सम सामयिक राजनीतिक स्थिति पर स्पष्ट विशेष प्रकाश नही पडता किन्तु कीर्तिलता से यह अवश्य ज्ञात होता है कि शहाबुद्दीन शाह अपनी राज्यसत्ता के एकमात्र केन्द्र है। उनसे मिलने के लिए आये हुए व्यक्ति दरबार मे बैठे रह जाते हैं, वर्षों व्यतीत हो जाते है, किन्तु उसका दर्शन नही हो पाता—'दरबार पइट्ठे दिवस भइटठे वरिसहु भेट न पावन्ता'।[2]

राजा—भारत सुसंस्कृत देश है। इसके जीवन का प्रत्येक अंग धर्म-कर्त्तव्य-भावना से परिपूर्ण है।[3] श्रुति, स्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रीय रचनाओ द्वारा राजन्य के लिए इतने विस्तृत विधि विधान की व्यवस्था है कि निरकुश राजा की सम्भावना क्षीण है। भारत के सुदीर्घ इतिहास मे महान् सम्राटो की अपेक्षा अत्याचारी राजाओं की सख्या कम है। वर्ष पर्यन्त उत्सवो द्वारा राजाओ की महानता की पूजा एव अनाचारो का होलिका-दाह कर पाशविकता को नियन्त्रित रक्खा जाता है। देश के पास जीवन मूल्यो का एक समृद्ध कोषागार है जिसके अमूल्य रत्न विषम परिस्थितियो मे सहायतार्थ स्वय उपस्थित होकर अमानवीय अभियोगो से रक्षा करते है। सुल्तानी सेना द्वारा मार-काट के समय साथ मे रहते हुये भी राजा कीर्तिसिंह के चित्त मे लज्जा और आचार की रक्षा, मूल्यो की परीक्षा, हरिश्चन्द्र की कथा, नल की बात, रामचन्द्र की रीति, दान-प्रीति, साहस उत्साह, अकरणीय के करने मे बाधा, बलि, कर्ण तथा दधीचि से स्पर्धा होती है—'तैसना परमकाष्ठा करे पस्तार, अनुचित लज्जा,

१ इब्ने खलदून का मुकद्दमा, पृ० १२४-१२६। २ की० (शिव) २ २२१।

३ दे० अध्याय ४, ५ और अध्याय ७ की राजनीति।

आचारक रक्षा, गुणक परीक्षा, हरिश्चन्द्रक कथा, नल क व्यवस्था, रामदेव क रीति, दान प्रीति, साहस उत्साह, अकृत्यबाधा, बलिकणदधीचि करो स्पर्धा साध'[१]

'जमीयतुल-हिकायत' मे उल्लिखित उफी का यह कथन यथार्थ है कि हिन्दू राजन्य का यह विश्वास है कि अत्याचारी राजा का जीवन अपनी प्रजा के अभिशाप से क्षीण हो जाता है।[२] राजा-प्रजा के कार्य एव चिंतन प्रक्रिया का एक दूसरे पर गुप्त रूप से पढने वाले प्रभाव सम्बन्धी अनेक घटनाये समसामयिक साहित्य मे उप-लब्ध है। एक समय, एक राजा रात का घूम रहा था। उसे प्यास लगा। उसने, एक वेश्या से जल मागा। शभली नामक दासी देर करके ईख-रस से भरा पात्र खिन्न मन से ले आयी। पूछने पर खिन्नता का कारण उसने यो बताया कि पहले ईख की एक लट्ठी मे से इतना रस आ जाता था कि घडे के साथ शकोरा भी भर जाता था। पर इस समय सम्भवत राजा का मन प्रजा के विरुद्ध हो रहा है, इसलिए बडी देर के बाद भी मात्र शकोरा ही भर पाया है। राजा तुरन्त समझ गया कि उसके मन मे अपनी प्रजा को सम्पदा लूटने का विचार उत्पन्न हुआ था, उसी का यह पारि-णाम है। दूसरे दिन प्रजा-वत्सलता का भाव मन मे रखता हुआ राजा पुन उस वेश्या के घर गया। उस दिन शभली ने यह कहकर राजा को सतुष्ट किया कि आज राजा प्रजा के प्रति कृपावान् है, क्योकि आज ईख से बहुत रस निकला है।[३]

एक अन्य अवसर पर रात को एक ब्राह्मण की नीद उचटा। उसका ऐसा अनुभव हुआ कि राजा का प्राण सकट मे है। वास्तव मे नृपति दो साडो से घिरा विपत्तिग्रस्त था। ब्राह्मण ने हवन आदि द्वारा शाति कर्म करके राजा की प्राणरक्षा की।[४] इन धारणाओ से हिन्दू राजाओ के अत्याचारी होने का सभावना कम प्रतीत होती है। यदि कुछ हुए भी तो वे वैयक्तिक परिस्थितियो का प्रभाव था तथा उसका प्रभाव राजव्यापी नही हा पाता था। राज्याभिषेक क पुनीत अवसर पर प्रजा पालन तथा रक्षण सम्बन्धी कृत प्रतिज्ञा राजा का सामान्य धर्म-कर्म था।[५]

१ की० (शिव) ३ १२२ १२५।

२ दे० हिस्ट्री आव इडिया इलियट, जिल्द २, १७४।

३ प्रचि० २ ७२।   ४ प्रचि० १ ११।

५ ऐतरेय ब्राह्मण के ऐन्द्र महाभिषेक के अनुसार शपथ यह है—"जिस रात्रि को मेरा जन्म हुआ है और जिस रात्रि को मेरी मृत्यु होगी, उन दोनो के बीच मे जो मेरी सतति, धन, आयुष्य और यश है वह सब नष्ट हो जाय यदि मैं प्रजाओ से द्रोह करूँ।" प्रा० भारत, ३६३।

मन्त्री— शासन कार्य मे राजा की प्रतिमा[1] (प्रतिनिधि) प्रधान मन्त्री होता है, जो राजा की अनुपस्थिति मे राजकाय सचालन करता है ।[2] महामन्त्री का यह महत्व, महाजनपद युग से प्रचलित हुआ है । यथा मगधराज अजातशत्रु के महामन्त्री वर्षकार, वत्सराज उदयन के महामन्त्री यौगन्धरायण, मगधाधिपति चन्द्रगुप्त मौय के महाम त्री आय चाणक्य, अशोक के राधगुप्त, अवन्तिराज पालक के महाम त्री आचाय पिशुन, चडप्रद्योत के भरत रोहक अवन्तिराज अशुमन के आचाय घोटमुख, कोशलराज परन्तप के कर्णिक भरद्वाज तथा पचालराज ब्रह्मदत्त के आचार्य वाभ्रव्य आदि अपने शासको की नीति के निर्देशक थे ।

राजन्य अपने मन्त्रियो पर पूण विश्वास करते थे । पृथ्वीराज और कीर्तिसिह अपने अमात्य पर राज्यकाय का उत्तरदायित्व सौप कर निश्चि त बाहर चले गये । शासन व्यवस्था विषयक चि ता से वे सवथा मुक्त हैं । प्रवास के परम कष्ट की अवस्था मे एक बार कीर्तिसिह को चि ता उत्पन्न हुई किन्तु यह सोचकर वे सतुष्ट हो गये कि वहा पर चतुर विलक्षण म त्री है जो तिरहुत के लिए स्तभ स्वरूप है, जिसके साथ मेरी मा ने हाथ बाध दिया है—

'अच्छे मन्ति विअक्खणा तिरहुत केरा खभ ।
मज्झु माय निअ दीजिहि × × × हथल बध ।'[3]

राजगुरू—कोटिल्य के अनुसार मुख्यमन्त्री के अन तर राज्यकार्य मे पुरोहित पद का विशिष्ट महत्व है और इसके बाद सेनापति तथा युवराज का ।[4] वेद तथा दडनीति दोनो का पाडित्य पुरोहित के लिए अपेक्षित था ।[5] सयोगिता-केलि मे पृथ्वीराज ने ६ मास तक राजकाय भुलाकर हर्म्य मे ही व्यतीत कर दिया । समस्त लोक ने राजगुरू से इसका कारण पूछा । जानने पर राजगुरू ने निश्चय किया कि राजा या तो बाधवा को देखेगा या सयोगिता को ही ।[6] उसने अपनी रचना द्वारा राजा का उद्बोधन प्रदान कर उसे कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ कराया । साधु विचार तथा लोक शुभचितक होने के कारण पुरोहित का राजघराने मे महत्वपूण स्थान है[7] किन्तु इसका राजनीतिक अधिकार नही स्पष्ट होता ।

---

१ राज जा प्रतिमा (प्रधान अमात्य कयमास के लिए) पृ० ३ २ १ । २ वही ।
३ की० ३ १२८-१२९ । ४ अथ ५ ३ । ५ पा भारत, पृ० ३६६ ।
६ कइ बध सेउ मनसिनउ कइ बन निरष्षिपति राज । १० १४ २ ।
७ दे० वीरा० ५४ ५७, ढोमा० १०१-१०३, चादा ३५-३६, ४८-४९ आदि ।

राजसभा—कयमास-काण्ड के अनन्तर पृथ्वीराज ने सभा बुलाई। राजा ने सभा के समक्ष समस्या रक्खी कि महामात्य कयमास कहा है ? न बता सकने पर मृत्युदण्ड का भागी होना पडेगा। आग्रह करन पर कवि च द ने रहस्योद्घाटन किया और कहा कि ऐसे भयानक कर्मो से राजा का क्या बनगा ? यह सुनकर सभासदगण पलायन कर अपने-अपने घर चले गये। तत्कालीन राजसभा की यह स्थिनि है।

न्याय—सामान्यत, हिन्दू तथा मुसलमान दोनो राज्यो मे परम्परागत आचार तथा विधि का पालन करना ही याय था। राज्याधिपति काजी अथवा धर्माधिकरण के माध्यम से इसका सम्पादन करता था। मुल्ला दाऊद ने स्पष्ट किया है कि सम सामयिक काल मे फिरोजशाह दिल्ली का सबसे बडा राजा है। वह ऐसा न्याय करने वाला है कि निमल करके नीर को क्षीर से—असत्य को सत्य से—अलग कर देता है। वह छाटे-बडो क साथ उचित व्यवहार करना जानता है।[1] किन्तु एक हिन्दू कवि विद्यापति की उक्ति है कि—

'षुन्दकारी हुकुम कहयो का अपनेओ जाए पराइ हो।[2]
'मत्त मगोल बोल णहि बुज्झइ।
षु दकार कारण रण जुज्झइ॥

—काजी से हुक्म के लिए क्या कहे ? अपनी भी पत्नी पराई हो जाती है। किसी की बोली न समझने के कारण मगाल, काजी द्वारा किये हुए न्याय से युद्ध मे जूझा करते थे। ऐसा, एक दूसरे के सास्कृतिक वैशिष्ट्य को न समझने से होता था।

अपनी न्याय-व्यवस्था के प्रति कीर्तिसिंह का अटूट विश्कास है क्योकि हरिहर राज्यधर्माधिकारी है जिसके प्रण से तीनो लोक मे चारो पुरुषाथ प्राप्त होते हैं। नीति माग—धर्मशास्त्र स्मृति तथा निबन्ध ग्रन्थो का अनुशीलन कर निणय-काय—मे दक्ष भवेश ओझया है जिनका प्रणाम करने से निश्चय ही क्लेश दूर होता है। फिर उसके घर विपत्ति कैसे आ सकती है जिस पर ये लोग अनुरक्त हैं।

चरवाहे लोरिक को पर स्त्री के साथ अनैतिक व्यवहार करने के कारण तप्त कुण्ड मे छौका जान,[5] सिर काटना,[6] वृक्ष पर टँगवाया जाना,[7] पैर मे बेडी पडना,[8]

---

१ चांदा० ८। २ की० (शिव०) २ १६१। ३ वही, ४ ७४ ७५।
४ की० (शिव) ३ १४१-१४८। ५ चादा १६१। ६ वही, २२३।
७ वही, २०१। ८ वही २०४।

खाल खिचवाया जाना तथा गाल फाडा जाना[1] आदि दण्ड पाने से भयाक्रान्त होना पडा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लोगो को ऐसे कठोर दण्ड दिये जाने की परम्परा थी, यद्यपि समसामयिक साहित्य मे इनके उदाहरण नही मिलते है। पर स्त्री-गमन, सम्भवत, युग का सबसे बडा अपराध समझा जाता था। इसी अपराध मे प्रधान अमात्य कयमास को तत्क्षण मार डाला गया और उसकी शव को जमीन मे गाड दिया गया।[2] इस प्रसग मे कवि चन्द ने पौराणिक पृष्ठभूमि मे राजा को समझाया कि—

रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान दिय।
बालि किनि गड्डिअउ सुत सुग्रीव जीव लिय।
चन्द किनि गड्डिअउ कीअ गुरुदार स किल्लउ।
रवि न पड गड्डिअउ पुच्छि सहदेव पहिल्लउ।
गड्डउ न इन्दु गौतम रषि बरु सराप छडिय जिनी।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गड्डइ समरिधनी॥ पृ० ३ ३६

—रावण, बालि, चन्द्रमा, सूय तथा इन्द्र को कहा गाडा गया है। ऐसे अपराध पर मात्र मृत्यु-दण्ड दिया गया है। अत हे पृथ्वीराज, ऐसे आचरण पर इतना रोष करना दोष है, कयमास को मत गाडो।

सेना—सेना का वर्णन परम्परागत चतुरगिणी[3] रूप मे है किन्तु रथ का व्यवहृत होना प्रमाणित नही ज्ञात होता। 'ऐसा कटकहि लटक बड जाइते दोषअ बहुत[4] से जान पडता है कि समसामयिक सैनिक शब्दावली मे 'कटक' 'नयमित सेना और 'लटक' अनियमित सेना के लिए प्रयुक्त होता था। पुनश्च धागण कट-कहि लटक बड जे दिस धाडे जाथि। त दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि॥

—सेना के साथ बहुत से धाँगण अनियमित रूप से जुडे रहते थे। वे जिस दिशा मे लूट-मार करते उस दिशा के राजघराने की युवती स्त्रिया हाट मे बिकती दिखाई देती थी। प्राचीन काल मे छ प्रकार की सेनाओ मे जिसे आटविक बल[6] कहते थे सम्भवत वही समसामयिक साहित्य मे धागण कहा जाने लगा है। प्रद्युम्न चरि मे मायावी सेना[7] का भी जिक्र किया है। युद्ध करने वालो का नामकरण उनके शास्त्रास्त्रो

१ जिण० ४७७। २ पृ० ३। ३ की० ४ ४ १४, जिण० ४४६, प्रच० ३ १७३। ४ की० ४ २५ १०३। ५ की० ३ २० ८६।
६ जगली जातियो से भरती की हुई सेना। ७ प्रद्य० ४ २६०।

के नाम से भी किया गया है । यथा, फरिआइत,[१] धनुक और छुरीकार[२] आदि । सेना मे युद्ध सामग्री तथा भोजन आदि के वाहन के लिए खच्चर गदहा, लाखो बैल और करोडो भैसे भी पृष्ठभाग मे होते थे [३]

सेना की वर्णित सख्या काव्यात्मक एव अतिशयोक्तिमूलक है । जिणदत्त जब अपने घर आ रहे थे तो उनके साथ दास लाख घोडे, छ हजार मदगलित हाथी, असख्य ऊँट, पैदल तथा धनुर्धारी, दश करोड और असख्य रावत थे ।[४] इसी प्रकार रूपचन्द,[५] जयचन्द, पृथ्वीराज,[७] तथा शहाबुद्दीन गोरी[८] आदि की सेना सख्या द्रष्टव्य है ।

आयुध—परम्परागत रूप मे ३६ शस्त्रास्त्रो द्वारा वीरो के सजने का उल्लेख अनेक बार हुआ है ।[९] किन्तु सामान्य रूप से धनुष-वाण तथा तलवार के ही उल्लेख अधिक मिलते हैं ।

साराश—

आलोच्य अवधि मे देश की राजनीति मे 'असबिअत' का बोलबाला था । परम पुरुषाथ मूलक भारतीय राजनीति का व्यापक रूप से ह्रास हुआ । हाँ, यह अवश्य है कि वे हिन्दू राजन्य जो अभी तक किसी ढग से बचे थे युद्ध के लिए धुघुवा कर ऊपर उठ रहे थे । उधर, सल्तनत के अन्तगत अन्य सशक्त 'असबिअत' वाली कौम अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लगातार प्रयत्नशील थी । सघष और लूटमार की प्रधानता थी । विजेता कौम के काजी विजित की सास्कृतिक चेतना से अनभिज्ञ थे और न्याय का समसामायिक तात्पय परपरागत आचार और विधि का पूणत पालन करना था । अस्तु, न्याय को कोई आशा नही थी । सहिष्णुता ही विजित लोगो का एक मात्र जीवनाधार थी ।

———

१ की० ४ २२ १६७, पाइसद्दमहाण्णव के अनुसार फरअ' का अथ ढाल तथा अस्त्र विशेष भी है । २ प्रच० ४ २६०, देखिए धनुद्धर तथा ढलवाहक की० ४ ७० ७१ । ३ की० ४ । ४ जिण० ४५१ ।
५ चादा ८७ । ६ पृ० ७ ८ २ । ७ पृ० ११ १ १ ।
८ पृ० १० २३ ३-४ । ९ पृ० ७ ६ ३७, वर० २ १३ ख, ८ ७० क, ५ ४४, प्रचि० १ ३६, ४ १३२, ३६ शास्त्रास्त्रो के नाम सास्कृतिक शब्दकोष के शास्त्रास्त्रो मे द्रष्टव्य है ।

खाल खिचवाया जाना तथा गाल फाडा जाना[1] आदि दण्ड पाने से भयाक्रान्त होना पडा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लोगो को ऐसे कठोर दण्ड दिये जाने की परम्परा थी, यद्यपि समसामयिक साहित्य मे इसके उदाहरण नही मिलते है। पर स्त्री-गमन, सम्भवत, युग का सबसे बडा अपराध समझा जाता था। इसी अपराध मे प्रधान अमात्य कयमास को तत्क्षण मार डाला गया और उसकी शव को जमीन मे गाड दिया गया।[2] इस प्रसग मे कवि चन्द ने पौराणिक पृष्ठभूमि मे राजा को समझाया कि—

रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान दिय।
बालि किनि गड्डिअउ सुत सुग्रीव जीव लिय।
चन्द किनि गड्डिअउ कीअ गुरुदार स किल्लउ।
रवि न पड गड्डिअउ पुच्छि सहदेव पहिल्लउ।
गड्डुउ न इन्दु गौतम रषि बरु सराप छडिय जिनी।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गड्डुइ समरिधनी।। पृ० ३ ३६

—रावण, बालि, चन्द्रमा, सूय तथा इन्द्र को कहा गाडा गया है। ऐसे अपराध पर मात्र मृत्यु-दण्ड दिया गया है। अत हे पृथ्वीराज, ऐसे आचरण पर इतना रोष करना दोष है, कयमास को मत गाडो।

सेना—सेना का वर्णन परम्परागत चतुरगिणी[3] रूप मे है किन्तु रथ का व्यवहृत होना प्रमाणित नही ज्ञात होता। 'ऐसा कटकहि लटक बड जाइते दाषअ बहुत'[4] से जान पडता है कि समसामयिक सैनिक शब्दावली मे 'कटक' नयमित सेना और 'लटक' अनियमित सेना के लिए प्रयुक्त होता था। पुनश्च, धागण कट-कहि लटक बड जे दिस धाडे जाथि। त दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि।।

—सेना के साथ बहुत से धागण अनियमित रूप से जुडे रहते थे। वे जिस दिशा मे लूट-मार करते उस दिशा के राजघराने की युवती स्त्रिया हाट मे बिकती दिखाई देती थी। प्राचीन काल मे छ प्रकार की सेनाओ मे जिसे आटविक बल[6] कहते थे सम्भवत वही समसामयिक साहित्य मे धागण कहा जाने लगा है। प्रद्युम्न चरि मे मायावी सेना[7] का भी जिक्र किया है। युद्ध करने वालो का नामकरण उनके शास्त्रास्त्रो

१ जिण० ४७७। २ पृ० ३। ३ की० ४ ४ १४, जिण० ४४६, प्रच० ३ १७३। ४ की० ४ २५.१०३। ५ की० ३ २० ८६।
६ जगली जातियो से भरती की हुई सेना। ७ प्रच० ४ २६०।

के नाम से भी किया गया है। यथा, फरिआइत,[१] धनुक और छुरीकार[२] आदि। सेना मे युद्ध सामग्री तथा भोजन आदि के वाहन के लिए खच्चर गदहा, लाखो बैल और करोडो भैंसे भी पृष्ठभाग मे होते थे [३]

सेना की वर्णित सख्या काव्यात्मक एव अतिशयोक्तिमूलक है। जिणदत्त जब अपने घर आ रहे थे तो उनके साथ दास लाख घोडे, छ हजार मदगलित हाथी, असख्य ऊँट, पैदल तथा धनुर्धारी, दश करोड और असख्य रावत थे।[४] इसी प्रकार रूपचन्द,[५] जयच द, पृथ्वीराज,[७] तथा शहाबुद्दीन गोरी[८] आदि की सेना सख्या द्रष्टव्य हे।

आयुध—परम्परागत रूप मे ३६ शस्त्रास्त्रो द्वारा वीरो के सजने का उल्लेख अनेक बार हुआ है।[९] किन्तु सामान्य रूप से धनुष-वाण तथा तलवार के ही उल्लेख अधिक मिलते हैं।

साराश—

आलोच्य अवधि मे देश की राजनीति मे 'असबिअत' का बोलबाला था। परम पुरुषाथ मूलक भारतीय राजनीति का व्यापक रूप से ह्रास हुआ। हाँ, यह अवश्य है कि वे हिन्दू राजन्य जो अभी तक किसी ढग से बचे थे युद्ध के लिए धुघु वा कर ऊपर उठ रहे थे। उधर, सल्तनत के अ तगत अन्य सशक्त असबिअत' वाली कौम अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लगातार प्रयत्नशील थी। सघर्ष और लूटमार की प्रधानता थी। विजेता कौम के काजी विजित की सास्कृतिक चेतना से अनभिज्ञ थे और न्याय का समसामायिक तात्पय परपरागत आचार और विधि का पूणत पालन करना था। अस्तु, न्याय की कोई आशा नही थी। सहिष्णुता ही विजित लोगो का एक मात्र जीवनाधार थी।

— — —

१ की० ४ २२ १६७, पाइसद्दमहाण्णव के अनुसार फरअ' का अथ ढाल तथा अस्त्र विशेष भी है। २ प्रच० ४ २६०, देखिए घनुद्धर तथा ढलवाहक की० ४ ७० ७१। ३ की० ४। ४ जिण० ४५१।

५ चांदा ८७। ६ पृ० ७ ८ २। ७ पृ० ११ ९ १।

८ पृ० १० २३ ३-४। ९ पृ० ७ ६ ३७, वर० २ १३ ख, ८ ७० क, ५ ४४, प्रचि० १ ३६, ४ १३२, ३६ शास्त्रास्त्रो के नाम सांस्कृतिक शब्दकोष के शास्त्रास्त्रो में द्रष्टव्य है।

खाल खिचवाया जाना तथा गाल फाडा जाना[1] आदि दण्ड पाने से भयाक्रान्त होना पडा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लोगो को ऐसे कठोर दण्ड दिये जाने की परम्परा थी, यद्यपि समसामयिक साहित्य मे इसके उदाहरण नही मिलते है। पर स्त्री-गमन, सम्भवत, युग का सबसे बडा अपराध समझा जाता था। इसी अपराध मे प्रधान अमात्य कयमास को तत्क्षण मार डाला गया और उसकी शव को जमीन मे गाड दिया गया।[2] इस प्रसग मे कवि चन्द ने पौराणिक पृष्ठभूमि मे राजा को समझाया कि—

रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान दिय।
बालि किनि गड्डिअउ सुत सुग्रीव जीव लिय।
चन्द किनि गड्डिअउ कीअ गुरुदार स किल्लउ।
रवि न पड गड्डिअउ पुच्छि सहदेव पहिल्लउ।
गड्डुउ न इन्दु गौतम रषि बरु सराप छडिय जिनी।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गड्डुइ समरिधनी।। पृ० ३ ३६

—रावण, बालि, चन्द्रमा, सूय तथा इद्र को कहा गाडा गया है। ऐसे अपराध पर मात्र मृत्यु-दण्ड दिया गया है। अत हे पृथ्वीराज, ऐसे आचरण पर इतना रोष करना दोष है, कयमास को मत गाडो।

सेना—सेना का वर्णन परम्परागत चतुरगिणी[3] रूप मे है किन्तु रथ का व्यवहृत होना प्रमाणित नही ज्ञात होता। 'ऐसा कटकहि लटक वड जाइते दोषअ बहुत[4] से जान पडता है कि समसामयिक सैनिक शब्दावली मे 'कटक' नयमित सेना और 'लटक' अनियमित सेना के लिए प्रयुक्त होता था। पुनश्च, धांगण कट-कहि लटक बड जे दिस धाडै जाथि। त दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि।।[5]

—सेना के साथ बहुत से धागण अनियमित रूप से जुडे रहते थे। वे जिस दिशा मे लूट-मार करते उस दिशा के राजघराने की युवती स्त्रिया हाट मे बिकती दिखाई देती थी। प्राचीन काल मे छ प्रकार की सेनाओ मे जिसे आटविक बल[6] कहते थे सम्भवत वही समसामयिक साहित्य मे धागण कहा जाने लगा है। प्रद्युम्न चरि मे मायावी सेना[7] का भी जिक्र किया है। युद्ध करने वालो का नामकरण उनके शास्त्रास्त्रो

१ जिण० ४७७। २ पृ० ३। ३ की० ४ ४ १४, जिण० ४४६, प्रच० ३ १७३। ४ की० ४ २५ १०३। ५ की० ३ २० ८६।
६ जगली जातियो से भरती की हुई सेना। ७ प्रच० ४ २६०।

के नाम से भी किया गया है। यथा, फरिआइत,[1] धनुक और छुरीकार[2] आदि। सेना मे युद्ध सामग्री तथा भोजन आदि के वाहन के लिए खच्चर गदहा, लाखो बैल और करोडो भैसे भी पृष्ठभाग मे होते थे [3]

सेना की वर्णित सख्या काव्यात्मक एव अतिशयोक्तिमूलक है। जिणदत्त जब अपने घर आ रहे थे तो उनके साथ दास लाख घोडे, छ हजार मदगलित हाथी, असख्य ऊँट पैदल तथा धनुर्धारी, दश करोड और असरय रावत थे।[4] इसी प्रकार रूपचन्द,[5] जयच द,[6] पृथ्वीराज,[7] तथा शहाबुद्दीन गोरी[8] आदि की सेना सख्या द्रष्टव्य हे।

आयुध—परम्परागत रूप मे ३६ शस्त्रास्त्रा द्वारा वीरो के सजने का उल्लेख अनेक बार हुआ है।[9] किन्तु सामान्य रूप से धनुष-वाण तथा तलवार के ही उल्लेख अधिक मिलते हैं।

साराश—

आलोच्य अवधि मे देश की राजनीति मे 'असबिअत' का बोलबाला था। परम पुरुषाथ मूलक भारतीय राजनीति का व्यापक रूप से ह्रास हुआ। हाँ, यह अवश्य है कि वे हिन्दू राजन्य जो अभी तक किसी ढग से बचे थे युद्ध के लिए धुघ्रुवा कर ऊपर उठ रहे थे। उधर, सल्तनत के अ तगत अन्य सशक्त 'असबिअत' वाली कौम अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लगातार प्रयत्नशील थी। सघष और लूटमार की प्रधानता थी। विजेता कौम के काजी विजित की सास्कृतिक चेतना से अनभिज्ञ थे और न्याय का समसामायिक तात्पय परपरागत आचार और विधि का पूणत पालन करना थ।। अस्तु, न्याय की कोई आशा नही थी। सहिष्णुता ही विजित लोगो का एक मात्र जीवनाधार थी।

———

१ की० ४ २२ १६७, पाइसद्दमहण्णव के अनुसार फरअ' का अथ ढाल तथा अस्त्र विशेष भी है। २ प्रच० ४ २६०, देखिए घनुद्धर तथा ढलवाहक की० ४ ७० ७१। ३ की० ४। ४ जिण० ४५१।

५ चादा ८७। ६ पृ० ७ ८ २। ७ पृ० ११ १ १।

८ पृ० १० २३ ३-४। ९ पृ० ७ ६ ३७, वर० २ १३ ख, ८ ७० क, ५ ४४, प्रचि० १ ३६, ४ १३२, ३६ शास्त्रास्त्रो के नाम सास्कृतिक शब्दकोष के शास्त्रास्त्रो में द्रष्टव्य है।

खाल खिचवाया जाना तथा गाल फाडा जाना[1] आदि दण्ड पाने से भयाक्रान्त होना पडा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लोगो को ऐसे कठोर दण्ड दिये जाने की परम्परा थी, यद्यपि समसामयिक साहित्य मे इसके उदाहरण नही मिलते है। पर स्त्री गमन, सम्भवत, युग का सबसे बडा अपराध समझा जाता था। इसी अपराध मे प्रधान अमात्य कयमास को तत्क्षण मार डाला गया और उसकी शव को जमीन मे गाड दिया गया।[2] इस प्रसग मे कवि चन्द ने पौराणिक पृष्ठभूमि मे राजा को समझाया कि—

रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान दिय।
बालि किनि गड्डिअउ सुत सुग्रीव जीव लिय।
चन्द किनि गड्डिअउ कीअ गुरुदार स किल्लउ।
रवि न पड गड्डिअउ पुच्छि सहदेव पहिल्लउ।
गड्डउ न इन्दु गौतम रषि बरु सराप छडिय जिनी।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गड्डइ समरिधनी ।। पृ० ३ ३६

—रावण, बालि, चन्द्रमा, सूय तथा इ द्र को कहा गाडा गया है। ऐसे अपराध पर मात्र मृत्यु-दण्ड दिया गया है। अत हे पृथ्वीराज, ऐसे आचरण पर इतना रोष करना दोष है, कयमास को मत गाडो।

सेना—सेना का वर्णन परम्परागत चतुरगिणी[3] रूप मे है किन्तु रथ का व्यवहृत होना प्रमाणित नही ज्ञात होता। 'ऐसा कटकहि लटक बड जाइते दोषअ बहुत'[4] से जान पडता है कि समसामयिक सैनिक शब्दावली मे 'कटक' नियमित सेना और 'लटक' अनियमित सेना के लिए प्रयुक्त होता था। पुनश्च, धाँगण कट-कहि लटक बड जे दिस घाडे जाथि। त दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि ।।[5]

—सेना के साथ बहुत से धाँगण अनियमित रूप से जुडे रहते थे। वे जिस दिशा मे लूट-मार करते उस दिशा के राजघराने की युवती स्त्रिया हाट मे बिकती दिखाई देती थी। प्राचीन काल मे छ प्रकार की सेनाओ मे जिसे आटविक बल[6] कहते थे सम्भवत वही समसामयिक साहित्य मे धाँगण कहा जाने लगा है। प्रद्युम्न चरि मे मायावी सेना[7] का भी जिक्र किया है। युद्ध करने वालो का नामकरण उनके शास्त्रास्त्रो

१ जिण० ४७७। २ पृ० ३। ३ की० ४ ४ १४, जिण० ४४६, प्रच० ३ १७३। ४ की० ४ २५ १०३। ५ की० ३ २० ८६।
६ जगली जातियो से भरती की हुई सेना। ७ प्रच० ४ २६०।

के नाम से भी किया गया है। यथा, फरिआइत,[१] धनुक और छुरीकार[२] आदि। सेना मे युद्ध सामग्री तथा भोजन आदि के वाहन के लिए खच्चर गदहा, लाखो बैल और करोडो भैसे भी पृष्ठभाग मे होते थे [३]

सेना की वर्णित सख्या काव्यात्मक एव अतिशयोक्तिमूलक है। जिणदत्त जब अपने घर आ रहे थे तो उनके साथ दास लाख घोडे, छ हजार मदगलित हाथी, असख्य ऊँट, पैदल तथा धनुर्धारी, दश करोड और असख्य रावत थे।[४] इसी प्रकार रूपचन्द,[५] जयच द,[६] पृथ्वीराज,[७] तथा शहाबुद्दीन गोरी[८] आदि की सेना सख्या द्रष्टव्य है।

आयुध—परम्परागत रूप मे ३६ शस्त्रास्त्रो द्वारा वीरो के सजने का उल्लेख अनेक बार हुआ है।[९] किन्तु सामान्य रूप से धनुष-बाण तथा तलवार के ही उल्लेख अधिक मिलते हैं।

साराश—

आलोच्य अवधि मे देश की राजनीति मे 'असबिअत' का बोलबाला था। परम पुरुषाथ मूलक भारतीय राजनीति का व्यापक रूप से ह्रास हुआ। हा, यह अवश्य है कि वे हिन्दू राजन्य जो अभी तक किसी ढग से बचे थे युद्ध के लिए घुघुवा कर ऊपर उठ रहे थे। उधर, सल्तनत के अ तगत अन्य सशक्त असबिअत' वाली कौम अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लगातार प्रयत्नशील थी। सघष और लूटमार की प्रधानता थी। विजेता कौम के काजी विजित की सास्कृतिक चेतना से अनभिज्ञ थे और न्याय का समसामायिक तात्पय परपरागत आचार और विधि का पूणत पालन करना था। अस्तु, न्याय को कोई आशा नही थी। सहिष्णुता ही विजित लोगो का एक मात्र जीवनाधार थी।

— — —

१ की० ४ २२ १६७, पाइसद्दमहाण्णव के अनुसार फरअ' का अथ ढाल तथा अस्त्र विशेष भी है। २ प्रच० ४ २६०, देखिए धनुद्धर तथा ढलवाहक की० ४ ७० ७१। ३ की० ४। ४ जिण० ४५१।
५ चादा ८७। ६ पृ० ७ ८ २। ७ पृ० ११ १ १।
८ पृ० १० २३ ३-४। ९ पृ० ७ ६ ३७, बर० २ १३ ख, ८ ७० क, ५ ४४, प्रचि० १ ३६, ४ १३२, ३६ शास्त्रास्त्रो के नाम सास्कृतिक शब्दकोष के शास्त्रास्त्रो मे द्रष्टव्य है।

अध्याय ८

निष्कर्ष

शोध प्रबन्ध के पहले अ याय मे विवेच्य साहित्येतर ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि निरूपित है। इसका स्रोत, अपभ्रश तथा हि दी साहित्य को छोडकर समस्त अ य भारतीय और विदेशी वाड मय तथा पुरातत्व विज्ञान है। इसमे मा यता प्राप्त विद्वानो के महत्वपूर्ण निष्कष समाहित है। जातीय तथ्यो की निष्पक्षता हेतु तद्धर्मा विचारको के अभिमत को ही समथन प्राप्त है। इस अ याय मे, प्रमुख शासकवग तुर्को की राजनीति, उनकी विधि-व्यवस्था, हि दू तुक समाज तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध, समसामयिक धम, अथ तथा कला सम्बन्धी परिस्थितियो पर प्रकाश डाला गया है।

चादहवी खृष्टाब्दी अपभ्रश एव हिन्दी वाड्मय के आधार पर अध्याय २ से ४ तक तत्कालीन समाज का निरूपण है जिसमे हिन्दुओ और तुर्को की प्रधानता है।[१]

सामाजिक सङ्गठन--

कुछ विद्वानो का मत है कि तत्कालीन हि दू समाज का सगठन सामुदायिक नही था। इसका रूप विश्रृङ्खलित था।[२] कि तु विवेच्य साहित्य मे यह ज्ञात नही पाई जाता। हिन्दू समाज जन, लाक, वण, जाति, गा त्र, कुल वश, परिवार तथा सदेश वाहक पथिक आदि इकाइया से सरचित है। इसका व्यवस्थित ब ान मे सस्कार वर्णाश्रम, शिक्षा श्रम, शिष्टाचार, सामाजिक मा दण्ड तथा लोक लाज का विशेष योगदान है। फलत समाज सुदृढ एव सुस्थिर दिखाई पडता है। नवागत विजेता

१ छोटी मोटी जातियो के लिए दे० परिशिष्ट १, सामाजिक शब्दकोश।

२ दे० डा० आशा गुप्त मध्ययुगीन सगुण एव निगु ण हि दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १११ परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय सस्कृति मे सूफियो का योग, प्रसारिका अक्टूबर दिसम्बर, १९५४।

तुर्कों के असहिष्णुतापूर्ण व्यवहार से हिन्दू समाज के विचारक भले ही जातीय अस्तित्व के प्रति भयाकुल हुये हों[1] किन्तु आलोच्य साहित्य के जन मानस पर इस भय की छाया दृष्टगत नहीं होती।

विवेच्य वाङमय में हिन्दू परिवार का स्वरूप संयुक्त, पुरुष सत्ताक, पितृमूलक वंश परम्परा, पितृ नामी, बहू वर स्थानी, बहु-भार्यता तथा एक भर्तृता प्रधान है। परिवार के संचालक पति-पत्नी है। इनके पारस्परिक सम्बन्ध पर रामायण, महाभारत, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति याज्ञवल्क्य, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण तथा स्मृति चन्द्रिका आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों द्वारा पति को देव-तुल्य मानने के विचार का प्रभाव है। साथ ही राजमती और संयोगिता प्रसंग में वेद-कालीन समता का द्योतक अर्द्धाङ्गी भाव का भी अभाव नहीं है—

अरधंग धरा अरधंग हम अरधंगा अरधंग करि। पृ० १० २५

संयोगिता पृथ्वीराज से निवेदन करती है कि 'धरा तुम्हारी अर्धाङ्गिनी है तो मैं भी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूँ, मुझ अर्धाङ्गिनी को तुम अपना अर्द्धाङ्ग करो।'

आलोच्य ग्रन्थों के अनुशीलन से महाभारत, मनुस्मृति तथा पद्म पुराण द्वारा नारी पर कामान्धता का आरोप लगाते हुये यह अविश्वास प्रकट नहीं होता कि स्थान, अवसर तथा याचक पुरुष के अभाव में ही स्त्रियों का साध्वीत्व संभाव्य है और न मनु, गौतम, बोधायन वसिष्ठ, विष्णु तथा याज्ञवल्क्य आदि की यह धारणा ही प्रमाणित होती है कि स्त्रियां पराधीन न रहें तो बिगड़ जायं। सामान्यतः सभी नारियां शील-भ्रष्ट होने के अनेक अवसर आने पर भी दृढ़ चरित्रवान् हैं। प्रायः स्त्री चरित्रों ने अपने आचरण से महाभारत तथा मनुस्मृति के इस कथन को मर्यादित एवं सुस्थिर रखा है कि स्त्रियां पूजा के योग्य महाभाग्यशाली और पुण्यशाली हैं। वे घर की शोभा हैं।' साथ ही स्त्रीजित होने के जघन्य पाप से बचने का मनु याज्ञवल्क्य तथा वसिष्ठ आदि समाज शास्त्रियों द्वारा दी गई 'न चासां वशगो भवेत्' की चेतावनी में संयम एवं संन्यास प्रधान पुरुष वर्ग सामान्य रूप में सजग हो, भले नहीं दिखाई पड़ता अपितु स्त्रियों को कठपुतली सा बनाये रखता है। यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि ऐसी परिस्थिति में पति 'देवत्व' से च्युत होकर अधम का शिकार नहीं हुआ है।

विवेच्य साहित्य अधिकांशतः हिन्दू समाज से सम्बन्धित है। अतएव तुर्कों के जातीय संगठन पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। उनकी अनेक जातियों का नामोल्लेख अवश्य हुआ है।[2]

---

१ दे० अध्याय २ ४, हिन्दू समाज। २ दे० जातीय शब्दकोश और पृ० १२ ११

सैनिक तथा मजहबी जोश मे अन्धे कुछ तुर्कों द्वारा हिन्दुओ के विरुद्ध किए गए अमानवीय व्यवहार के कतिपय ऐतिहासिक तथ्य अवश्य उपलब्ध है किन्तु विवेच्य वाङ्मय के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि सवथा भिन्न सस्कृतियो के हिन्दू और तुक समाज परस्पर मिलने की दिशा मे प्रगति-पथ पर थे। जौनपुर के सुलतान इब्राहीम शाह ने प्रतिद्व द्वी जाति के कीर्तिसिंह की सहायता याचना पर अपनी ही जाति के असलान को पराजित कर कीर्तिसिंह को तिरहुत का राज्य दिया। शाह का दरबार राजाओ, राणाओ तथा तैलग, बगाली, चोल एव कलिग प्रभृति विभिन्न देशीय राजपुत्रो द्वारा सुशोभित रहता था। जौनपुर बाजार मे हिन्दू और तुक साथ-साथ रहते थे। अजान के साथ वेदपाठ का उच्चारण होता था। जयच द की सेना मे फारस और बलक निवासी ६० हजार स्वामिभक्त सैनिक थे और अनेक मगोलो द्वारा महावत का कार्य सम्पन्न होता था। जयचन्द अपनी पारसीक सेना के बल पर राजा बना हुआ था—पारस मिसि पगु रायेस।'[३] अलाउद्दीन खिलजी द्वारा नियुक्त गुजरात के शासक अलपखा ने अनेक मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाने मे सहायता पहुँचाई थी। हिन्दू और तुक दोनो वर्गों के सघर्ष मे जातीयता से अधिक राजनीति और व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता है। अपनी-अपनी जाति के विरुद्ध भी हिन्दुओ और तुर्को ने एक होकर युद्ध मे भाग लिया है। ग्र थकारो के पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण के कारण भी व्यक्तिगत दोष उभड कर जातीय बुराई के रूप मे चित्रित हो गये है।[४]

हि दू-तुक के पारस्परिक सन्निकट आने के सन्दभ मे मुल्ला दाऊद की मन स्थिति उसके इस वणन मे द्रष्टव्य है -अबूबकर उमर, उसमान ओर अली को दैव ने वेद पुराण (इस्लाम के धमग्रथ) दिए, फिरोजशाह एक बडा पण्डित है। उसके साथ हनुमान रहते है। खानेजहा वररुचि के सदृश विद्वान है। वह पुराणो का ऐसा विद्वतापूर्ण अर्थ लगाता है कि पडित लाग भी अवाक रह जाते है। वह कण के समान दानी तथा अनग मदन की भाति सु दर है जिसे देखकर पृथ्वी ऐसी मुग्ध हो जाती है मानो मनोहर सस्कृत वाणी है।[५]

रहन-सहन

इतिहास और साहित्य दोनो से प्रतीत होता है कि तत्कालीन अभिजात वग क परिवारो का जीवन स्तर उत्कृष्ट था।

---

१ दे० अध्याय १, जीवनास्तर। २ विस्तार के लिए देखिए सामाजिक शब्दकोश।
३ पृ० ८ ८ २। ४ दे० अध्याय २ सामाजिक सगठन असामाजिकता।
५ चांदा०, ७ १७।

'सुक्ख सुभोअण सुभ वचन देवहा जाइ सपुन्न'[१]

और 'सम्मान दान विवाह् उच्छव गीअ नाटक कव्वही ।
आतिथ्य विनअ विवेक कौतुक समय पेल्लिअ सव्वही ।।[२]

किन्तु लोक नायको की कामक्रीडा मे रत रहना ही जीवन का तत्व पूण मत्र[3] की मान्यता ने परिवर्तिन युग के प्रति अनुरूपता नही स्थापित कर पाई और देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता खो दी ।

विवेच्य वाङ्मय से ज्ञात हाता है कि समसामयिक काल मे ऐसे भी लोग थे जो रात मे 'घुटने', दिन मे 'सूय' तथा शाम का 'आग' के बल पर शीत काटते थे । उनके पास शीतरक्षा हेतु कोई वस्त्र नही, आग सुलगाने के लिए सिकडी नही साने का शय्या नही, कुटिया मे हवा रोकने का उपाय नही, खाने को मुट्ठी भर चावल नही घडी भर मन मे सतोष नही, श्रृङ्गार की कोई वृत्ति नही मन को प्रसन्न करने के लिए कोई प्रिया नही तथा वे लेनदारो से सदैव सकट मे फँसे रहते हैं ।

उपलब्धियाँ

विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओ के स दर्भ मे भारतीय समाज मे कतिपय ऐस मूलभूत विशिष्ट तत्त्व विद्यमान हैं कि सम्प्रति इस युग मे भी यदि पूर्वाग्रह रहित दृष्टि कोण से विचार किया जाय तो निश्चय ही वे अत्य त उपादेय, तक सम्मत एव महत्त्व-पूण उपलब्धि के रूप मे सिद्ध होगे । भारत के त्रिकालदर्शी ऋषि-मनाषियो ने अपन गहन चिन्तन, विस्तृत अनुभव एव परीक्षित प्रयोग की पृष्ठभूमि पर व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आध्यात्मिक तीनो क्षेत्रो मे समुद्र मन्थन करके अनेक विचार रत्नो का योगदान दिया है । वर्णाश्रम व्यवस्था, सस्कारो की योजना, ऋणो का विधान, पुरुषार्थों' का निर्धारण तथा कर्म और पुनज म मे विश्वा प्रभृति भारतीय सामाजिक सगठन के अनेक महत्वपूर्ण सास्कृतिक सम्भार हैं जिन पर विशाल हिन्दू समाज का भव्य भवन टिका हुआ है । चौदहवे खृष्टाब्द अपभ्र श एव हिन्दी वाङ्मय में समागत इस सामग्री की गवेषणा इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूण है । वस्तुत इस साहित्य न भारतीय चिन्तनधारा के विभिन्न आयामो को उत्तराधिकार मे जीवन्त रूप से प्रस्तुत किया है तथा सामयिक गतिमयता की प्रसगगर्भित सच्ची झाँकी रूपायित की है ।

क वर्ण व्यवस्था—वण व्यवस्था पर लोगो का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट हुआ है । जैसे आजकल सभी समाज अर्थ, शिक्षा तथा धम आदि के माध्यम से अनेक-

१ की० १ १८ ५० । २ की० २ १७ ९१-९२ । ३ पृ० ५ ३५ ।

वर्गों मे विभाजित हैं वैसे ही बहुत प्राचीन काल मे हिन्दू समाज भी पठन-पाठन, देश रक्षा, धनोपार्जन तथा सेवा आदि कर्मों के आधार पर चतुर्वर्ण मे व्यवस्थित है। अन्तर यही है कि काला तर मे यह जन्मना हो गया है।

सामान्यत विवेच्य वाङमय के अनुशीलन से प्रकट होता है कि चतुर्वण के सभी जन सम्बद्ध होकर पारस्परिक सौहादपूर्ण वातावरण मे अपने-अपने वण-धम के अनुसार काम करते हुए स तोषप्रद जीवनयापन मे निरत थे।

बहुल बम्हण बहुल काअथ। राजपुत्त कुल बहुल, बहुल जाति मिलि बइस त्थ्परि। सव्वे सुअन सव्वे सघन। की २ २१ १२१-१२३

—बहुत से ब्राह्मण, कायस्थ, राजपूत आदि जातियो के लोग मिले जुले बैठे हुए थे, सभी सज्जन और सभी धनवान थे।

जेन धर्मावलम्बी कविवर राजसिह विरचित 'जिणदत्त चरित' मे जिनेद्र भगवान ने अपने तत्त्वापदश मे चारो वर्णो को धारण करने (धरि चउवण्ण'[१]) का आग्रह किया है।

परिशिष्ट २ तत्कालीन समस्त तनाव एव सघर्ष तथा उनके कारणो के विवरण से स्पष्ट होता है कि चतुवर्णान्तगत अन्तर्जातीय शीत युद्ध और विलगाव की भावना तथा निम्नवर्गीय व्यक्तियो के विकास मे अभिजात्य द्वारा प्रतिष्ठापित अवरोध प्रक्रिया का सवथा अभाव है। अ त्यज जातिया अस्पृश्य थी, गाँव अथवा नगर के बाहर उनका पृथक निवास स्थान होता था, उनके स्पशमात्र से स्नान करना पडता था—इस प्रकार के घृणित तथा अमानवीय व्यवहार विवेच्य साहित्य मे किसी भा लोक आचार-विचार मे नही उपलब्ध होते। जौनपुर के बाजार मे ब्राह्मण का यज्ञोपवीत चाडाल क अ। स लटक जाता था,[२] कि तु स्पृश्यता सम्बन्धी काई अव्यवस्था नही उत्पन्न होती थी। लोगा[३] का यह कहना कि शूद्रो का एकमात्र कत्तव्य सवर्णो की सेवा करना है, विवेच्य वाङमय द्वारा प्रमाणित नही होता। इसके प्रतिकूल ऐसे अवसर अवश्य उल्लिखित है जिनमे विवाहादि समारोहो पर शूद्रा द्वारा ब्राह्मणो को बुलवा कर उनका सेवाये ली गई हे।[४] सवा-सुश्रूपा करन वाले शूद्रा का जमघट धनी असवर्णो के यहा दिखाई पडता हे।[५] गाबर के सहदेव की ८४ रानिया क पास ८८, ८१ चेरिया थी। ग्वालिन चादा के दहज मे एक सहस्र सेवक सेविकाए

१ जिण० ५१६। २ की० २ २१ १२२। ३ दे० अध्याय ४ वर्ण व्यवस्था और अध्याय १, सामाजिक भेद प्रभेद। ४. वही। ५ वही।

दी गई थी । शूद्रो के लिए उल्लिखित यह सेवा-कार्य वर्ण व्यवस्था की अपेक्षा आर्थिक-सामाजिक प्रतिष्ठा पर अधिक आधारित प्रतीत होता है ।

ख आश्रम—वण व्यवस्था का पूरक पक्ष आश्रम है । इसमे, लौकिक एव पारलौकिक प्रगति के लिए व्यक्ति का जीवन २५ २५ वर्षों के लिए ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा स-यास चार भागो मे विभाजित हाता है । इतिहासकारा की दृष्टि मे यह विषय उपेक्षित रहा है ।

विवेच्य साहित्य मे चित्रित व्यावैहारिक जीवन मे गाहस्थ्य का सर्वाधिक वणन प्राप्त होना है । इसका अत्यधिक महत्व परम्परागत भी है, क्योकि लोगो की ऐसी धारणा है कि प्राणा अकेला जन्मता और मरता है । मरण के अनन्तर यहा से कोई कुछ नहीं ले जाता । यदि कोई साथ जाता है, तो वह धम है । यही धर्म नरक की याननाआ से रक्षा करता है । अस्तु, गृहस्थाश्रम एक ऐसा स्थल है, जहा व्यक्ति शुभ धर्म-कम करके अपना परलोक सुधार सकता है । गृहस्थाश्रम का मूल उद्देश्य धर्माजन करना तथा वेदाध्ययन, पुत्रात्पादन और यज्ञा के सम्पादन द्वारा ऋषि ऋण, पितृ-ऋण और देव ऋण तीनो से उऋण होना है । जयचन्द, जिणदत्त, प्रद्युम्न, जावदेव, जीवजसा तथा च-द्रशेखर आदि अपने-अपने गृहस्थ जीवन मे धार्मिक कृत्यो से पुण्य कमाकर परलोक सुधारते हैं । समसामयिक कवि बब्बर की मान्यता है कि धर्मचित्त गुणवान् पुत्र, सुकर्मरत विनयशील पत्नी, विशुद्ध देह और धन युक्त गृह, स्वग से भी उत्तम है—

सुधम्मचित्ता गुणमत पुत्ता, सुकम्मरत्ता विणआ कलत्ता ।
विसुद्ध देहा धण मत्त णे-ा कुणति के बब्बर मग्ग णेहा ।। प्रा० पैं० २ ११७

लोक रुचि के आधार पर आश्रमो मे दूसरा स्थान इस काल मे सन्यास को उपलब्ध है । यह निवृनमूनक है समस्त कार्यो को परि-त्यक्त कर मुक्ति माग के चिंतन मे कालयापन करना है । इसकी सदस्यता स्वीकार करन वाले विपुल सख्या मे दिखाई पडते है । ग बर न र ~ राजकीय आम्राराम मे चार महस्र योगिया, तन को क्षुण्ण करने वाले अनक तपस्वियो, कल्पमास करने वाला स्त्रिया आर सिद्ध पुरुषो की भीड एकत्रित रहता था । इ द्रभूति के अष्टापद शैल पर चढते समय गानम स्वामा को १५०० तापस आते दिखाइ पडे । कन्नोज के महानगर मे समूह के समूह लगरी साधुआ तथा करोडो नगे साधुआ का उपस्थिति का उल्लेख है । इतिहास से भा इसका समथन हाता है ।

ब्रह्मचय आर वानप्रस्थ आश्रमो पर अधिक प्रकाश नही पडता ।

१ वही ।

वर्गों मे विभाजित हैं वैसे ही बहुत प्राचीन काल मे हिन्दू समाज भी पठन-पाठन, देश रक्षा, धनोपार्जन तथा सेवा आदि कर्मों के आधार पर चतुर्वर्ण मे व्यवस्थित है। अन्तर यही है कि कालान्तर मे यह जन्मना हो गया है।

सामान्यत विवेच्य वाडमय के अनुशीलन से प्रकट होता है कि चतुर्वण के सभी जन सम्बद्ध होकर पारस्परिक सौहादपूर्ण वातावरण मे अपने-अपने वण-धम के अनुसार काम करते हुए स तोषप्रद जीवनयापन मे निरत थे।

बहुल बम्हण बहुल काअथ। राजपुत्त कुल बहुल, बहुल जाति मिलि बइस तप्परि। सव्वे सुअन सव्वे सधन। की २ २१ १२१-१२३

—बहुत से ब्राह्मण कायस्थ, राजपूत आदि जातियो के लोग मिले जुले बैठे हुए थे, सभी सज्जन और सभी धनवान थे।

जेन धर्मावलम्बी कविवर राजसिंह विरचित जिणदत्त चरित' मे जिने द्र भगवान न अपने तत्वापदेश मे चारो वर्णो को धारण करने ('धरि चउवण्ण'[१]) का आग्रह किया है।

परिशिष्ट २ तत्कालीन समस्त तनाव एव सघर्ष तथा उनके कारणो के विवरण से स्पष्ट होता है कि चतुवर्णा तगत अन्तजातीय शीत युद्ध और विलगाव की भावना तथा निम्नवर्गीय व्यक्तियो के विकास मे अभिजात्य द्वारा प्रतिष्ठापित अवरोध प्रक्रिया का सवथा अभाव है। अ त्यज जातिया अस्पृश्य थी, गाँव अथवा नगर के बाहर उनका पृथक् निवास स्थान होता था, उनके स्पशमात्र से स्नान करना पडता था—इस प्रकार के घृणित तथा अमानवीय व्यवहार विवेच्य साहित्य मे किसी भी लोक आचार-विचार मे नही उपलब्ध होते। जोनपुर के बाजार मे ब्राह्मण का यज्ञोपवीत चाडाल के अ ग से लटक जाता था,[२] कि तु स्पृश्यता सम्ब धी कोई अव्यवस्था नही उत्पन्न होती थी। लोगो[३] का यह कहना कि शूद्रा का एकमात्र कत्तव्य स वर्णों की सेवा करना है, विवेच्य वाडमय द्वारा प्रमाणित नही होता। इसके प्रतिकूल ऐसे अवसर अवश्य उल्लिखित हे जिनमे विवाहादि समारोहो पर शूद्रा द्वारा ब्राह्मणा को बुलवा कर उनकी सेवाये ली गई हे।[४] सेवा-सुश्रूपा करन वाले शूद्रो का जमघट धनी असवर्णा के यहाँ दिखाई पडता हे।[५] गाबर के सहदेव की ८४ रानियो क पास ८९, ८१ चेरिया थी। ग्वालिन चादा के दहज मे एक सहस्र सेवक सेविकाए

१ जिण० ५१९। २ की० २ २१ १२२। ३ दे० अध्याय ४ वण व्यवस्था और अध्याय १, सामाजिक भेद प्रभेद। ४. वही। ५ वही।

दी गई थी। शूद्रो के लिए उल्लिखित यह सेवा-काय वर्ण व्यवस्था की अपेक्षा आर्थिक-सामाजिक प्रतिष्ठा पर अधिक आधारित प्रतीत होता है।

ख आश्रम—वण व्यवस्था का पूरक पक्ष आश्रम है। इसमे, लौकिक एव पारलौकिक प्रगति के लिए व्यक्ति का जीवन २५ २५ वर्षों के लिए ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास चार भागो मे विभाजित होता है। इतिहासकारा की दृष्टि मे यह विषय उपेक्षित रहा है।

विवेच्य साहित्य मे चित्रित व्यावहारिक जीवन मे गार्हस्थ्य का सर्वाधिक वणन प्राप्त होता है। इसका अत्यधिक महत्व परम्परागत भी है, क्योकि लोगो की ऐसी धारणा है कि प्राणी अकेला जन्मता और मरता है। मरण के अनन्तर यहा से कोई कुछ नहीं ले जाता। यदि कोई साथ जाता है, तो वह धर्म है। यही धम नरक की यातनाओ मे रक्षा करता है। अस्तु, गृहस्थाश्रम एक ऐसा स्थल है, जहा व्यक्ति शुभ धर्म-कम करके अपना परलोक सुधार सकता है। गृहस्थाश्रम का मूल उद्देश्य धर्माजन करना तथा वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञो के सम्पादन द्वारा ऋषि ऋण, पितृ-ऋण और देव ऋण तीनो से उऋण होना है। जयचन्द, जिणदत्त, प्रद्युम्न, जावदेव, जीवजसा तथा चन्द्रशेखर आदि अपने-अपने गृहस्थ जीवन मे धार्मिक कृत्यो से पुण्य कमाकर परलोक सुधारते हैं। समसामयिक कबि बब्बर की मान्यता है कि धमचित्त गुणवान् पुत्र, सुकर्मरत विनयशील पत्नी विशुद्ध देह और धन युक्त गृह, स्वग से भी उत्तम है—

सुधम्मचित्ता गुणमत पुत्ता, सुकम्मरत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध देहा धण मन्त गेहा कुणति के बब्बर सग्ग णेहा॥ प्रा० पैं० २ ११७

लोक रुचि के आधार पर आश्रमो मे दूसरा स्थान इस काल मे सन्यास को उपलब्ध है। यह निवृत्तमूलक है, समस्त कार्यो को परित्यक्त कर मुक्ति माग के चिंतन मे कालयापन करना है। इसकी सदस्यता स्वीकार करने वाले विपुल सख्या मे दिखाई पडते है। ग बर न र राजकीय आश्रम मे चार सहस्र योगिया, तन को क्षुण्ण करने वाले अनेक तपस्वियो, कलमास करन वाला स्त्रियो और सिद्ध पुरुषो की भीड एकत्रित रहती थी। इन्द्रभूति के अष्टापद शल पर चढन समय गातम स्वामी को १५०० तापस आते दिखाइ पडे। कन्नोज के महानगर मे समूह के समूह लगरा साधुओ तथा करोडो नगे साधुओ का उपस्थिति का उल्लेख है। इतिहास से भी इसका समथन होता है।

ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमो पर अधिक प्रकाश नही पडता।

१ वही।

ग सस्कार—हि दू-सस्कार की मान्यता वैदिक काल से अनेक परिवर्तनो को आत्मसात करता हुई विवेच्य काल तक उपलब्ध है। १६ सस्कारो मे सर्वाधिक लोकप्रिय मात्र जातकर्म, विद्यारभ, उपनयन, वेदारभ, विबाह तथा अत्येष्टि के सकेत आलोच्य ग्रन्थो मे प्राप्त हैं।

समसामयिक शास्त्रकार विवाह सस्कार को बाल्यकाल मे ही करवाने के चक्कर मे हैं[1] जिसके प्रभाव से विवेच्य वाडमय अछूना नही है। इतिहासकार यह बताने के फेर मे हैं कि 'कन्या अपहरण इस युग की एक सामान्य बात हो गई थी।[2]' कि तु भारतीय सस्कारो से अपरिचित प्रथम खृष्टाब्द के आस-पास आन वाली आभीर जाति के इस प्रकार के कार्यो को छोडकर यह कथन आलोच्य-साहित्य से प्रमाणित नही होता।

विवेच्य वाडमय मे अन्य सस्कारो के सहित विवाह सस्कार का उदात्त प्रभाव उभडकर प्रस्तुत होता है। सस्कारगत कर्मकाड से अभिभूत सभी जन किसी अदृश्य शक्ति से अनुप्राणित है। इसके द्वारा नतिक गुण, चरित्रनिर्माण तथा व्यक्तित्व का विकास सुनियोजित दिखाई पडता है।

इतिहासकारो का यह आक्षेप कि 'नारियाँ विलास की वस्तु मात्र थी'[3], कुछ सीमा तक अस्वस्थ दृष्टिकोण का द्योतक लगता है। विलासिता, नर-नारी दोनो को अभीष्ट है। किन्तु धर्म से इसका टकराव होने पर सस्काय व्यक्ति ने धर्म को अपेक्षाकृत अधिक महत्व प्रदान किया है, न कि लम्पटता को। नारी परित्यक्त अवस्था मे दु खी होने पर भी सासारिक सुखोपभोग की बात नही सोचती है। उसके जीवन मे तप से अन्यथा विकल्प नही आता है। ऐसे अवसर कारुणिक अवश्य है किन्तु गुरुतापूर्ण हैं। इसका श्रेय भारताय सस्कार विधान को दिया जा सकना है।

घ ऋणत्रयी—ऋणत्रयी मे आभार्य व्यक्ति दूसरो से उपलब्ध निस्वार्थ देय के प्रति उपकृत होता है। य तीन प्रकार क है ऋषि ऋण, पितृ ऋण तथा देव ऋण। ऋषि से विद्या, माता-पिता द्वारा पालन-पोषण तथा देव से जीवनदायक शक्तियाँ मिलती है। इनसे उऋण होने के लिए विद्याध्ययन, पुत्रोत्पादन तथा यज्ञकर्म अनिवार्य बनाकर हि दू समाज शास्त्रियो ने व्यक्ति को कृतज्ञ एव कत्तव्यनिष्ठ बनाने तथा समाज की निरतरता विद्यमान रखन का दिशा मे एक अनोखा प्रयास किया है।

इस काल के इतिहास मे ऋणत्रयी का वणन नही मिलता। विवेच्य वाडमय मे भी इसकी लोकप्रियता कुछ कम लगती है। फिर भी, ऋषि, माता-पिता तथा देव

१ देखिए अध्याय ४। २ वही। ३ वही।

सम्मानित एव पूज्य रूप मे उल्लिखित है । ऋषिऋण से उद्धार पाने के प्रमुख साधन विद्याध्ययन की ओर लोगो का ध्यान कम आकृष्ट हुआ है । इसका कारण राजनीतिक अस्थिरता सभाव्य हो सकती है । पितृऋण से मुक्ति पाने के लिए विवाह और पुत्र-प्राप्ति आवश्यक हैं । देवऋण से छुटकारा पाने का साधन, यज्ञ कम समसामयिक युग मे मन्दिर-निर्माण तथा दान देने मे परिवर्तित हो गया है । इसका कारण निगु ण देवो को मूर्तिमान रूप मे मान्यता मिलना प्रतीत होता है ।

ङ पुरुषाथ चतुष्टय—चौदहवे खृष्टाब्द के अपभ्रश एव हिन्दी वाड्मय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भारतीय सस्कृति की मूलभूत विशेषताओ मे पुरुषाथ चतुष्टय-धर्म, अथ, काम, मोक्ष—की उस समय सर्वोपरि लोकमान्यता थी किन्तु इस ओर इतिहासकारो का ध्यान बिल्कुल नही गया है । इस अध्याय और समसामयिक रहन-सहन के अध्ययन से स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस युग के चरित्र काव्य पुरुषाथ प्रधान हे । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो के अलग-अलग और उनके समन्वित रूप का जीवनादश रूप मे ग्रहण कर उनकी उपलब्धि के लिए काव्य-नायक आतुर और प्रयत्नशील हैं । हिन्दी साहित्य का आदिकाल पुरुषाथ प्रधान है, इस ओर साहित्यकारो का ध्यान जाना अपेक्षित है ।

इतिहासकारो का 'अथ' सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रधानत राजा महाराजाओ के रहन-सहन तथा व्यापार और व्यवसाय तक ही सीमित है । किन्तु आलोच्य साहित्य से यह भी ज्ञात होता है कि सामान्य लोग 'अथ' को कितना महत्त्व देते थे और उसका कौन सा रूप लोक-ग्राह्य था । परिश्रम द्वारा उपार्जित धन ही श्रेयस्कर समझा जाता था । इसका उपयोग मोक्ष प्राप्ति के सहायक रूप मे होता था । धन को व्यय करने का एकमात्र ढग उसका दान तथा मन्दिर-सरोवर आदि का निर्माण काय करना माना गया है । अन्य प्रकार के व्यय को विपत्ति कहा है ।

काम को इतिहासकारो ने विलासिता के रूप मे दिखाया है । विवेच्य साहित्य मे इसको जीवन का 'तत्त्वपूण मन्त्र' मानते हुए अन्य कलाओ और धर्म से समन्वित कर इसे भव्यता प्रदान की गई है । यहाँ 'धर्म' का तात्पय शास्त्रकारो द्वारा निर्मित उस विस्तृत विधि विधान से है जिसके पालन से जीवन का परम लक्ष्य 'मोक्ष' की उपलब्धि सहज सुलभ होती है ।

च कमफल और पुनजन्म—विश्व के अधिकाश प्रमुख सम्प्रदाय कर्मफल और पुनर्जन्म को नही मानते किन्तु हिन्दुओ मे चार्वाक मत को छोडकर सभी सम्प्रदाय

१ देखिए अध्याय १ ।

एव विचारक इसके समथक हैं। विवेच्य वाडमय मे जिनेन्द्र भगवान, नेमिनाथ भगवान, स्वामी रामानन्द तथा जन सामान्य की इसके प्रति गहरी आस्था है। कष्ट पडने पर तत्क्षण पूवज म के कर्मो का फल समझ कर लोग सात्वना-शक्ति प्राप्त करते है। कर्म-फल अवश्य भोगना पडता है, इस धारणा ने लोगो को बुराई करने स बचाया है। इससे प्रेरणा मिली है अच्छा कार्य करने को जिमसे भविष्य मे सुख मिले और कष्ट न हो। कर्मो को नि शेष करने वाले देवतुल्य समझे गये हैं।

छ असबिअत—चौदहवे खृष्टाब्द के अरबी साहित्य मे 'असबिअत' का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।[1] यह कबीलो के सामाजिक सगठन का मूलाधार है। अनुचित पक्ष-पात तथा न्याय अन्याय सभो बातो मे कबोले का होकर रहना, इसका परमधर्म है। असबिअत वाला व्यक्ति कबीले के अतिरिक्त अ यान्य व्यक्ति को जीवित रहने का पात्र नही समझता। विवेच्य साहित्य के अनुशीलन से नवागत तुर्क समाज मे यह गुण विद्यमान पाया जाता है।

ज कला—उन्नत तथा समृद्ध देश कलाप्रिय हाता है। विवेच्यकाल मे भारतीय कला कृत्तियो मे भी कला का सजीव चित्रण है। परम्परागत कलाओ के अतिरिक्त कतिपय नवीन कलात्मक सभारो की ओर दृष्टि आकृष्ट की गई है। काव्यकला को युग की सर्वोच मान्यता प्राप्त है—

'गेहे गेहे कलौ काव्य श्रोता तस्य पुरे पुरे।
देशे देशे रस ज्ञाता —की० १ ४ ११-१२

धर्म—

विवेच्यकाल के अपभ्रश एव हिन्दी वाडमय के आधार पर अध्याय ५ मे स्पष्ट किया गया है कि भारत वस्तुत धर्म प्राण देश है। लोगो की चि तनप्रक्रिया एव कार्य प्रणाली धर्ममूलक है। प्रत्येक प्रश्न अथवा समस्या का समाधान धर्मपरक दृष्टिकोण से किया गया है। इनमे साम्प्रदायिकता की गन्ध नही है। लोगो का अन्तिम आश्रय धर्म है। जन सामा य की धर्म के प्रति इतनी गम्भीर आस्था है कि दु साध्य काय भी वे धर्म-बल से कर लेते हैं। महान् उपलब्धि तथा सत्काय सम्पन्न हो जाने पर इसका श्रेय अपने को नही, धर्म को देते हैं। अपने धर्म के विधिविधान की व्यापकता और उपयोगिता पर लोगो का इतनी प्रगाढ आस्था है कि वे सस्कार। धर्म काम बने हैं

१ दे० 'इब्ने खलदून का मुकद्दमा (१४वीं शती) अनु० डा० सयिद अतहर अब्बास रिजवी, भूमिका, पृ० ६६।

गैर इनका पालन करना स्वत एक धर्म समझा जाने लगा है। वस्तुत सभी यक्ति किसी न किसी विहित धर्म द्वारा सचालित दिखाई पडते हैं। इसमे न केवल गीने की अपितु गौरव के साथ जीने की मौलिक आकाक्षा विद्यमान हैं। भारतीय गर्मिक-दृष्टि की प्रधानता इस तथ्य मे भी सन्निहित है कि यह समस्त धर्मों के प्रति उदारचेता है। धार्मिक समग्रता एव सामजस्य का श्रेय जन-मानस की अध्यात्मप्रधान चेतना को है जिसका उदाहरण विवेच्य वाडमय मे प्रचुरता से सुलभ है।

यह अत्यन्त खेदजनक है कि समसामयिक धार्मिक स्थिति को भारत के इतिहास मे प्राय इस प्रकार चित्रित किया गया है—'धार्मिक दृष्टि से इन दिनो शैव वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध तथा नाथपथी वर्गो का बोलबाला था। इनके अनक सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय थे जिनका पारस्परिक मतभेद एक दूसरे से पृथक रहने का ओर प्रवृत्त करता था। इनकी साधना और पूजा पद्धति के वाह्य विस्तार की विभिन्नता के कारण आपस मे बहुधा सङ्घष होता रहता था। सवत्र अविश्वास, मनोमालिन्य और विद्वेष की प्रधानता थी। निम्नस्तरीय वग भ्रान्ति मे पड गया था। उन्हे समयोजित माग प्रदशन का कोई अवलम्ब नही।'

वस्तुस्थिति से इतिहास के विलगाव होने का कारण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है और हिदू धर्म की वास्तविकता को न समझ पाना है। हिन्दू धम क्या है—इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। धर्म धारणात्मक तत्व का वाचक शब्द है। इसमे सत्य, नैतिकता, परोपकार, सदाचार, सत्कम, उपासना तथा दशन को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। आजकल भी जनसामान्य की यही धारणा है कि एक व्यक्ति जिसमे सैद्धान्तिक-चिंतन और उपासना का वाह्याचार नही है और वह सत्यनिष्ठ, परोपकारी नैतिक, सदाचारी तथा सत्कर्मा है तो वह धार्मिक है। दूसरा व्यक्ति जिसमे सैद्धातिक चितन और उपासना के वाह्याचार तो खूब हैं किन्तु सत्यनिष्ठा, परोपकार, नैतिकता, सदाचार और सत्कम आदि का अभाव है तो वह धूत है, धार्मिक नही। सतो की हिन्दी साहित्य की यही देन है कि उन्होने धर्मान्धो की पूजा-पद्धति और आचार्यों के सैद्धातिक मतभेदो के पचडे मे न पडकर जन साधारण के व्यावहारिक जीवन मे व्याप्त धार्मिक भावनाओ को महत्ता प्रदान की।

विवेच्य वाङ्मय मे उपलब्ध जन सामान्य की धार्मिक प्रवृत्तियो का विशद निरूपण है। इसमे, धम के विभिन्न रूपो—सत्य नैतिकता, सदाचार, सत्कम, उपासना, दर्शन, तथा यज्ञ आदि—के प्रति लोगो की मान्यता का वणन है। आलोच्य ग्रन्थो मे धम शब्द के अन्य विभिन्न प्रयोगो का भी उल्लेख है। समसामयिक धार्मिक स्थिति भी दर्शाया गया है।

धार्मिक क्षेत्र मे इस युग का यह महत्त्वपूर्ण योगदान है कि भारत देश की नैतिक मान्यताओ का सयोजन कर उसके समसामयिक रूप को ऐसे समय प्रस्तुत किया जबकि भारतीय सस्कृत का नवागत इस्लामी विधारधारा से मेल हो रहा था। विदेशी नैतिकता के समक्ष उदात्त भारतीय नैतिक प्रतिमाओ का उपस्थित कर उसे जीवत रूप मे प्रस्तुत करने की युगीन अपेक्षा थी।

इतिहास वर्णित तत्कालीन धार्मिक असहिष्णुता विवे य वाड्मय मे दृष्टिगत नही होता। कन्नौज,[२] जौनपुर[३] तथा गोबर नगर मे सभी साधक मिल जुलकर रहते दिखाइ पडते हैं। दूसरो के धार्मिक ग्र थ तथा नता के प्रति लोगो मे अवमानना का भाव नही है। धार्मिक वातावरण मे सहअस्तित्व, सहयोग तथा समन्वय की भावना विद्यमान है।

नवागत तुक सनिको मे धार्मिक असहिष्णुता अवश्य देखने को मिलती है।[५] किन्तु कुछ दिनो से आकर बसे हुए तुर्कों के स्वभाव मे परिवतन दिखाया गया है। अनेक प्रसगा[६] मे उनके समायोजन की मन स्थिति हिन्दू-तुर्को के सनिकट पहुँची है।

आर्थिक दशा

रहन-सहन का स्तर ऊँचा है। जीवनोपभोग सम्बन्धी वस्तुएँ उपलब्ध है। उत्पादन के लिए भूमि पर्याप्त है। पूजी का अभाव नही है। श्रम की मा यता है किन्तु श्रमिक सम्मानित नही है। अवाचीन सहकारी तथा ज्वाइट स्टाक कम्पनी की भाँति उत्पादन की सामूहिक व्यवस्था नही है। प्राय व्यवसायी अकेला ही पूजीपति, श्रमिक, प्रबन्धक तथा अपने जान-माल का जोखिम उठाने वाला होता है। फलत बिना वितरण किए उत्पादन की समस्त आय का अधिकारी स्वय व्यवसायी हा होता है। स्थानीय, अन्तर्देशीय तथा विदेशी व्यापार व्यवस्थित है। उनके केन्द्र नगर है। सामान्यत, मूल्य निश्चित है। मूल्य की अस्थिरता दुर्दिन का द्योतक समझी जाती है। मुद्रा मे दाम, कौडी तथा सुवण का सामान्य प्रचलन है। वस्तुओ को क्रय करने मे लोक सशक्त है। कला, यात्रा और घोडे बहुत मँहगे हैं। गणना तथा समय सूचक माप उन्नत है।

१ दे० धर्म—नतिकता। २ पृ० ४२३। ३ की० २।
४ कांवा २। ५ दे० की० २।१० १२।
६ दे० सामाजिक स्थिति हिन्दू तुर्क के पारस्परिक व्यवहार।

ाजनीतिक-स्थिति—

क) 'असबिअत की प्रधानता—

चौदहवी सदी भारत के तुर्क शासको मे 'असबिअत' तथा हिन्दू प्रजा एवं ाजन्यवर्ग मे 'पुरुषार्थ'[1] भावना की प्रधानता है किन्तु दानो भावनाये पतनोन्मुख है।

'असबिअत प्रारम्भ मे पक्षपात शक्ति अर्जन तथा प्रतिरक्षा की तीव्र भावना उत्पन्न कर प्रभुत्त्व बढाने के लक्ष्य की ओर ले जाती है। इसमे सर्वोच्च प्रभुत्व, शाह-ाहियत, लोकप्रियता पर नही अपितु आतंक पर आधारित होते हैं। कालान्तर मे ाभुत्व की गभीरता के अनुपात मे शाहशाह को भोग विलास एव समृद्धि के भाग की सुविधा सुलभ होती है जिसके लिए उच्च स्तरीय अधिकारियो मे पारस्परिक ईर्षा द्वेष ाथा अधिकार लोलुपता की भावना को शक्ति मिलती है। दूसरी ओर कोई भी शह ाह प्राप्त सुविधा को प्रसन्नतापूर्वक छोडने को तैयार न मिलेगा जब तक कि पूर्ण रूपेण वह विवश नही हो जाता। प्राय विद्रोह द्वारा युद्ध एव रक्तपात के माध्यम से ी सल्तनत मे प्रशासकीय परिवर्तन सम्भव हो पाते हैं। केन्द्रीय असबिअत के निर्बल होने पर उसके अधीनस्थ अन्य विभिन्न असबिअतो की महत्त्वाकाक्षाये क्रियाशील हो जाती है। अत 'असबिअत' से उपार्जित सल्तनत के विरुद्ध सदव विद्रोह का क्रम क्रियमाण रहता है। यह तथ्य इस्लाम के अभ्युदय से सम सामयिक एव अधुना काल ायन्त अनेक देशो मे द्रष्टव्य है।

सल्तनत स्थापित होने के पूर्व तुर्को के विचार यह हैं—

तब षान षुरासान तातार षान रुस्तम कर जोरइ।
आन साहि मरदान आन सु विहान विछोरहि।
हउ हमीर हिन्दू न दीन रोजा रमजानहि॥
पच निवाज विकाज करि न गोरी गुम्मानहि।
सुरतान आन चहुआन सउ जउ न चाल बविवि भिरहि।
दे हथ्थ हथ्थ दे अज्जु हम नहि दुरोग दाजक परहि॥

—पृथ्वीराज रासउ ११।८

—खुरासान खा, तातार खा तथा रुस्तम खाँ आदि सभी ने हाथ जोड कर कहा कि शाह की आन है, कल सुबह हम शत्रु पक्ष के मर्दो का आन छुडा देगे। हे अमीर, हम हिन्दू नही है, हमारा दीन रौजा और रमजान का है, हमारी पाँच नमाजे बेकार हो यदि इससे विपरीत हो। हे गोरी, तू हमारे सम्बन्ध मे सदेह न कर। सुलतान की

१ स्पष्टीकरण के लिए देखिए अध्याय ४, पुरुषार्थ चतुष्टय।

आन है, यदि हम कल चौहान से चाल बाध कर न भिडे। तुम्हारे हाथ में आज हाथ दे रहे है—तुमसे बैअत[1] करते है—कि हम न दरोग—झूठ-कहेगे और न दोजख मे पडेगे।

भारत मे इस्लामी राज्य की स्थापना हुई। विवेच्यकाल मे अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२६६-१३१६), मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५-१३५१) तथा फीरोजशाह (सन् १३५१-१३८८) तान बडे तथा अनेक छोटे सुल्तान कन्द्रीय सल्तनत दिल्ली मे हुए। इस बीच अनेक विद्रोह हुए। बहुत से सुल्तान पदच्युत हुए। वस्तुत प्रशासकीय परिवतन का गति तीव्र थी। केन्द्रीय शाहशाहियत के अन्तगत, देश मे, विभिन्न कबीलो के सशक्त नेताओ ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये अथवा उसके लिए प्रयत्नशील हुए। उनमे एकाध की परिस्थिति का दृष्टान्त देना असगत न होगा। जौनपुर की राज्यसत्ता का एकमात्र केन्द्र शाह शहाबुद्दीन है। उससे मिलने के लिए आये हुए व्यक्ति वर्षो से बैठे रह जाते है किन्तु उसका दशन नही हो पाता।

दरबार पइट्ठे दिवस भइट्टे वरिसहु भेट न पावन्ता।[2]

किसी भाति राजा कीर्तिसिंह ने शाह से भेट की ओर बताया कि 'असलान ने आपके फरमान की अवहेलना की है। उस शेर ने बिहार पर कब्जा कर लिया है। उसके चलने पर चामर डोलते है। शिर पर छत्र रख कर वह तिरहुत से कर उगाहता है। असलान राज्य कर रहा है इस पर भी यदि आपको रोष न हो तो तुरन्त अपने अह को तिलाजलि दान कर दीजिये। भुवन मे आपका प्रभुत्व जागृत है। यदि आप ही शत्रु के नाम से असहा (रुष्ट) न होगे तो दूसरे बेचारे क्या कर सकते हैं? यह सुनकर सुल्तान को क्रोध हुआ। दोनो भुजाये रोमाचित हो उठी। दोनो भौहो मे गाठे पड गई। अधर-बिंब प्रस्फुटित हुए। नयनो ने रक्त कमल की शोभा धारण की। खान तथा उमरा आदि सभी को आज्ञा हुई कि अपनी अपनी तैयारी पूरी करो आज तिरहुत पयान होगा। सुलतान गरम हुए। दरबार मे शोर मच गया, ससार जलने लगा, जैसे आज ही लका उजड गई हो।[3] आक्रमण हुआ और असलान भाग गया।

तुर्कों की 'असबिअत' पर आधारित आतकमूलक शाहशाहियत मे अधिकार को उत्सर्ग करने की भावना का अभाव दिखलाई पडता है। दूसरी ओर, देश मे हिन्दुओ के तीन छोटे-छोटे राज्यो—मिथिला, मेवाड तथा उडीसा का विवेच्य वाङ्मय मे उल्लेख हुआ है। इनके राजन्यो मे पुरुषार्थ[4] की प्रधानता है जिसमे धर्म, मोक्ष तथा

१ अध्याय ४ असबिअत। २ की० (शिव०) २ २२१।
३. वही, २२ ४२। ४ वही, २ २३ २७।

उदात्त पौरुष की भावनाये सशक्त हैं। राज्य सस्था एव तज्जनित भोग विलास को महत्वपूण स्थान नही मिला है। उनको सहजभाव से त्याग ने मे उदासीनता की अनुभूति दृष्टिगत नही होती। माता, पिता, मन्त्री तथा मित्र सभी कीर्तिसिंह को सीख देते हैं कि शत्रुओ को मित्र बना कर तुम्हे तिरहुत का राज्य करना चाहिये—

'माए जम्पइ अवरु गुरु लोए
मन्ति मित्र सिक्खवइ
तुम्हे सत्तुहि मित्त कए भुजहु तिरहुत राज।'

किन्तु कीर्तिसिंह का दृढ विचार है कि—

मज्झु पियारी एक्क पइ वीर पुरिस का रीति
मान विहूना भोअना सत्तुक देअल राज
सरन पइटठे जीअना तीनू काअर काज
नीच समाज न करओ रति
तै रहउ कि जाउ कि रज्ज मम'[1]

—मुझे एकमात्र वीर पुरुष की रीति ही प्यारी है। मानहीन भोजन करना, शत्रु प्रदत्त राज्य भोगना तथा शरणागत होकर जीना, ये तीनो कापुरुषो के कार्य हैं। मैं नीच का कभी साथ नही करूँगा, चाहे राज रहे अथवा जाय। एतदर्थ लोग, परिवार, राजभोग, वाहन, परिजन, जननी जन्मभूमि, नवयौवना पत्नी तथा समस्त धन-वैभव को त्याग कर पिता के वैर का वदला लेने के लिए गणेश्वर के पुत्र कीर्ति सिंह इब्राहीम शाह से मिलने चले—

लोअ छड्डिअ अवरु परिवार
रज्ज भोग परिहरिअ वर तुरग परिजन विमुक्किअ
जननि पाअे पन्नविअ जन्मभूमि को मोह छोड्डिअ
धनि छोन्डिअ नवयौव्वना धन छोडिओ वहुत्त
पातिशाह उद्देसे चलु गअन राय का पुत्त।

'प्रद्युम्नचरित' मे प्रद्युम्न के पिता ने उससे कहा कि—'तुम द्वारिका ले लो और राज्य का सुख भोगो। तुम राज्य काय मे धुरधर हो, ज्येष्ठ पुत्र हो, तुम्हे बहुत विद्याबल प्राप्त है, तुम्हारे पौरुष को देव भी जानते हैं, तुमने अनेक रण जीते, तुम अभी तप न धारण करो राज्य सुख भोगो। यह सुनकर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया कि 'राज्य क्या करना है, ससार तो स्वप्न के समान है। धन-पौरुष एव अपार बल का क्या करना है? माता-पिता तथा कुटुम्ब किसके हैं? एक ही घडी मे सब नष्ट हो

१ वही, २ ३४-३६ तथा ४७-४८। २ वही, २ ५४-५८।

जायेंगे ।' यह कहते हुये राज पाट को छोड़कर प्रद्युम्न ने नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षा ले ली ।[1] इसी प्रकार वासवदेव,[2] राजा चन्द्रशेखर[3] रावल धवलदेव[4], नेमिनाथ[5] तथा पृथ्वीराज आदि सभी के लिए धन, स्त्री और मरण, तृण से भी अधिक महत्वहीन हैं—'जिहि धन, त्रिय मरणु त्रिनि वरि जानह ।'[6]

(ख) सङ्घर्ष का युग—जहां तुर्कों की 'असनिअत' राज्य प्राप्ति के लक्ष्य की ओर ले जाती है वहां भारतीयों के इस प्रकार के विचार राज्य वैभव के त्याग-सूचक हैं । किन्तु दोनों जातियों के शासकों द्वारा राज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष बराबर होता रहा है । हिन्दू राजा इस प्रयत्न में थे कि वे अपना खोया हुआ राज्य वापस पा जाय । 'अलुता जे धरन्ते कलह करन्ते हिन्दू उतरवि भूमा ।'[7]—जो अभी तक लुप्त होने से बचे रहकर अपने राज्य को धारण किए हुए थे वे हिन्दू राजन्य युद्ध के लिए धुँधुँआ कर ऊपर उठ रहे थे ।

हिन्दू और तुर्क दोनों वर्गों के राजनीतिक संघर्ष में प्रतिहिंसा तथा प्रतिरक्षा की भावना प्रमुख होनी चाहिये थी किन्तु समसामयिक और प्रकाश संघर्षों के पीछे प्रभुत्व स्थापित करने की भावना प्रधान प्रतीत होती है क्योंकि अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए शासकगण विरोधी जातियों से भी संधि कर लेते हैं । इन संघर्षों में हिन्दुओं के 'धर्म युद्ध' और तुर्कों की 'चाल' की प्रधानता है । असलान-राजा गणेश्वर से बुद्धि, विक्रम तथा बल में पराजित होने पर उनके पास बैठ विश्वास दिलाकर उन्हें मार डालता है । किन्तु गणेश्वर का पुत्र कीर्तिसिंह रणक्षेत्र में भागते हुए पिता के हत्यारे असलान को प्राणदान देता है । इसी प्रकार पृथ्वीराज गोरी को मान भंग करके छोड़ देता है । किन्तु गोरी प्रथम जीत में ही पृथ्वीराज को अंधा बनाकर बन्दीगृह में नाना प्रकार की यातनायें देता है । तब भी गोरी को धोखे से मारने के लिए पृथ्वीराज उद्यत नहीं होता—'अहं त्वं त्वं अहं'—मैं तुम हूँ, तुम तुम हो—का अजपा जाप और ब्रह्म के साथ समभाव प्रकट होने में उन्होंने गोरी को मार कर मुक्ति प्राप्त की—

> हं तुम तुम हं अजप जपि सहज करि मिलनह ।
> प्रथीराज आज निहि मोन करि करि नरिंद निज उच्चरहि ।।[8]

यह भारत के परम पुरुषार्थ मूलक राजनीति को विश्व की अद्भुत देन

---

१ प्रद्यु० ६७६-६८८ । २ वीरा० ६० । ३ विद्या, ४७६-४८० ।
४ कच्छुलीरास । ५ नेमि० २३ । ६ पृ० १०५३ ।
७ की० ४ २० ११६ । ८ पृ० १२ ८ । ९ दे० राजनीति का अध्याय

परिशिष्ट १

सास्कृतिक शब्दानुक्रमणिका

सामाजिक शब्दकोष—

लोग—जिणदत्त चरित ३७-३६ से वणिक, वभण, वइद (वैद्य), वासीठ, वाढइ (बढई), वेसा (वेश्या), वरुड, वदरा, विवारी, बिहार, वाणु, वाह, वारी, वुरु, वहु, विहारछ, जीवरख, वरु विहारी, वारिठिया, वुह, विडह, वणियार, आदि चौबीस प्रकार के वकार नाम वाले लोग वसतपुर मे रहते थे।

निम्न चौबीस प्रकार के सकार नाम वाले लोग वसन्तपुर मे बसते थे —सूर, सामी, साहु, सोतिय, सरि, सरवर, सावय (श्रावक) सव्वल, सारग, साहूण, सिउ, सोहा, सहियणह सिरि, सत सहियण, समाण, सीमा, सत्थवइ (सार्थपति), सत्थ (सार्थ), सवण, सुहसार, सुव्वस, सील।

चादा अहिरिन के विवाह मे राजे और राने के साथ साथ भाट, कलावन्त, भरडा और तुरही बजाने वालो से बारात सजी थी (चादा ४०)। दशको मे बुनकर, भूमिधर और बारी आदि अनेक जातिया थी (तीन के अतिरिक्त नामोल्लेख नही है) चादा ४१।

आषाढी मे देव दशन के लिए टाकिनि खतरिनि, बाभनि, बैसिनि, थगरिन, भाटिन चउहानिनि शतीभनि, कैथिनि, डोडिन, गूजरि, सुनारी, मालिनि, कलवारी, बैसवा, परजा, पवनि, पक्तियो पक्तियो मे चली—चादा २४५।

वण रत्नाकर, प्रथम कल्लोल के नगर वणन की अपूर्ण सूची के अनुसार निम्न लिखित मन्द जातिया उपलब्ध हैं —नागल्, तोगल, तापसि, तेलि, ताति, तिवर, तुरिया, तुलुक तुरुकटारुअ, धेओल, धाङ्गल, धाकल, धानुक, धोआर, धुनिआ, धलिआर, डोव, डो/वटारुअ, खागि, षगार, हाडि, ढाढि, भल, चण्डार, चमार,

गोण्ठि, गोन्ति, गोआर, गावर, ओड शुण्डि, साव, पचकवार, पटनिआ परिगह, चावि, मुण्डवारि, वीन्द, कादव, नागर, ।

सभी पुस्तको से—अग्रवाल प्रच० ६ ६६४ । अतिथजन (याचक, पासह० ६१) की० १ २२ ६६ । अधम-उत्तम-की० २ ३ १३ । अ त्यज प्रचि० ०१ ३४ । आजणी—(जाटनी), वीरा० ८२ । आभीर प्रचि० ३ १०६ । आहेडी वीरा० ३१ । उभाखरा—(जिसका एक जगह निवास न हो)—मारु देश के 'लोक उँभाखरा थे—वीरा० ६६२ । उमार। (अरबो उमराव, अमीर की जमा, स्टाफा० ६६)—की० २ ३४ २२२ । ऊँमर सूमरा ढोमा० ४४१ । एवाल (गडेरिया) ढोमा० ४३५ । ओछा ढोमा० ३३८ । औल्ला (सभवत मुलला) खुरासान के आल्ला लोग पकड कर ले आये गये –प्रापै० ८ १४७ । करुर (क्रूर)-ढोमा० ६ १ । कल्लाल-वीरा० ६० । कविजण ढोमा० ४० । कछवाहा-पृ ४ १ ३-४ । करमी पृ० १२.११ २ । कहारु (कहाँर, डोली ढोने वाला)– चादा, ४८ । काअर की० २ ६ ३६ । काएथ्य-की० ३ २७ ११६ । कातर वर० ५ ४७ ख । कापडो प्रचि० ३ ९४ । कारु (मकानो के लिए पत्थर काटने वाले)-चादा २४ । कुभार-चा० ७५ प्रचि० १ ४ २ ७, ५ २०७ कुरु म-पृ० ४ १ ३-४ । कोल-पृ० ७ १५ १, वर० ३ ३१ ख । कोली-जिण० ४३ । कोटवार चादा, २४ । कौडिया (कौडी फेकने वाला ,-चादा १६३ । क्रपन (कृपिण) पृ० १२ ४० २ । खपर-चादा १६३ । खल-सामान्य । खोदारा (भाग्यहीन)—ढोमा० ३३६ । गँमार-सामान्य । ग दा (गुप्तचर स्टाफा० ११०७) की० २ २७ । ग्वाला चरवाहा चादा २०३ । गहिलुत पृ ७ २० १ । गाधी-ढोमा० ५६६ । गालिम (नौजवान लड.) की० २ ३४ २८६ । गारुडी वीरा० ६०, चादा० ६५ । गुआल-उ०य० ४ १४ । गुड जानि प्रचि० ८ १८६ । गुणियजन ढोमा० ८० । गुनी-चादा० ३२५ । गुलाम की० २ २८ १६६ ४ २६ ११७ । गुजारी चादा० ७१ । गुवाल प्रच० १ ७५ । गुहिल पृ० ४ १ ३ ४ । गूग ढोमा० १५६ । गोआरि (ग्वालिन) - विप० १ १४ । गोवालि (ग्वाले)-को० २ २४ १५१ । गासाउँ-की० २ ३ ११ ।

चडाल- प्रापै० २ १६५, वर० १ ७ख । चदन-पृ० ७ २७ २ । चमार वर० १ १०क । चहुआन-पृ० २ ३ ३६ ४ १ ३८, १ १२ २५, जाकर-ढोमा० २५३ । चारणा ढोमा० ४४१ क० ४ ४६ १८८, प्रचि० ४ १६३ । चामड पृ ११ १२ १८ । चालुक्य-पृ० १२ १२ १६ । चाह न छाहर (चहेते छाकरे)-की० २ ३४ २८६ । चोर ढोमा० २५३, ५७१, ७२, चादा० १६३ वर० ३ ३१ ख, ८ ७४ ख, वीरा० ६१, १००, की० २ ३ । चारा के स्वभाव वर० ८ ७४ ख । चोर-व्यापार वर० ३ ३१ ख । छइल-पृ० ४ २३ ७ की० १ १८ ३१ । जइसवाल कुल उत्तम जाति—

कहते हैं) प्रचि० ३ १७१ । बबर-प्रचि० ३ ११६ । बाजुर (वाद्य बजाकर मागने-खाने वाला) चादा० ५४ । बापुर (बेचारा)-विप० १ ४ । बावण (बौना)-जिणा० ३०७ । बुध-गौतम० ६ । बेडिन (नट का खेल दिखाने वाली स्त्री)-चादा० १६१ । भङ्गीजन-वर० ४ ३६ ख । भडा (भट) ढोमा० ६३ । भट-पृ० ६ २ २ आदि । भटटा-(भाट)-की० २ ३४ २२६ । भल माणस-ढोमा० ११४ । भल-विप० १ ५ । भाट-वीरा० ८, चादा, २६, १०४, वर० ६ ५५ क-५६ क आदि । भिक्खारि की० २ ३ १४ । भिखमगा-चादा० ६० । भिखारी-चादा० १७४-१७५ । भिरुजन वर० ३ ३१ ख । भिल्ली प० ७ २७ २० । भील-प्रच० ४ २६८ आदि प्रचि०, ३ ८७, ३:१२४ । भुवग (विट, गुडे)-की० २ २३ १३४ । भुषषहृ पृ० ५ ६ ४ । भोगीजन-वर० ३ ३० ख । मगता-चादा० ३०८ । मगन-पृ० ५ १४ २ । मगूल-पृ० ७ १० ६ ममक्की० पृ० १२ ११ ४ । मवन्न-वही । मरजिया (समुद्र के भीतर उतर कर उसमे से वस्तुओ को निकालने वाला) जिण० १९ । मरजीवउ (पनडुब्बा), ढोमा० २३१ । मसल्ले-पृ० १२ ११ ८ । महत्तर (प्रधान) की० ३ २६ ११२ । महाजनि लोइ ढोमा० १५६ । माँगण-ढोमा ६३ । माँगण पथी-ढोमा० १८६ । मागणहार ढोमा० १० । मागरवाल (विद्वान्)-ढोमा० १८४ । मानधनी-की० ३ २६ १०६ । माली-जिण० ४३ । मिवाजी पृ० १२ ११ ६ । मीर पृ० ५ १३,२३ । मुगल्ले पृ० १२ ११ ८ । मैछ-पृ० ११ १२ १६ । मेछ्छ-पृ० ११ १० ४ ।

याचक-प्रचि० २ ३९, ४ १६६ । यादव-प्रच० ६ ६७५ । युवजन वर० ३ ३० ख । रक-पृ० ८ २२ २, चादा० ३४५, ३४८ । रइबारी-ढोमा० ३०६ । रसज्ञाता की० १ ४ १२ । रजपूत पृ० ६ २३ ६ । रट्टवार पृ ५ २५ २ । रट्ठिवर-पृ० ७ ५ १, ८ १६ २ रष्षत-पृ० ५ २९ १ । रसिक की० २ २४ १४६ । रह ने पृ० १२ ११ ५ । राइ-चादा० ३४५, ३४८ । राक-की० २ ३५ २३३ । राठवर पृ० ४ १ ३-४ । रुहल्ले-पृ० १२ ११ १ रैअति की० ३ २० ८८ । राहगी, रोहमी पृ० १२-११ १ । रोहिल्ल-पृ० ४ १ ३-४ । लगरी पृ० ४ २३ १ । लपट जुआर-जिण० १२८ । लोअह की० २ ३४ २१६ । लोए की० ३ ८ २६ । लोक-की० २ २५ १५२ । वदिणिजण जिण० ८८ । वदिडो-वीरा० ६० । वश-पृ० २ १ ५ । बडगूजर पृ० ४ १ । वपुरा की० ३ ८ ३१ । वड्डियो की० २ १७ ८४ । वणिक की० २ १७ ६० । व दा (नौकर, गुलाम)-की० २ १७ ८४ । व दीजन-वर० ३ २६ ख, ५ ४६ क । वव्वरा (कुटुम्बी किसान)-की० २ १७ ९० । वादि (फरियादी) की० २ २७ १६० । वापुर (बेचारे)-की० २ १८ १११ । विज्ञजन वर० ३ ३१ क । विज्जात्रइ (विद्वान) की० १ १० २३ । विड (दुष्ट)-चादा २२६ । विप्प पृ० २ १० ५ । विप्र-पृ० ४ १० ७ । विराजी—पृ० १२ ११ ७ । वीर-सामान्य । वीसू (सभवत चारण

जाति विशेष) ढोमा० ४८७ । वैसा, वेश्या सामान्य । षित्री-पृ० २ ३ ५, ११ ६ २ । षाचिया-पृ० ११ १२ २२ । व्याध-वर० ५ ५० क । षाण-की० २ ३४ २२२ । सइअदगारे-की० २ ३४ २२० । सकताक की० ४ २३ ६४ । सगली जनमाहि-वीरा० २७ । सज्जणा-ढामा० १६२ । सज्जन-की० १ ६ २१, सरण (शरणागत)-की० १ २२ ६६ । सरमी (शरम करने वाले,-की० ८ ४३ १७१ । समन्नी-पृ० १२ ११ ८ सवज्जे-पृ० १२ ११ ७ । साथ-पृ० ४ २३ ५ । साघु-की० ४ २४ १०० विप० १ ५ । सामि-की० ३ २६ १११ । साहुडो-वीरा० ६० । सिद्ध-की० ४ ४६ १८८ । भियान-का० २ ३६ २४६ । सुअण-की० १ ७ १८, १ १६ ४३ । सुपन्ने पृ० १२ ११ ६ । सुरमी-पृ० १२ ११ १ । सुमले-पृ० १२ ११ ३ । सुमुन्नी, सुहक्के, सुहन्ने-पृ० १२ ११। सूअण (सज्जन)-की० ३ ३६ १६० । सेवक की० २ १५ ६८ । सोनार-पृ० २ ३ ५८ । सोलकी-पृ० ७ २० ४ । स्त्रवनी, हकम्मे, हवस्सी, हसल्ले पृ० १२ ११ । हिन्दु-राइ-पृ० ११ ७ ३ । हीन्दू-पृ० ११ १२ १७ ।

अनेक प्रकार के भिखारी – जगा, योगी, नगारि, भरहर, भाण्डुआ, बेड्गौ, चतरिआ, सुरतरिआ, महीर, गोरइआ, वाहिलि, परमा प्रभृति अनेक भिखारियो से नगर भरा था—वर० १ १०ख । नगर मे लहु, लग्ल, लोभी, लवाल, लपटोर, नढ, नडजिह, नैघुट, नहका, नषद्वय, लम्पाक सदृश दशलकार नामवाले विद्यमान हैं—वर० १ १०क । वहा चोर, चचल, जुआर, छिनार, लगवार, नओवसाइड, धल/×× ह, पेटकट, नाकट, कनकट, मुण्डफोलुअ, नडितालुअ अनेक असदर्थ अनुचीती भी थे—वही । लगले मद्ये, गारि क`दल, घ । रहलि, हरहलि, चोट, उपशम, हास्य, करुणा आलिङ्गन, प्रणाम, असम्भ्रम, उछार, वोकार, वमन, विरेचन, लब्बी तथा भुगत दुरवस्था वाले लोग भी नगर मे मिलते हैं—वर० १ १३क । शयन के समय प्रतिष्ठित, आप्त, परम्परीण, विश्वास योग्य, गोआर, कोइरि, कु । लुवि, रजक प्रभृति जनदेश नओवति नियुक्त भेल अछ । नाउ जनदुइ पएर सम्हाहन करते, परिचारिका दुइ पान कर्पूर लए हाथ देहते अछ । वर० ३ २६ ख ।

द्यूत क्रीडा मे वसनी । सहिआर, खेलवार, दण्डसाह, द्रष्टा प्रभृति अनेक लोक दिखाई पडते हैं । राजपुत्र, शिष्टपुत्र, साधुपुत्र, कुलपुत्र, भट्टपुत्र, वैदेशिक, आमने-कादि अनेक व्यसनी अर्थी, जुआर के सङ्ग खेलते हैं । वन, पसहर, सरिहर, सयान, टेण्टल, अधषल, मडिषाधुर, खेलवार, जुयार, दण्डगाह, दिघोय, वेधवार, उपवार, वोलनिहार । चीती विशेषक मड्गनिहार लोक वइसल देखुह । वर० ४-३८ ।

वेश्या के साथ पान नायिका, प्रतिनायिका, सखी, सैरन्ध्री, परिचारिका, दास, दासी, वन्धुल, निर्लज्ज, आचारहीन, निगति, निराश्रय, कामुकादि लोग दिखाई पडतें है—वर० ४-३६ ख ।

ऐसे भी लोग हैं जिनके चित्त मे नित्य कपट बसता है, जा दुनियाँ को गाली देते हैं, शोरगुल मचाते हैं, दूसरो की गाठ ओर मुट्ठी ताकते रहते है, निर्लज्ज होकर विषयो के भक्त होते हैं, जिन्हे वैराग्य अच्छा नही लगता, जिनका मन सदैव दूसरो के द्रव्य मे स्थिर रहता है और पर स्त्री की वाछा करते रहते है, जो बार-बार वेश्या के घर जाते, जुआ खेलते हैं, चोरी करने मे आलस्य नही करते, दूसरो की गाठ और मुट्ठी ताकते रहते हैं, निर्लज्ज होकर विषयो के भक्त होते है, जिन्हे वैराग्य अच्छा नही लगता, जिनका मन सदैव दूसरो के द्रव्य मे स्थिर रहता है और पर स्त्री की वाछा करते रहते हैं, जो बार-बार वेश्या के घर जाते हैं, जुआ खेलत है, चारी करने मे आलस्य नही करते, दूसरो की गाठ काटकर अपना घर भरते, जिनका काय तिरस्कार करना आदि था। ऐसे लोगो को सेठ जीणदत्त ने बुलाकर कहा कि 'जो मेरे पुत्र जिणदत्त का मन सासारिक विषय वासनाओ की ओर लगा देगा, उसे निश्चित रूप से एक लाख दाम मिलेगा।' 'जुवारिउ' हँसि बोलइ बोलु। तुम्हि तौ धरिउ हमारौ तौलु। —जिण० ६८-७३।

ऐसे भी लोग हैं जो रात मे 'घुटने', दिन मे 'सूय' तथा शाम को 'आग' के बल पर शीत काटते हैं। उनके पास शीत रक्षा हेतु कोई वस्त्र नही, आग सुलगाने के लिये सगडी नही, सोने को शय्या नही, कुटिया मे हवा रोकने का उपाय नही, खाने को मुट्ठी भर चावल नही, घडी भर मे सन्तोष नही, श्रृङ्गार की कोई वृत्ति नही, मन को प्रसन्न करने के लिए कोई प्रिया नही तथा लेनदारो से सकट मे फँसा हुआ है—प्रचि० २ ४६ ६५।

ब्राह्मण मे ओज्झा (की० ३ ३४ १४१), त्रिवेदी (प्रचि० ३ १२३), दीक्षित (वर० ३ ३२ क) तथा पाण्डे (चादा० ३६) का उल्लेख हुआ है। क्षत्रियो के प्रसिद्ध ३६ कुलो (चादा० २६, ३३, ८६, १०१, २११, वीरा० ६, वर० ५ ४४ क) का वर्ण-रत्नाकर (५:४४ क) मे इस प्रकार उल्लेख है—डोड, पमार, विन्द, छी। कोर, छेवार, निकुम्भ, राओल, चाओट, चाड्गल, चन्देल, चउहान, चालुकि, रठउल, करचुरि, करम्ब, बुघेल, वीर ब्रह्म, वन्दाउत, वएस, वछो। म, वद्धन, गुडिय, गुहलउत, सुरुकि, सहिआउत, शिषर, शूर, खातिमान, सहरओट, भोण्ड, भद्र, भजभटी, कूढ, खरसान। वर्ण रत्नाकर ८:६९ ख तथा ७० क मे ७२ राजपुत्र कुलो का वर्णन हुआ है। यथा, सोमवश, सूर्यवश, डोड, चौउसि, चोल, सेन, पाल, यादव, पामार, नन्द, निकुम्भ, पुष्पभूति, श्रृङ्गार, आहीन गुपझज्झर, सुरु। कि, शिषर, वएकवार, गानहवार, सुरवार, भेद, महर, वट, कूल, कछवाह, वएस, करम्ब, हेयाण, छेवारक, छुरियोज, भोण्ड, भीम, वीन्ह, पुण्डिरियान, चौहान छीन्द, छीको। र, चन्देल,

वानुकि, काचिवाल, रचकउत, मुण्डउन, विकउत, गुलहउत चाडगल, छवेल, भटि, मन्ददत्त, सिंहविर ब्रह्म पामार, खग्ति वग्म, रघवश पनिहार, मूरभज्ज, गोमत, गान्धार, वर्द्धन, वछोम, विशिष्ट, वरआह गुटिअ भद्र खुरसान। वर्ण रत्नाकर ३ २२ क मे साधु, स्वाध्यायिक सानुवाह, यशवाहन, मुवुधि सएआन, सारथ, सिंहल, मालकार, गन्धवनिक रत्नपरीक्षक। वेलवार, वामन प्रभृति अनेक वनिकपुत्रो का उल्लेख हुआ है।

मुसलमानो मे उमारा (का० २ ३४ २२२) खाण (खा) कीं० २ २६ १८० अमण यवन) की० २ २८ १८०, ३ २५ १०७, तुरुक-की० २ २७ २८ तुलक-की० ३ १७ ७०, ७५, ४ १६ ८०, ४ ३० ११८। तुरुकिनी-का० २ २९ १८७), तुरुक्क (की० २ ४ १७), मीर (की० २ २७ १६९) मुगल की० ४ १६-१८, मेच्छ (प्रा० पै० १ ७१ २ २०७), मेच्छु (चादा० ३४५), मेछु (चादा० ३४६), वल्लीअ (की० २ २७ १ ६) षाण (की० २ ३४ २१७), षोजा (की० २ २७ १६६), सइअदगारे की० २ ३४ २२०), सइलत्तार (की० २ २७ १६६)। पृथ्वीराज रासउ, १२ ११ मे मुहम्मद गोरी के राज दरवारियो मे निम्नलिखित का उल्लेख किया गया है —रोहमी, राहगी, रुहले, सुरम। सुहन्नी स्रवनी, मुहक्के, करमी, धरेते, तरते, सुधारे, सुमेले, तुरक्की, ममक्की, मनन्न, जलेले, हवस्सी, हकम्मे, रहन्ने, सुहन्ने, पषगे पवगी, पवन्ने, सुपन्ने, मिवाजा, विराजी, सकज्जे, हसल्ले, समन्नी, सुसुन्नी, मुगल्ले, मसल्ले पठाण।

इनमे उत्तम परिवार षाण उमारा महल मजेदे जानन्ता। की० २ ३८ २२२। वणरत्नाकर (५ ५०क) के अनुसार वन-निवासी म्लेच्छो की जातिया —कोच, किरात, कोल्ह, भिल, षस, पुलिन्द, सवर, छेरङ्ग, म्लेच्छ, गोण्ठ, वोट, नेट, पहलिया, पोध, दोन। वार, सागर, वातर। वणरत्नाकर (५ ५४ क) के अनुसार पर्व्वत पर रहने वाल म्लेच्छो की जातिया —गोण्ड, पतगोण्ड, शवर, किरात, वव्वर, भिल्ल, पुक्कस, पचारि, मेद, मङ्गर।

वस्त्र—३० प्रकार के पट्टम्बर जाति (वर० ४ ३५ ख)—दुकूल, क्षौम, कौशेय, कनक-पत्र, विचित्र, मेघवण, मेघउदु। म्बर, षरम, क्षीरोदक, कर्प्पूरचौक, कर्प्पूरतिलक, सूयवध, गडगासागर, गजवन्ध, अहिनवाल, देवाङ्ग, शूचीसोन, शुचीपाल पाचौन, सो / नपलि, गाजीपलि, कदली गभ, मुक्तापद, मालाविद्याधर, श्रीकठ, लक्ष्मी-विलास, विचित्राङ्गद, चक्रेश्वरी, दण्डप्रकार।

देशीयवस्त्र—(वर० ४ ३५ ख)-तचेर, गागौर, सिलहटी, अजयमेरु, गाण्डीपुर, राजपर जगद्धरपुर, कचिवनि, चोलपाटन, द्वारवास, नीस / सन्तोस, षडपी, पटोर,

माड्गल, पारिजात, मनि, मनिजाल, सर्व्वाङ्ग, रूपमञ्जरी, सम्वलहरी, सूय मण्डल, चन्द्रमण्डल, तारा मण्डल ।

निर्भूषण (सादा) वस्त्र (वर० ४ ३६क)—कमरुवाल, वङ्गाल, गुञ्जर, कठिवाल, तेलकण्टा, शुद्धओट, काची, निचढी, जीली, वरहथी, मझओवरि, झुरण वपया।

१४ प्रकार के नेत (उत्तम) वस्त्र (वर० ४ ३६क)-हरिणा, वेङ्गना, नखी सर्व्वाङ्ग, गुरु, शुचीन, राजन, पचरग, नील, हरित, पीत, लोहित, चित्रवण। शयनासन वस्त्र (वर० ३ २६क) कम्बल चारि, सकलात पाच, खरल दश, पली कोली, स्निग्ध खटक धुआक आह, चारिहु कौन चँदोआ वान्धल ।

धनी ग्वालिन (उत्तर प्रदेश) का पहिरावा (चादा० ८३)—फुदिया से मिली हुई सिंदूरी सारी । 'मेघबना, कुसियारा, जोगिया और चौकडिया चीर पहनती है । पनली मुगिया वह सिर पर चढाती है । पुन वह मडिला और छुदरी (चूदरी) पहनती है । सावन मे वह कुसुम्भी (चीर) से रक्त (सुन्दर) बनी रहती थी । (उसके शरार पर) एकखडे छापे की गुजराती (साडी) शोभा देती है । डोरिया, चदरौटा, अबजारु तथा पटोर से उसका शृङ्गार हाता था । चोला (चोली) और चीर धारण कर जब वह चलती है, तो लगता है कि वह उड जायेगी । उसके रूप को देख देवता विमोहित हो उठे (और सोचने लगे) 'कहाँ से यह अप्सरा आई हुई है ?'

अचल—की० ४ ५३ २१६ । अचलि-वीरा० ५२ । अम्बर मण्डल (वस्त्र का बना हुआ मडल नामक तम्बू)—की० २ ३४ २१६ । अम्बर (वस्त्र)—की० २ २४ १३७, ३ २५ १०६, ३ ३ १०, विप० १ ६, अबरा—की० २ १७ ८६ । आगा-चादा १०६ । आचर—वर० ४ ३६क, की० २ २४ १५० । उत्तरोय पट-वर० ३ २५ ख । (झूनागढ का) उलपट (दुपट्टा)–वीरा० १२७ । कचुय-कुहाणी फाटउ रे कचुयउ । खंपरि फाटउ तु धण केरउ चीर—कचुकी जिण० ६६, कोशा वेश्या के उर मडल पर कचुलि-स्थूलि० ३ १५ । कसी कचूकी कुहनी पर फट गई है और चीर सिर पर-वीरा० ६४ । रत्नजटित कचुली जिण० ६६, कोशा वेश्या के उर मडल पर कंचुलि-स्थूलि० ३=१५, कसी कचूकी ढोमा० ४६, सुहागरात मे मारु कचूबा को दूर करके प्रियतम के कण्ठ से लगी-ढोमा० ५५१, ३५७, मारु ने गले से कुचुब उतार दिया—ढोमा० ५५२, कचूय भीजइ जण हसइ वीरा० ७२ । रत्नकम्बल (सवा लाख रुपये मूल्य का)-शालिभद्र रास । पहिरण-ओढण कबला (पहिरने-ओढने के लिए कम्बल)-ढोमा ६६२ । कछती-वर० ६ ६१ क । कबाइ (लम्बा अगरखा) वीरा० ११ । विमलमती की काचुली माणिक्य तथा रत्न आदि पदार्थों से जडी हुई थी, बीच-बीच मे हीरे और सोने से मडी हुई थी, इसके आसपास मोती जडे हुये थे । यह नौ कोटि द्रव्य मे मोल ली गई थी— जिण० १३५ । काछल वर० ३ २०ख, २१ क । काछा-

चादा० ८६। कापर-चादा २६। कप्पड-ढोमा० २४९। कप्पडे-टोया० १६। कप्पण ढोमा० ४६३, कापडे-की० ३ २२ ६६। कापल-की० १ ८५ ६५। कुलहृ—वीरा० ११। कौपीन-वर० ५ ५४ ख। कापटिक वेश (गगा आदि नदियो का जल लाकर जीविका करने वाला यात्रा)—प्रचि० १ २४। मारु घम्मवमन्नइ घाघरपहन कर सुहागरात मनाने गई—ढोमा० ५३७। चादर (उडीमा राज ने वासलदव को आधी चादर बैठने को दिया)—वीरा० १०९। चित्र वसना-वर० २ २० क। चीर (उसके चद्रचीर मे भ्रम जैसी दिखाई पडती है)—चादा ४०, ७६। कोशा वेश्या अत्यन्त सूक्ष्म और मुलायम चीर पहनती है—स्थूलि० ३ १०। विरहावस्था मे चीर नही सभल रहे है—विप० १ १३)। कटि पर का चीर अपने स्थान पर नही रुकता है—वीरा० ११४, ९४। रात भर इतना रोई कि चीर निचोन-निचाते हाथ मे छाले पड गये—ढोमा० १५६। कुसुम चीर से ढके उरोज माना वेल फरे है—चादा० ७७। दखणी चीर-ढौमा० २३२ चादा को नहलवाकर सिंदुरी चीर पहनवाया गया—चादा ५०। चूनरी-वीरा० ५६। चोली-वीरा० ७०। चदनौटे की चोली प्रावा पर-चादा २६०। झगा-चादा० ७८१ ३१४ टापर (पशुओ के आढने का माटा कपडा)—ढोमा० २७९, २८०। टाटर-चादा० १०६। झना जूनागढ) का ताव (चादर) पहिनकर राजमती १२ बष बाद वीसलदेव से मिलने शैय्या पर आई—वीरा० १२७। दुलाइया-चादा० ३३७। नीलाम्बर-वर० ३ ३२ ख। छीपर नत-चादा० ४१। नेत्र, पटोली-जिण० ४८९-४९०। पथी वेस—ढोमा० १०८। पगर-वीरा० ५२। पटसारि (शामियाना)—चादा० ४१। पटी (पिछौडी)—प्रचि० ४-१९०-२२६। गोबर नगर की रानियाँ पाट (रेशम) और पटोर (अच्छे पट्टकूल-रेशमी वस्त्र) मे भूली रहती थी—चादा० ३१, ४१। पटोली-वीरा० २३, ५९, जिण ४११, ४८९, ४९०। पट्टम्बर धोती—वर० ३ ७५ ख। पटोला-ढोमा० २३३। पाग-चादा०, २४ १०६ ३१४। पाट पटोले—जिण १०३। पाट पटबर (रेशमी वस्त्र, कुलह-वारा० ११। पीताबर की ओढनी-सनेह० २९। फरिया (लँहगा)—वर० ५ ४६ क फुदा (फुलरा) वीरा० १५। मोजडी (जूता)—ढोमा० ३७५। माजा-ढोमा० ३९९, की० २ २७ १६८। मोजाले मोजे (जूता के ऊपर पहने जाने वाला मोजा स्टाफा०, पृ० ६६८, फा० सरमोज)—की० ४ १५ ६४। लोवडी (लोमपटा) वीरा० ३४, ८२। वस्त्र-चादा० ३९, वर० ४ ३३ ख, ३४क, ५ ४९क। वस्त्रगृह-पर० ४ १६ ख। सउड (चादर) वीरा० २२, वसन-वर० ४ ३४ ख। वेस—ढोमा० ३०२। ढोला के गमनोपरान्त मालवणी के सिर का साडी और गले की कचुकी (आसुओ के कारण) निचोडने योग्य हो गई थी—ढोमा० ३५७। वृहस्पति चादा० को सम-झाती है कि केशो को बाध और साडी लेकर ओट बाधि केस ओटि लेह सारी चादा०

१३९ २। पहिरि चाद खीरोदक सारी चादा० १५३। मुगिया सारि आनि पहिराई-चादा० ३९३। एक खड छाप आनि पहनाई-चादा० २९५। शृङ्गार कोडी नामक साडी-प्रचि० ४ १३७। सारी—चादा० ८३। सावट्ट वीरा० ११। सूचीकर्म—वर० ४ ३४ ख।

चमडे से निर्मित—चामर—प्रच० १ ७२ का०, ३ ६ २२, ४ २८ १११, वर० ४:३६क। पइज्जल (जूता)—की० २ २७ १६८। पाणही-वीरा० ३६, ढोमा० १७६, वीरा० ९७। पापोस (जूता, स्टाफा० २३४)-का० ३ ८ १५।

अलङ्कार—वर्ण रत्नाकर ४ ३५क के अनुसार अलकार १८ जाति के रत्न और ३२ जाति के उपमनियो से युक्त होते है।

द्वारिका के यादवकुलीन महापुरुष नेमिनाथ के विवाहोत्सव पर उनको, कानो मे कुडल, सीस पर मउड (मउर, मुकुट) और गले मे नवसर हार से सुशोभित किया गया था। शरीर पर चदणि-अगरि का लेप और चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल वस्त्र से उनका शृङ्गार हुआ था। (नेमिनाथ० १४)। इस अवसर पर बहू के शृङ्गार मे सीमन्त (माग) मे मोतियो की लडे भरी थी। उसके काना मे मोती का कुण्डल, कठ मे नगजडित कठा और हार, हाथ मे ककण और मणिवलित चूडिया तथा पैरो मे घूघरू वाले कडे और नूपुर विराजमान थे (वही १८-२१)। मारु (राजस्थान) अपना सुहागरात मनाने घम्मघमतइ घूघर और पैर मे स ने की पाल (पायल) पहिन कर गई थी (ढोमा० ५३९-४०)।

राजमती (राजस्थान) द्वारा व्यवहृत आभूपणा मे रत्न कुडल, सुनहला पायल और रत्नजडित शीशफूल थे (वीरा० ५८)। सिंहलराज ने अपनी कन्या श्रीमती की बिदाई मे चौदह आभूषण दिये थे। उनका नामोल्लेख नही है (जिण० २३९)। विद्याधर पति ने अपनी पुत्री को बिदाई मे कडइ (कडा) और चूडा दिया है (जिण० २९५)

चाँदायन (८४) मे बाजुर ने रूपचन्द्र म बताया था कि चादा अहिरिन (उत्तर प्रदेश) के कुडल हीरो से जडे थे। उसके कणाभरण मे चा ो और बहुमूल्य पत्थर बैठे हुये थे। उसके कानो मे दो खूट, नाक मे फुल्ली, गले मे हार-डोरे और सकरिया, दसो उँगलियो मे अँगूठियां, करो मे कङ्गन और पैरो मे चूडे, नूपुर तथा पायल थे। लौरिक अहीर (उत्तर प्रदेश) के कानो मे स्वण कुडल शोभित हैं (चादा १३७)।

वीसू ने मारु (राजस्थान) द्वारा प्रयुक्त आभूषणो मे कुडल, बहुमूल्य हार, बाहो मे बहरखा, कटि मे मेखला तथा पग मे झाँझर का वर्णन किया है (ढोमा०

४८०, ४८१) । देवयात्रा पर गई मैना अहिरिन (उत्तर प्रदेश) गले में मोती जडित हार, बीर (कर्णाभरण), दो नगुले, सलोनी (बाहु मे), सँकरी और माणिक्य हीरे आदि बहुमूल्य पदार्थो से जटित खूट (कान मे) पहिने थी (चादा० २६०) ।

स्थूलिभद्र के स्वागताथ कोशा वेश्या द्वारा कृत शृङ्गार मे मोतिय हार, नेउर (नूपुर), कुडल ओर पैर मे घामरा (घु घरी) आभूषण शोभित थे (स्थूलि० ३ ११) । रणक्षेत्र मे जाते समय राजा किरीट, हार, ककण, कुडल और हीरे की मुँदरी से युक्त है । (प्रापै० २ २०९) । नर्तकी चूली, वलया, दवनीयारा, मेषला, कुडल, पताका, दत्छाचान्ह और नूपुर प्रभृति अनेक अलकारो से सयुक्त है (वर (६ ६० क) । विद्यावन्त ककना, वौर, सिंगली शाख, खिनान्व, खुन्ती, चूलि, तुका, वलय, हार, डोर तथा नूपुर प्रभृति अनेक अलकारो से शोभित है (वर० ६ ५७ क) । आषेट वर्णन मे ध्वज, चामर, चिह्न, छत्र, टग, आगार आदि सैन्यालकार द्रष्टव्य है (वर० ५.४६ क) ।

प्रथम सर्पदश से जीवित होने पर लौरिक ने चादा के लिए गारुरी को तरिवन, हास (हसुली), सोने का चूरा, भँवर, मोर, कान के फेरे, सिर की माँग, हाथो के करपा, केजूर, सोने की माठी, अगूठी, माणिक्य की काठी, पैरो के अनवट, बिछुआ और पायर पारतोषिक रूप मे दिया (चादा ३२८) । गोबर युद्ध मे जाते समय लोरिक ने अपनी पत्नी मे प्रतिश्रुत हुआ था कि जीत कर आने पर सोने का पइरि (पायल) बनवाएगा और मोतियो से उसका माँग भरवायेगा (चादा १०८) । ढोला ने मालवणी से वाग्दान किया था कि यदि उसे विदेश जाने दिया गया तो वह ईडर (गुजरात मे) से आभूषण बनवा के भेजेगा (ढोमा० २२४) ।

एकावली—वर० २ १८ क । ककण सामान्य । कचुरी-जिण० ९८ । कठलि-ढोमा० २६७ । साने की कठो-प्रचि० ४ १३५ । कनकाभरण-वर० २ १६ ख । कुंडल सामान्य । खूटी-वर० २ १८ क । चुलि-वर० २ १८ क । चूडइ-ढोमा० ४७५ । छत्र सामान्य । सोना का डोरा-वर० २ २० ख । ताडक-प्रचि० ३·१०० । त्रिका- वर० २:१८ क, नकफूली-ढोमा० ५७१-७२ । नूपुर-वर० २ १८ क, प्रा० पै० २ १८५ । नेउर-जिण० ९१ । पद्मसूत्र-वर० २ १८ क । पाल-ढोमा ५३९ । फुरहुरा-वर० २ २१ क । बहरखा-ढोमा० ४८१ । मउड (मौर) वीरा० १५ । मोतिन माल-सामान्य। । मूद्रडउ-वीरा० ५५, मूद्रण-वीरा० ८५, मूदडी-जिण० २८६, ९१, प्रच० १ ५२ । मेषला-वर० २.१८ क । राषडी (शीशफूल)-वीरा० २३ । वलया-वर० २:१८ क, की० २ १८ १०६ । शखवलय-वर० ३ ३२ क । सिंकली-वर० २ १८ क । सीसफूल ढाका० ४८० । सूता-वर० २ १८ क । हासला-वीरा० ११ । हार-सामान्य ।

१३९ २ । पांहांर चाद खीरोदक सारी चादा० १५३ । मुगिया सारि आनि पहिराई-चादा० ३९३ । एक खड छाप आनि पहनाई-चादा० २६५ । शृङ्गार कोडी नामक साडी-प्रचि० ४ १३७ । सारी—चादा० ८३ । सावट्ट वीरा० ११ । सूचीकर्म—वर० ४ ३४ ख ।

चमडे से निर्मित—चामर—प्रच० १ ७२ का०, ३ ६ २२, ४ २८ १११, वर० ४।३६क । पइज्जल (जूता)—की० २ २७ १६८ । पाणही-वीरा० ३६, ढोमा० १७६, वीरा० ९७ । पापोस (जूता, स्टाफा० २३४)-का० ३ ८ १५ ।

अलङ्कार—वर्ण रत्नाकर ४ ३५क क अनुसार अलकार १८ जाति के रत्न और ३२ जाति क उपमनियो से युक्त होते है ।

द्वारिका के यादवकुलीन महापुरुष नेमिनाथ क विवाहोत्सव पर उनको, कानो मे कुडल, सीस पर मउड (मउर, मुकुट) और गल म नवसर हार से सुशोभित किया गया था।शरीर पर चदणि-अगरि का लेप और चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल वस्त्र से उनका शृङ्गार हुआ था। (नेमिनाथ० १४) । इस अवसर पर बहू के शृङ्गार मे सीमन्त (माग) मे मोतियो की लडे भरी थी । उसक काना मे मोती का कुण्डल, कठ मे नगजडित कठा और हार, हाथ मे ककण और मणिवलित चूडिया तथा पैरो मे घूघरू वाले कडे और नूपुर विराजमान थे (वही १८-२१) । मारु (राजस्थान) अपना सुहागरात मनाने घम्मघमतइ घूघर और पेर मे स ने की पाल (पायल) पहिन कर गई थी (ढोमा० ५३९-४०) ।

राजमती (राजस्थान) द्वारा व्यवहृत आभूपणो मे रत्न कुडल, सुनहला पायल और रत्नजडित शीशफूल थे (वीरा० ५८) । सिंहलराज ने अपनी कन्या श्रीमती की बिदाई मे चौदह आभूषण दिय थे । उनका नामोल्लेख नही है (जिण० २३९) । विद्याधर पति ने अपनी पुत्री की बिदाई मे कडइ (कडा) और चूडा दिया है (जिण० २९५)

चाँदायन (८४) मे बाजुर ने रूपचन्द्र म बताया था कि चादा अहिरिन (उत्तर प्रदेश) के कुडल हीरो से जडे थे । उसक कर्णाभरण मे चारो ओर बहुमूल्य पत्थर बैठे हुये थे । उसके कानो मे दो खूट, नाक मे फुल्ली, गले मे हार-डोरे और सकरिया, दसो उँगलियो मे अँगूठिया, करो मे कङ्गन और पैरो मे चूडे, नूपुर तथा पायल थे । लौरिक अहीर (उत्तर प्रदेश) के कानो मे स्वर्ण कुडल शोभित हैं (चादा १३७) ।

वीसू ने मारु (राजस्थान) द्वारा प्रयुक्त आभूषणो मे कुडल, बहुमूल्य हार, बाहो मे बहरखा, कटि मे मेखला तथा पग मे झांझर का वर्णन किया है (ढोमा०

४८०, ४८१) । देवयात्रा पर गई मैना अहिरिन (उत्तर प्रदेश) गले में मोती जड़ित हार, बीर (कर्णाभरण), दो नगुले, सलोनी (बाहु मे), सँकरी और माणिक्य हीरे आदि बहुमूल्य पदार्थों से जटित खूट (कान मे) पहिने थी (चादा० २६०) ।

स्थूलिभद्र के स्वागतार्थ कोशा वेश्या द्वारा कृत शृङ्गार मे मोतिय हार, नेउर (नूपुर), कुडल और पैर मे घामरा (घुघरी) आभूषण शोभित थे (स्थूलि० ३ ११) । रणक्षेत्र मे जाते समय राजा किरीट, हार, ककण, कुडल और हीरे की मुँदरी से युक्त है । (प्रापे० २ २०९) । नतकी चूली, वलया, दवनीयारी, मेषला, कुडल, पताका, दतुछाचीन्ह और नूपुर प्रभृति अनेक अलकारो से सयुक्त है (वर (६ ६० क) । विद्यावन्त ककना, वौर, सिंगली शाख, खिनान्त, खुन्नी, चूलि, तृका, वलय, हार, डोर तथा नूपुर प्रभृति अनेक अलकारो से शोभित है (वर० ६ ५७ क) । आषेट वर्णन मे ध्वज, चामर, चिह्न, छत्र, टग, आगार आदि सैन्यालकार द्रष्टव्य है (वर० ५:४६ क) ।

प्रथम सर्पदश से जीवित होने पर लौरिक ने चादा के लिए गारुरी को तरिवन, हास (हसुली), सोने का चूरा, भँवर, मोर, कान के फेरे, सिर की माग, हाथो के करपा, केजूर, सोने की माठी, अगूठी, माणिक्य की काठी, पैरो के अनवट, बिछुआ और पायर पारतोषिक रूप मे दिया (चादा ३२८) । गोबर युद्ध मे जाते समय लोरिक ने अपनी पत्नी मे प्रतिश्रुत हुआ था कि जीत कर आने पर सोने का पइरि (पायल) बनवाएगा और मोतियो से उसका माग भरवायेगा (चादा १०८) । ढोला ने मालवणी से वाग्दान किया था कि यदि उसे विदेश जाने दिया गया तो वह ईडर (गुजरात मे) से आभूषण बनवा के भेजेगा (ढोमा० २२४) ।

एकावली—वर० २ १८ क । ककण सामान्य । कचुरी-जिण० ९८ । कठलि-ढोमा० २६७ । सोने की कठो-प्रचि० ४ १३५ । कनकाभरण-वर० २ १६ ख । कुंडल सामान्य । खूटी-वर० २ १८ क । चुलि-वर० २ १८ क । चूडइ-ढोमा० ४७५ । छत्र सामान्य । सोना का डोरा-वर० २ २० ख । ताडक-प्रचि० ३'१०० । त्रिका- वर० २:१८ क, नकफूली-ढोमा० ५७१-७२ । नूपुर-वर० २ १८ क, प्रा० पै० २ १८५ । नेउर-जिण० ९१ । पद्मसूत्र-वर० २ १८ क । पाल-ढोमा ५३९ । फुरहुरा-वर० २ २१ क । बहरखा-ढोमा० ४८१ । मउड (मौर) वोरा० १५ । मोतिन माल-सामान्य। । मूद्रडउ-वीरा० ५५, मूद्रण-वीरा० ८५, मुदडी-जिण० २८६, ९१, प्रच० १ ५२ । मेषला-वर० २.१८ क । राषडी (शीशफूल)-वीरा० २३ । वलया-वर० २ १८ क, की० २ १८ १०६ । शखवलय-वर० ३ ३२ क । सिंकली-वर० २ १८ क । सोसफूल ढाका० ४८० । सूता-वर० २ १८ क । हासला-वीरा० ११ । हार-सामान्य ।

खानपान-सामान्य—(हिन्दुओ के) दूध, दहा, घी, भात, माग, मिष्ठान, फल।

प्रकार—(१) ३२ व्यजन, मास के मसौरे और कटवा भर हुये सो सो दोने। अच्छे सधान-अचार-लाख एक, ७२ खाद्य और भज्य। चा० १५२।

(२) उच्चिष्ट उच्छिष्ट, पृ० १४१६ कूकस = अभक्ष्य, वीरा० ३३, ग्रास-गुजारे के लिये मिली हुई जमीन जायदाद, की० ४ ९४ ६–, जूठ-चढे हुये प्रसाद मे से सैयद द्वारा छोडा हुआ शीरनी, की० २ २६ १८८, नेवाला = ग्रास, कौर, की० २ २९-३० १८२, पारण-व्रत के दूसरे दिन का भोजन, ढा० ४३०, प्रासुक (अनुद्दिष्ट) आहार, प्रचि० २ ५७ ८५, पुनभोजन-रात का खाना, वर० ८ ७६ ख, भष्खण-बीच बीच मे जब तक कुछ न कुछ खाते रहना, की ४ २५ १०२-१०३, भिक्षा की० २ ३८ २५४, भोअण-नियमित समय की खुराक, का० ४ २५ १०२३ लघण उपवास, ढोमा० ४३१, सम्बल = पाथेय, की० २ १५ ६६, सेरणी-फा० शीरीनी मिठाई (स्टाफा०) की० २ २९-३० १८८।

(३) मास, मसौरे, कटवा, बटवा, मिर्च, बिरचन (?), अविरचन (?), रत्नाकर का रस, सेधा लवण, कुकुम, दाडिम, करौद, इमली, कटुक (?), तराकता (?) लखवर (?), लवण, तेल, मसाले, तिलकुट जजर (खस्त), पापड। तरकारी-भाटे, टीडसे, कडुआ तेल, करैले, कुम्हडे, खिखसे, परवल, कुदुरू, घिया, तरोई, अरुइ, चूक (खट्टा) पालक, चौलाई, लौकी, चिचिडा, तरोई, सीता (?) सम, ककाल, जीवती, सौफ, सोया, मेथी, सधान (चटनी-अचार) बडा, मुगरा, बरी, खडुई, मेथोरी, डुबुकी, गुरेठा, गुझिया रौते, कसौदे, राई, खटाई, कढी, लपसी, सोठ, खिरसा, दही। चावल-कपूरशालि, रक्त शालि त्रिकोई, करंरा, धनिया, मधुकर, ताइ, सिगना, झाली, चौधरा, कक्कर, खडर, काडर अगुरु शालि, रतना, मोतिकश्री, राजनेत्र, मूढी, सौखिरी, करगी, करगा, साठी, सुरमा, बिहसा, महसर, गजधर, कुडर, आगर, धैनी, रूप, पसाढी, सोधी, तनी, माड। गेहूँ-एक एक तोला भरवा श्वेत, लसदार, सुगन्धित। चादा० १४३-१४६। मिष्ठान्न-लड्डू, जजर (खस्ता), पापड, खिरोरे, कुसियारे (गोभे), खडौर-चादा ४०। पकान्न-घिरओला, खिरिसा खडनी, खण्डउति, झिलिआ, मोतिआ, फेना, फिनी, अमृतकुडी, मुगवा, माठ, सरुआरी, नडिवी-वर० ३ २८। फल-केला, दाख, छुहारा, चिरौजी, दाडिम, बिजौरा, खुरुहरी जिण० ३३ ४१२, चादा० २७।

अजणु मूल-एक प्रकार की जडी जिससे लोग प्रच्छन्न हो जाते है, जिण० १५२ आन-चावल का भात, की० २ २९-३० १८५, उरिधान-चावल विशेष, की० २ ३१,

२०६, कबाबा-की० २ २८ १७८, कादम्बरी-एक श्रेष्ठा सुरा, की ४ १७ ७५, पिण्याक खली, प्रचि० ३ ६४, खार, ढामा ५५३, गालिमभूरा-पकवान विशेष, स्थूलि० ३ १४, घेवर-मिष्ठान्न विशेष, वाराo ११८, प्रचि० ४ ५५, छाछ, प्रचि० ४ १८६ तेल, चा० २४, पाणग्ग-पय विशेष, ढो० ५३४, पिआजु-की० २ ३० १८५ फलमूल-की० २ १५ १०४, भाँग का० २ २८ १७४, भात चा० ६३, जिण० ४२४, ओगर का भात-प्रापै० २ ६३, मडा = रोटी, प्रापै० १ १३० मख्ख = मधु, चा० ४, ढोमा ४७०, मदिरा की २ ३१ २०६, मूग की जूम-प्रचि० ४ १९५, मृगफली-वीरा० ११३, मोइणि मत्स्य, प्रापै० २ ६३, यवागू-जौ की पतली माड, प्रचि० ३ ११७, रोटी-की० ४ १७ ७७, लापसी,जिण०४१२, लोण जिण० १४०, शिम्बिका = सेम, छीमी, प्रचि० २ ५७, सरई कचोरइ = शराब और प्याला,चा० ४३ सराब—की०२ २८ १७८, २ २७ १७०, सात अगारअगारमौरिया, लिट्टी वारा० ६६, सातू-चा० ४५, जिण० ३३, सालन, की २ ३६ १८१, सेधा नमक प्रापै० १ १३०, स्थूल-गेहूँ आदि के दाना को पानी मे भिगोकर बनाई जाने वाली पक्षियो का खाद्य, का० २ ३८ २५४।

दधि का स्वरूप—'शरतक चान्द पृथ्वीतल षसल अइसन आकार, कँचा कप्पूर-रक शीली अइसन कँठ, जनि पदिमनीक पत्र दक्षिणावर्त शख सुताओल ऐसन छेआ, जनि अमृत क सरोवर सओ पङ्क उद्धरि आनल अछ। वर० ३ २८ क।

दूध के गुण—चलक, चाउल, चीकन, चमत्कारी, जुठ, मीठ, सोन्ध, आप्यायक। वर० ३ २८ क

पान का स्वरूप—रूपा का सीप दुबे चुम्बाओल अइसन आकार, आषाढक छणीक काटल वीर, पतरल झाल, मुक्ताक चून सिन्धुक, कड्कोला, श्रीहट्टक एला, सिंहलद्वीप क जातीफल, काचीक मुखमेन, मलय पाचोर क भीमसेन कप्पूर, लषनावती क सरस पूग, तिरहुतिक साहर, एकरे सयोगे लगाओल पचफल सयुक्त कटु, तिक्त, कषाय, क्षार, उष्ण, मधु, मुखशोभक, सुरस, स्वादु, सरस, सदीपक, कामाग्निक, सम्मानक, पवित्र तेरह गुण सम्पूण, देवराजभोग्य देले पाविअ, स्वर्गदुर्ल्लभ अइसन पान।

जीव जिनके मास खाये जाते थे—मृग, नीलगाय, गैडे, चीतल, झाँख, गौनो मझारो, लोखडो, शशको, लेगुनो, मेढे, बकरे, सिंधुरवार, जगली विडाल, बटई तीतर लावा, गुडरूँ, कनवा बगरिए चरियारे उसर-तिलौरे, भुनजारे बरुवे, सीतल, काले, तलोर, रत्तटिट्टिभ, टटोर वनकुक्कुट, खर मोर, क्रौंच, महोख। चा० १४३-४

पत्ते जिनसे पत्तल बनते थे —महुआ, आम, वट, पीपल, कटहल, बडहल आवला,

जामुन, करहार, कठ-ऊबर, पाकर, मुहली, करोदा, द्राक्षा, ककोली, तेंदू, बुगची, रीठा, पुटकिनी। चा० १५०।

भोजन की रीति—स्नान ओर पूजापाठ कर चौके मे आकर चौकी पर बैठना, खाद्य सामग्री का आना, य य वस्तुक अधिक आकाक्षा भेल से सावशेषि विनियोगल। शेष दुग्ध साकर पान कएल। जेओनार निर्व्वहल। हथहला कए पानी नारी उपनीत करु। आचमन करु। चतु सम लए हथ भाड़ु। मुह पखालल। खलिका देल। शुद्धाचमन भेल। ताम्बुल लए देल। नायके पान लए मुख शुद्धि कएल। वर० २८। पुनर्भोजन (रात्रि-का भोजन)—प्रहर रात्री भितर विआरी क अवसर भेल। चोरगाहि ठाओ निपल। तदन तर अपूर्व्व पोढी एकठाम धरल। सेवके पटा देल। वधा रत्नमडित नायक के देल। वाणेश्वर तमारु सुवणघटित रत्नचरित वौरा। अठ पहरि पानि कर्प्पूरक वासल सुन्दरी दल। नायके पएर पखालल। शुची भए वैसलाह। कर्प्पूरमजरी क्षिरोदक, लोहुरी प्रभृति ओगर हेमन्तक पीटल, वटऽक नहतह छोट सुगपाषितह मोट, तेतरिक पत्रपाय अइसन सुगन्धे अधिक उपगत करु। दविक अइसन देव, तेरिआमहिसि पाडी कम सात हाथ षागा ओरा गषा दिन एक लाग, दिन द्वि लागए नहि, तीनिकाठे वरहखुरिमहिसि, वृद्धगोपक दुहलि, अवतेरह वर्ष का वटिआ तें औटल, चलाओल लेवारी षढक ज्वाला, अडी डाठि, वाका पीठी, घने, लाले, मधुरे, ज्वाले दूध औटल, जाहि सुन्दरीक पाछु भए कन्दर्प्प टोकार पालल अछ गए। भावाभावविर्वाजित ये सुन्दरी, ते उष वीचलि दुध पौरल। हृदयक सरिकए तिनि हाथ चाकर, निमुठ हाथ ठाढ, गगा फेणप्रायपोरइते मात्र, एगारह आगुर वरली पललि, काँचे कर्प्पूरे लेसन देल, तैसन दधि शरतक चद्रमा पूर्णिमा प्राय, अमृतहु जिन स्वादे, दर्शने पवित्र दधि उपगत करु। सुवणक चोरा दूधे तेओल, चिउला उपर सुन्दरा दधि देल। कटइते कान्ति टुटइते कपति, पात्र देयिते थभति, सुन्दरीक कर कमल पल्लवप्राय, सोनाक छीपे छेओल, शखप्राय दधि प्राय देल। नायके पच ग्रास कएल। कारी चलकि, चलकीक चिक्कणताइ जिह्वाहि वीवाद, तारु उडाओिअ जिह्वा न छाडए, जिह्वा छडाविअ तारु न छाडए, देवचानि खाडक सयोगे नायका विवाद त्यजल, तदनन्तर मुगवा, लडिवी, सरुआरी, मधुकुपी, माठ, फेना, तिलवा प्रभृति पक्कान्न देल। दुग्धपान नायके कएल। चुरु लेल, खाडे हाथ रुषाओल। अचाओल। खलिकाजे तन्तधावन कएल। नेते हाथ रुषाओल। तेरह गुणे सयुक्त पच फल सहित देवरुपाक सरालि कए पान देल। नायके पान लेल। मुख शुद्धि उद्यमल। वर० ८ ७६ ख-७७।

शय्योपभोग—खाट चा० ३३७, ढो० ५४१, दुलाइ—चा० ३३७, प्रलिगबीरा० ३६, ६१, पालक जिण० २२१, पालिक-चा० ३३७, शय्या-सेज (सामान्य)

सिज्या-सनेह० १७ ञज्या-प्रापै० २ १०७, मेझडी ढोमा० १८६, सउड (चादर)-वीरा० २२, सउर चा० ४२, सउरि=गद्दे चा० ५१, ३४८, सुपेती चा० ५१, चित्रशाली, पवा, पासि, शिवा, पटा, दडा, दडिया-वर० ३ २८ ख।

यानोपभोग—

सामान्य—हाथी, घोडा, रथ, ऊट, साढनी।

असामान्य—डाडी-चादा० ४०, १५३, पालकी वीरा० १३, पालिका-चादा० २४६, सुखासन चादा० ४८, प्रच० १०२, तरण्य-प्रापै० १, नाव-वर० ८ ३७ ख, चादा० २३४, ३६३, नौका वर० ८ ७५ ख, सरगा=नाव विशेष चादा २८७, वहित्र-वर० ८ ७० ख, वोहित-वर० ८ ७६ क, वोहिथ-चादा० ६८, जिण २४८।

वोहथु—जिण १४८, १६०, विवाण प्रच० १३०, वीरा० १२, विमाण प्रच० ५३, विमान-वर० ३ ३३ क, की० ४ ५३ २१५, जिण० २६०, ३६५।

घोडा—२४ जाति—कामोज, वाणाउज, वाल्हीक, गान्धार, सैवर, तित्तिल, कुलज, उपकुलज, मेचक, त्रगत, यवन, जावाल, साचिद्र, कान्दवेय, वार्म्मतेय, काश्मीर, शखायन, पर्वतीय, मिलज, केकय, अवताक्ष, नाधार, करस वर० ५ ४७ ख। २० वाल घोड-हरिअ, महुअ, माङ्गल, कुही, कुवाल, कओस, उरज, नील, गरुड, पीअर, राओट दोरोज, उवाह, वलिआह, सेवाह, काकाह, कयाह, हराह, बोराह, रोरिह। वर० ५ ४२ ख।

१८ देशानरी घोड—अम्बर, तेजी, ताजि, तत्तारी, नागौरि, भारजि, कामोजि, सारथ, पाटलि चितउरि, नायतरि, सतावरी, सावरी, घुण्ठ, वेसर, जलउनट, केकान, टाङ्कन-वर० ५ ४४ ख।

१३ देशातरी घोड—जातिकाह, कुलिनह, काम्बोज, वाणभज, वाल्हीक, पारसीक, सिन्धु, श्यावकण, सिंहल, सारथ, मावर, मुरतान। वर० ५ ४३ क।

महर (रायबरेली, उ० प्र०) के यहाँ उपलब्ध १० प्रकार के घोडे—केकान, उदिर, समद, श्यामकण, महुए, टेई, हराह, बोर, करिया, सरराह, चादा ११८।

पहिचान—केकान-हस जैसे हासुले, सुहावने भँवर। उदिर और समद-भूमि पर नही रखते थे। श्यामवण-नाचते रहते थे। महू तीन पैरो पर खडे होते थे। ताजी-अरबी घोडे। प्रद्युम्न चरित (३२७) मे लिखा है कि 'तजिउ समुद वालुका तणउ'—समद जाति का ताजा बलख घोडा है। तेजी और ताजी घोडे पराक्रमी और देश देशान्तर मे प्रसिद्ध थे (की० ४ ८ २६)। तेजी ताजी से भिन्न जाति के थे। मानसो-

जामुन, करहार, कठ-ऊबर, पाकर, मुहली, करौदा, द्राक्षा, ककोली, तेंदू, बुगची, रीठा, पुटकिनी। चा० १५० ।

भोजन की रीति—स्नान और पूजापाठ कर चौके मे आकर चौकी पर बैठना, खाद्य सामग्री का आना, य य वस्तुक अधिक आकाक्षा भेल से सावशेषि विनियोगल । शेष दुग्ध साकर पान कएल । जेओनार निव्वहल । हथहला कए पानी नारी उपनीत करु । आचमन करु । चतु सम लए हथ भाड़ु । मुह पषालल । खलिका देल । शुद्धाचमन भेल । ताम्बुल लए दल । नायके पान लए मुख शुद्धि कएल । वर० २८ । पुनर्भोजन (रात्रि-का भाजन)—प्रहर रात्री भितर विआरी क अवसर भेल । चोरगाहि ठाओ निपल । तदन तर अपूर्व्व पोढी एकठाम धरल । सेवके पटा देल। वधा रत्नमडित नायक के दल । वाणेश्वर तमारु सुवणघटित रत्नचरित वौरा । अठ पहरि पानि कप्पूरक वासल सु दरी दल । नायके पएर पखालल । शुची भए वैसलाह । कप्पूरमजरी क्षिरोदक, लोहुरी प्रभृति ओगर हेमन्तक पीटल, वटइक नहतह छोट सुगपाषितह मोट, तेतरिक पत्रपाय अइसन सुगन्धे अधिक उपगत करु । दविक अइसन देव, तेरिआमहिसि पाडी कम सात हाथ षागल आरा गषा दिन एक लाग, दिन द्वि लागए नहि, तीनिकाठे वरहखुरिमहिसि, वृद्धगोपक दुहलि, अवतेरह वर्ष का वेटिआ ते औटल, चलाओल लेवारी षढक ज्वाला, अडी डोठि, वाका पीठी, घने, लाले, मधुरे, ज्वाले दूध औटल, जाहि सुन्दरीक पाछु भए क दर्प्पे टोकार पालल अछ गए । भावा भावविवर्जित ये सुन्दरी, ने उष वीचलि दुध पौरल । हृदयक सरिकए तिनि हाथ चाकर, निमुठ हाथ ठाढ, गगा फेणप्रायपोरइते मात्र, एगारह आगुर वरली पललि, काँचि कप्पूरे लेसन देल, तैसन दधि शरतक चद्रमा पूर्णिमा प्राय, अमृतहु जिन स्वादे, दर्शने पवित्र दधि उपगत करु । सुवणक चोरा दूधे तेओल, चिउला उपर सुन्दरी दधि देल । कटइते कान्ति टुटइते कपति, पात्र देयिते थभति, सुन्दरीक कर कमल पल्लवप्राय, सोनाक छीपे छेओल, शखप्राय दधि प्राय देल । नायके पच ग्रास कएल । कारी चलकि, चलकीक चिक्कणताह जिह्वाहि बीवाद, तारु छडाबिअ जिह्वा न छाडए, जिह्वा छडाविअ तारु न छाडए, देवचानि खाडक सयोगे नायका विवाद त्यजल, तदनन्वर मुगवा, लडिवी, सरुआरी, मधुकुपी, माठ, फेना, तिलवा प्रभृति पक्कान्न देल । दुग्धपान नायके कएल । चुरु लेल, खाडे हाथ रुषाओल । अचाओल । ष्लिकाजे तन्तधावन कएल । नेते हाथ रुषाओल । तेरह गुणे सयुक्त पच फल सहित देवरुपाक सरालि कए पान देल । नायके पान लेल । मुख शुद्धि उद्यमल । वर० ८ ७६ ख-७७ ।

शय्योपभोग—खाट चा० ३३७, ढो० ५४१, दुलाइ = चा० ३३७, खलिगबीरा० ३६, ९१, पालक जिण० २२१, पालिक-चा० ३३७, शय्या-सेज (सामान्य)

सिज्या-सनेह० १७, नज्या प्रापै० २ १०७, मेघडी ढोमा० १६६, सउड (चादर)-वीरा० २२, सउर चा० ४२, सउरि=गद्दे चा० ५१, ३४८, सुपेती चा० ५१, चित्रशाली, पवा, पासि, शिवा, पटा, दडा, दडिया-वर० ३ २८ ख ।

यानोपभोग—

सामान्य—हाथी, घोडा, रथ, ऊट, साढनी ।

असामान्य—डाडी चादा० ४०, १५३, पालकी वारा० १३, पालिकी-चादा० २४६, सुखासन चादा० ४८, प्रच० १०२, तरण्य-प्रापै० १, नाव-वर० ८ ३७ ख, चादा० २३४, ३६३, नौका वर० ८ ७५ ख, सरगा=नाव विशेष चादा २८७ वहित्र-वर० ८ ७० ख, वोहित-वर० ८ ७६ क, वोहिथ-चादा० ६८, जिण २४८ ।

पोहथु – जिण १४८, १९०, विवाण प्रच० १३०, वीरा० १२, विमाण प्रच० ५३, विमान-वर० ३ ३३ क, की० ४ ५३ २१५, जिण० २६०, ३६५ ।

घोडा—२४ जाति —कामोज, वाणाउज, वाल्हीक, गान्धार, मैवर, तित्तिल, कुलज, उपकुलज, मेचक, त्रैगत, यवन, जावाल, साचिन्द्र, कान्दवेय, वार्म्मतेय, काश्मीर, शखायन, पर्व्वतीय, मिलज, केकय, अवनाक्ष, तापार, करस वर० ५ ४७ ख । २० वाल घोड-हरिअ, महुअ, माङ्गल, कुही, कुवाल, कआस, उरज, नील, गरुड, घोअर, राओट दोरोज, उवाह, वलिआह, सनाह, काकाह, कनाह, हराह, घोराह, रोरिह । वर० ५ ४२ ख ।

१८ देशातरी घोड—अम्वर, तेजा, ताजि, तन्तारी, नागौरि, भारजि, कामोजि, सारथ, पाटलि चितउरि, नायतरि, सतावरी, सावरी, घुण्ठ, वेसर, जलउनट, केकान, टाङ्कन-वर० ५ ४४ ख ।

१३ देशातरी घोड —जातिकाह, कुलिनह, काम्बोज, वाणभज, वाल्हीक, पारसीक, सिन्धु, श्यावकर्ण, सिंहल, सारथ, मावर, मुरतान । वर० ५ ४३ क ।

महर (रायबरेली, उ० प्र०) के यहा उपलब्ध १० प्रकार के घोडे —केकान, उदिर, समद, श्यामकण, महुए, टेई, हराह, बोर, कररिया, सरराह, चादा ११८ ।

पहिचान—केकान-हस जैसे हासुले, सुहावने भँवर । उदिर और समद-भूमि पर नही रखते थे । श्यामवर्ण-नाचते रहते थे । महू तीन पैरो पर खडे होते थे । ताजी-अरबी घोडे । प्रद्युम्न चरित (३२७) मे लिखा है कि 'तजिउ समुद वालुका तणउ'—समद जाति का ताजा बलख घोडा है । तेजी ओर ताजी घोडे पराक्रमी और देश देशान्तर मे प्रसिद्ध थे (की० ४ ८ २६) । तेजी ताजी से भिन्न जाति के थे । मानसो-

ल्लास (४ ६६६,४७२) (१२ वी मदी), वीसलदेव रासो (२१) पृथ्वीचन्द्र चरित्र (वि० स० १४७८), पृ० १३७, वण रत्नाकर, पृ० ३१ मे ताजी और ताजी घोडो का अलग अलग उल्लेख है। अल्बिरूनी ने सिंध के समीप मकराना की राजधानी का नाम 'तीज' लिखा है (सचाउ, अल्बिरूनी का भारत, १ २०८)। वही सिन्ध और बिलूचिस्तान के घोडे सभवत 'तेजी' कहे जाते थे। तेजी और ताजी घोडो के कन्धे विशाल, व ध देश सु दर थे। शक्ति और रूप से सुहावने लगते थे। वे जब तडपते तो हाथी का भी लाघ जाते और शत्रु सना मे खलबली मचा देते थे (की० ४ ८ ३०)। केकाण सभवत केकय शब्द से बना है। केकाण घोडो के कान दो-दो अगुल के होते थे। ये रग के श्वेत हाते थे (चादा ८८)। कयाह = काला रग। गाल सिकोडे और लौह चबाते रहते थे। नत्र मृगवत, पैर प्रक्षालित होते थे। हवा के पखे लगे थे। हरिये दीखत थे। मुहबद देनी पडती थी। ऊँचे तथा विशाल होते थे। उन पर पेट के सहार चढा जा सकता था (चादा० ८८)।

अश्व।शक्षाप्रकार—तरुणाह, नौनुआह, वलिआह, शूराह, वाराह, बहुमूल्यह, धसफाल, पूर, परिधप, वोधवेप, वेगमडल, अद्ध मडल, निग्रह, आश्वास, निकाश, प्रवेश, वाम, दक्षिण, वाग, वागसाट (वर० ५ ४३ क)।

८ अश्वहृदयवत्ता —नल, शालिहोत्र, ऋतुवण, अरुण, मातलि, रेमन्त, कुवलयाश, शल्य (वर० ५ ४३ क)। अश्व कला —पेघ खुरे, चाकरे उरे, वलिअ खुरि, गाटा, पिचि, अडी ढाट, माट क ध, अट त वा ध, छोटे काने, आहवाने, काचने नयने, सुषासने गभन, हाये मिलल, पापरक भानल, मनक बुझल, जघनक जुझल, तरुणे आगे, बुझली वागे, सिराह, मलकाह, पूराह जात जाइते, पृथ्वा तलने (वर० ५ ४४ ख-४५ क)।

अश्व-साजसज्जा—सरामार, सरउटी, वाग, वगहर, पाएन, बागओन्धा, नूपुर, चौरासी घाटो, ताजन (वर० ५ ४५ क)। असवार का वेशभूषा —झगा, वराला, पाग, दशरइचा, माजा, सरमाजा, गान्ती वघजुह (वर० ५ ४५)। कुचुओटा लोहाक कतरा हीरा क वेधल, सोनमनि ढारल, नोहा सारग के बाहर गाडल पलिके अदरे, सोनपानि उतरगे, गाआर, दुसव, झवक, बजरगी, वीरवाहु, बगलइचा, गाडी, प्रभृति अनेक सजाअ आर देवा, सेवाग, शूरी, सनशूरी, गादीपलि, गाजीपलि, सोनपलि अनेक पट्टम्बर पहिने। (वर० ५ ४५ क-ख)।

चाल—घोडे की सुरुली (=मेढक), मुरली (=मार), कुडली (=साप की कुडल) और मडली (=मडलाकार) चाल अच्छा मानी गई हैं (की० ४ १२ ४८)।

पर्याय—अश्व वर० ५ ४६ क अस्स की० ३ १७ ७१, घोर-का० ३१ २०५, घोल की २ १५ ६५, वर० ४ ३७ ख, घोला की० २ ३५ २४३, तुरग ० २ १४ ५५ ३ ४० १६३, ४ ७ १० तुरगम की० ४ ४० १५६, तुरय की० २८ ११०, तुरअ की० ४ १५ ६२ ४ ४८ १८३, पवग ढोमा० ६४०, बाजि की० ८ ९८, हअ की ३ ३ १० ।

घोडे से सम्बन्धित शब्द—असवार चादा० ११६, की० ४ २६ ११५, चाबुक ।० ४ १५ ६३, चामर की० ४ १४ ५८, ४ १० ३८, जीण ढोमा० ७४६, टाप की० ३५ २४३, तजान = चाबुक, स्टाफा० २७५), की ४ १० ३८, ताजण = कोडा वारा० ३, थनवार = घोडे के थान का अध्यक्ष की० ४ ७ २७, थप्प थप्प = चुपचाप खडे रहे, ० स्थाप्य हि० ठप्प की० ४ ७ २७, थोबड-घोडे के दाना खिलाने का थैला ढोमा० २८, ध्वज की० ४ १४ ५८ पक्खर = पाखर की० ४ ११ ४०, पल्लानिअउ = अश्व ।दि का साज की० ४ ७ २६, पाइग्गह-शाही घुडसाल की० ४ ७ २६, पागड (रिकाब), ।ग (= लगाम) ढोमा० ४११, पाट = पट्टा, लम्बा निशान की० ४ १२ ५०, षाचि = ।ज या पलान से युक्त की० ४ १४ ५८, सामि-स्वामी की० ४ १२ ५०, हेडाउ तुरीय = लेहडी का घोडा वीरा ४८ ।

हाथी—प्रकार (१) मद्र, भद्र, मृगमिश्र, दषिनदड, मनिकदड, वघेल, दीपवाल ।ठो जाति वर० ५ ४७ ख ।

(२) दक्षिण दड, मनिकदड, भद्रजाति, गजहस्ती, सिंघलवारु, वघेल सातो ।ति वर० ५ ४५ ख ।

(३) श्वेत हस्ती, गन्धहस्ती, सदामद, वारुवघेल, भद्र जाति वर० ५ ४३ ख । र्याय-कुजर की० २ १७ ८७, गअदु जिण० २३, मअगा की० २ १७ १५६, तगज की० ४ ४२ १६६, मातग की० २ १७ ६४, हस्ति चादा० ८६, हाथि की० १८ १११, ४ ८ ३१, वर० ४ ३७ ख, दतिय पृ० ७.६, करी पृ० ८ ६ २५, गइ ० ४ ९१ १, गयद, पृ० ४ ६ २४, गयदा पृ० ४ १० १, गय पृ० २ १ ३, ६ ३१ २, प पृ१ ८ २३ २, येम पृ० ७ १० २०, वारुणि पृ० १० २३ २, कुजर की० ,४८ १८५, द्विप की० ३ ४० ।

हाथी से सम्बन्धित शब्द—अकुस ढोमा० ११५, आँकुस की ४ ६ २५, जघटा, वर० ५ ४६ क, गुग्गरावर्त = हाथी का हर्ष से गर्जन करना की० २ १८ ०४, महाउत की० ४ ६ २५, सारि झूल की० ४ ५१ २०७, सुड की० ६ २१, भल्ली (वर्छी) पृ० ७ १० २३ ।

ऊँट—करह ढोमा० २२८, २५६, करहा ढोमा० ३०८, ४६६, ४६८, सरढी (राजस्थानी-ऊटनी), ढोमा० ५००, साठिया वीरा० ११०, साढिया, ढोमा० ८१ ।

ऊँट से सम्बन्धित शब्द ¹—कबडी = ऊट को मारने की छडी ढोमा० ४६२, कटणी—ऊट का पैर मोडकर पैर से बाध देना, ढोमा० ६२९, कसवी = ऊँट पर जीन कसने के लिए पट्टा ढोमा० ३४३, कूँट-ऊँट के पैर का बन्धन, ढोमा० ६३७, घूघरा = घुघुरू, ढोमा० ३४३, छुरी—ऊँट का कूट काटने वाला, ढोमा० ६४५, टापर = जीन के नीचे का मोटा कपडा, ढोमा० ३४५, ढाण-ऊँट की तेज चाल, ढोमा० ४४०, पलाँण, ढोमा० ३२६, ३४३, मुहरी, ढोमा० ६५६, विजउरा और द्राख-उत्तम जाति के ऊँट का राजस्थानी भोज्य, ढोमा० ४२६ ।

भारवाहक तथा घरेलू पशु —अपस = कुत्सित पशु, गदहा, ढामा० ३३६ इडिका = स० एडक प्रा० एडक्क प्रड, की० ४ २६ ११४, कावर, चाँदा० ३३७, गद्दह की० ४ २६ ११४, गादह, ढोमा० ३३३, गाडर = भेड, ढोमा० ६६२, गाइ की० २ ३१ २०३, कविलीय गाइ-कपिला गाय, वीरा० ५५, धौरी घूमरि गाह, सनेह० ३६, गोरु की० ३ १६ ८५ गो० की० ४ १८ ८०, वर० ३ ३० ख, टाडा = साथ चादा० ४२, बडदा = बैल, की० ३ २४-१०२, बलद, वीरा० १००, वलद्दह-की० ४ २६ ११४, बाछड वीरा० ११७, बरदिया बैल या बैल का बोझ, चादा ४२, बरहा = रस्सी चादा० १८७, भइसि, वीरा० ११८, भैस, चादा० ४२, भइस पीडार = भैस का पँडवा, वीरा० ५३, महिसा = भैसा की ४ २६ ११४, महिस, की० ४.३३ १२८ महिष, वर० ३ ३१ ख, ५ ४६, ख, ५:४८क, बसाल = भेड, ढोमा० ४३५, वेसरि = खच्चर, की० ४ २६ ११४ ।

गृहस्थोपयोगी सामग्री —'वर्ण रत्नाकर ३ २५ ख)—चोका, चौकी, पीढी, पटा, झारी, पनिगह, षलइठि, तेआए, आसन, आसनओट, गडुआ, धूपहल, देगी, थागी, टाठी, तमउति, तमकु ड, तमकु डी, कमडलु, घाटी, चामर, ताम्बी, अर्घा, पूला, तिलपइती —(२६ तथा २७ अप्राप्त) ।

चित्रशाली मे उपलब्ध सामग्री (स्वर्ण रत्नाकर ३ २६ क)—नेतक माण्डल गेण्डुआ, सफुर विराल, करक मुसरी, खण्ड, छुरी, सीप, ताबुल-पात्र, पानी भृ गार, झारी, सेज ।

अगीठी-चादा ५१, ३४६ । अग्गि की ३:३७ १५०, अग्नि-वर० ३ ३१ क, आगि-की० ४ २२ ६० । अष्टधातु की० २ १८.१०१ । औषधी-वर० ४ ३३ ख, ५ ५४ क । कचोरा-चादा० ७५, कचोल-ढोमा० ६५६, रतन कचोल-

वीरा० ४७, कचोला-स्थूलि० ४ १४, कनक कचोला-वीरा० ४८ । कज्जल-की० २ १७:८६ । कज्जल-ध्वज (दीपक)-की० १ ३ ८ । कटोर-ढोमा० ३७२, कटोरा वारा० ११८ । कपूर का० २ २६-३० १८५, कपूर रस-ढोमा० १६१ कप्पूर-की० २ १७ ६ । करड (पेटिका)-जिण० २६० । करडी (=टोपिया, टोकरी)-चादा० २७० । प्रदीप कलस-वर० ४ ३६ ख । कावर चाँदा, ३०७ । काब (छडी)-ढोमा० ४१०, काबडी-ढामा० ४१४, काव ढोमा० ६३२ । काजल-ढोमा० १४०, ३३७, ३५३ । किरीज (-वास का टोकरा)-चादा० २८१ । कुञ (-कुआ)-विप० ४ ५ । कुमकुम-ढोमा० २४० । कुहाड (-कुल्हाडी) ढोमा० ६५८ । कूपली (-कुप्पी -वारा० ७६ । कूजा (लम्बी गर्दन वाली सुराही-स्टाइनगास फा० कोश)-की० २ २६ १६२, २-२७ १६२, २ ३१ १६८ । कूल्हड-वीरा० ३६ । कूवा-(कूआ)-ढोमा० ३६७ । खूटा ढोया, ३७५ । गाडू-की० २ २६-३० १८३ । गुडिआ-प्रापै० ६७ । घट वर० ३ २६ ख, वीरा० ७३, घडा-ढोमा० ६५८ । चपेल (-चमेला का तल)-ढोमा० ३२० । चामर-की० २ १७ ८६ । चूडी-ढोमा० ३४६ । चौपुडी (पोटली)-जिण० २३२ । छुरी-ढोमा० ६४५ । डोरा-चादा ७६ । तबारु (ताबे का घडा या लोटा, पासद्द०)-की० २ ३१ १६८ । तथ्थ-(तश्तरी, स्टाइनगास फा० कोश) की० २-२७ १६२ । तमकुडा-की० २ २८ १७५ । तवेल्ला-का० २ २७ १६२, तही (हिन्दी तई-थाली के आकार की चौडा कडाही)-का० २ २७ १६२ । तैल-चादा० ३३७ । सोवन थार-चादा० ७७ । दीप-वीरा० २५, दीपक वर० ३ ३० ख, दीया-चादा० ६४, दीवउ-ढोमा० ५०६, दीवल-ढोमा० ४६६, वीरा० ८० । पटर (पीढा) चादा० ३६६ । पालखी (पालकी)-ढोमा० ३५२ । पाटल-वीरा० ८४, पाटा-चादा० २७८, पाट-चाँदा-१५६, पाटि-बीरा० ८ । पेटारा-चादा० ३३८ । फरुही-वर० १ १० ख । बावलि-काबडी (बबूल की छडी)-ढोमा० ४१४ । भडार-बीरा० १ मथानी-चादा० १३१ । मस-ढोमा० १४० । मसियरु (मसाल)-चादा० १८८ । माझा (धागा) वर० २ १८ ख । रहट-की० २ १८ ६७ । लवण-चादा० ३३७, लूण-वीरा० १२, ३६, ढोमा० ३३ । वतक (वत्तख की गर्दन के आकार की सुराही जिसमे शराब रखी जाती है)-ढोमा० ४१८ । वाटली (छोटी कटोरी)-ढोमा० ५०५ । वार (छोटा सा वर्तन जिसमे पक्षियो को पानी पिलाया जाता है, पासद्द० ९४५)-की० २ ३८ २५४ । वीझण (पखा)-ढोमा० २४० । शलाका-वर० २ १८ ख । षीसा (बटुआ)-की० २ २७:१६८ । सइभरि (नमक विशेष)-वीरा० २८ । सकल (साकल)-ढोमा० १३३ । सराइ (कसोरा, दिया-बृ० हि० को०) वर० ३ २८ ख । सल (सलाई)-ढोमा० ४६२ । सिगरी-कोइला-चादा ७१ । सिलौटा-चादा ७६ । हल्दी-चादा० ३३७ ।

ऊँट—करह् ढोमा० २२८, २५६, करहा ढोमा० ३०८, ४६६, ४६८, सरढी (राजस्थानी-ऊटनी), ढोमा० ५००, साठिया वीरा० ११०, साढिया, ढोमा० ८१ ।

ऊँट से सम्बन्धित शब्द ¹—कबडी = ऊट को मारने की छडी ढोमा० ४६२, कटणी—ऊँट का पैर मोडकर पैर से बाध देना, ढोमा० ६२९, कसवी = ऊँट पर जीन कसने के लिए पट्टा ढोमा० ३४३, कू ँट-ऊँट के पैर का बन्धन, ढोमा० ६३७, घूघरा = घु घुरू, ढोमा० ३४३, छुरी—ऊँट का कूट काटने वाला, ढोमा० ६४५, टापर = जीन के नीचे का मोटा कपडा, ढोमा० ३४५, ढाण-ऊँट की तेज चाल, ढोमा० ४४०, पलाण, ढोमा० ३२६, ३४३, मुहरी, ढोमा० ६५६, विजउरा और द्राख-उत्तम जाति के ऊँट का राजस्थानी भोज्य, ढोमा० ४२६ ।

भारवाहक तथा घरेलू पशु —अपस = कुत्सित पशु, गदहा, ढामा० ३३६ इडिका = स० एडक प्रा० एडक्क प्रड, की० ४ २६ ११४, कावर, चादा० ३३७, गद्दह की० ४ २६ ११४, गादह, ढोमा० ३३३, गाडर = भेड, ढोमा० ६६२, गाइ की० २ ३१ २०३, कविलीय गाइ-कपिला गाय, वीरा० ५५, धौरी घूमरि गाह, सनेह० ३६, गोरु की० ३ १६ ८५ गो० की० ४ १८ ८०, वर० ३ ३० ख, टाडा = साथ चादा० ४२, बडदा = बैल, की० ३ २४-१०२, बलद, वीरा० १००, दलद्दह-की० ४ २६ ११४, बाऊड वीरा० ११७, बरदिया बैल या बैल का बोझ, चादा ४२, बरहा = रस्सी चादा० १८७, भइसि, वीरा० ११८, भैस, चादा० ४२, भइस पीडार = भैस का पँडवा, वीरा० ५३, महिसा = भैसा की ४ २६ ११६, महिस, की० ४.३३ १२८ महिष, वर० ३ ३१ ख, ५ ४६, ख, ५:४८क, वसाल = भेड, ढोमा० ४३५, वेसरि = खच्चर, की० ४ २६ ११४ ।

गृहस्थोपयोगी सामग्री —'वण रत्नाकर ३ २५ ख)—चौका, चौकी, पीढी, पटा, झारी, पनिगह, थलइठि, तेआए, आसन, आसनओट, गडुआ, धूपत्रल, देवी, थारी, टाठी, तमउति, तमकु ड, तमकु डी, कमडलु, घाटी, चामर, ताम्बा, अर्घा, पूला, तिलपइती —(२६ तथा २७ अप्राप्त) ।

चित्रशाली मे उपलब्ध सामग्री (स्वर्ण रत्नाकर ३ २६ क)—नेतक माण्डल गेण्डुआ, सफुर विराल, करक मुसरी, खण्ड, छुरी, सीप, ताबुल-पात्र, पानी भृ गार, झारी, सेज ।

अगोठी-चादा ५१, ३४६ । अग्गि की ३:३७ १५०, अग्नि-वर० ३ ३१ क, आगि-की० ४ २२ ६० । अष्टधातु की० २ १८ १०१ । औषधी-वर० ४ ३३ ख, ५ ५४ क । कचोरा-चादा० ७५, कचोल-ढोमा० ६५६, रतन कचोल-

वीरा० ४७, कचोला-स्थूलि० ४ १४, कनक कचोला-वीरा० ४८ । कज्जल-की० २ १७:८९ । कज्जल-ध्वज (दीपक)-की० १ ३ ८ । कटोर-ढोमा० ३७२, कटोरा वीरा० ११८ । कपूर का० २ २६-३० १८५, कपूर रस ढोमा० १६१ कप्पूर-की० २ १७ ६ । करड (पेटिका)-जिण० २८० । करडी (=नदिया, टोकरी)-चादा० २७० । प्रदीप कलस-वर० ४ ३६ ख । कावर-चादा ३ ७ । काब (-छडी) ढोमा० ४१०, काबडी-ढामा० ४१४, काब-ढोमा० ६३२ । काजल-ढोमा० १४०, ३३७, ३५३ । किराज (-वास का टोकरा)-चादा० २८१ । कुअ (-कुआ)-विप० ४ ५ । कुमकुम-ढोमा० २४० । कुहाड (-कुल्हाडी) ढोमा० ६५८ । कूपली (-कुप्पी -वीरा० ७९ । कूजा (लम्बी गर्दन वाली सुराही-स्टाइनगास फा० कोश)-की० २ २६ १६२, २'२७ १६२, २ ३१ १६८ । कूल्हड-वीरा० ३९ । कूवा-(कूआ)-ढोमा० ३६७ । खूटा ढोया, ३७५ । गाडू-की० २ २६-३० १८३ । गुडिआ-प्रापै० ६७ । घट वर० ३ २६ ख, वीरा० ७३, घडा-ढोमा० ६५८ । चपेल (-चमेला का तल)-ढोमा० ३२० । चामर-की० २ १७ ८९ । चूडी-ढोमा० ३४९ । चौपुडी (पोटली)-जिण० २३२ । छुरी-ढोमा० ६४५ । डारा-चादा ७९ । तबारु (ताबे का घडा या लोटा, पासह्०)-की० २ ३१ १६८ । तश्थ-(तश्तरी, स्टाइनगास फा० कोश) की० २-२७ १६२ । तमकुडा-की० २ २८ १७५ । तवेल्ला-की० २ २७ १६२, तही (हिन्दी तई-थाली के आकार की चौडा कडाही)-की० २ २७ १६२ । तैल-चादा० ३३७ । सोवन थार-चादा० ७७ । दीप-वीरा० २५, दीपक वर० ३ ३० ख, दीया-चादा० ६४, दीवउ-ढोमा० ५०६, दीवल-ढोमा० ४६६, वीरा० ८० । पटर (पीढा) चादा० ३६६ । पालखी (पालकी)-ढोमा० ३५२ । पाटल-वीरा० ८४, पाटा-चाँदा० २७८, पाट-चाँदा-१५६, पाटि-बीरा० ८ । पेटारा-चादा० ३३८ । फरुही-वर० १ १० ख । बावलि-काबडी (बबूल की छडी)-ढोमा० ४१४ । भडार-बीरा० १ मथानी-चादा० १३१ । मस-ढोमा० १४० । मसियरु (मसाल)-चादा० १८८ । माझा (धागा) वर० २ १८ ख । रहट-की० २ १८ ९७ । लवण-चादा० ३३७, लूण-वीरा० १२, ३९, ढोमा० ३३ । वतक (वत्तख की गर्दन के आकार की सुराही जिसमे शराब रखी जाती है)-ढोमा० ४१८ । वाटली (छोटी कटोरी)-ढोमा० ५०५ । वार (छोटा सा वर्तन जिसमे पक्षियो को पानी पिलाया जाता है, पासह्० ६४५)-की० २ ३८ २५४ । वीझण (पखा)-ढोमा० २४० । शलाका-वर० २ १८ ख । षीसा (बटुआ)-की० २ २७:१६८ । सइभरि (नमक विशेष)-वीरा० २८ । सकल (साकल)-ढोमा० १३३ । सराइ (कसोरा, दिया-बृ० हि० को०) वर० ३ २८ ख । सल (सलाई)--ढोमा० ४६२ । सिगरी-कोइला-चादा ७१ । सिलौटा-चादा ७६ । हल्दी-चादा० ३३७ ।

ऊँट—करह ढोमा० २२८, २५६, करहा ढोमा० ३०८, ४६६, ४६८, सरढी (राजस्थानी-ऊटनी), ढोमा० ५००, साठिया वीरा० ११०, साढिया, ढोमा० ८१।

ऊँट से सम्बन्धित शब्द —कबडी = ऊट को मारने की छडी ढोमा० ४६२, कटणी—ऊट का पैर मोडकर पैर से बाध देना, ढोमा० ६२९, कसवी = ऊँट पर जीन कसने के लिए पट्टा ढोमा० ३४३, कूँट-ऊँट के पैर का बन्धन, ढोमा० ६३७, घूघरा = घुघुरू, ढोमा० ३४३, छुरी—ऊँट का कूट काटने वाला, ढामा० ६४५, टापर = जीन के नीचे का माटा कपडा, ढोमा० ३४५, ढाण-ऊँट की तेज चाल, ढोमा० ४४०, पलाण, ढोमा० ३२६, ३४३, मुहरी, ढोमा० ६५६, विजउरा और द्राख-उत्तम जाति के ऊँट का राजस्थानी भोज्य, ढोमा० ४२६।

भारवाहक तथा घरेलू पशु —अपस = कुत्सित पशु, गदहा, ढामा० ३३६ इडिका = स० एडक प्रा० एडक्क प्रड, की० ४ २६ ११४, कावर, चाँदा० ३३७, गद्दह की० ४ २६ ११४, गादह, ढोमा० ३३३, गाडर = भेड, ढोमा० ६६२, गाइ की० २ ३१ २०३, कविलीय गाइ-कपिला गाय, वीरा० ५५, धौरी घूमरि गाह, सनह० ३६, गोरु की० ३ १६ ८५ गो० की० ४ १८ ८०, वर० ३ ३० ख, टाडा = साथ चादा० ४२, बडदा = बैल, की० ३ २४-१०२, बलद, वीरा० १००, दलद्दह-की० ४ २६ ११४, बाछड वीरा० ११७, बरदिया-वैल या बैल का बोझ, चादा ४२, बरहा = रस्सी चादा० १८७, भइसि, वीरा० ११८, भैस, चादा० ४२, भइस पीडार = भैस का पँडवा, वीरा० ५३, महिसा = भैसा की ४ २६ ११६, महिस, की० ४.३३ १२८ महिष, वर० ३ ३१ ख, ५ ४६, ख, ५ ४८क, वसाल = भेड, ढोमा० ४३५, वेसरि = खच्चर, की० ४ २६ ११४।

गृहस्थोपयोगी सामग्री —'वण रत्नाकर ३ २५ ख)—चोका चौकी, पीढी, पटा, झारी, पनिगह, षलइठि, तेआए, आसन, आसनओट, गडुआ, धूपहल, देगी, थारी, टाठी, तमउति, तमकुड, तमकुडी, कमडलु, घाटी, चामर, ताम्बा अर्घा, पूला, तिलपइती —(२६ तथा २७ अप्राप्त)।

चित्रशाली मे उपलब्ध सामग्री (स्वर्ण रत्नाकर ३ २६ क)—नेतक माण्डल गेण्डुआ, सफुर विराल, करक मुसरी, खण्ड, छुरी, सीप, ताबुल-पात्र, पानी भृगार, झारी, सेज।

अगीठी-चादा ५१, ३४६। अग्गि की ३।३७ १५०, अग्नि-वर० ३ ३१ क, आगि-की० ४ २२ ६०। अष्टधातु-की० २ १८ १०१। औषधी-वर० ४ ३३ ख, ५ ५४ क। कचोरा-चादा० ७५, कचोल-ढोमा० ६५६, रतन कँचोल-

वीरा० ४७, कचोला-स्थूलि० ४ १४, कनक कचोला-वीरा० ४८ । कज्जल-की० २ १७:८९ । कज्जल-ध्वज (दीपक)-की० १ ३ ८ । कटोर-ढोमा० ३७२, कटोरा वीरा० ११८ । कपूर का० २ २६-३० १८५, कपूर रस-ढोमा० १६१ कप्पूर-की० २ १७ ६ । करड (पेटिका)-जिण० २६० । करन्ी (=नदिया, टोकरी)-चादा० २७० । प्रदीप कलस-वर० ४ ३६ ख । कावर-चादा, ३-७ । काब (-छडी)-ढोमा० ४१०, कावडी-ढामा० ४१४, काब-ढोमा० ६३ । काजल-ढोमा० १४०, ३३७, ३५३ । किरीज (-वास का टोकरा)-चादा० २८१ । कुअ (-कुआ)-विप० ९ ५ । कुमकुम-ढोमा० २४० । कुहाड (-कुल्हाडी) ढोमा० ६५८ । कूपली (-कुप्पी -वीरा० ७९ । कूजा (लम्बी गर्दन वाली सुराही-स्टाइनगास फा० कोश)-की० २ २६ १६२, २ २७ १६२, २ ३१ १६८ । कुल्हड-वीरा० ३६ । कूवा-(कूआ)-ढोमा० ३६७ । खूटा ढोया, ३७५ । गाडू-का० २ २६-३० १८३ । गुडिआ-प्रापै० ६७ । घट वर० ३ २६ ख, वीरा० ७३, घडा-ढोमा० ६५८ । चपेल (-चमेला का तेल)-ढोमा० ३२० । चामर-की० २ १७ ८९ । चूडी-ढोमा० ३४९ । चौपुडी (पोटली)-जिण० २३२ । छुरी-ढोमा० ६४५ । डारा-चादा ७९ । तबारु (ताबे का घडा या लोटा, पासद्द०)-की० २ ३१ १६८ । तश्थ-(तश्तरी, स्टाइनगास फा० कोश) की० २-२७ १६२ । तमकुडा-की० २ २८ १७५ । तवेल्ला-का० २ २७ १६२, तही (हिन्दी तई-थाली के आकार की चौडा कडाही)-का० २ २७ १६२ । तैल-चादा० ३३७ । सोवन थार-चादा० ७७ । दीप-वीरा० २५, दीपक वर० ३ ३० ख, दीया-चादा० ६४, दीवउ-ढोमा० ५०६, दीवल-ढोमा० ४९६, वीरा० ८० । पटर (पीढा) चादा० ३६६ । पालखी (पालकी)-ढोमा० ३५२ । पाटल-वीरा० ८४, पाटा-चादा० २७८, पाट-चाँदा-१५६, पाटि-बीरा० ८ । पेटारा-चादा० ३३८ । फरुही-वर० १ १० ख । बावलि-काबडी (बबूल की छडी)-ढोमा० ४१४ । भडार-बीरा० १ मथानी-चादा० १३१ । मस-ढोमा० १४० । मसियरु (मसाल)-चादा० १८८ । माझा (धागा) वर० २ १८ ख । रहट-की० २ १८ ९७ । लवण-चादा० ३३७, लूण-वीरा० १२, ३६, ढोमा० ३३ । वतक (वत्तख की नर्दन के आकार की सुराही जिसमे शराब रखी जाती है)-ढोमा० ४१८ । वाटली (छोटी कटोरी)-ढोमा० ५०५ । वार (छोटा सा वर्तन जिसमे पक्षियो को पानी पिलाया जाता है, पासद्द० ९४५)-की० २ ३८ २५४ । वीझण (पखा)-ढोमा० २४० । शलाका-वर० २ १८ ख । षीसा (बटुआ)-की० २ २७:१६८ । सइभरि (नमक विशेष)-वीरा० २८ । सकल (साकल)-ढोमा० १३३ । सराइ (कसोरा, दिया-वृ० हि० को०) वर० ३ २८ ख । सल (सलाई)-ढोमा० ४६२ । सिगरी-कोइला-चादा ७१ । सिलौटा-चादा ७६ । हल्दी-चादा० ३३७ ।

मनोरंजन (विनोद) सामान्य—संगीत, नृत्य, काव्य, आखेट, काम क्रीडा द्यूत तथा वेश्यागमन मुख्य थे।

असामान्य-गन्दा (गेंदा) की० २ २७ १६१, गिंदू-प्रापै० १ १५७, च (पतग), पृ० ७ २२ २, जलक्रीडा की० ४ ३४ १३७, जरहरि की० ४ ५२ २११ जलकेलि वर० ३ ३० क, ५ ५३ क, धमारि (-हास-परिहास) चादा० ३८९, नट खेल जिण० ३२८, पृ० १० २४ २, फिरक्कि, पृ० ५ ३८ १५, बधावा, निसाण, जिण ५०३, चादा० ३९५, बेडिन (-नट का खेल दिखाने वाली स्त्री), चादा० १९१ मधुपान, की० ४ ३४ १३८, मकट खेल प्रचि० ४०, मल्ल, पृ० ७ १७ १४, मा जुगुति (मल्ल की युक्ति), चादा० १९१ मीन चरित्त, पृ० ६ ६ २, मृगवत्स-चराना पृ० २ ४ ९, वनविहार, की० ४ ३४ १३६ ३८, वाराह रोह, पृ० ७ २१ ६, सरोह साधन, पृ० ४ १०-५, हदफ (लक्ष्य भेद), पृ० १२ १२ २, हिंडोला, स्थूलि० १ नाना प्रकार के हाथी, घोडे, महिस, सचान, कुकुर तथा सह यात्रियो के साथ आखे खेलना और उसका विशद प्रभाव वर० (५ ४७ ख-४९) मे द्रष्टव्य है।

द्यूत-क्रीडा-गृह—'नगर क दक्षिण, जूआ योगिनीक आयतन देवीकासन्निधान उच्च, चौरस, सुग ध वातायन विचित्र विपुलाकृत शत हाथ भीतर दीघ चउसट्ठि हाथ फाण्ड काच फाटक निर्म्मओल जोलजत्र कडारनीक कडारल विश्वकर्म्माने निर्म्मओल वणिकभूमि अपूवर्व चेटसार। वर० ४ ३७ क।

द्यूतक्रीडा—वर० ४ ३७ ख-३९ तक।

त्योहार—काजलियारी तीज-ढोमा० १४९, १५०, काजली-वीरा० ७६ चउथ करउ-वीरा० २, दसहरा-ढोमा० ५७३, दिवारी-चादा० १६५, १६८, ३४६ प्रचि० ३ ११९, फाग-पृ० ४ २३, चादा० ६४, ३५० ढोमा० ३०२, होली-वीरा ७२ ढोमा० १४५, पितरपख तथा देवउठान-चादा० ३४६।

काजलि यारी तीज—भाद्रपद कृष्ण पक्ष की तृतीया को मनायी जाती है। वर्ष सम्बन्धी आनन्दोल्लास इस त्योहार के रूप मे प्रकट होता है। ढोमा० १४९-१५०।

दिवारी—चादायन (डलमउ, रायबरेली, उत्तर प्रदेश) के अनुसार दिवाली पर्व पर गाँव के लोग एक स्थान पर इकटठे हाते थे। वहाँ अक्षत और फूल से किसी देवता की पूजा होती थी। चांदा० १६५। इस पव पर बकरा काटने की प्रथा थी 'काटि दीन्ह जस बकर दिवारी। चादा० १६८। इस उत्तम पर्व को गीत गा-गा कर खेलते थे—'उतिम परब रितु खेलहिं गाई।' चादा० ३४६।

पितर पख—इस त्योहार पर सभी के घर रसोईं तैयार की जाती थी— नब रितु लाग पितरपख होई। राइ रक घर सीझि रसोई। चादा० ३४५।

फाग होला—नामलस्व रास (७२) म चत्र नाम आ , म नहा (१८५) मे 'फागुण मासि वसत रुत' न होलिकात्सव मनाना उल्लिखित है। इसम नारिया चतुरगी वस्त्र तथा कचुका स सजता न। व नात चमकान ग नव गान हे। वीरा० ७ । चचरी राग विशेष गाना ह। न म० ११ । च दावन (उत्तर प्रदेश) के अनुसार बालिकाय घर घर म   चन प व फाग नाचती थी जिससे चकार हाता था। चादा० २५ ।

उत्सव—पुत्रोत्पन्न प्रच० १ ११५-१ १ जिण ६ नन्द० ७२ विवाहोत्सव-प्रच० १ ८८ ४ २ , चाद० ८ १ उठ चा   अहिपक का० ४ ६१ २१५-२५७ स्वजन-मिलाप जिण० ५० -१०८ का० - / गोमा १०१, ६५१ दिग्विजय जन तर नगर प्रवश मह त्सव प्रचि० ३ ०८ - ६. १ ६ मदिर निर्माण जीर्णोद्धार कलश क प्रतिष्ठा प्रचि० १ १४ वनारोहण वह - ६६ तीर्थयात्रा महोत्सव-वही ८ १६४।

पुत्रोत्प न उत्सव (पद्युम्न चरित १ ११५-१ १ एरच्छ उत्तर प्रदेश) घर-घर बधावा और मङ्गलाचार गाये जाने लगे। ब्राह्मण वेद मन्त्रा का उच्चारण करने लगे

भेरी तथा तुरही बजन लगे। मद्दर एव शख क अनवरत शब्द हाने लग। घर घर मे केशर अथवा रोली के चिह्न लगाये जान लगे। स्त्रिया अपने अपन घरा मे मगल गीत गाने लगी।

जिणदत्त के जन्मा सव पर कुटुम्बिया द्वारा घर-घर म बधावा गाया गया। स्त्रिया उत्साहपूर्वक गीत गान लगी तथा उ हान सातिया क चौक पू । जिणदत्त के पिता ने ताम्बूल सोपारी तथा पान दन लग। उसन मूती तथा रेशमी वस्त्र और दो करोड दाम (मुद्रा) दान मे दिए। जिण० ५ ६-८ १।

विवाहोत्सव—प्रद्युम्न चरित (एरच्छ उत्तर प्रदेश) मे प्रद्युम्न का विवाह बडी धूमधाम के साथ किया गया। इस अवसर देश विदेश क राज महराजे आये थे। नगर सजाया गया। बाजे बजे। ब्राह्मणगण का मत्रोच्चारण हुआ। सौभाग्यशाली स्त्रिया मङ्गल गीत गाई। प्रच० ५८०-५८१। इस अवसर गुडियो का उछाला जाता था। तोरण एव वदनवार बाधे जाते थे। प्रच० ८८। वधू के घर बारात आती थी। बरातियो का अत्यधिक आदर सत्कार किया जाता था। शास्त्रीय विधि से विवाह सम्प न हाता था। भावरे पडती थी। दहेज मिलता था। विदाई मे यथा-शक्ति सामग्री दी जाती थी। चादा० २८-४२, वीरा० ६ २५। विस्तार के लिए देखिए अध्याय ४, सस्कार तथा वीरा० ६ २५।

— — —

धार्मिक शब्दकोश

सम्प्रदाय—धरम पथु चादा० ६। कोल धम्म-प्रापै० २ १०७, पृ० ७ १५ १। कुलमग्ग-प्रापै० २ ११५। सरावग धम्म जिण० ४४। गोरखपथ-चादा० १६४।

साधक—गाबर नगर मे तडाग, पोखर और कुड खनाये गये है। उनके चारो ओर मठ और देवालय है। उनमे खूना तपसी, मसवासी, योगी और सिद्ध बसते है। (चादा २)।

अलेउ वीयराउ (अलिप्त वीतराग)-जिण० ५२। ऋष-जिण० ४८, रिसि जिण० ५८। ओझा की० २ ३१ १६६। ओल्ला-प्रापै० १ १४७। चउविह (साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका सघ-गोतम० -। जागिणि—वीरा० ४० ढोमा० ६१७। जोगी-वीरा० ३६, ढोमा० ६ ६, पृ० १२ ७ ७, १२ २४ २, चादा ३२१। तापस-गौतम० ३३, कछूनो०। दरवेश-की० २ २९-३० १८९। नगा-पृ० ४ २३ २ परमेठि जिण० ४६४ प्रच० ४ ३१०। वीयराग-जिण० २५, गौतम० ४८। मषडूम-की० ४ २ ८। मसवानी-चादा० २५३। मुनि-चादा० १८८, थूलि० ८, सामाय। महा-मुनि-वर०५ ५५ क। यती-वर० ४ ५३ ख। योगी—वर० २ २१ ख। लगरी (दिगम्बर) को नग्नाटक भी कहते हैं। लुचित नग्नाटक जैन साधु थो सम्भवत लगरा है)—पृ० ४ २३ १। सअद (मुसलमानी धर्म गुरु)—की० २ २९ ३० १८८ पोजा-की० २ ३१ १६६, ४ २ ८। सन्यासी वीरा० १०१। सम्बणु (श्रमण) जिण० ३६१। साधु विप० १ ५। सिद्ध-की० ४ ४९ १८८, सिद्धि-स्थूलि० २०, सिध ढोमा० २२० पृ० ४ १३.३।८४ सिद्धो के नाम—वर० ७ ६६ ख-६७ क।

साधना तथा धार्मिक आचरण—गगा मे पाप बहाना, धर्मनाव पर चढ़ना तथा हृदय-चक्षु प्रकाशित करना-चादा० ९। जोगिणि होना, बन मे वास करना, तप करना, केदारनाथ पर चढना, पर्वत पर गलना—वीरा० ८४। अष्टापद शेल पर चढना, २४ तीर्थाकरो की वदना करना, भगवान का उपदेश सुनना, मदिर मे जाकर दर्शन करना, जिन की बिंब सचित करना, पुडरीक कडरीक का अध्ययन करना, दूध,

चीना और घी के क्षीरान्न मे अमृतवर्षीय अगूठा रखकर खिलवाना, जिनेश्वर का वाणी सुनना गौतम० ३२ ४१ । कलामे (कलमा)—की० २ २७ १७१, कलीमा—वही । केवल (केवल्य) ज्ञान-प्रच० ५, गौतम० ३० । गतलेप (निष्पाप होना)-जिण० ३ । चतुर्म्मासा-वर० ४ ३३ ख । तप-सामान्य । तिलक-वर० ४ ४२ क । दखिना-चादा- ३५५ । दीक्षा लेना-सामा य, विशेष प्रच० छठा सर्ग, शालिभद्र रास । दोआ दुआ)- की० २ २९-३० १८६ । नीमाज-की० २ ३१ १६६ । पसाउ । (प्रसाद)-ढोमा० ७४ । पारण-वीरा० २ । पूजा सामान्य । प्राणायाम-वर० ३ ३० ख । प्रेम और भक्ति- सामान्य, विशेष सनेहलीला । बद्धाजलि-की० २ ३८ २५३ । बलिदान-चादा० १६८ । बाग की० २ ३१ १६४ । माथा-टकना देवता को-वर० ५ ४३ ख । मिस्मिल (विसमिल्ल)—की २ ३१ १६५ ३ १६ ८५ । यज्ञ —वर० ५ ५४ ख । योग सनेह०, मा० । रोजा की० २ ३१ १६७ । वदन-वीरा० १ । वइराग-ढोमा० १७१, प्रच० छठा सग । व्रत० सामान्य, विशेष सप्तक्षेत्ररास । सेरणी (शीरीनी-मिठाई, स्टाफा०)- की० १ २९-३० १८८ । स्मरण-जिण० २५२ ।

धार्मिक उपकरण तथा प्रतीक—दान देते समय—

हाथि तबालूय, अजलि नीर । गलइ जनोइय, पहिरण चार ॥ वीरा०२२ । यात्रारभ मे-सउण (शकुन) ते बधिया गाठडी । सन सोपारीय दीधीय छोड । वीरा० ७ ६८ । कनकदड-वर० ४ ३६ क । कमडल-वर० ३ ३२,क । कलस-नेमिनाथ० ६, वीरा १७ । गुटिका-वर० २ १३ ख । गोमठ-की० २ ३१ २०८ । चउरी-जिण० १२५ । चैत्यालय सामान्य । जणेव-का० २ ३१ २०४, प्रच० ४ ३७४ । टाका-वर० ४ ३६ क । तिलक-सामान्य । मदिर-सामान्य, देउर-की० २ ३१ २०७, दवल-प्रच० १ ६७, देवलि-वीरा० ४७, देहुर प्रच० १ ६१ । धज-की० २ १७ ८६ । पचमि पचामृत) जिण० १५२ । पताका-वर० २ १८ क । फोट (तिलक को बिन्दी)-की० २ ३१ २०४ । मगल ध्वनि वर० ४ ३६ क । मसोदा (ममजिद)-का० २ २७ १७२, २ ३१ २०७ । यज्ञोपवीत का० २ १८ ११० ।

गोरखपथी का वेशभूषा-काना मे फटिक मुद्रा सिर म नन्ना, कठ मे रुद्र-राख (रुद्राक्ष की माला), चक, जागौटा (नागपट्ट), कोथा (कोथला, थैली) तथा कथा लिये हुए । पैरो मे पावरा (पादत्री, खडाउ), मुख मे विभूति, हाथ मे अधारी, झाला (मृगचर्म), डडा, खप्पर, सीगी, तिरसूर-चादा० १ ४ ।

धार्मिक विश्वास—सगुन, असगुन, कुसगुन-सामान्य, विशेष रूप स द्रष्टव्य चादा० ९१, १६२, २६०, ४३०, ढोमा० ५१६-५२०, जिण० ५७, ४८४, प्रच० ४ ३५६, वसन्तविलास० ।जादू-ढोमा० २४८, गोतम० २१ । मन्त्र सामान्य । मुहूत

धार्मिक शब्दकोश

सम्प्रदाय—धरम पथु चादा० ६ । कोल धम्म पापै० २ १०७, पृ० ७ १५ १ । कुलमग्ग-प्राप० २ ११५ । सरावग धर्म्म जिण० ४८ । गोरखपन्थ-चादा० १६४ ।

साधक—गाबर नगर मे तडाग, पोखर और कुड खनाये गये है । उनके चारो ओर मठ और देवालय है । उनमे खूना तपसो, मसवासी, योगी और सिद्ध बसते है । (चादा २) ।

अलेउ बीयराउ (अलिप्त वीतराग)-जिण० ५२ । ऋष-जिण० ४८, रिसि जिण० ५८ । ओझा की० २ ३१ १६६ । ओल्ला-प्रापै० १ १४७ । चउविह (साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका सग-गोतम० - । जोगिणि—वीरा० ४० ढोमा० ६१७ । जोगी-वीरा० ३६, ढोमा० ६ ६, पृ० १२ ७ ७, १२ २४ २, चादा ३२१ । तापस-गौतम० ३३, कछूलो० । दरवेश-की० २ २६-३० १८६ । नगा-पृ० ४ २३ २ परमेठि जिण० ४६४ प्रच० ४ ३१० । वीयराग-जिण० २५, गोतम० ४८ । मषडूम-की० ४ २ ८ । मसवानी-चादा० २५३ । मुनि-चादा० १८८, थूलि० १, सामा य । महा-मुनि-वर०५ ५५ क । यती-वर० ४ ३३ ख । योगी—वर० २ २१ ग । लगरो (दिगम्बर) को नग्नाटक भी कहत है । लुचित नग्नाटक जैन साधु थे सम्भवत लगरा है)—पृ० ४ २३ १ । सअद (मुसलमानी धर्म गुरु)—की० २ २६ ३० १८८ पाजा-की० २ ३१ १६८, ४ २ ८ । सन्यासी वीरा० १०१ । सम्वणु (श्रमण) जिण० ३६१ । साधु विप० १ ५ । सिद्ध-की० ४ ४६ १८८, सिद्धि-स्थूलि० २०, सिन्ध ढोमा० २२० पृ० ४ १३,३।८४ सिद्धो के नाम—वर० ७ ६६ ख-६७ क ।

साधना तथा धार्मिक आचरण—गगा मे पाप बहाना, धर्मनाव पर चढ़ना तथा हृदय-चक्षु प्रकाशित करना-चादा० ६ । जोगिणि होना, बन मे वास करना, तप करना, केदारनाथ पर चढना, पवत पर गलना—वीरा० ८४ । अष्टापद शैल पर चढना, २४ तीर्थाकरो की वदना करना, भगवान का उपदेश सुनना, मदिर मे जाकर दर्शन करना, जिन की विंव सचित करना, पुडरीक कन्दरीक का अध्ययन करना, दूध,

चौना और घी के क्षीरान्न मे अमृतवर्षीय अगूठा रखकर खिलवाना, जिनेश्वर का वाणी सुनना गौतम० ३२ ४१ । कलामे (कलमा)—की० २ २७ १७१, कलीमा—वही केवल (केवल्य) ज्ञान-प्रच० ५, गौनम० ३० । गतलेप (निष्पाप होना)-जिण० ३ । चतुर्म्मासा-वर० ८ ३३ ख । नप-सामान्य । तिलक-वर० ४ ४२ क । दखिना-चादा-३५५ । दीक्षा लेना-सामा य, विशेष प्रच० छठा सग, शालिभद्र रास । दोआ दुआ)-का० २ २९-३० १८६ । नीमाज-की० २ ३१ १९६ । पसाउ । (प्रसाद)-ढोमा० ७४ । पारण-वीरा० २ । पूजा सामान्य । प्राणायाम-वर० ३ ३० ख । प्रेम और भक्ति-सामान्य, विशेष सनेहलीला । बद्धाजलि-की० २ ३८ २५३ । बलिदान-चादा० १६८ । बाग की० २ ३१ १९४ । माथा-टेकना देवता को-वर० ५ ४३ ख । मिसिमिल (विसमिल्ल)—की २ ३१ १९५ ३ १९ ८५ । यज्ञ—वर० ५ ५४ ख । योग सनेह०, सामा० । रोजा की० २ ३१ १९७ । वदन-वीरा० १ । वइराग-ढोमा० १७१, प्रच० छठा सर्ग । व्रत० सामान्य, विशेष सप्तक्षेत्ररास । सेरणि (शीरीनी-मिठाई, स्टाफा०)-की० १ २९-३० १८८ । स्मरण-जिण० २५२ ।

धार्मिक उपकरण तथा प्रतीक—दान देते समय—

हाथि तबालूय, अजलि नीर । गलइ जनोइय, पहिरण चीर ।। वीरा०२२ । यात्रारभ मे-सउण (शकुन) ते बधिया गाठडी । मत सोपारोय दीधीय छोड । वीरा० ९७ ९८ । कनकदड-वर० ४ ३६ क । कमडल-वर० ३ ३२,क । कलस-नेमिनाथ० ६, वीरा १७ । गुटिका-वर० २ १३ ख । गोमठ-की० २ ३१ २०८ । चउरी-जिण० १२५ । चैत्यालय सामान्य । जणेव की० २ ३१ २०४, प्रच० ४ ३७४ टाका-वर० ४ ३६ क । तिलक-सामान्य । मदिर-सामान्य, देउर-का० २ ३१ २०७, दवल प्रच० १ ६७, देवलि-वीरा० ४७, देहुर-प्रच० १ ६१ । धज-की० २ १७ ८६ । पचमि (पचामृत) जिण० १५२ । पताका-वर० २ १८ क । फोट (तिलक को बिन्दी)-की० २ ३१ २०४ । मगल ध्वनि वर० ४ ३६ क । मसोदा (ममजिद)-का० २ २७ १७२, २ ३१ २०७ । यज्ञोपवात का० २ १८ ११० ।

गोरखपथी का वेशभूषा-कानो मे स्फटिक मुद्रा सिर म जटा, कठ म रुद्र-राख (रुद्राक्ष की माला), चक, जागौटा योगपट्ट), काथी (कोथला, थैली) तथा कथा लिये हुए । पैरो मे पावगे (पादत्री, खडाउ), मुख मे विभूति, हाथ मे अधारी, झाला (मृगचर्म), डडा, खप्पर, सीगी, तिम्सूर-चादा० १ ४ ।

धार्मिक विश्वास—सगुन, असगुन, कुसगुन-सामान्य, विशप रूप स द्रष्टव्य चादा० ९१, १६२, २६०, २३०, ढोमा० ५१६-५२०, जिण० ५७, ४८४, प्रच० ४ ३५६, वसन्तविलास० ।जादू ढोमा० २४८, गोनम० २१ । मन्त्र सामान्य । मुहूत

नादा० ७७ । लूण उतारना-नारा० १२ । सपन चादा, ११ । सिद्धिया, उपसिद्धिया प्राकृत सिन्धिया, महासिद्धिया वर० २१२ ख । हडा न्ना (टाटका विशेष) चादा २५४ ।

देवी-देवता-पाराणिक जन –सामान्य इन्द्र कामदेव, कृष्ण, राम, शिव सरस्वती, लक्ष्मी, अजन सोम कर्ण, परशुराम, युधिष्ठिर, बलि यज्ञ, विद्याधर गन्धर्व सिद्ध, चामर, किन्नर अप्सरा, राक्षस दैत्य भूत, बताल डाइणि, दिक्पाल।

गणपति-वीरा० १२ १३, की० १ १ ४ गाना (ग्राम देवता)-चादा, २६७। नरावड (नरकपाल)-की० २ २८-३० १६ । सपदम (उपासना धर्म गुरु जो भूत-प्रेत आदि का साधना करते हैं। इनके वृत्तान्त में प्रेतात्मा आ जाता है)-नहा। गान्धव चादा-१३३ । हनुमान-चादा ८, १८५ ।

कालिका-प्राप० २ ८४ वर० १ ख । गउरा नारा० १ चण्डी-प्राप० २४, ६६ ७७ १७७ । जल-देवी जिण २४ । पावती का० १ १ ४ । भारती ना० १ ३ १ । वनदेवी-प्रच० १ १०५ । सीता० नामा० ८११ ।

कुंभोद्भव-का० ८ २ २, घटोत्कच वर० २ क । चारि मान (अबाबकर, उमरे उसमाना, अली अबूबकर उसमान) चादा । जम का० ३ ३७ १११ । दधीचि-की० ३ २८ १२४ । दुर्योधन वर० ३ २३ क ११२ ख । वाणासुर-की० ४५६ २२८ सुग्रीव-वर० १११ ख । मेष जैनदी-चादा ६ । हरिश्चन्द्र-की ३ २६ १२२, वर ५ ११ ख ।

सहजन्या, चित्रलेखा घृताची, उर्वशी, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, देवजानी-वर० २१८ ख ।

जैन-बोद्ध देवता-अर्हत-समरा० १ । अलख निरजन चादा ३१२ । ऋषभादि तीर्थङ्कर, सिद्ध-जिण० १ । णेमि जिणदु ओर पासणाह-जिण० ८ । सउवीस सामिअ-जिण० ६ । चउवीस जिण-गोतम० ३२ । चउवीस जक्ख जक्खिणी-जिण० ११ । वीर जिणेसर-गोतम० १,१ । आदि जिणेसर-पाडव० १० । नियक जमकदेव-गोतम० ३७ । भगवान नेमिनाथ प्रच० ६ ६६१-६७० । सामिउ पासजिण (स्वामी पार्श्वजिन)-कछूली० ३६ । परमेठि जिण० ५२-५४, २५१-२५२ ।

———

आर्थिक शब्दकोश

उपज –अन टामा० २६८ अन त्रादा० ८१ रुण-त्रन्न टामा०-१९८ कनिक-गेहू, की० – २३ ६६ कुरूआ-अड्मे का प नि एक काटदा पावा निसम –टया तेल निकाला जाता ह, की० ३ २४ १०८ जव-पृ० २ ८१ = ३० = तिल नोमा० ७८, तिल्ली-नोमा० २८७ २८७, धान = धान्य अन्न वीरा० ७३, वाजरी-ढोमा० २५० मग-ढोमा० ३१९, यव गोधुम नीवार चरश देवधान्य, कडुगु, श्यामाक साजो य व्राहि, वर० ५ ५४ ख भाटओर जटामसा, वच कूढ मुरन हुरदि, दारुहरदि, चम्पक, वइसाठि नगरनाथ, दशओ ये सर्व्वोषधा वर० ५, ५८ ख। मङ्गल द्रव्य— अक्षत, कुकुम, दधि, मधु, मदिरा घृत गोरोचना, लाजादि पायस, पचगव्य पचामृत, एला, लवग सर्व्वोषधी, जातीफल-वर० ४ ३६।

कृषि सम्बन्धी शब्द—खत्त की० १ ६ १५, खनि ढामा० १४६, लूणाजइ = काटना, वीरा० ७३, षेख कमावती-वीरा० ८२ करसण = खेती, ढोमा० १२१, दुकाल-ढामा० २, तिड्डु = टिड्डा, फाका = टिड्डियों के बच्चे नोमा० ६६०, वर्णरत्नाकर (बिहार) से।

गृह निर्माण के लिए लकडा—शार, भरण मारवा, आकन मावन, कुम्भी कोजात पटिआ, गात्रवेढ, प्रभृति अनक दारु-वर० ३ ५४ ख।

वन वृक्ष—ताल, तमाल, रसाल, हिन्ताल, शाल, पिआल, पितशाल, शमी सरल, शल्लकी, सिरिसि सिम्बलि, सिद्ध, सिसप, सहाल, सोहिजन, पिप्पल, पलाश पाउलि, पनस, प्रियगु, वेल, बकुल बउहर, पक्षि, बहेलि, बदर बानीर, कदम्ब कर्णिकार, कोविदार, काचनाल, करहि, कापिल्ल, ककेल्लि, कुब्जक, वर० ५ ४६ ग।

उपवन के पेड पौधे—अगर, अशोक तेन्दु, तिलक, जम्बीर, जम्बू, कटहर ककोला, एला, सुखमेला, तमाल, हिताल, सरल, मधुकर, स्वच्छकुन्द माधवी, कनक कदली, कर्पूर कदली, रामकदली, कदली, वर० ५ ५१ क।

पर्वत के वृक्ष—चम्पक, चन्दन, चुत × × कोमुद्र, करव, करज करहि काइआर, ककेणि करवत, कठायि, केतकी, कूअ, कदली, सिम्ब, सीसमु साकु सोहिजन, समि, सिरिसि, सरल, सहोल, बाबुर, बउहर, बास, वेल, बउर, बाकि बहेलि, वेत वरुण, पाडरि, पान्दन, गु, पीत, पलोकठ, पिआर-वर० ५ ५३ ख।

ादा ७ । लूण उतारना-वार० १२ । मपन चादा ७ । सिद्धिया, उपसिद्धिया, प्राकृत सिद्धिया, महासिद्धिया वर० १३ ख । टा ना (टाटका विशेष) चादा ५४ ।

देवी-देवता-पौराणिक जन-सामान्य इन्द्र कामदेव, कृष्ण, राम शिव, सरस्वती, लक्ष्मी अर्जुन, भीम कर्ण परशुराम, युधिष्ठिर, बलि, यक्ष विद्याधर, गन्धर्व सिद्ध, चामर किन्नर, अप्सरा, राक्षस दैत्य भूत, वनार ार्ण, दिक्पाल ।

गणपति-बीरा० १३, का० , ग्राम (ग्राम देवता)-चादा, ६७ । नरावड (नरकपाल)-की० २ २८-३० १६ । मपदूम (मुसलमान धर्म गुरु जो भूत-प्रेत आदि की साधना करते है । मरने पर प्रेतात्मा हो जाते हैं)-वहा । गावव चादा-१३३ । हनुमान-चादा ८, ८५ ।

कालिका-प्राप० २ ४२ वर० ३ । गउरी प्राप० । चामुण्डा-प्राप० २४ ६६, ७८ १ ७ । जलन्धर निण ७४७ । पार्वती का० । भारती का० १ ३ १ । वनदेवी-प्रच० १०५ । सीता० रामा० ।

कुभोद्भव-का० ४ २४, घटोत्कच वर० क । चारि मीर (अबाबकर, उमर उसमान, अली अबूबकर उसमान) चादा । जम की० ३७ १५१ । दधीचि-का० ३ २८ १२४ । दुर्योधन वर० ३ २३ क ख । वाणासुर-की० ४·५६ २३८ सुग्रीव-वर० ११ ख । मेष जनदी-चादा ६ । हरिश्चन्द्र का ३ ८६ १२२, वर ५ ११ ख ।

सहजन्या, चित्रलेखा घृताची, उर्वशी, मेनका रम्भा, तिलोत्तमा, देवजानी-वर० २ १८ ख ।

जैन-बोद्ध देवता-अर्हत-समरा० १ । अलख निरजन चादा २१२ । ऋषभादि तीर्थङ्कर, सिद्ध-जिण० १ । णेमि जिणदु ओर पासणाह-जिण० ८ । चउवीस सामिअ-जिण० ६ । चउबीस जिण-गोतम० ३२ । चउबीस जक्ख जक्खिणी-जिण० ११ । वीर जिणेसर-गौतम० १,५ । आदि जिणेसर-पाडव० १० । नियक जक्षकदेव-गौतम० ३७ । भगवान नेमिनाथ प्रच० ६ ६६१-६७० । सामिउ पासजिणु (स्वामी पार्श्वजिन)-कछूली० ३६ । परमेठि जिण० ५२-५४, २५१-२५२ ।

आर्थिक शब्दकोश

उपज -अन टामा० २६४ अन त्रादा० ०१ ऊण-धन्न टामा०-१९९ निक-गेहू की० - २३ ६६ कुल्आ-अइने का मति एक कादद। पाया जिसमे त्या नल निकाला जाता ह, की० ३ २ १०१ जव-पृ० ० ४ १, ८ ३० ०, तिल टोमा० ७८, तिल्ली-गोमा० २८२ २८३ धान = धान्य अन्न वीरा० ७३, बाजरा-डोमा० २५० मग-ढोमा० ३१६, यव गोधुम नीवार चरश दवधा य कडगु, श्यामाक सातो ये व्रीहि, वर० ४ ५४ ख भाटजोर, जटामसा, वच कूढ मूरन हरदि, दारुहरदि, चम्पक, वइसाठि, नगरमोथ, दशओ ये सर्वोषधा वर० ५, ४८ ख । मङ्गल द्रव्य—अक्षत, कुकुम, दधि, मधु, मदिरा, घृत गारोचना, लाजादि, पायस पचगव्य, पचामृत, ना, लवग सर्वाषधी, जातीफल-वर० ८ ३६ ।

कृपि सम्बन्धी शब्द—खेत का० १ ६ १५ खनि-ढामा० १४६, लूणाजइ = काटना, वीरा० ७३, षेख कमावती-वीरा० ८२ करसण = खेती, ढामा० १२१, दुकाल ढामा० २, तिड्डु = टिड्डा, फाका = टिड्डियों के बच्चे गामा० ६६०, वणरत्नाकर (विहार) से ।

गृह निर्माण के लिए लकडा—शार, भरण मोरवा, आकन, मावन कुम्मी कोजात पटिआ, गात्रवेढ, प्रभृति अनेक दारु-वर० ३ ९८ ख ।

वन वक्ष—ताल, तमाल, रसाल, हिन्ताल, शाल पिआल, पितशाल, शमी सरल, शल्लकी, सिरिसि सिम्बलि, सिद्ध, सिसप, सहाल, सोहिजन, पिप्पल, पलाश पाउलि, पनस, प्रियगु, वेल, वकुल, वउहर, पझि, वहेलि, वदर वानीर, कदम्ब कर्णिकार, कोविदार, काचनाल, करहि, कापिल्ल, ककेल्लि, कुब्जक, वर० ५ ४६ व ।

उपवन के पेड पौधे—अगर, अशोक तेन्दु, तिलक, जम्बीर, जम्बू, कटहर ककोला, एला, सुखमेला, तमाल, हिताल, सरल, मधुकर, स्वच्छकुन्द, माधवा, कनक कदली, कप्पूर कदली, रामकदली, कदली, वर० ५ ५१ क ।

पवत के वक्ष—चम्पक, चन्दन, चुत X X कोमुद्र, करव, करज करहि काइआर, ककेणि करवत, कठायि, केतकी, कूअ, कदली, सिम्ब, सीसमु, साकु सोहिजन, समि, सिरिसि, सरल, सहोल, वावुर, वउहर, वास, वेल, वउर वाधि वहेलि, वेत वरुण, पाडरि, पान्दन, गिगु, पीत, पलोकठ, पिआर वर० ५ ५३ ख ।

यज्ञ वृक्ष —अक्क, पलाश शमी, खदिर, दूर्वा, उदुम्बर अश्वत्थ, अपामार्ग-वर० ५४ ख।

मरुस्थल वृक्ष-काट, कठाय, कुश, कटार, काश, कएक, गवीर वावुर, निसार, वसउति वसुहटि, वेणु, वरिआड, चोरकट, ततुया-वर० ७ ६४ ख।

पाखरा-वृक्ष—चूत, चन्दन, चाप, श्रीफल, अशोक, अगुरु, अश्वत्थ-वर ५३ख मुल्ला दाउद (डलमऊ, रायबरेली, उ० प्र०) कृत चादायन में-

उन वृक्षों के नाम जिनके पत्ते से पत्तल बनते थे—महुवा, आम, वर, पीपल, कटहर, बडहर, औलर (आवला), जामुनि, करहार, कठऊवरि पाकरि, मुहना कखद (-करौदा), दाख, ककोर, तेदू, बुगुचा, रीठा पुरइनि-चादा० १५० । कवि जाति का मुसलमान था। सम्भवत उसे जानकारी नही था कि किन पेडो के पत्तो से पत्तल बनते हैं और किनके पत्तो से नही। इस स्थल पर पेडो का नामोल्लेख करना उनका अभीष्ट था।

नगर के वृक्ष (महर अधिकृत)—नारियर, गावा(-सुपारी), दारुया, दाष, नारिंग झारिंग, कटहर, तारा (ताड) अब, जामिनि, कथ, आम, खिजुरि, बर, पीपरा, अबिली, (-इमली) चादा० १८।

जिणदत्त से उद्यान के पेड जसाक, कवल नालियर सहकार, (-आम) नारिंग, जवु, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, फोफिला (सोपारी), जातीफल इलायची, लवग, करणा, मरणा, कांथु, कपित्थ, वेर, पीपली हरड, बहेड खिरी आंविली, सिरीखड अगर, गलीदी, धूप, जाई, जूहि, वल, सेवती, दवणा, मरुआ मालती, चपा रायचपा मचकुद, कूज, बउलसिरी, जासउदु, बाला, ननार, मन्दार, सिंदुवार, मदार, पाडल, कटपाडल, घणहूल, जिण० १ ८-१७८। कवि सधारु (एरच्छ, उत्तर प्रदेश) कृत प्रद्युम्नचरित से—उद्यान के पेड पाये—जाइ, जुही, पाडल, कचनार, ववलसिरी वेल करणवीर, चपा केवरा, कुदु, टगरु, मदार, सिंदूर, दम्वणा, मरुवा, कलि, निवली आम, जभीर, सदाफल, दाडिम्ब, केला, दाख, विजउर, नारिंग, करण, खीप, नीबू, पिंडखजूरी, सल्लू, खिरणी, लवग, छुहारा, दाख, नारिकेर, फोफल वेल, कइथ, आवला—प्रच० २४५-३४८।

अन्य—तर ढोमा० ३६, तरु वर० ३ ३१ क, महातरु का० ४ ५४ २२२, रुख-ढोमा० १५८, रुखा ढोमा० ४३६, वृक्ष-वर० ४ ३३ क, वृष-जिण० १६०, अक्क ढोमा० २८६, आक-वीरा० ११५, अब = चादा १८, आव ढोमा० ११७, आब ढोमा० ४३२, आक-ढोमा, ४३२, कइर-ढोमा० ४३०, कणयर (-कनेर) ढोमा० १३५,

४७३, कदम्ब-वर० २ २१ क ४ ३३ ख, कदली ढामा० १३ वर० २ २० ख, कप्पतरु-की० ३ ३८ १५७, करीर ढोमा० ५६, ४३२, केदार-की० १ २३ ७२, केलि-ढोमा० १३२, ६६३, गाछ-की० ४ ५ १६, चदण ढामा० १६१, वीरा० १६, वर० ३ २५ ख, चम्पक की० २ १७ ८१, चलपत-ढोमा० ४४७ चूअ की० २ १७ ८१, चोल-ढोमा० १३६, ४०३, जाल ढोमा० ३६१, ढोमा० ४३२, प्रचि० १९ तुलसी-वीरा० १०२, तमाल-वर० ३ ३१ ख, ३३ क, दारिउ चादा० ७१, दालिवा वर० १ १८ ख, द्राख ढोमा० ४२६, ५८८, परवा-वर० २ १८ क, पाकरि-चादा० ३१३, पाट-चादा० ५ पारिजात वर० २ १८ क वड ढोमा० ३२०, वाउलि (बबूल), ढोमा० ४१४, बास का० ४ १५ ६३, विंब वर० २ १८ ख मधूक-प्रा०पै० १६३, मरुआ-वर० ४ ३४ क, लूगे (लगत्र) ढोमा० ५६१, वण प्रचि० १५, वास जिण० १२५, विरह प्रचि० ४ १३६ श्रीखण्ड-वर० ३ २३ क, ढामा० १३, सहकार (-आम), जिण० ३२, ढोमा० ६७३, वेत, वर० २ १८ क, साहु ढोमा० २६५, साहुर विप० १ ३, सीवल जिण० २६०, सुरअरु-की० ४ ५३ २१९

पुष्प (सामान्य), कुसुम (सामान्य)-वर्ण र नाकर के उपवन वर्णना से—गुआ, नारिकेर, नारग नागकेसर, नमेरु, खीरी, बउर, उतनि दाष, दालिम्ब, छोलग, करुण, चम्पक, चन्दन, लवग, अशोकादि अनेक पुष्पद्रुम-वर० ५ ५० क अभाज-की० १ २ ६, अरविन्द-की० ३ २ ४, कमल (सामान्य) कमोदणी ढोमा० ०१, करुण वर० ३ २८, कुन्द (सामान्य), कुमुद (सामान्य), कुवलय-वर० १ ३ ख, केतकी स्थूलि० २ ७, ३ १०, ढोमा० ७८३ कोकनद की० ३ ६ ३८, चपक वर० ३ २६, स्थूलि० ३ १०, चपा० ढामा० ३६६, चपावाई ढामा० (७३), चान ढोमा० १२०, जाइ (-चमेली) स्थूलि० ३ १०, टेसू-चादा० ४०, णीव (-कदम्ब का फूल), प्रापै० १ ६७, तिल का फूल-चादा० ६६, दमना-वर० ४ ३४ क, नलिनि-की० ३ १६ ६४, वर० ४ ३४ ख, पङ्कनाल वर० २ २० ख, पङ्कज (सामान्य) पद्म (सामान्य) पद्मराग-वर० ४ ३५ क २ २३ क पद्मनाल-वर० ४ ३४ क, परिमल, की० ४ ५३ २१८, पाडरि वर० ४ ३३ ख, पोइणि ढोमा० २४५, २६६ बेला-ढोमा० २५०, मनओदा-वर० ३ २८, मालती-वर० ३ २६, मृणाल-की १ १ १, मअरन्द की० २ १७ ८२, मकरन्द विप० १ २ ५-६, लवारि-वर० ३ २६ सुवण कतकी-वर० ३ २६, स्थल कमल-वर० २ २० ख, स्थल पद्म-२ १८ ख, सिरिमि-विप० १ १३ ।

लता, घास तथा जड आदि—अजणु मूल (जड विशेष जिससे लोग प्रच्छन्न हो जाते थे) जिण० १४६, काश-प्रापै० १ ७७, कास-चादा० ३४५, कास वर०

यज्ञ वृक्ष – अक्क, पलाश, शमा, खदिर, दूर्व्वा, उदुम्बर अश्वत्थ, अपामार्ग-वर० ६ ५४ ख।

मरुस्थल वृक्ष-नाट, कठाय, कुश, कटार, काश, फएक, गवार वावुर, विसार, वसउति वसुहटि, वेणु, वरिआड़, चारकट, ततुया-वर० ७ ६४ ख।

पाखरा-वृक्ष–चूत, चन्दन, चाप, श्रीफल, अशोक अगुरु अश्वत्थ-वर० ' ५३ख मुल्ला दाउन (डलमऊ, रायबरेली, उ० प्र०) कृत चादायन मे—

उन वृक्षा के नाम जिनके पत्ते से पत्तल बनते थे—महुवा, आम, वर, पापल, कटहर, बडहर, आलउ (आवला), जामुनि, करहार, कठऊवरि पाकार, मुहना, कखद (-करौदा), दाख, ककोरा, तेंदू, बुगुची, रीठा, पुरइनि-चादा० १५० । कवि जाति का मुसलमान था। सम्भवत उसे जानकारा नही थी कि किन पेडा के पत्तो से पत्तल बनते हैं और किनके पत्तो से नही। इस स्थल पर पडा का नामोल्लेख करना उनका अभीष्ट था।

नगर क वक्ष (महर अधिकृत)—नारियर, गावा(-सुपारा), दारयो, दाष, नारिंग झारिंग, कटहर, तारा (ताड) अब, जामिनि, केश, वास, खिजुरि, नग, पापरा, अबिलो, (-इमली) चादा० १८।

जिणदत्त से उद्यान के पड असाक, करन, नालियर सहकार, (-आम) नारिंग, जवु, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, फोफिला (सापारा) जातीफल इलायची, लवग, करणा, मरणा, काथु, कपित्थ, वेर पीपली करउ, वहड खिरा आंविली सिरीखड अगर, गलीदी, धूप, जाई, जूहि, वल, सेवना, दवणा, मरुआ मालता, चपा रायचपा मचकुद, कूज, बउलसिरी, जासउदु, बाला, नवात, मदार, सिंदुवार, मदार, पाडल, कटपाडल, घणहूल, जिण० १ ६-१७४। कवि सधारु (एरच्छ, उत्तर प्रदेश) कृत प्रद्युम्नचरित से—उद्यान के पेड पाधे—जाइ, जुही, पाडल, कचनार, ववलसिरी, वेल, रणवार, चपा केवरा, कुट्ठ, टगरु, मदार, सिंदूर, दम्बणा, मरुवा, कलि, निवला आम, जभीर, सदाफल, दाडिम्ब, केला, दाख, विजउर, नारिंग, करण, खीप, नीबू, पिंडखजूरी, सङ्ग, खिरणी, लवग, छुहारा, दाख, नारिकर, फोकल, वेल, कइथ, आवला—प्रच० २४५-३४८।

अन्य—तर ढोमा० ३६, तरु वर० ३ ३१ क, महातरु का० ४ ५४ २२२ रुख ढामा० १५८, रुखा ढोमा० ४३६, वृक्ष-वर० ४ ३३ क, वृष-जिण० १६०, अक्क ढोमा० २८६, आक-वीरा० ११५, अब=चादा १८, आव ढोमा० ११७, आब ढोमा० ४३२, आक-ढोमा, ४३२, कइर-ढोमा० ४३०, कणयर (-कनेर) ढोमा० १३५,

४७३, कदम्ब-वर० २ २१ क, ४ ३३ ख, कदली ढामा० १३ वर० २ २० ख, कल्पतरु-की० ३ ३८ १५७, करीर ढोमा० ५६, ४३२, केदार-की० १ २३ ७२, केलि-ढोमा० १३२, ५६३, गाछ-की० ४ ५ १६, चदण ढामा० १६१, वीरा० १९, वर० ३ २५ ख, चम्पक की० ७ १७ ८१, चलपत ढोमा० ६४७ चूअ की० २ १७ ८१, चोल ढोमा० १३६, ४०३, जाल ढोमा० ३६१ ढोमा० ४३२, प्रचि० १९, तुलसी-वीरा० १०२, तमाल-वर० ३ ३१ ख, ३३ क, दारिउ चादा० ७१, दालिवा वर० २ १८ ख, द्राख ढोमा० ६२६, ५८८, परवा वर० २ १८ क, पाकरि-चादा० ३१३, पाट-चादा० ५ पारिजात वर० २ १८ क वड ढोमा० ३२०, बावलि (बबूल), ढोमा० ४१४, बास का० ४ १५ ६३, बिब वर० २ १८ ख मधूक-प्रापै० १६ , मरुआ-वर० ४ ३४ क, लूगे (लगत्र) ढोमा० ५६१, वण प्रचि० १५, वास जिण० १२५, सिंह प्रचि० ४ १३६, श्रीखण्ड-वर० ३ २३ क, ढामा० १३, सहकार (-आम), जिण० ३२, ढामा० ६७३, वेत, वर० २ १८ क, साहु ढोमा० २६५, साहर विप० १ ३, सीवल जिण० २६०, सुरअरु-की० ४ ५३ २१८ ।

पुष्प (सामान्य), कुसुम (सामान्य)-वर्ण रत्नाकर के उपवन वर्णना से—गुआ, नारिकेर, नारग नागकेसर, नमेरु, खीरी, वउर, उतति दाष, दालिम्ब, छोलग, करुण, चम्पक, चन्दन, लवग, अशोकादि अनेक पुष्पद्रुम-वर० ५ ५० क अभोज-की० १ २ ६, अरविन्द-की० ३ २ ४, कमल (सामान्य) कमोदणी ढामा० २०१, करुण-वर० ३ २६, कुन्द (सामान्य), कुमुद (सामान्य), कुवलय-वर० ३ ४ ख, केतकी स्थूलि० २ ७, ३ १०, ढोमा० ७६३, कोकनद की० ३ ६ ३८, चपक वर० ३ २६, स्थूलि० ३ १०, चपा० ढामा० ३६६, चपावाडी ढोमा० (७३), चाप ढोमा० १२०, जाइ (-चमेली) स्थूलि० ३ १०, टेसू-चादा० ४०, णीव (-कदम्ब का फूल), प्रापै० १ ६७, तिल का फूल-चादा० ६६, दमना-वर० ४ ३४ क, नलिनि-की० ३ १६ ६४, वर० ४ ३८ ख पउमनाल वर० २ २० ख, पङ्कज (सामान्य) पद्म (सामान्य) पद्मराग-वर० ४ ३५ क २३ क पद्मनाल-वर० ४ ३४ क, परिमल, की० ४ ५३ २१८, पाडरि वर० ४ ३३ ख, पोइणि ढोमा० २४५, २६६ बेना ढोमा० २५०, मनजदा-वर० ३ २६, मालती-वर० ३ २६, मृणाल-की १ १ १, मअरन्द की० २ १७ ८२, मकरद विप० १ २ ५-६, लवारि-वर० ३ २६ सुवर्ण कालकी-वर० ३ २६, स्थल कमल-वर० २ २० ख, स्थल पद्म-२ १८ ख, सिरिसि-विप० १ १३ ।

लता, घास तथा जड आदि—अजणु मूल (जड विशेष जिससे लोग प्रच्छन्न हो जाते थे) जिण० १४६, काश-प्रापै० १ ७७, कास चादा० ३४५, कास वर०

२ २८ क, पाठ-का० ३ ७ ११५, कुन्चादा० ८०, कवाच (कवाच) चाना १८२ डोहा-धान्य के पत्ते या सूखे डण्ठल जो पशुओं के चारे का तरह काम आता है) ढामा० ३३६, नागरवेल-ढोमा० ०६-८०, बू (घास विशेष राजस्थान का) ढोमा० ३८० फाग-ढोमा० ८२८, मजीठा ढोमा० ५६३, सालण बेल ढामा० ५५८, लता वर० २ १८ ख वल्लि-की० १ ११, वन वर० १ १० ख ८ ३३ ग ढामा० १६३, २७८, वत-वर० १ १८ क, वच्छ बेल-ढोमा० २६६ सागर बेल ढोमा० ५६२, सवार ढोमा० ६६३, हूठा (भुरट घास के बीज)-ढोमा० ६६१।

खनिज पदार्थ—वर्ण रत्नाकार से, रत्न वर्णना (४ ३५ क)-गोमेद, गरुडोद्गार, मरकत मुक्ता मासखंड, पद्मराग, हीर रणुज, मारामस, सोगन्धिक चन्द्रकांत सूर्यकांत प्रवाल, राजावर्त, कषाय, इन्द्रनील, अष्टादश जाति रत्न।

उपमणि कुम्भ, महाकुम्भ अहिछत्र श्यावगन्ध, क्षामराग, कीटपक्ष कुरुविन्द, सूक्ष्माल पुलकसार, जीविउ, गरयाति, शिखिनिल, वंशपत्र, धूलि मरकत, भस्माग, जबुकांत स्फटिक, कक्कतर, पारिपत्र नंदक, अजनक लोहितक, शलेयक शुक्तिचूर्ण, तुत्थक, शुकग्रीव, गरुत्पपक्ष, पीतराग कर्पूरक, वर्णरस, काच, बत्तीस जाति उपमणि वर० ४ ३५,५ ३५ क।

धातु—रस, गन्धक, ताम्र, हरिताल, तालमाक्षिक, मनसिल, कडुकी, दुलार, टाघर, क्षार, इगुर, पाक, ब्रह्मसाची, सुवीरा, सीलाज, सूरिमा। हीर, मणि, मुक्ता, सवर्ण, रजत, ताम्र कास्य, जएसत राग, पित्तलि, पाषाण, राजलोह, वर० ८ ७४ क।

समुद्र से प्राप्त रत्न—मुक्ता, प्रवाल, वावट, मस, अहिकान्त, शशिकान्त, सूर्यकांत, समार, गनुक्क वैडूर्य, स्फटिक, टीक पत्र (वर० ७ ५)।

जिणदत्त के दहेज मे नीलमणि, मरगजमणि, पउमराइ मणि, वेडूर्य, चन्द्रकांता मुक्ताफल दिए गए-जिण० ४४५।

इगुर चादा० ३०, इन्द्रनील-वर० २ ३२ ख, कञ्चन (सामान्य), कंदरा वर० २ १८ ख कसाटा-चादा० ६६, कास्य की० २ १८ १०१, काच-वर० २ २३ क, वर० ५ ५३ क, का० ८ १२ ८३, चकमक-की० ४ ४२ १६५, चिंतामणि स्थूलि० २२ चून-वर० ३ २८ ख नम ताबा, की० २ २८ १७५ गिरि-चादा० ११७, मरकत-वर० २ २९ क, मानिक (सामान्य), मुक्ता (सामान्य), मोती (सामान्य), रतन (सामान्य), रूप-चादा० २६, ढोमा० ४६८, लोह-चादा० २८, ११०, वज्रमणि-की० २ ३५ २४२, सिंघा (-सखिया) ढोमा० ३८१, सोना (सामान्य) सात-उ सोना वीरा० ४८, बीरा० ११, हीर ढोमा० ८५८, खान-सगरा०, प्रचि० ८।

व्यवसाया—अहिरिन-चादा० २८७ आहुा-वारा० ५१ एवाल (गडेरिय) डामा० ४३५, करवत (आरा) चलान वाला, च दा० ३५७ कार (पत्थर काटन वाला), चादा० ४, चरवाहा चादा० २०२, ज्योतिषा-वीरा० ५५, डाकू पचि० १५, पट्टुवइ (-बुनकर) चादा० १३१, पटवइ बसाइ-चादा० ७७, पुतला बनान वाला प्राच० ४ मालिन जिण० २०६ बनिजारा चादा० २७८, नाजु चादा० ५६, बनक-चादा० ११६, भिखारी-की० ३ २६ १०६ चादा० ६० रइबारी डामा० ३०६, मरजीवउ (-समुद्र से मोती निकालन वाला)-नेम० २०१, लुटरा-का० ४ २२-६२ वज्रशूची प्रचि० १ साग (-बढ़ई का औजार), टामा० ५६, सूत्रधार-चादा-२८, स्वर्ण-सिद्धि प्रचि ८ १६५, हम का कुप्पी बनान वाला-वीरा० ७६, कलाकारो को द० कला-अध्याय मे, राजोपजीवक, राजपादो-पजिवक तथा अन्य राजकर्मचारियो को देखिए राजनीति के अध्याय म। व्यवसायियो की विस्तृत सूची के लिए अगविज्जा (४ थी सदी) मुनि पुण्य विजय अध्याय २८ द्रष्टव्य है।

विनिमय—नगरो की घनी आबादी देखिए का० २ १८ १०२-११२, १ २७ १७३, २१७ २९, २ ३४, प्रचि० ४ १८७, जिण० ८०, चादा २१, १ ०, प्रचि० १ ४ ८४ चाहाट, पृ० ८ अध्याय वीरा० १३।

नगर की सुरक्षा के लिए देखिए—चादा० ६, १०, २६, ५८, की० ३ ५२ ६३-६४, ढोमा० ५६६।

पण्यवीथी—औकी हाट (-शृङ्गार हाट), की० २ २२ १२६, कमेरा-की० २ १८ १०१ गावी-हाट-ढोमा० ५६६, चोहट्ट (चोराहा, मुख्य बाजार) की० २ १७ ८८, धनहटा (जाहरी बाजार)-की० २ १८ १०३, पक्वान हटा का० २ १८ १०३, पनहटा (पान का बाजार) -की० २ १८ १०३, मछहटा वही, नगहटी (-सर्राफा) का० २ १८ ९७, सराफा का० २ २७ १ ४, मोनहटा की २ ८ १०३।

मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित श्री माणिक्य चन्द सूरि कृत पृथ्वीचन्द चरित्र (स० १४७८) मे नगर वर्णन के अन्तर्गत ८४ हाटो की सूची दी गई है। जायसी ने सिंहल द्वीप (३७ २) वर्णन मे कनकहाट का जिक्र किया है जिसे कीर्तिलता मे 'धनहटा' लिखा है। पृथ्वीचन्द चरित्र की सूची मे तम्बोली, चूनरा (चूना बनाने वाला) तथा फोफलिया (पूगीफल बेचने वाला), इन तीनो हाटो का उल्लेख है। इनके स्थान पर कीर्तिलता मे केवल 'पनहटा' उल्लिखित है। उज्जयिनी वर्णन मे बाण ने अनेक हाटो का नाम न गिनकर नमूने के रूप मे मुक्ता, प्रवाल, मरकत, मणि-

राशि तथा चामीकर चूण स भर हुए सोनहट्टा बाजार का ही उल्लेख किया है। वण रत्नाकर के आदर्श नगर वणना का पथम कल्लोलअपूण होने से हाटो का वणन प्रकाश में नही आ सका है। मभाशृङ्गार सकलनकर्ता तथा सम्पादक-अगरचद नाहटा, सोलहवी शताब्दी, पृष्ठ १३ ओर १४ में 'चाहटा नाम' और 'चौरासी चोहट्टे' मे ८४, ८४ नामो की दो सूचिया उल्लिखित हैं।

वणिक के गुण -चाक विशेषज्ञ, अनक कपूर गनाजातिक तत्वज्ञ, वणिक द्रव्य मे मर्म्मज्ञ, धातुओ के परीक्षक तथा मानिक्यादि के विशेषज्ञ होते थे। तोल, मूल्य, परिछेद, निष्क्रय क्रय, विक्रय सुलभता, कषक्रय, अडक० परिस्थिति, हरण, भरण तथा विवछेदादि अनेक गुणो से निर्गाढ पुराधक, परितोषक, वार्म्मिष्ट, तत्त्वज्ञ मणि मर्मज्ञ, वणिक, पशल, वदा य वक्ता, विवेका विश्वासभूमि, सव्वगुण सम्पूण वणिक होना चाहिये। वर० ८ ३७ ख ७४ क।

राज दरबारी वणिक-साधु, स्वावायिक, सानुवाह, यशवाहन, सुबुधि, सएआन, सारथ, सिहल, मालकार, गधवनिक, रत्न परीक्षक वेलवार, वामन प्रभृति अनक वनिकपुत्र सुशोभित रहते है। वर० ३ २२ क।

दक्षिण से हरदी (उत्तर प्रदेश, बिहार की सीमा पर) आने वाले पदाथ—मेन (-मदन-मोम), मजीठि, चिरौंजी, सुपारी, नारियर, गुवा, लवग, छुहारी, मोदक, कूकू (कुकुम), पत्रज (तेजपात), बभी (ब्राह्मी), पाट (पटोर) चवर, सहस्र सहस्र पाक्तयो मे हय मृग पशु, हीर, पवार (प्रबाल), ताँबा, रूप (रौप्य-चादी), वीरण (खस), चेना (कपूर), अगुरु। दस सहस्र बैलो के बोझ से अधिक ये सामग्रिया थी। चादा० ३४१।

अन्य—जालधर, मध्यदेश, वैदभ, सौराष्ट्र स मिथिला मे भम आतो था। वर० ५ ४८ क। सिन्धु मे कङ्कोला (कबाबचीनी), श्रीहट्ट (सिलहट) से एला, सिहल द्वीप स जतीफा मलय मे कपूर तथा लखनावती मे सरस सुपारी आदि मँगाए जाते थे (वर० ३ २९ क)।

मुल्ला दाउद ने चादायन (९३) मे 'हटतारा' (हडताल) का प्रयोग किया है। गोबर-चढाई के अवसर पर नगर की पोरी बन्द कर दी गई और हडताल हो गई (काम-काज बन्द हो गया—बाँधी पवरि भई हटतारा। बापहि पूत न कोउ सभारा)। चादा० ९३।

कला सम्बन्धी शब्द कोष

अथ चतु षष्टिकला वर्णना (वर० ८ ३४ च) नृत्य, गीत वादित्र, विशेषक छेद दशनविधि, वसनविधि, वर्णिका विधि, पुष्परम, अगराग, स्त्रीभूमिका, जलाघात जलवाद्य, चित्रयोग्य, मालाग्रन्थन, शेषरयोजन नेपथ्य, पत्रभगि, गन्धयुक्ति आवस, सन्धानक, इन्द्रजाल, योगविद्या, हस्तलाघव, भक्षक्रिया, पानक करना, प्रहेलिका, प्रतिमा रचना, दुर्व्वचनरचना, पुस्तक वाचन, समस्यापूरण, पट्टिकावान, तक्ककम्म, वास्तुविद्या रत्नपरीक्षा, धातुवाद, मणिराग, अग्निज्ञान, वृक्षायुर्व्वेद, परशुयुद्ध, वण-वश्यता, शुकसारिका वाचन, केशवन्ध मर्द्दन, प्रसाधन, शिल्पविद्या, अक्षर मुष्टिका, देशभाषाज्ञान, दोहृदकरण, य त्रघटना, लिपिज्ञान, मान । मी, काव्यक्रिया, कोषज्ञान क्रियाशिल्प, छनितयोग, रसवाद, आकर्षक्रीडा वनिताविहार, व्यायाम विद्या, कथा-कौशल, सूची-कर्म्म, वस्त्रविद्या शास्त्रविद्या ।

कामावस्था वर्णना (वर० ५ ४१) नायक नायिका तन्हि दुहु अन्यान्य दशन भउ । अनन्तर भउ कइसन । नयन क प्रीति, चित्तक सग, सकल्प निद्रा, विलास निरक्ति, लज्जा, अभिघात, उन्मादमरण ३ ये दशओ दशा कामदव क ई यथावकाशे आए उद्भूत भउअह । मादन, उन्मादन, प्रक्षोभण, सयाजन, सम्माहन, ई पाचो ये कामदेव क नाराच । स एक—दाए नायक कॉ शरीर लागि गउ । अह भउ कइसन स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वरभेद, कम्प, विवणता, अश्रुप्रणय इ आठओ ये स त्विक दशा से यथावकाश उद्दिष्टि भउअह । तदनन्तर सुग ध, पुष्प, ताम्बूल, एकर विनि-योग करु । शय्या का ऊपर नायक नायिका ई दुऔ एकवस्थ भउअह । अ यो यानुरागे मिलुअह । शिष्टक, विल्वक, उद्भटक, पीडि तक चारि प्रकारक कामलाडगीन भउ । वृक्षारूढ त लतावेष्टित, जघनोपरि गूढ, तिलतडुल, क्षीण नीवला, नाटिका मात प्रकार क कठिनालिगन भउ । भ्रान्त, निर्य्यक, पीडित विघट्टित, उत्तर सपूट, अनुनू, प्रति-रोध, सक्रान्त, समौष्ठ, दश प्रकार का चुम्बनाभउ । नयन, कठ, कपोल, अधर, केषाकर्षण मुख, स्तन, ललाट, जघन, नाभि, कक्षा इथि दशहु स्थान चुम्बन, निर्व्वहु । अद्धच द्र, •मण्डल, मयूरपद, दशप्लत । उत्पल पत्र, पाँच प्रकार नख विन्यास निव्वहु । तिलक प्रवाल विन्दुक, खडाभ्र, काल, चर्व्व पाच प्रकारक दशन विन्यास भेल । सम-

रन भुजग नति, ग्रामावतस, तिरार क चार ण निरहु । द्मासन नागरकरण, विदारित एक पाद चारि प्रकार द मामान्य मुरत भउ । सपुट, पिडान वेष्टित उत्फुल्लक वासव, एकपा , अद्ध पाद कर्कटक य मुग्ति, नागपाश, उत्कठ ऊस, बलिन्द षाडश पकार क उत्तान मुरत भउ । ए च गाव य निराक अशाभुव, विपरात, लताबन्ध हि दगावथ कीतिव अ, पुरुषायितादि आक विध व त सुरत निब्रहु । हम मारस कपात, हारीत, कलविक चातक रति, नायिका य सुरत शिगा भउ । पदरमु, स्तनित, शात्कृत, रुतकृत, मुम्मु रादि सु । नार्गा निब्रहु । नायक नायिका दुअओ विगताकान्ता भउअह ।

सभाग निपव— स्त्रा के लिय)—स्वर ठ, भाइ, सगा, उग्र, मित्र कुटुम्बा, नरदनी नेला, मू जा, काटरी, बाजी नार्ग, चर, गाथ (पन्नामी) पास का- चादा २५८ ।

आदश काम कलाकार हरि तथा हर क गुणवाल पुरुष वग मे तथा षोडश वर्षीया कुमारी जा पुरुष के रस और स्पश म रहिता हो,[२] स्त्री वग म आदश काम कलाकार ह ।

आदश काम कला सम्पादन विधि—रति मुख म मज्ञात सुख का कामिना के जघा मे मृदग के ताल का कोक कला मे राग-कला का कामिना के कठ मे गायिकाओ के कठ का, कामिनी के सुभाषण मे गायिकाओ क सुभाषण का, कामकला मे सगीतकला का पोषण कर पुन कामिनी के उर से परिरम्भण करत , य हरि तथा हर क गुणा से सुख पूवक कामकुम्भा कुचा का ग्रहण कर नि श्वास सुरभि का देवार्पित सुरभि के समान पवनार्पित कर परिरम्भण हाता है । पृ० ५,१० कवि — सुवकदेव-पृष्ठ १ ४ ७, नल-पृ० १ ८ ९, कालिदास पृ० १ ८ १३, की० १ २६ ८५, वर० ५ ५३ क, दन्माली-पृ० १ ८ १३ (दा) पगत, भरह पृ० १ ५ २ व्यास पृ० १ ४ ५ ।

काव्य वेद पुराण-सामा य । राम रमाइन चादा० ८८ कित बा (-कुरान शरीफ) की० १ २७ १७३ । रावायन अष्टादश पव वणना अष्टादश पुराण वणना, अथापपुराण वणना, अष्टा दशस्मृतय वणना, अथागमा वणना वर० ७ ६८ ६९ । पुडरीक कडरीक अष्टादश पवत पर इन्द्रभूति स्वामा न वहा के निवासी यत्र स्वामी के जोनतियक जृ भक जाति के देवता को पुण्डरीक कडरीक का अ यास कराया था ।

१ उर भी रभ किता गुणा हरिहरौ—पृ० ५ ८०

२ पृ० ८ २३,२१

कराया गया था । गोतम० ३७। विजय (-पृथ्वीराज विजय) पृ० ३ १८ २। कमाद। क ८ र २७ १७२ । यादवा मे सम्बन्धित गीत-प्रच० ५ ६३७ । चादा० के घ के दिवा पर रामायण, महाभारत कथा-काव्य के श्लोक तथा नाटयारन । नाटयग्रन्थ) लिख हुये थे-चादा० १६३ । गाहा गूढा-गीत-गुण-नवली बानि नेमि ० ५६७ = । मन्त्र (-शास्त्र)-जिण० ५५ ।

नायक, नायिका सखी का वणन वर० २ / ३ ख १ ख २० ३-३ क द ७३ ख । वेश्या वणन।, कुट्टनी वणना वही४ ४० ४१क, विविध प्रकार क कला विनान छद रचना, गीत-विज्ञान जिण २८० । तक, पुराण, शास्त्र जिण० ५५२ । आगम उन्द, तक, शब्द, अथ, पद जिण० १४-१६ । पिगल-प्राप० १ । लक्षण शास्त्र छद शास्त्र, तक शास्त्र, लखणु, छदु, तक्क, व्याकरण, भरत का नाटयशास्त्र रामायण, महापुराण, ज्यातिष, तन्त, मन्त, छुरी-खडागरु (तरवार) चलाना-जिण० ६४ ६५ ।

सस्कृत, पराकृत, अवहठ, पैशाची, मागधी मागवा उआ नाष र अभिरा चाडाली सावली, द्राविला, औतकलि विजातिया, साता उपभाषाय । पाणिनि, चान्द्र, कलाप, दामोदर, अर्द्ध मान माहेद्र, माहेश, सारस्वत आठा व्याकरण । विश्व, व्यालि, अमर नामलिङ्ग, अजयपार, शाश्वत रुद्रट उत्पलिनी मेदिनाकर हारावली प्रभृति अठारहा काष । ध्वनि, वामन, दण्डी, महिमा, काव्यप्रकाश, दशरुपक रुद्रट श्रृङ्गारतिलक, सरस्वती, कठाभरणादि अलकार ग्रथ । शम्भु वृ तरत्नाकर, काव्यतिलक, छ दाविचिति, भारती भूषण, कवि शेखर प्रभृति अनेक छन्दोग्रथ । कादम्बरी चक्रवाल, वायस, गद्यमाला, अपूव्व छइ हर्षचरित, चम्पू वासवदत्ता, शालभजी, कप्पू रमजरी प्रभृति अपूव ग्रथ-वर० ५ ५५ ख ।

सस्कृत तथा प्राकृत भाषाये जन साधारण से दूर हो गई थी । सक्कअ वाणा बहुअ ण भावइ । पाउअ रस को मम्म न पावइ । देसिल वयणा सब जन मिट्ठा । की० १ १२ ३३ ३५ ।

वन्मग वडाइत सग, गोसाञिञ, माझिहे, खाह, मल्किह माहनाइन, महा-मलिक वानआ, अगुआडी, गौचरओ, विविध प्रकार के बारहो राज्य के कहिनी वर० २ १३ क, कतिपय पहेलिका देखिये ढोमा० ५६६-५८०, चादा० ५८ । चिर्ट (चिट्ठी) -वीरा ८६ ।

लेखन सामग्री-कागज-वीरा० ११२, ढोमा० १४०, १६२ । मसि-चा० ७४ । खड़िया-प्रचि० २ ६२ ६९ ।

वेद्यक वणना (वर० ८ ७६ क)-चरक, सुस्रुत, हारोत, देवल, बादरायन, विभाड, चारा।, वामव।दि आठा सहिता के तत्वज्ञ । वाहन, वहुसेन, वृन्दचक्र, दत्त गुण द्रव्य, तनु दनक, विवेव, लौहप्रदीप, ल्यारपदीप, मधुकोष, माधवकरादि अनेक निदान ग्रथ । रस, रसायन, तैल, गुल, मादक, चूण, लौह, लटक, गाटिका, अजनादि अनेक भेषजक पाक विचक्षण । धन्वन्तरि, अश्विना कुमार, सुखेन, दिवोदास, काशि राज, हरिश्च द्र भटटारक प्रभृति देववद्य ।

भाटआर, जटामसी, वच, कूठ, सूरन, हरदि, दारुहरद, चम्पक, वइसाठि, नगरओथ, दशो सर्व्वोषधि-वर० ५ ५८ ख । चादा का देखते ही लार बेहोश हो गया । उसको शया पर लिटा दिया गया । मा ~ विचार मे इसे हडाभाडो द्वारा कृत एक टाटका विशेषमार दिया गया । लाक, कुटुम्बा, बाधवजन, पडित वैद्य तथा सयाने लोग बुलाये गए । नाडी पक० कर वैद्य ने बताया कि चाद और सूर्य-दक्षिण तथा वाम नाडया निर्मल है । बात, पित, रगत (रक्त), सीउ (शीत), ताप जूडी नही है । चित्त सञ्जीव-सचेत-है । इसे किसी देव अथवा दानव ने नही छला है । इसे सियार अथवा बारार (बिडाल) ने भी कुछ नही किया है । यह मलिन काम-रस द्वारा विद्ध है-वादा० १५४ । लोगो को विश्वास था कि ग्रह द्वारा भी कष्ट होता है—चारा० १५७ ।

कही गर्म, कही ठडा, कही गर्म करक ठडा किया हुआ और कहो औषध के साथ, इस प्रकार पानी सब दशाओ मे दिया जाता है । जल का किसी भो रोग मे निषेध नही है । प्रचि० ५ २२४ ।

निरोगी कौन है ?—अल्प शाक खा। वाला, चावल के साथ घो लेन वाला, दूध क रसा का व्यवहार करने वाला, जल अधिक न पीने वाला, प्रकृति के विरुद्ध—बात कारक तथा ज्वलन उत्पन्न करने वाले—पदार्थों का न खाने वाला, अस्थिर भाव से न खाने वाला, खाये हुए के पच जाने पर खाने वाला, अल्प भोजन करने वाला, वर्षो मे जो स्थिर रहता है, शरद् काल मे पेय पदार्थों का सेवन करता है, हेमन्त तथा शिशिर मे पर्याप्त भोजन करता है, वसन्त म मदमस्त रहता है तथा ग्रीष्म के दिन मे जो शयन करता है, वह अरुक्'—निरोगी—होता है । प्रचि० ५ २६९-२६८ ।

लघन-उपवास-एसा औषधि है जा पृथ्वा, आकाश तथा जल मे न उत्पन्न होती है और न बाजार मे बिकता है, फिर भी सब शास्त्रो से सम्मत है । प्रचि० ५ २७० ।

आयुर्वेदज्ञ लोग देश, काल, बल, शरीर और प्रकृति देखकर चिकित्सा करते हैं। राजा तथा पालकीवाहक के गदन दद पर भिन्न-भिन्न औषधि देने पर लाला वैद्य ने स्पष्ट किया—प्रचि० ३ ८८।

रस, वर्ण तथा गन्ध की परीक्षा से उसमे १०७ महौषधियो का होना—प्रचि० ५ २२०।

सप दश की औषधि मे तन्त्र, मन्त्र तथा औषधि मे मन्त्र सर्वाधिक प्रभावपूर्ण माना गया-चादा० ३१०। गारुडि (मन्त्र मारने वाला) चादा० ३१२। ऊषध वीरा० ६४, औखद चादा० १५७, औषध विप० १ १५। काढा वीरा० ६४। वियाधि चादा० १५७, बेआधि विप० १ १५। कुष्ट रोग-प्रचि० ५ २२१। देह वियाधि जिण० २०३। बीख-विप० १। मदाग्नि-प्रचि० ४ १६५। रसायन वर० ३ २ क, चादा० १७२। रोगी चादा० १५७। लूना रोग का योग से अच्छा किया जाना-प्रचि० ४ १६६। सत्राण-(दवादारू) ढोमा० ३३२।

चित्र—पड (पट-चित्रपट, जिण० १०५। चित्तकार जिण० १०८। चादा की चौखण्डी मे चित्रो का उरेह (उल्लेखन) सोने के पानी से किया हुआ था। लङ्का को उरेह कर उसमे विभीषण को उरेहा गया था। दशग्रीव की देह मानो उसमे सँची हुई थी। सीता-हरण, राम रावण युद्ध, पाडव-दल तथा कुरुक्षेत्र का स्थान उरेहे हुये थे। खपर चोर, कौडिया जुआडी, उज्जयिनी नगरी, अगियाबैताल, महाभारत, चक्र-व्यूह, सिंह, शार्दूल, मृग, मृगारण्य, श्वापद, कथाकाव्य के श्लोक तथा नाटयारम्भ (नाट्यग्रथ) चार पक्तियो मे उरेहे हुये थे—चादा० १९३।

चौर कला—(वर० ८ ७४ ख) —नट का अइसन नाना रूपकर्त्ता, दुर्ज्जन अइसन परमर्म्मघातक, वेश्या अइसन पर अनुग्राहक, राक्षस अइसन रात्रिचरशील, आपद अइसन दु खदायक, पाखड अइसन परलोकनिस्पृह पतग अइसर आततायी मूर्षदरिद्र अइसन लोभी, विद्युत अइसन दुष्ट, नष्टकाक अइसन चकित दृष्टि, सर्प अइसन वक्रगति, चाडाल अइसन निर्द्दय, सलभ अइसन उपेक्षितमृत्यु, चरण-पावक-हस्तक-वज्रप्राय एवम्बिध सब्वगुणसपूर्ण चौर देषु। निश क, निरपेक्ष, ग्रहिल, प्रबन्धक, सुबुद्धि, विक्रान्त, वलिष्ट, वेगवन्त, सूष्मदर्शी, मयावी, सद्विचक्षण, स्वस्थ, कुशलादि अनेक गुण विशिष्ट इनमे होते हैं।

ज्योतिष—पन्द्रह तिथि, सत्ताइस नक्षत्र, सत्ताइस योग, सात वरागन, बारह राशि, एकरी अनुपति, आठपहर, बतीस घली, बारह मुहूत, दड, पल, कला, विकला ते गुण ताजे प्रतियाभिन्न पार, ग्रहादि दोष वर्ज्जित चान्द केवल तारा के

ामुद्रिक विद्या-प्रचि० ३ ११० । विदेशी मामुद्रिक शास्त्र-प्रचि १ ५ । विद्याओ के ल पर युद्ध करने की परम्परा प्रद्युम्न चरित मे द्रष्ट०्र है । सोना बनाने की विद्या-चि० ५ २०२ ।

विद्यावन्न क सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारा क लिये वर० ६ ५६ ख-५८ ष्टव्य है ।

सगात नियमित तथा स्थिर आन्दोलनो द्वा ा उत्पन्न स्वर के सगीत का ल मधुर धुन ध्वनि[1] है । सगीत के आधार पर इसके साथ सात मुख्य स्वर-स री म पधनी हैं जिन्हे ग्राम कहा जाता है । तान —तन धातु ने उत्पन्न इ ही साव रो का कलापूण विस्तार है । अलाप[4] भा एक प्रकार का तान है जो स्वग के लम्बित लय मे है । ताल (सगीत और नृत्य मे समय का परिमाण देने वाला) पृ० ५ ३७ २, चादा० ६० । नाद ढोमा० १९३, वीरा० १, ३६ राग पृ० २३ १९ ।

कतिपय रागो के नाम-गात सामा य । चाचरि-ढोमा० १४५ । मतरुफ ाशसा गान)-की० २ २९-३० १८६ । ध्रुवपद पृ० ५ ३८-१७ । मारु (राग शेष) ढोमा० १०६ । बिहाउ (त्याग के गीत) चादा० ५४ । सिन्धुराग ७ ६ ४७ ।

गीत मे किन्नर, आलाप मे विद्याधर (वर० ५ ५०क) तथा नाद-भेद के लिए ाश (वीरा० १) प्रसिद्ध ह । सगीत क सम्बन्ध मे तत्कालीन विचार-'दुख विसारण, । हरण, जउ इ नाद न हु नि । हियडउ रतन तलाब ज्यउ 'फूटी दह दिसि जति' मा० ९९३ । दुख को विस्मरण करने वाला ओर मन को हरन वाला यह ात यदि न होता त। हृदय रत्न सरोवर की भाति फूट कर दशा दिशाओ मे जाता ।

सगात से सात स्वर, सात गमक, अठारह जाति, बाइस श्रुति, एक्कीस छना, अठारह गेय धर्म, सात गायन निषेध, चौदह सगीत दोष, पचताल स्वर, ग्राम, अनेक राग के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी के लिये वण रत्नाकार ६ ५७ ५८ द्रष्टव्य है ।

स्थापत्य—कलश चादा ३० । कुड चादा० १९ । कूप-चादा० १८ । कोट्ठु-दा० २४ । खाई-चादा ९३ । खौरी चादा० २५ । गोपुर (-नगर की प्रधान द्व र)-० २ १८ ९७ । चेटसार-वर० ४ ३७ क, चौखडी चादा० ३०, चौपाल-वर० ३ २४

पृ० ५ ३८ २ वही ३ पृ० ५ ५ ८२ ४ पृ० ५ ३१ १, वर० ५ ५० क ।

अनुकूले, गुरु शुक्र के कद्रे सुतहि बुकादि याग समन्वित जन्म होता है। मानस चडखाद्य, भास्वती, तिथिचक्र, सोमशेषर, विद्याधरी, त्रिनस प्रभृति अनेक करण ग्रथ के व्युत्पन्न। राजमार्त्तण्ड, हलायुध, वराहमिहिर, श्रीपति, संहिता नन्द संहिता देवल संहिता चन्द्रसंहिता आदि फल ग्रथ वर० ४ ३६ ख-३७ क। शकुन अशकुन पर विश्वास सामान्य रूप से व्याप्त है।

नृत्य—पात्र नृत्य तथा प्रेरण नृत्य का विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है—वर० ६ ५६-६१, ११० ख, १४ क, २२१ क। चरथ नाच की० २ २८-३० १८७। जाषरी (प्रधान नर्तकी) की० २ २८-३० १८६।

पालिता मे मूर्ति उत्कीर्ण की गई समरा०। पुतरि चादा० ८१। पाहणमय पूतली-जिण० ७८। सुत्तधार (सूत्रधार, शिल्पकार)-जिण० ८५।

वाद्य—अलावणि (अलगोजा)-प्रच० ५ ६३६। काहल विप० १ १४। जय डिंडिभ-प्रचि० ३ १०६ १५८। डमरु-का० ४ ५० २१२। नाक चादा ३२५। तन्त (तात का बाजा) ढोमा० ६३०। तबल की ३ १७ ६६। दमाज-ढोमा० ३५०। दुदुहि की० ४ ५३ २१८। निसान सामान्य। पडह-(दुन्दुभी) ढामा० ३५१। भेरि-की० ३ १७ ६६, का० ४ १० ३७। मजीरा-प्रच० ५ ८३८। मानदा-चादा०, वधामणा-ढामा० ५३२ ५५७, ५७६। वीणा सामान्य। शख-का० ४ ६१ २५४। सींगण-(नरसिंह)-ढोमा० ४१६।

विभिन्न अवसरो के वाद्य—प्रयाण के बाजे-वर० ५ ४७ क ढामा० ३५३। रणवाद्य-की० ४ ४० १५६ चादा० १२६, १२८, ८७। प्रचार-काय के-मानदी (दुन्दुभी) चादा० ६। कन्या की विदाई पर वीरा० २५। पुत्रोत्पन्न अवसर पर प्रच० १ १२१। नगर-प्रवेश के अवसर पर प्रच० ४ ५६६ ५७०। नगर के बाजे-वर० १ १० ख १३ क। २७ प्रकार के वीणा-वर० ६ ६१ ख।

विद्या-१८ विद्या गोतम० ३, चादा० १०, प्रचि० ३ ११२। १६ विद्या-जिण० २८६-२८८, प्रच० ३ १८३-१८६, २३३ २३६। १२०० विद्या की ज्ञाता यम सवर-प्रच० २:१२६।

विद्या स्वरूपा शारदा-जिण० १। विज्जाहर की० ४ ४८ १८६। विद्याधर-वर ५ ५० क। विजाहरी-जिण० ८३।

गगन गामिनी विद्या-प्रचि० ५ २२०। पर-काय प्रवेश विद्या-प्रचि० ३ १६६। तारणी विद्या (इसके द्वारा जिण ने मदोन्मत्त हाथी पकडा था)-जिण० ३५१।

सामुद्रिक विद्या-प्रचि० ३ ११० । विदेशी मामुद्रिक शास्त्र-प्रचि १ ५ । विद्याओ के बल पर युद्ध करने की परम्परा प्रद्युम्न चरित मे द्रष्टव्य है । मोना बनाने की विद्या-प्रचि० ५ २०२ ।

विद्यावन्त के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी के लिये वर० ६ ५६ ख-५८ द्रष्टव्य है ।

सगीत नियमित तथा स्थिर आन्दोलना द्वारा उत्पन्न स्वर के सगीत का फल मधुर धुन ध्वनि[1] है । सगीत के आधार पर इसके साथ सात मुख्य स्वर-स री ग म पधनी है जि हे ग्राम कहा जाता है । तान —तन धातु मे उत्पन्न इन्ही सात स्वरो का कलापूर्ण विस्तार है । अलाप[2] भी एक प्रकार का तान है जो स्वरा के विलम्बित लय मे है । ताल (सगीत और नृत्य मे समय का परिमाण देने वाला) —पृ० ५ ३७ २, चादा० ६० । नाद ढोमा० १९३, वीरा० १, ३६ राग पृ० ४ २३ १९ ।

कतिपय रागो के नाम गीत सामान्य । चाचरि-ढोमा० १४५ । मतरुफ (प्रशसा गान)-की० २ २९-३०।१८६ । ध्रुवपद-पृ० ५ ३८-१७ । मारु (राग विशेष) ढोमा० १०६ । बिहाउ (त्याग के गीत) चादा० ५४ । सिन्धुराग पृ० ७ ६ ४७ ।

गीत मे किन्नर, आलाप मे विद्याधर (वर० ५ ५०क) तथा नाद-भेद के लिए गणेश (वीरा० १) प्रसिद्ध है । सगीत के सम्बन्ध मे तत्कालीन विचार-'दुख विसारण, मन हरण, जउ इ नाद न हु ति । हियडउ रतन तलाब ज्यउ 'फूटी दह दिसि जति' ढोमा० १९३ । दुख को विस्मरण करने वाला और मन को हरने वाला यह सगीत यदि न होता तो हृदय रत्न सरोवर की भाति फूट कर दशो दिशाओ मे बह जाता ।

सगीत से सात स्वर, सात गमक, अठारह जाति, बाइस श्रुति, एक्कीस मूर्च्छना, अठारह गेय धर्म, सात गायन निषेध, चोदह सगीत दोष, पचताल स्वर, ६ ग्राम, अनेक राग के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी के लिये वर्ण रत्नाकार ६ ५७ ख-५८ द्रष्टव्य है ।

स्थापत्य—कलश चादा ३० । कुड चादा० १९ । कूप-चादा० १८ । कादु-चादा० २४ । खाई-चादा २३ । खौरी चादा० २५ । गोपुर (-नगर की प्रधान द्वार)-की० २ १८ ९७ । चेटसार-वर० ४ ३७ क, चौखडी-चादा० ३०, चौपाल वर० ३ २४

---

1 पृ० ५ ३८ २ वही ३ पृ० ५ ५ २ ४ पृ० ५ ३१ १, वर० ५ ५० क ।

ख, तारा चादा० १६ देवर चादा० १६, वापी चादा० १८, वाधी की० २ १८ ६७, परकोटा-चादा० १४। पुर वि यास-की० २ १८ ६८। पौखर-चादा० १६। मेडप-चादा० १६। म०-चादा १६। राजपथ -की० २ २२ १२७। राजपाटिका प्रचि० १०७। शाखानगर की० २ १८ ६६। शृङ्गारक की० २ १८ ६६। सिहद्वार-चादा० २६। नगर तथा आस्थान का वणन भी द्रष्टव्य है।

कलासिका (कारीगर का औजार विशेष) प्रचि० २ ६६। कारु (पत्थर काटने वाला) चादा० २४। विश्वकर्मा-की० २ २२ १२८। बिनानी (कुशल कारीगर) चादा० ७६, ११६। स्थपित्य (कारीगर)-प्रचि० ४ ८८८। सूत्रधार-चादा २६।

गोबर नगर के खाई को तल से ही पत्थरो द्वारा इस प्रकार बाँधा गया था कि उसमे कही भी अन्तर या सन्धि नही सूझती थी—चादा० २३।

हस्तविद्या —देखिए जिण० ४६, ५६।

राजनीतिक शब्दकोष

राजा के समानार्थक शब्द

चक्कवइ (चक्रवर्ती), जिण० ४५४, नरपति, वर० ४ ३४ क नरिंद वारा० ६, नरे द्र-वर० ३ ३२ क, नरेश-की० ३ २० ८७, २ ७ ८, नाह ढामा० १०, पातिसाह-की० १ २८ ६३, २ १४ ५८, ४ ३५ २३७, पुहवीपति का० २ १५ ६१, पूहविए पाना (पृथ्वीपाल) -की० २ ३४ २२०, भुआल वारा० २८, २९, भूप-की० ४ ६१ २५७, भूपाल-की० ४ ३७ १४३, भूपाला-की ३ ७ २५, भूवइ की० १ २१ ६४, महाराजाधिकार श्रीमत्-की० २ ७ ३०, महापने की० १ ५ १३, रा (राय) की० ४ ४८ १८६, राअ तथा राआ-कीर्तिलता मे सामा य, राह और राने चादा० ४०, राउ-चादा० २३१ प्रच० १ ५६, ढामा० १, राए कीर्तिलता मे सामान्य, राजे की० ३ ३ ९ राजा-सामान्य, अश्वपति (-अश्वपति, राजस्थान मे यह राजा के लिए व्यवहृत है) ढोमा० ५६६, रावत-प्रच० १ ७०, रावल-वेरा० ७, साह-की० २ २५ १५३, सुरताण-की० १ २३ ७३, सुरतान-की० २ ३४ २२३, सुल्तान-की० ३ ६ ४३, सुलतान-चादा० १७, चक्कवया-पृ० ३ १७ १२, छत्रपति, पृ० ७ १३ १ नृप तथा नृपति, पृ० मे सामा य, भुअपति पृ० ४ १ ५, भुआल पृ० ३ ३८ २, भूप पृ० २ ३ ३२, राइ-पृ० २ १७ १, राइस पृ० २ ८६ २, राउ पृ० २ ३।५५, राउत्त-पृ० ७ ६ २३, राय पृ० १४ ८, ८ ३ ६, रावन-पृ० ८ ३ ६ सामन्त, पृ० २ ३ ६, २ १५ ३ साहि पृ० २ ३ ३१ ।

ऐतिह्य राजन्य—

इब्राहीम शाह (जौनपुर, १५वी सदी)-की० सामान्य, कलचुरि कण (११वी सदी), पृ० ५ १३, प्रापै० ६६, १३० १२६, १८५, २०१, चौलुक्य चक्रवर्ती कुमारपाल (१२वी सदी), प्रचि० ४ १३२, १७२ १७३, काशीपति जयच द (१२वीं सदी) प्रचि० ३ १२१, कासीस-प्रापै० ७७, ८७, १३२, १४५, १८०, १६८, जयचैन्द-पृ० सामा य, ढोला (राजस्थान, १०वी सदी), ढोमा० सामान्य, नल (कच्छ-

वाहा वश, १०वी सदी) ढोमा० १, पृथ्वीराज (१२वी सदी) - पृ० सामा य, प्रचि० १ २१४-२५८, गाविन्द राज (साम‍्त, कुरु जगल का निवासी) पृ० २ ३, ७ २०, भीम चौलुक्य-पृ० २ ३, १२ ३३, ३ ६, ८ २,४, गूजराधिपति भीम (१३वी सदी) पृ०, शहाबुद्दीन गौरी (१२वी सदी), पृ० सामा‍्य, सलष आर जैत पमार (आबू नरेश, १२वी सदा) पृ० ८ ३०, १' १२, वीसलदेव, भाज परमार (१२वी सदी) वीरा०, मुज तथा भाज (मालवा नरेश), प्रचि० अ‍्याय १, भोज-वीरा० ६, मूयराज-प्रचि० अ‍्याय १, वीसलदेव प्रचि० ४ १६६, सिद्धराज प्रचि० अ‍्याय ३, शो‍्य राजन्य-चडडावली (राजस्थान) का रावल धवलदेव जिसने उदयसिंह सूरी का भक्त होना स्वीकार किया। कछूला रास-रचना काल स० १३६३, रचना स्थान-कुरटावड (कारिंटावडि)। असलान-का० सामान्य, इसने मिथिला के राजा गणेश्वर का वध किया था। कार्तिसिंह के प्रयत्न मे यह जानपुर के इब्राहीम शाह से पराजित हुआ था। इस सम्बन्ध मे पा० रावाकृष्ण चोधरी का 'हिस्ट्री आव मुस्लिम रूल इन तिरहुत अ याय २-४ और डा० का 'मिथिला का इतिहास' अ‍्याय ८ द्रष्टव्य है।

राज्य के अधिकारी तथा कर्मचारी –

अग रक्षक-प्रचि० २, ४ १३३, अरदगर इस नाम के अधिकारी का निश्चित उल्लेख अभा अप्राप्य है। सम्भवत अरद 'ओर्द' का रूप हो जिसका तात्पय शाही दरबार, महल अथवा छावनी है—स्टाफा० ११६। महलसरा अथवा दरबार आदि का प्रबन्धक अरदगर हा सकता है। इसका समानार्थी 'हाकिन हरम' और 'शहना बारगाह' है। दे० लाइफ एण्ड कडीशस आव द पीपुल्स आव हिन्दुस्थान कुवर मुहम्मद अशरफ, पृ० १७०। का० ३ १० ४१ आरक्षक नगर रक्षक-प्रचि० २ ६२, इजीरु-चादा० १७, उज्जीर की० ३ २ ६ उमारा की० २ ३४ २२२, आज्ञया-उपा‍्याय, धर्मशास्त्र, स्मृति, निब‍्ध ग्र‍्थो के अनुसार शोधात्मक निणय का काय करता था की० ३ २४ १४१, ओहदा—वर० ३ २६ ख।

काठीगा (-पहरेदार) प्रच० ४ ३६७, कुमार (-कुमार भुक्त-गुजारेदार) चादा १०१, कुरबक (शस्त्रास्त्र तथा शाही झडा का अधिकारी की० ३ १० ४१, कोटवार-चादा० २६८, (सम्भवत कर उगाहने वाला कर्मचारी), गद्दवर-इस नाम से मिलता जुलता अधिकारी 'गिदवान' होना था जिसका अर्थ था प्रधान सेनापति, स्टाफा २ १०७६-की ३ १० ४१, ग दा—(गुप्तचर स्टाफा० ११०७)-की २ २७ १६०,

१ एक विस्तृत सूची सामाजिक दशा के आस्थान वणना' मे भी द्रष्ट‍्य है

गालिम (-नौजवान लडके, स्टाफा०) की २ ३४ २१६, चर-प्रच० ४ ४२६, चाहन्ते छाहर (-चहेते छोकरे) की० २ ३४ २१६, छत्तीस कुरी राजपूत-सामान्य, टिकइत (-जिसे तिलक लगता हो, सम्भवत सामन्त)-चादा० ३४, दरवाल (-दरबान) की० २ ३५ २३८, दिवाण-वीरा० ६ दूत-जिण० ४६९, देमान-की ३ १० ४१, थाण-दार—रणमल्ल० १३, धम्माधिकारी-की० ३ ३३ १३६ नियोगी-वर० ३ ३०क ।

पचकुल (-कर वसूल करने वाला अधिकारी)-प्रचि० ३ ६४, ४ १४३, १५८, राज पडित-वीरा० ८१,६५, पवरिया-चादा० २४ ६० परधान-वीरा ६०, परि-अण (परिजन, नौकर चाकर) की० २ ३६ २८८, पानीय अधिकारी-प्रचि० १४, पाहरु (पहरेदार), प्रच० १ १२७, परतिहार (प्रतिहार) चादा० ३६४, वणवाल (वनपाल) प्रच० १ ६६ बसीठ (-दूत)-चादा० ६३, बसीठ को परधान भी कहा है । चादा० ६५ वीरभट-सामान्य, भण्डारी-जिण० १३२, मन्ति-(मन्त्री) सामान्य, मुक़दम-(नगर शासक स्टाफा०)-की० २ २९-३० १८४, मुलुक्का (राजा, मालिक, सरदार)-की० २ ३४ २१७ ।

राउत-सामान्य, राइ राणा-वीरा० ६, की० २ ३४ २२५, षाण की० २ ३४ २१७, षुदकारी (न्याय करने वाला काजी)-की० २ २९ -३० १९१, सइअदगारे (-सैयद)-की० २ ३४ २२०, सामन्त पृ० ५ ३१ १, २ ३ ६, २ १५ ३ सेवक-की० २ १५ ६८, हेरा (दूत) ढोमा० ५९७, हेजम पृ० १२ ८ ।

परम्परागत ३६ आयुध—

शर, शुर, शक्ति, सेल्ल, सदुल, परिघ, परशु, पाश, पट्टिश, खग, भुशुडी, भिन्दिपाल, भल्ल, यष्टि, ऋषि, डाड, उछुस, दड, मुशल, मकुल, कुठार चक्र, तोमर, कोदड, कपन, नाल्रोक, कुत, गदा, शुभक, छुरिका, पारवान, यमदाढ, परपत्र अकुश, चर्म्म, तरवारि-वर० ८ ७० क ।

अन्य—अग्निवान-वर० ५ ४६ क, कटार-चादा, १२५, कटारी-चादा० १०६, ढोमा० २६७, कड-की० ४ ४४ १७३, कमान, ढोमा० १५५, २४९, की २ २७ १६३, करवत (-आरी)-ढोमा० ५५, करवाल-की० ३ १७ ७२, कवच सामान्य, काड (वाण)-की० ४ ४१ १६३, कोदड-वर० २ २० क, की ४ ४४ १७२, किवाण (कृपाण)-प्रापै० २ १६६, कुत-चादा, १०६, १२९, खग्ग-सामान्य, खाडा-चादा० २९ १०६,१२३, खुरसाण (-यहा खुरसाणी तलवार से तात्पर्य है) ढोमा० ३८०, ६४०, चाव (-चाप) प्रापै० २ १६६, सीगिणि गुण की० ४ ४३ १६८, चक्क, प्रापै० ३ १६९, छुरी-जिण० २६५, जमदाढ चादा० १२`, टाटर चादा १०६ टोप्परि

(-टोपा, शिरस्त्राण) की० ४ ५५ २३१, ठाणा (बाण चलान की विशेष मुद्रा में खड़ा होकर युद्ध करना) की० ४ ४७ १८०, डाग (लट्ठ)- चादा० १०६, २६८, तरकस सामान्य, तरवार सामान्य, तीर सामान्य, दवाल (-चमकती तलवार) की० २ ३५, २३८, धनुष सामा य, नेजा वीरा० १३, पटवाल (कवच) की० ४ ४४ १७३, पट-वालन-(रूई भरे कवच)-की० ४ ४१ १६३, ४ १७३, पाखर-ढोला ४१२, पुखो (-वाण का अग्रभाग) चादा० ११५, फरसा चादा० १०६, फरी (-लाठी)-जिण० २१८, चादा० १०२, १२३, भल्ल (-भाला) प्रापै० २ १६६, चादा० १२३, भाथा-चादा० ११५, मुगदर चादा० १५, प्रापै २-१६६ वेलक (एक विशेष प्रकार का तीर जिसका सिरा दुफकी होता था अथवा जिसकी अनी बेलचे के आकार की होती थी। फा० वेलक स्टाफा० २२४)-की० ४ १८ ७८, ४ ४६ १७६, वाण-सामान्य, वज्ज-की० ४ १३-५४, शर-सामान्य, शार्ङ्ग (-सींगो का धनुष)-की० २ २४ १५१, चादा० १०६, षाड-सामा य, सन्नाह-सामान्य, सर-सामान्य सल्ल (-भाला) ढोमा० ३६६, सावर (-बर्छा) की० ४ २१ ८७, सल्लि (-शल्य, वाण)-की० ४ ४८ १८५, सागि-चादा० १०३, सींगिनी-चादा० १२६, की० ४ १५ ६५, सुहणाल (-तोप जिण० ४६०)।

कोट—दुग, गढ, गढी-साम य, कौसीस (-कगूरा)-की० २ १७ ९८, खड़िया (-छोटा द्वार) -की० २ १७ ८५, गोफणी (-पत्थर फेकने का किले से सलग्न अस्त्र) -जिण० ४५७, पउलि (-पौली, प्रतोली)-वही, परिखा (-खाई) जिण० ४५८, प्राकार-की० २ १८ ६८, बकनार (-किले मे प्रवेश का मुख्य बडा द्वार) की० २ १७ ८३, बाडा जिण० ४५८ साकम (-जल पर से उतरने के लिए काष्ठ आदि से निर्मित माग) की० २ १७ ८३, एकचोई, सरइचा तथा सरनाम (तम्बू विशेष) की० ४ ३१ १२०।

पाराशष्ट—२

तनाव का विवरण

क्रमांक	जाति सहित पक्ष विपक्ष	लेखक की जाति और स्थान	कारण	सदभ
१	जयच द (क्षत्रिय) – अन्य क्षत्रियराजे	भट्ट, राजस्थान	राज्य	पृ० २१३
२	,, ,, — ,,	,	महत्वाकाक्षा	पृ० २१
३	जयचन्द पृथ्वीराज (क्ष०)	,,	अह, राज्य तथा महत्वाकाक्षा	पृ० २३
४	पृथ्वीराज (क्ष०)-खोखद राज (मु०)	,,	,	पृ० २७
५	, वलक ,,	,,	,,	,,
६	, गजनी ,,	,,	,,	,,
७	,, मरुधरा ,, (क्ष०)	,,	,,	,,
८	,, मडौवर ,, ,,	,,	,,	पृ० २१७
९	, रणथम्भौर ,, ,,	,,	,,	पृ० २१७
१०	, कालीजर ,, ,,	,,	,,	,,
११-२१	जयचन्द ,, ११ विभिन्न क्ष० राजन्य	,,	,,	पृ० २१८
२२	,, सयोगिता (क्ष०)	,	विवाह	पृ० २२७-२८
२३	कयमास , पृथ्वीराज की महारानी (क्ष०)	,,	कामुकता, लघुकर्म, जन विरोधी असामाजिक तत्व	पृ० ३३४
२४	,, ,, ,,	,,	,,	पृ० ३३७,८

क्रमाक	जाति सहित पक्ष विप न		लेखक की जाति और स्थान	कारण	सदर्भ
६२	चन्द्र शेखर	जिणदत्त (वै०)	जायसवाल, श्रावक	सुरक्षा	जिण ४५७ ४६४
६३	,,	,,	,, ,,	सज्जनता	जिण ४७५-४८६
६४	मालवती (क्ष०)	मारवणी (क्ष०)	राजस्थान	सौतिया डाह	ढोमा०
६५	ऊमर का एक चारण	ढोला ,,	,,	नारी	ढोमा० ६२६
६६	अमर सूमडा	,,	,, ,,	नारी और धन	,, ६२७-६४६
६७	मालवणी (क्ष०)	मारवणी (,,)	,,	जन्म स्थान	,, ६५४-६६८
६८-६९	अम्बिका देवी (जैन धर्म०)	(१) सास (२) पति (वैदिक धर्मा०)	काठियावाड, जैन धर्म०	जैन धर्मा० को ब्राम्हण के पहले भोजन देना	अम्बिका०
७०	यशोदा (अ)	कृष्ण द्वारा माखन चोरी	उत्तर प्रदेश	घर मे पर्याप्त गौरस फिर भी पुत्र द्वारा माखन चोरी	सनेह लीला ३३
७१	गोपियाँ (अ०)	ऊधव	,,	ज्ञान और भक्ति	,, ६०-१०१
७२	वैदिक धर्मा०	जैन धमा०	कोरिटावडि	धर्म	कछुली रास
७३	कौशा वैश्या	स्थूलि भद्र	पाटलिपुत्र, जैन	काम वासना	स्थूलिभद्रफाग
७४	नारिया	भदन		,,	वसन्तविलासु फागु
७५ ८८	७५ क्षत्रिय राजाओ के मध्य			अहं, राज्य	प्रा० पै० ७७, ७८ ८७, ९२, १४७, १८०, १९०, १९८, २०४ (ब) १११, १२८ ।

सकेत—ब्रा०-ब्राम्हण, क्ष०-क्षत्रिय, वै०-वैश्य, अ-आ-अहीर, आभीर, मु०-मुसलमान ।

सक्षिप्त सकेत और सहायक सामग्री (हिंदी-सस्कृत) (विवेच्य ग्रथो को छोडकर । उन्हे प्रावकथन के अतिम भाग मे देखिए ।)

अथव०	अथर्ववेद
उ० व्य०	उक्तिव्यक्ति प्रकरण प० दामोदर विरचित, विस० २०१०
ऋ०	ऋग्वेद
की० (शिव)	कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा शिवप्रसाद सिंह, सन् १९५५ ई०
गौ० ध० सू०	गौतम धर्म सूत्र
ग्या० भा०	ग्यारहवी सदी का भारत डा० जयशकर मिश्र, १९६८
जैन ज०	जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज डा० जगदीशचन्द्र जैन, वि० स० २०२२
जैमिनि०	जैमिनी धर्मसूत्र
ध० रा०	धर्म और समाज डा० राधाकृष्णन्, १९६७ ई०
धतु० रा०	धर्म, तुलनात्मक दृष्टि मे डा० राधाकृष्णन्, १९६९ ई०
पा० भारत० वा० श० अ०	पाणिनिकालीन भारत वासुदेवशरण, अग्रवाल, २०१२ वि०
बौधा०	बौधायन धर्मसूत्र
प्रा० मो०	प्राचीन भारतीय वेशभूषा डा० मोतीचन्द्र, २००७ वि०
भा० द०	भारतीय दर्शन, भाग १, २, डा० राधाकृष्णन्, १९६९
मनु०	मनुस्मृति
मान०	मानसोल्लास एक सास्कृतिक अध्ययन डा० शिवशकर मिश्र, स० २०२३ वि०
रावि०	रासो साहित्य विमर्श डा० माताप्रसाद गुप्त, १९६२ ई०
वसिष्ठ०	वसिष्ठ धर्मसूत्र
वारा०	वाराह गृह्यसूत्र
विष्णु०	विष्णु धर्मसूत्र
वैवि०भास० मम० गिरिधर श० च०	वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
बृह० उप०	बृहदारण्य उपनिषद
सशृ०	सभा श्रृगार सम्पादक अगरचन्द नाहटा, सं० २०२६ वि०

हरि० वेदा हि० प० मि०	हरिदत्त वेदालङ्कार हिन्दू परिवार मीमासा, स० २०११ वि०
हि० स०	हिन्दू सस्कार डा० रामबली पाण्डेय, स० २०२३ वि०
हि० रा०	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास सम्पादक डा० राजबली पाण्डेय, स० २०१४ वि०

अग्रेजी

एए	अब्दुलहक का अखबारुल अरयार
ए बी ओ आर आइ	एनल्स आव द भडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट
ए आइ ओ सी	प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्राजेक्शन्स आव द आल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स
ए एस आइ	आर्चेलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, एन्युवल रिपोट
बी आइ	बिब्लियोथेका इण्डिका, कलकत्ता
बी के	बुरहानी म आसिर, अनु० जे० एस० किंग—दी हिस्ट्री आव द बहमनी राज्य, लदन, १९००
बी एम	ब्रिटिश म्यूजियम
बी एस ओ एस	बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरियण्टल स्टडीज
सी सी	कटलागस कटलागरम्
सी एच आइ	कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया
सी पी बी एम	कटलाग आव परसियन एस एस एस इन द ब्रिटिश म्युजियम, बाई रिउ० ।
सी पी एम आइ	कटलाग आव परसियन एम० एस० एस० इण्डिया आफिस, बाई इथे ।
सी एच० एस एस०	चौखम्भा सस्कृत सिरीज
इसी	इपीग्रेफिया करनाटिक
इ आइ एम	,, इण्डो-मुस्लिमिका
फिरिश्ता	गुलशन इब्राहीमी (टेक्स्ट)
गृ० रत०	गृहस्थ रत्नाकर
डी० एस०	देहली सुल्तानेट, वालूम ४, भारती विद्या भवन, बम्बई, १९६० ई०
हि० सा० को	हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, वाराणसी ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, स० २०२०
एच० बी० एस०	हिस्ट्री आव बगाल, वालूम २, स० सर जदुनाथ सरकार ढाका

एच० सी एस एल	हिस्ट्री आव क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, म० कृष्णम्-चायाम्, मद्रास, १८३७ ई०
एच० आइ ई डी	हिस्ट्री आव इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स आन हिस्टोरियन्स, अनु० एम० एम०, इलियट एन्ड डाउसन, लदन, १८६७
एस एस आइ एस	हिस्ट्री आव साउथ इण्डिया, के० ए० एन० शास्त्री, मद्रास, १६५५
एच एस एल	हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर
एच० एस पी	,, ,, पोयटिक्स
आइ ए	इण्डियन एन्टीक्वेरी, बम्बई
आइ बी, आई बी एच	रेह्ला आव इब्नबतूता, अनु० एम० हुसैन, जी० ओ० एस० १६५३ इ०
आइ सी	इण्डियन कल्चर, कलकत्ता
आइ एच क्यू	इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली, कलकत्ता
आइ ओ एल	इण्डिया आफिस लाइब्रेरी
आई पी एम आइ०	हिस्ट्री आव मेडिएवल इण्डिया, इलाहाबाद, १६२५, ३ , ५०
आइ एस सी	इस्लामिक कल्चर
जे ए	जनरल एशियाटिक, परिस
जे ए एस आर एस	जनरल आव द आन्ध्र हिस्टारिकल रिसच सासाइटी
जे ए ओ एस	,, ,, अमेरिकन आरिएण्टल सोसाइटी
जे ए एस	,, ,, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
,, बी	,, ,, ,, बम्बई
जे बी बी आर ए एस	,, ,, बम्बइ ब्रान्च आव द रायल एशियाटिक सोसाइटी
जे बी ओ० आर एस	,, ,, बिहार एन्ड उडिया रिसर्च सोसाइटी
जे बी आर एस	,, ,, बिहार रिसच सोसाइटी, पटना
जे आइ एच	जनरल आव इन्डियन हिस्ट्री
जे आइ एसओ ए	,, ,, सोसाइटी फार ओरिएटल आर्ट, कलकत्ता
जे ओ आर	,, ,, ओरियन्टल रिसच, मद्रास
जे आर ए एस	,, ,, द रायल एशियाटिक सोसाइटी
जे आर ए एस बी एल	,, ,, ,, बगाल, लेटर्स
जे यू बी	,, ,, ,, यूनिवर्सिटी आव बम्बई
जे बी ओ आर आइ	,, ,, ,, वेकटेश्वर ओरिएटल रिसच इन्स्टीटयूट
के क चौ	धर्मशास्त्र का इतिहास, काणे, अनु० कश्यप चौबे

एम ए आर	एनुअल रिपोर्ट आव मैसूर आर्चौलाजिकल विभाग
एम ए एस आइ	मैम्वायर आव दआर्चौलाजिकल सर्वे आव इण्डिया
एच सी	हिस्ट्री आव मिथिला, डिउरिंग द प्री मुगल पीरियड, मनमोहन चक्रवर्ती, जे ए एस बी, एन० एस०, १६१५, पृ० ४०७
एम आइ क्यू	मेडिएवल इन्डिया क्वाटर्ली, अलीगढ
एल टी एम एल	लाइफएण्ड टाइम्स आव मुहम्मद विन तुगलक, लदन, १६३८
एन आइ ए	न्यू इण्डियन इण्टीक्वैरी, बम्बई
एन आइ एस	न्यू इम्पीरियल सिरीज
एन एस	न्यू सिरीज
एन एस पी	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
पर० माध	पराशर-माधवीय
पी आइ एच सी	प्रीसिडिंग्स् आव द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
पी ओ	पूना औरिएण्टलिस्ट
पी आइ ओ सी	प्रीसीडिङ्ग्स, एण्ड ट्राजेक्शन आव द आल इण्डियन ओरियण्टल कान्फ्रेन्स
ए एस	द एडमिनीस्ट्रेशन आव द सुल्तानेर आव देहली बाई कुरेशी लाहौर, १६४४
क्यूटी आइ पी	हिस्ट्री आव द कुराना तुर्कस इन इंडिया, ईश्वरी प्रसाद, इलाहाबाद, १६३६
एस डी	सस्कृत ड्रामा, ए० बी० केथ, आक्सफोड, १६२४
एस आइ एल एच०	स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री बाई पी० के० गादे
एस ओ ए एस	स्कूल आव ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज
एस एस	सस्कृत सिरीज
एस एस पी	सस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता
टी० के० बी०	तुगलक कालीन भारत, ए०ए० रिजवी, अलीगढ़, १६५६-५७
टी एस एस	ट्रावनकोर सस्कृत सिरीज
एफ एफ	अनुवृत्त
	पूर्वोद्धृत पुस्तक

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सुल्तान	सल्तनत	२	१५
वृत्ति का	वृत्तिका	४	५
आदान प्रदान	अनुदान प्रदान	४	६
दाब	द्वाब	४	२५
निश्चय	निचय	८	९
पूण	पूव	८	१६
अशक्तना	अशक्तता न	९	१५
वृतियो	कृत्यो	९	१६
गृहस्त	गृहस्थ	९	८वी टिप्पणी
वृद्	वृहद्	९	७ "
कैवकोल	कैक्कोल	१०	४
सोपान तथा	सोपान तक	१०	२६
३ ५-१६	३ १ ५-१६	१२	२२
विलासितापूण	विलासितापूण सामग्री	१३	१०
वालोस	वारवोस	१३	१२
(२६७-९)	(२६७ ९२)	१४	११
पराशर-माघव (१११,३९३)	पराशर माघव (३,३९३)	१४	१५
पारस्परिक	पारम्परिक	१४	१५
समृद्ध	समुद्र	१४	२०
याज्ञवल्क्य (१११,२६३-६४)	याज्ञवल्क्य (३,२६३-६४)	१४	२४
पराशर-याधव (१११,६१-७२)	पराशर-माधव (३,६१-७२)	१४	२५
u p	vol	१५	टिप्पणी २
मुस्लि	मुस्लिम	१५	५
दूसरी और	दूसरी ओर	१८	३
पर्या त	पयन्त	१८	९
ल्पिय	विषम	१८	१९
उत्क्ृ ट	उत्कट	१८	२२
अधम	अधम	१९	९
सामान्य तथा	सामान्यतया	१९	१०
जिम्मी को	जिम्मी की	१९	२०
प्रक्रिया, मे वैष्ठाव	प्रक्रिया मे बैष्णव,	२२	६
मुश्लिमो	मुसलमानों	२४	४
फरदूद्दीन	फरीदुद्दीन	२४	५
भावाविष्टावस्था	भावाविष्टावस्था	२४	७
अरुनगिरि, जी	अरुनगिरि, जो	२६	५
शैल	शैव	२६	१०

एम ए आर	एनुअल रिपोर्ट आव मेसूर आर्चौलाजिकल विभाग
एम ए एस आइ	मैम्वायर आव दआर्चौलाजिकल सर्वे आव इण्डिया
एच मी	हिस्ट्री आव मिथिला, डिउरिंग द प्री मुगल पीरियड, मनमोहन चक्रवर्ती, जे ए एस बी, एन० एस०, १९१५, पृ० ४०७
एम आइ क्यू	मडिएवल इन्डिया क्वाटर्ली, अलीगढ
एल टी एम एल	लाइफएण्ड टाइम्स आव मुहम्मद बिन तुगलक, लदन, १९३८
एन आइ ए	न्यू इण्डियन इण्टीक्वैरी, बम्बई
एन आइ एस	न्यू इम्पीरियल सिरीज
एन एस	न्यू सिरीज
एन एस पी	निणय सागर प्रेस, बम्बई
पर० माध	पराशर-माधवीय
पी आइ एच सी	प्रीसिडिंग्स् आव द इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस
पी ओ	पूना औरिएण्टलिस्ट
पी आइ ओ सी	प्रीसीडिङ्ग्स, एण्ड ट्राजेक्शन आव द आल इण्डियन ओरियण्टल कान्फ्रेन्स
ए एस	द एडमिनीस्ट्रेशन आव द सुल्तानेर आव देहली बाई कुरशी लाहौर, १९४४
क्यूटी आइ पी	हिस्ट्री आव द कुराना तुर्कस इन इन्डिया, ईश्वरी प्रसाद, इलाहाबाद, १९३६
एस डी	सस्कृत ड्रामा, ए० बी० केथ, आक्सफोड, १९२४
एस आइ एल एच०	स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री बाई पी० के० गादे
एस ओ ए एस	स्कूल आव ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज
एस एस	सस्कृत सिरीज
एस एस पी	सस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता
टी० के० बी०	तुगलक कालीन भारत, ए०ए० रिजवी, अलीगढ़, १९५६-५७
टी एस एस	ट्रावनकोर सस्कृत सिरीज
एफ एफ	अनुवृत्त
	पूर्वोद्धृत पुस्तक

एम ए आर	एनुअल रिपोर्ट आव मेसूर आचौलाजिकल विभाग
एम ए एस आइ	मैम्वायर आव दआचौलाजिकल सर्वे आव इण्डिया
एच सी	हिस्ट्री आव मिथिला, डिउरिंग द प्री मुगल पीरियड, मनमोहन चक्रवर्ती, जे ए एस बी, एन० एस०, १६१५, पृ० ४०७
एम आइ क्यू	मेडिएवल इन्डिया क्वाटर्ली, अलीगढ
एल टी एम एल	लाइफएण्ड टाइम्स आव मुहम्मद विन तुगलक, लदन, १६३८
एन आइ ए	न्यू इण्डियन इण्टीक्वैरी, बम्बई
एन आइ एस	न्यू इम्पीरियल सिरीज
एन एस	न्यू सिरीज
एन एस पी	निणय सागर प्रेस, बम्बई
पर० माध	पराशर-माधवीय
पी आइ एच सी	प्रीसिडिंग्स् आव द इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस
पी ओ	पूना औरिएण्टलिस्ट
पी आइ ओ सी	प्रीसीडिङ्ग्स, एण्ड ट्राजेक्शन आव द आल इण्डियन ओरियण्टल कान्फ्रेन्स
ए एस	द एडमिनीस्ट्रेशन आव द सुल्तानर आव देहली बाई कुरशी लाहौर, १६४४
क्यूटी आइ पी	हिस्ट्री आव द कुराना तुर्कस इन इन्डिया, ईश्वरी प्रसाद, इलाहाबाद, १६३६
एस डी	सस्कृत ड्रामा, ए० बी० केथ, आक्सफोड, १६२४
एस आइ एल एच०	स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री बाई पी० के० गादे
एस ओ ए एस	स्कूल आव ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज
एस एस	सस्कृत सिरीज
एस एस पी	सस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता
टी० के० बी०	तुगलक कालीन भारत, ए०ए० रिजवी, अलीगढ़, १६५६-५७
टी एस एस	ट्रावनकोर सस्कृत सिरीज
एफ एफ	अनुवृत्त
	पूर्वोद्ध त पुस्तक

— – —

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सुल्तान	सल्तनत	२	१५
वृत्ति का	वृत्तिका	४	५
आदान प्रदान	अनुदान प्रदान	४	६
दाब	द्वाब	४	२५
निश्चय	निचय	८	६
पूण	पूव	८	१६
अशक्तना	अशक्तता न	६	१५
वृतियो	कृत्यो	६	१६
गृहस्त	गृहस्थ•	६	८वीं टिप्पणी
बृद्	बृहद्	६	७ "
कैवकोल	कक्कोल	१०	४
सोरान तथा	सोपान तक	१०	२६
३ ५-१६	३ १ ५-१६	१२	२२
विलासितापूण	विलासितापूण सामग्री	१३	१०
वालोस	वारवोस	१३	१२
(२६७-६)	(२६७ ६२)	१४	११
पराशर-माघव (१११,३६३)	पराशर माघव (३,३६३)	१४	१५
पारस्परिक	पारम्परिक	१४	१५
समृद्ध	समुद्र	१४	२०
याज्ञवल्क्य (१११,२६३-६४)	याज्ञवल्क्य (३,२६३-६४)	१४	२४
पराशर-याघव (१११,६१-७२)	पराशर-माधव (३,६१-७२)	१४	२५
u p	vol	१५	टिप्पणी २
मुस्लि	मुस्लिम	१५	५
दूसरी और	दूसरी ओर	१८	३
पर्यान्त	पयन्त	१८	६
व्पिय	विषम	१८	१६
उत्कृ ट	उत्कट	१८	२२
अधम	अधम	१६	६
सामान्य तथा	सामान्यतया	१६	१०
जिम्मी को	जिम्मी की	१६	२०
प्रक्रिया, मे वैष्ठाव	प्रक्रिया मे वैष्णव,	२२	६
मुश्लिमो	मुसलमानों	२४	४
फरदूद्दीन	फरीदुद्दीन	२४	५
भावाविष्टावस्था	भावानिष्टावस्था	२४	७
अरुनगिरि, जी	अरुनगिरि, जो	२६	५
शौल	शैव	२६	१०

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
कोल	कौल	२७	२, ४
बलनाड	ब्रह्मनाडी	३०	१३
यज्ञ	यक्ष	३१	३
माम	माम	३६	१३
पुली का	पुलीका	३८	४
सोक	शोक	३८	६
एशिया और पूवतया	एशिया और पूर्वी अफ्रीका का समुद्री व्यापार भारतीय तथा विदेशी मुसलमानो द्वारा पूणतया	३८	२६
कालीकट मे देश देशान्तर	कालीकट मे विदशी विशेषत अरब तथा फारस वासी और गुजरात से दश दशान्तर	३९	६
कटकता	लत्कता	४२	५
अकि	अकित चित्र	४२	२७
वणन	वण	४२	२८
क्षत्रिय बुक समन्वित	क्षत्रिय कुल सम्मिलित	४३	टिप्पणी १
अध्याय ४ तथा ५	अध्याय ४ तथा परिशिष्ट १	४४	१७
सगोत्र पैंगलम	सगोत्र के सुखदुख तथा शत्रुता-मित्रता के प्रति सजगता की नीति उपलब्ध है। प्राकृत	४५	७
वितृनामी	पितृनामी	४७	२
रहता	रखता	४६	४
प्रतिद्वन्दी उद्देश्य	प्रतिद्वन्दी द्वारा उद्देश्य	४९	१३
प्लेमेटिक	सेमेटिक	५०	१
उल्लेख सामाजिक	उल्लेख परिशिष्ट १ के	५०	१४
मुसलमानो क्षत्रियो	मुसलमानो ने क्षत्रियो	५०	१६
सेना फारस	सेना मे फारस	५१	३
स्वीकार	अस्वीकार	५२	२३
राम	रोम	५२	२५
आचारक	आचारक रक्षा	५४	८
चामरोशत	चामरो से शत	६४	१२